तीस-बत्तीस से ज्यादा नहीं होगी। खूब याद है, छोटे चाचाजी लगभग चालीस की उम्र में इन्हें ब्याह लाए थे। यह कोई चौदह साल पहले की बात है। तब हिरण नवें दरजे में पढ़ रहा था। मीरा और हुस्ना दरजा सात में थी। कुछ भी सोचो, हुस्ना की ज़रूर याद आती है। वह किसी की परवाह नहीं करती थी। तुम के सिवाय किसी को आप नहीं कहा कभी उसने। और तो और, चाचीजी-जैसे गुरुगंभीर आदमी तक से मजाक कर बैठती। कहती, चाचाजान, आप जैसी नफ़ीस और साफ़ जबान बोलते हैं; आपको सुफ़ैद दाढ़ी रखनी चाहिए थी।

चाचा पूछते—क्यों भला ?

—आखिर रवि बाबू को लोग इतना क्यों मानते थे ?

—कम्बख़्त कहीं की !

—और नहीं तो क्या ? सोच देखें, राजेन्द्र शील, दादाभाई नौरोजी, लियाकत हुसैन, अम्बिका मजुमदार, महर्षि देवेन्द्रनाथ—और गिनाऊँ ?

उसके साथ चाचाजी भी नन्हे नादान बन जाते। कहते--तेरी फहरिश्त के बाकी नाम मैं ही जोड़ दूँ—राजा राममोहन, विद्यासागर, बंकिम, गांधी, नेहरू, सुभाष, तस्वीरों में इनकी दाढ़ियाँ नहीं देखी तुमने ?

लोगों में हँसी की बेताब बाढ़-सी उमड़ आती। छोटी बहू तक लोट-पोट हो जाती—चाचाजी फिर वहाँ रुकते नहीं। हुस्ना इस तरह कायदे में आती।

बरामदा पार करके रास्ते पर पहुँचा कि मीरा ने आवाज़ दी—ज़रा रुकिए !

हिरण मुड़कर खड़ा हो गया। मीरा ने कहा—आपसे एक अनुरोध है। मेरे ही आग्रह से आपको पत्र देकर बुलाया गया है।

—कहिए।

पिताजी की जो हालत आप देखकर जा रहे हैं, कहीं जाते ही उनके उपकार की कोशिश न कर बैठें, यही मेरा अनुरोध है।

मीरा की आवाज़ स्थिर थी। हिरण ने कहा—अपनी बात मुझे ज़रा साफ-साफ समझाकर कहें।

मीरा बोली—आज बेशक हमें राह में खड़ा होना पड़ा है, मगर इसी लिए हम किसी की दया का एहसान नही लेने के।

हँसकर हिरण गोला—मान न मान, मैं तेरा मेहमान। इस तौर से किसी का उपकार करना एक विडम्बना है, मैं जानता हूँ। ख़ैर, आपकी बात मैं याद रखूँगा। और कुछ कहेगी आप ?

सिर झुकाकर मीरा बोली—एक ख़ास घटना की याद शायद आपको हो। उस पर कुछ सोचा है ?

—सोचा है।

—आपका क्या ख़याल है, उस दिन मेरा विवाह हुआ था ?

हिरण ने कहा—आप तो जानती हैं, संस्कृत भाषा में मैं सदा ही कमजोर रहा हूँ। वर की पोशाक पहने कुछ मंत्रों का पाठ आरम्भ ज़रूर हुआ था, जिनके अर्थ मुझे मालूम नही। आप मेरे आमने-सामने बैठी थी। चाचाजी ने आपका और मेरा हाथ अपने हाथ मे लिया ही था कि घर पर हमला हुआ, खलिहान मे आग लहक उठी, सिरिश्ते में एक आदमी का कत्ल भी हो गया। पुरोहित नौ-दो-ग्यारह हो गया, चाचाजी आपको उठाकर अन्दर के मंदिर की तरफ ले गए। मैं कहाँ छिपूँ, कुछ समझ नहीं सका।

हिरण के ब्योरे में कुछ कौतुक था। मीरा ने अपनी अटूट गंभीरता से कहा—आप मेरी मूल बात का जवाब दें।

—इसके लिए मुझे और तीन दिन का समय देना पड़ेगा।

—आप क्या साल-भर में भी इस पर कुछ सोच नहीं सके ?

हिरण बोला—सच ही बताना ठीक है। असल में मुझे इसका समय नहीं मिला। बात असल यह है, बड़ी उम्र में दोनों की शादी हो रही थी—ऐसा हुआ कि वह भी होते-होते रह गई।

सिर झुकाकर ही मीरा दृढ़ता के साथ बोली—मैने इस पर काफ़ी

—अपने यहाँ चिराग कैसे जले—तेल है कि मोमबत्ती ?

मीरा ने उसे गले से जकड़ लिया—जरा धीमे बोल भैया मेरे, तेरे बड़े चाचा सुन लेंगे, तो उनकी बीमारी बढ़ जाएगी।

सुमित्रा ने थोड़े-से मुरमुरे निकालकर उसे दिये।

सारी गिरस्ती ही मंद पड़ी है। इसका कारण है, स्वाभाविक अवसाद। जल्दी की कोई ताकीद नहीं। इसमें बहुत-कुछ अवास्तव है। बहुत हद तक दिन काटना यानी किसी प्रकार से जीवित-भर रहना। इसके बाहर जीवन की कौनसी संभावना है, जीवेन्द्र नहीं जानते; इसके भीतर भविष्यत का कौनसा भरोसा है, सुमित्रा को पता नहीं। फिर भी सुमित्रा के मन में प्रतिवाद है, मीरा के चाल-चलन में परिकल्पना है। सुमित्रा के मन में जाग-जाग पड़ता है विक्षोभ और मीरा के अंतस्तल में जगती है मुक्ति की एक वेटोक भूख। यह मुक्ति उसे चाहिए।

मीरा बोली—छोटी चाची, इस शाम रसोई नहीं होगी ?

सुमित्रा ने कहा—दो मुट्ठी चावल उबाल लेने को रसोई नही कहते, मीरा !

हँसकर मीरा बोली—इससे पता चलता है, तुम्हारे भंडार में कम-से-कम थोड़ा-सा चावल है !

सुमित्रा के चेहरे की अनोखी शोभा पर मानो दबे तूफान का आभास झलक उठा। बोली—आज-भर का तो है। कल से रास्ते में दामन फैलाने की नौबत आएगी।

उनके स्वर की गंभीरता से मीरा के चेहरे पर फिर हँसी खेल गई। बोली—कहूँ भी क्या छोटी चाची, साल-भर का अरसा गुजर गया, मगर अपनी पुरानी लत न गई। खाने का समय आया नहीं कि भूख लग आती है। मैं और तुम जब रास्ते पर खड़ी हो जाएँगी तो हो सकता है, दामन भर भी जाए !

सुमित्रा ने कहा—रास्ते ही पर तो खड़ी हूँ। लेकिन भात के साथ थोड़ा नमक मिल जाए कि तुम गद्‌गद् हो उठती हो। धन्य है रुचि

तुम्हारी !

—नयी रुचि है। बेजा क्या है ? हिरण ठीक ही कह गया, सुख ने हमारी मिट्टी पलीद कर दी है। नमक और भात का पंथ हमको-तुमको मालूम न था। लेकिन ऐसो की खबर अखबारों में पढ़ा करती थी, जिन्हे नमक-भात भी मयस्सर नही। ऐसों से एकाकार होना बुरा क्या है

सुमित्रा ने कहा—इसमे सांत्वना ज़रूर है, मगर स्थिति का प्रतिकार है क्या ? आज से चौदह साल पहले क्या यह तय था कि एक बारह साल के बेटे का हाथ पकड़कर हाजीपुर की छोटी बहूरानी राह की भिखारिन बनेगी ? जो अब तक अगारों से खेलते रहे, वे पहले से होशियार नही हो सकते थे ?

मीरा ने पूछा—आखिर तुम कह किनकी बात रही हो, चाची ?

—उनकी, जिन्होने मेरा ब्याह कराया था, जो मुझे ब्याह लाए थे।

—लेकिन जो चिरस्थायी व्यवस्था थी, उसे उन्होने तो अपने हाथों नही तोडा ?

—यह बात मेरे जानने की नही है, मीरा !

—समझने की तो है !

सुमित्रा उठ खड़ी हुई। बोली—बी० ए० पास मैंने नहीं किया है, मीरा ! थोथी दलीलों मे मैं नही पडना चाहती। किस्मत के हाथों छोड देने पर एक विधवा की क्या गति होती है, पता नही, मगर यह बता सकती हो, इस बच्चे को मैं अपने पैरों खडा कैसे करूँ ! तुम क्या कहना चाहती हो कि बेल्लिक की भीख पर ही जिंदगी-भर अत्रि का पेट भरना पड़ेगा !

सुमित्रा की आँखें गीली हो आईं।

मीरा बोली—मेरा यह मतलब नही है, चाची ! तर्क मै भी नहीं करना चाहती ! खैर, हम यही प्रतिज्ञा करे कि अत्रि को हम भूखे नहीं पालेंगी। चाचाजी चल बसे। बाबूजी भी जाएँगे, मैं जानती हूँ। रह जाओगी एक तुम और एक मैं। यह प्रतिज्ञा नहीं निभा सकेंगी ?

—हमारी कीमत भी कितनी है मीरा ! अच्छा तो यह है कि हम इस अपमान के हाथों से छूट निकलें। साल-भर तो गुज़र गया, अब जेठजी को लेकर हाजीपुर ही चलें तो क्या बुरा है ?

मीरा ने कहा—उन्हें लेकर तुम अगर वहाँ जाना चाहो, मुझे कोई एतराज नहीं, लेकिन मै अब वहाँ नहीं लौटने की। अपने प्राणों के भय से माँ बच्चे को छोड़कर नहीं भागती—नसों का बंधन होता है। लेकिन हम अपने चौदह पुश्तों की जगह को जान के डर से छोड़ भागे हैं ! जानती हो, कारण क्या है इसका ? हम दृढ़ता से उसे प्यार नही कर सके, पैने दाँतों से हम अपनी मिट्टी को पकड़कर नही रह सके—इसीलिए हमें भाग आना पडा। तुम लोग जाओ, मैं नहीं जाती। बाबूजी जो कहते हैं, ठीक ही है। जो छीन लिया गया, वह अपना नही है। चेहरे पर शर्म और अपमान पोतकर मै वहाँ खड़ी न हो सकूँगी।

सुमित्रा बोली—तुम्हीं नही जाओगी तो जेठजी वहाँ किसके भरोसे जाएँगे ?

मीरा बोली—मैं नही समझती कि बाबूजी जाएँगे। उनके मन का जुड़ सकना मुश्किल है। फिर वे जिस मर्ज के शिकार हो गए है, नया जीवन उनके लिए असंभव है। तुम वल्कि अकेली जाओ, चाची—वहाँ जाओगी तो दीवान, नायब, गुमाश्ते, लोक-लश्कर, सभी तुम्हारे पास पहुँचेंगे। हमारे नसीब मे जो है होगा, इससे अत्रि का जीवन नष्ट न होगा।

बाहर पैरों की आहट हुई। उसके बाद खाँसकर दो आदमी अंदर की तरफ़ आये। अचानक बेल्लिक बाबू के आविर्भाव से मीरा और सुमित्रा ज़रा विवश-सी हो खिसक गईं।

दूसरे सज्जन डॉक्टर थे, साफ़ समझ में आता है। बेल्लिक बाबू बोले—रुकते क्या हैं, सीधे चले आइए। अपने ही घर-सा है यह। मैं इनका कोई नहीं होता हूँ, फिर भी जब-तब आता-जाता हूँ।

दोनों जीवेन्द्र बाबू के कमरे में गये।

जीवेन्द्र बाबू आँखें बंद किए पड़े थे। बुखार मामूली था, मगर तमाम दिन रहा। आँखें मूँदे पड़े थे। यह न तो निद्रा थी, न तंद्रा—यह किसी कदर केवल जीना था। फिर भी डॉक्टर ने जब उनकी नब्ज़ पकड़ी, तो जीवेन्द्र बाबू बोले—जिन्होंने वेणु मल्लिक से तुम्हारा नाम वेल्लिक किया, बेशक वे बड़े रसिक आदमी होंगे। क्यों भई वेल्लिक ?

वेणु बाबू बोले—अपने मुँह अपना गाऊँ भी कैसे ? दरअसल माँ-बाप के रखे नाम पर यह कारीगरी अपनी ही है।

बाहर बैठी थी सुमित्रा। उनके चेहरे पर भी हँसी झलक उठी। मीरा ने उस हँसी में साथ नहीं दिया। वह उत्सुक होकर आवागमन की राह की तरफ़ ताकने लगी। इतने ही में माथे पर एक बड़ी-सी टोकरी लिये एक छोकरा आया और उसने अंदर आकर टोकरी रखी। टोकरी में खाने की बहुत सारी चीज़ें।

अरे भुँडुल, यह सब क्या ?

यह सारा कुछ आप लोगो के लिए है। आटा, चावल, भर-मसाले, मिठाई—सब। बाबू क्या अभी नहीं पहुँचे ?

—आ गए हैं। अंदर हैं।

—आख़िर इतने-इतने फल, मिठाइयाँ—यह सब किसलिए ? सुमित्रा ने पूछा।

—क्यों, आज एकादशी है न ? कल इनकी ज़रूरत होगी।

मीरा बुत बनी-सी बैठी थी।

घृणा और ग्लानि ने उसकी सारी सत्ता ही को मानो एक पल में जर्जरित कर दिया। दान गौरव की वस्तु है, जब कि वह दिया जाता है। किंतु वही दान घृण्य हो उठता है, जब हाथ पसारकर उसे लेना पड़ता है। इससे तो मौत आए, मुक्ति मिले।

कृतज्ञता से झुकी वाणी में सुमित्रा बोलीं—वेल्लिक बाबू के ऋण को हम चुका कैसे पाएँगे ?

मीरा ने कोई जवाब नहीं दिया।

दो

राज और राजकुमारी की चर्चा से मीरा ने जो जहरीली चिकोटी काटी, हिरण को उसकी चोट नहीं लगी। यह महसूस करने का उसे कभी मौका ही नहीं मिला कि वह एक ग़रीब पुरोहित-घर का लड़का है, क्योंकि वह पला है जीवेन्द्र बाबू के ऐश्वर्य में। इच्छा करने के पहले ही जिसे इच्छित वस्तु मिल जाती है, उसे लोभ करने की नौबत नहीं आती। और चूंकि उसे लोभ नहीं था, इसीलिए निराशा भी नहीं हुई। राजत्व नहीं मिला, इसका उसे कोई ग़म नहीं। बल्कि राजत्व के प्रति वह तीखा हो उठा है, इसीलिए कि उसने उसे आदमी नहीं बनने दिया। मीरा की यह उक्ति ही निरी हास्यास्पद है कि उसे राजकुमारी का नहीं, राज्य का लोभ था। यह उसके मार खाये हुए मन का विक्षोभ है। हर किसी को मालूम है कि मीरा उसकी स्त्री है। संप्रदान की विधि चौपट हो गई, दिनों तक दोनों को जुदा रहना पड़ा, यह यहाँ वह वहाँ रहे, जो भी चाहे हो, फिर भी वह मीरा का स्वामी है, सबके मन में यह सत्य लोहे की लकीर-सा हो रहा। यह कोई मुहब्बत का फ़साना नहीं रस-कल्पना नहीं, दोस्तों की बैठक में चारयारी की बात नहीं, यह सोलहो आने एक पारिवारिक बात है। आज अगर मीरा यह सोचे कि उसकी शादी नहीं हुई है, गठबंधन नहीं हुआ है, या वैवाहिक बंधन की वह किसी तरह कायल नहीं—तो भी दोनों के विच्छेद की बात नहीं उठती, इसलिए कि मीरा को मालूम है। हिरण के सिवाय और किसी को पति समझ सकना ग़ैर-मुमकिन है और हिरण भी यह जानता है, मीरा को छोड़कर उसकी स्त्री नहीं कोई। इसके लिए गाँव में निंदा नहीं हुई, कारिंदों में काना-फूसी नहीं हुई, अपने-बिरानों के बीच कोई आलोचना नहीं हुई। दोनों एक ही गाँव के हैं और छुटपन से ही हिरण को लोग उस घर का दामाद मानते रहे हैं। गुरुजी की चटशाला और मछुआ-मल्लाहों का अड्डा—हर

कहीं वह समान रूप से दामाद के रूप में ही परिचित रहा है। यदि आज मीरा या वह खुद ही इस निश्चित सवध को ठुकराकर चल दें, तो परिवार और समाज चौंक उठेंगे और शायद हो कि खुद जीवेन्द्र बाबू इस चोट को सह नहीं सके। यह दयनीय दशा कैसी होगी, यही डर की बात है।

हिरण एक खास प्रकार की जीवन-व्यवस्था से परिचित है, लेकिन पिछले साल-भर से वह व्यवस्था ही गुम हो गई है। ऊपर के स्तर की उसे जानकारी थी, लेकिन यह बात उसकी अजानी थी कि उसकी बुनियाद निचले स्तर में है। दुःख, अभाव, निराशा, नाकामयाबी, मनुष्य की ज़िंदगी में हैं तो ये सब, मगर उनका प्रकाश अपने जीवन में हो सकता है, यह बिलकुल नयी-सी बात है। जीवेन्द्र बाबू के बिस्तर के पास बैठकर वह जो क्षोभ जाहिर कर आया है, वह उसके अन्तस्तल का है। संपत्ति बेहाथ हो गई, इसका उसे रत्ती-भर भी ग़म नहीं; लेकिन इस पर उसे हज़ार बार खीज है कि वह विलास के हाथों पला। अब समस्या यह है कि अपने पुराने साँचे को बिलकुल तोड़-फेंककर अपने ही हाथो नये सिरे से अपने को गढ़ना पड़ेगा। उधर मीरा के मन में भी यही धुन आई है। वह अपने तईं यह यकीन करना चाहती है कि मेरी शादी नहीं हुई है, क्योंकि शादी हो जाने पर अपने को न तो तोड़ने की आज़ादी रह जाती है, न नये सिरे से गढ़ने की। सोलहों आने एक के होने पर ही आत्म-नियंत्रण के अर्थ को समझा जा सकता है। मीरा उस चिंताधारा से छुटकारा चाह रही है, जिसकी वह अभ्यासी रही है, एक स्वतःसिद्ध परिणाम से वह मुक्ति चाहती है। उसके अन्दर प्राण-शक्ति का चूँकि एक दुर्वार वेग है, इसीलिए वह सब-कुछ को अस्वीकार करने की शपथ लेना चाहती है। रहे वह कुछ दिनों तक अकेले—अपनी लीक आप ढूंढ़ निकाले।

हिरण को उसके दोस्त कहते—जैसे भी हो एक नौकरी पकड़ो, नहीं तो खड़े कैसे रह सकोगे? यह दोनों जून का भर पेट भोजन और महज़

दस रुपये पर बच्चों को पढ़ाकर ही ज़िंदगी तमाम करोगे ?

कोई कहता—एम० ए० पास किया है, किसी कालेज की शरण गहो।

हिरण कहता—पढना-लिखना और बात है, पढ़ाना-लिखाना और। शिक्षित होने से ही कोई शिक्षक नहीं होता।

—फिर और कोई काम पकड़ो !

—मिले तो बेशक करूँ, हिरण जवाब देता।

मन की ऐसी उखड़ी हुई स्थिति में भी कम-से-कम एक बात भूलते नही बनती कि जीवेन्द्रनारायण के परिवार के प्रति भी उसका कुछ फ़र्ज़ है। यह तो तब है कि सरकार से वे किसी तरह की सहायता हरगिज़ नहीं माँगने के। उनसे कहीं हाथ भी फैलाते नही बन सकता। किसी के पास अपना दुखडा रोने से रहे। बड़े भले हैं मन के लेकिन, बड़े ही स्वाभिमानी। उनके उस अचल स्वाभिमान के आगे बाल-बच्चों के अभाव-अभियोग की कोई बिसात ही नही। मुँह बन्द किये मौत को अपनाना उन्हें कबूल है, लेकिन अपने लिए किसी के आगे मुँह खोलना मुहाल। मीरा अपने पिता के आदर्शों पर निर्मित हुई है। इसीलिए उसने पहले ही दिन हिरण को जता दिया कि किसी तरह की मदद हमें नही चाहिए। अपनी कृपा पर रहने वालों की कृपा लेना उसे खटकता है। आखिर हिरण तो उन्ही के टुकडो पर पला है।

ऐसी मानसिक स्थिति मे एक दिन दोपहर को बाधा पडी। बाहर से किसी ने द्वार के कड़े खटखटाए। हिरण का छात्र स्कूल गया था, घर के और लोग कही निकल पड़े थे, दाई-नौकरों का हो-हल्ला बंद—औरतें जनानखाने में थीं। भोजन और उस कमरे में निवास के सिवाय हिरण से और कोई वास्ता ही नही।

धीमे से कड़े खटखटाने की आवाज फिर आई। कमरे का दरवाज़ा बाहर की ओर खुलता था—रास्ते की तरफ़। जब अंदर की तरफ़ से कोई आवाज़ नही मिली, तो उसने रास्ते की ओर का दरवाज़ा खोला। चौड़ी गली, जो बड़ी सड़क से जाकर मिल गई है। दरवाज़ा खोलकर हिरण

ने उझककर जो झाँका, तो सन्नाटे में आ गया।

विश्वास करना मुश्किल। इस युग में मनुष्य पिटा है, लेकिन उससे भी ज़्यादा पिटी है मनुष्यता। क्योंकि जो आदमी सबसे अपना है, जाति-भेद के चलते वही सबसे ज्यादा दूर हो पड़ा है। विश्वास करना मुश्किल, इसीलिए कि जिससे फिर कभी मुलाकात होने की संभावना न थी, जिससे किसी प्रकार का नाता रखना संभव नहीं था—आँखों के सामने वही आकर खड़ी थी। दरवाज़े के पास खड़ी मुस्करा रही थी हुस्ना।

हिरण के सर्वांग में कैसी तो एक कँपकँपी होने लगी! यह कम्पन आनन्द, वेदना, उत्तेजना, किसका था, कहना कठिन है। हुस्ना कमरे के अंदर आयी। बोली—ज़माने के बाद भेंट हुई है, पैरों की धूल लूँ?

हिरण ने शांत भाव से कहा—ठहरो, पहले सब-कुछ सोच देखूँ मैं। लेकिन हुस्ना, यह तो मैं सोच भी नहीं सका था।

लमहे-भर के लिए हुस्ना की आँखों की पुतलियाँ मानों दहक उठीं। बोली—कभी यह भी सोच सके थे कि बंगाल का बँटवारा हो जाएगा? सोचा था कभी कि स्वाधीनता पाने के साथ ही सब-कुछ जाता रहेगा? ख़ैर, बैठो। बहुतेरी बातें करनी हैं। मैं खूब नयी-नयी-सी लग रही हूँ न?

हिरण ने कहा—आँधी का पंछी अचानक हथेली पर आ बैठे··· बेशक ताज्जुब लगता है।

हुस्ना बोली—शायद इसीलिए मुझे देखकर तुम्हारी पलकें गीली हो गई हैं? आखिर तुम मर्द हो न? मैं लेकिन तुम लोगों के पास आँसू बहाने नहीं आयी हूँ। आँधी का पंछी रोता नहीं है, काँपता है।

बड़ी देर में जाकर हिरण का विस्मय मिटा। पूछा—हाजीपुर से कब आयी?

—तीन दिन हुए होंगे।

—मेरा ठिकाना किससे मिला?

हुस्ना बोली—समंदर मथने से मोती मिल जाता है, फिर तुम क्या

भंग-वंग पीकर पड़े रहते है क्या ?

—वे ज़िंदे होते तो भंग के पैसे ज़रूर नसीब नही होते।

—एं ! क्या कहा ?

—कोई छः महीने हो गए, छोटे चाचा गुज़र गए।

हुस्ना सन्नाटे में आ गई। धीरे-धीरे उसकी आँखें आँसुओं से भर उठी। अचानक वह बोल उठी—हम लोगों के होते बड़े चाचा की यह दशा ! तुमसे भी कुछ करते न बना ?

हिरण बोला—एक साल के बाद यहीं उस दिन तो मेरी उन लोगों से भेंट हुई है।

—क्यों ? तुम साथ नहीं थे ?

—वे सब अगरतला चले गए थे और मैं भाग गया था आसाम। और भी कुछ सुनना चाहती हो ?

हुस्ना चुप हो रही। कुछ देर बाद अपने को ही झकझोरकर बोली—चलो। चलो चलें—

—जाऊँ कहाँ ?

—मेरे साथ हो लो। कुछ जानना मत चाहो। यहाँ तुम नहीं रह सकते। धूल-मिट्टी जो भी है, बटोरकर मेरे साथ निकल पड़ो।

सकपकाकर हिरण बोला—कह क्या रही हो तुम ? मैं यहाँ लड़का पढ़ाता हूँ—भोजन नसीब होता है।

—अपमान के कौर नहीं खाने हैं। अभी चलो, तुरत। मुझसे यह बरदाश्त नहीं होगा हिरण !

हिरण को उसने उत्तेजित कर दिया। लेकिन हिरण बोला—मुझ पर इनके एहसान का बोझ है। बिना कहे चल देना क्या अच्छा होगा ?

हुस्ना बोली—वह एहसान पत्र देकर जतला देना। धेले की मास्टरी के लिए इतना सिर न भी खपाओ तो चल जाएगा। खैर, देर न करो। बेर रहते ही निकल पड़ें। चलो !

—आखिर तुम ले कहाँ जाओगी मुझे ?

—भाड़ में। लो, तैयार हो जाओ।—हुस्ना ने ताकीद की।

लाचार हिरण को उठना पड़ा। पूँजी के नाम पर एक छोटा-सा टिन का बक्सा था—फूल आँका हुआ। गिने-गुथे दो-तीन कपड़े उसमें सहेज लिए। मीरा समझदार है। गनीमत कहो कि तुम्हारे नाम पर उसने माँग नही भरी। बीवी को यहाँ रखते कहाँ तुम ?

हिरण बोला—ज़रूरत होती, तो माथे पर !

—माथे की बड़ाई तो रहने ही दो। जो अपने माथे पर लाठी मारते है, जानती हूँ कि उनके माथे भार कितना सह सकते हैं ! चलो चलें।

बाहरी दरवाजे से ही दोनों निकल पड़े। गली पार करके वड़े रास्ते पर चलते हुए हिरण ने कहा—इस ज़माने में तुमने मेरे सामने की थाली का बंटाढार किया है, याद रखना !

हुस्ना बोली—जानते हो, परोसी हुई थाली बैठकर कौन खाते हैं ? वे, जोकि खूँटे से वंधे होते है। मैं अब समझ रही हूँ कि तुमने कभी आदमी बनने की कोशिश नही की—घर-जमाई बनना चाहा था। मीरा इसीलिए तुमसे ऊब गई है। बुद्धिहीन भलमनसाहत औरतें नहीं बरदाश्त कर सकती।

हिरण ने कहा—मैने क्या हाथ फैलाकर कुछ माँगा था ? कुछ माँगने की कभी जरूरत नही पड़ी। बिन-माँगे ही मिलता रहा है, इसीलिए अभाव की शक्ल समझने की अक्ल नही आई। अच्छा, अपनी सूरत कभी ठीक से देखी है ? तुम्हारा वह रूप कहाँ काफ़ूर हो गया ? अपने चेहरे की ऐसी मिट्टी पलीद कैसे की ?

हिरण अबकी हँस पड़ा। बोला—सुनसान दोपहरी में कोई लड़की किसी लड़के को घर से निकाल लाए और उसके रूप की चर्चा शुरू कर दे तो यह बात कैसी होती है ?

हुस्ना ने कहा—बेशक बात कुछ रहस्यमयी-सी हो जाती है, किन्तु इतना तो मानते होगे कि भद्दी कल्पना के परे भी इसकी कल्पना होती है ? मेरे रूप नहीं है, मगर प्राण हैं, और तुम्हारे रूप था, प्राण नहीं

था। तुम्हें अगर फिर से रूपवान बना पाऊँ तो कम-से-कम खिलौने के खेल का आनन्द मिलेगा। इतना भी कम नहीं है। अब ज़रा उस विलायत-फिरता पाखंड की खबर तो कहो!

—कौन?

—अरे, तुम्हारा विमलाक्ष डॉक्टर। उसने मेरे खत का तो जवाब दिया, लेकिन तुम लोगों के बारे में एक हर्फ भी न लिखा। मैंने बड़े चाचा का हाल जानना चाहा था। ज़िक्र तक न किया। मदद की है कुछ उसने?

हिरण बोला—रत्ती-भर नहीं।

—क़र्ज़ के रुपये चुका दिये उसने?

—तुम अब भी उसे नहीं पहचान सकी हो?

—अच्छा! बस आ गई। चलो, इसी पर चलें।

हिरण के साथ हुस्ना बस पर सवार हुई। एक सीट पर दोनों अगल-बगल बैठे। वह काली कोर की धोती पहने थी, गले में लाल माला की एक लट, कलाई में सोने की पतली-पतली दो चूड़ियाँ। बीच में उसने ज़रा घूँघट काढने की कोशिश की थी। हवा से घूँघट उड़ गया। हुस्ना के चेहरे पर संताली आभास आज भी रह गया है। रंग साँवला है, मगर तंदुरुस्ती के लावण्य से उस पर निगाह ही नहीं पड़ती।

'बस' भवानीपुर की तरफ दौड़ चली।

विमलाक्ष के घर का दरवाजा खुला था। हुस्ना ने आगा-पीछा न किया—अन्दर की तरफ चल पड़ी। हाथ में सूटकेस लिये पीछे-पीछे हिरण।

जीने से हुस्ना सीधे ऊपर गयी और बरामदे से आवाज दी—विमल भैया?

आम तौर से डॉक्टर लोग दोपहर को सोया करते हैं,। जो अच्छे होते हैं वे चिकित्सा-संबंधी विलायती या अमरीकी पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ते हैं। विमलाक्ष जग ही रहा था। बोला—क्या है?

हुस्ना सीधे दाखिल हो गई कमरे में। वे अवाक् रह गए। डॉक्टर की पत्नी सो रही थी, चौंककर उठ बैठीं। विमलाक्ष ने हँसकर कहा—अरे, यह ताड़का कहाँ से? कब आयी? बैठो-बैठो। आओ भाई हिरण।

कुरसियाँ खींची गईं। बैठना हुआ। डॉक्टर की स्त्री सुषमा ने कहा—तुम तो जैसी थीं, वैसी ही सनकी लड़की रह गई हो, ज़रा भी शांत नहीं हुईं?

हुस्ना बोली—कच्ची नींद में जगने से गुस्सा आता है, क्यों भाभी? मगर मैं क्या करूँ, चिट्ठी में तुम लोगों की कोई खबर ही नहीं मिली। लाचार दौड़ी आई अपनी गरज से।

विमलाक्ष ने पूछा—गरज़ कैसी?

—बड़े चाचा के भले-बुरे की गरज़। उनकी खबर पाकर मैं तो चुप नहीं बैठी रह सकती विमल भैया!

भँवें सिकोड़कर सुषमा ने कहा—मगर तुम्हारी जुरंत भी कितनी है? इस डूबती हुई नाव को तुम निकाल लोगी?

हुस्ना बोली—नाव अभी डूबी नहीं है भाभी। अगर तुम लोगों की मदद मिले तो बड़े चाचा को मझधार से बाहर बेशक निकाला जा सकता है।

विमलाक्ष बोला—कैसी सहायता?

हुस्ना ने कहा—आर्थिक, शारीरिक, सांसारिक!

सुषमा बोली—हमसे सहायता की कहना भूल होगी। तुम्हें तो पता है, एक डॉक्टर को आजकल अपने पैरों पर खड़े होने में कितना समय लगता है?

हुस्ना की आवाज़ ज़रा तप गई। बोली—विमल भैया, क्या भाभी के मुँह से यह तुम्हारा वक्तव्य है?

विमलाक्ष ने कहा—फिजूल के तर्क से कोई लाभ नहीं। खूब अच्छा होता, अगर हिरण को कहीं मोटी तनखा की नौकरी मिल जाती।

—हिरण?—उसे तुम आदमी क्यों समझते हो? वह तो राज और राजकुमारी की उम्मीद में बैठा था—अचानक दोनों ही दाँव हाथ से

निकल गए। नौकरी करके वह सबको पालेगा ? हाय रे नसीब ! जिस दिन मेरी नज़र पड़ी कि वह एकांत में छिपकर कविता लिखा करता है, उसी दिन समझ गई, उसका भविष्य साफ है।

विमलाक्ष बोला—तुम कविता भी लिखते हो हिरण ?

हिरण बोला—अब सोचता हूँ, तो शर्म आती है ।

हुस्ना बोली—सुनो विमल भैया, तुम भी सुनो भाभी, तुम, हम, हिरण, सभी बड़े चाचा का खाकर बड़े हुए हैं । यदि उनके आड़े वक्त हम किसी काम न आ सके तो किसी को यह मुँह नहीं दिखा सकेंगे । मसलन तुम्हारी आज जो यह तरक्की हुई, इसकी जड़ में बड़े चाचा हैं; यह तो मानोगे ?

विमलाक्ष बोला—आखिर कहना क्या चाहती हो, सो कहो ?

—पढ़ाई का खर्च, छात्रावास में रहने का खर्च, गरज़ कि जो कुछ भी तुम्हारा खर्च था—सब बड़े चाचा ने चलाया—

—तुमने भी लिया है ! मैं अकेले ही नहीं दूहता रहा हूँ !

—बेशक हम सबने लिया है और दोनों हाथों लिया है । फिर भी मैं आज तुमसे लड़ने आयी हूँ । जानते हो, क्यों ?

—क्यों ?

हुस्ना बोली—इसलिए कि बड़े चाचा से सबसे ज्यादा तुम्हीं ने वसूल किया है। नकद रुपये तुम्हारे सिवा उन्होंने और किसी को नहीं दिये ।

विमलाक्ष बोला—मेरे सिवाय उन्होंने विलायत तो और किसी को नहीं भेजा !

सुषमा ने कहा—लिया सबने है पर पकड़ाई अकेले यही पड़े हैं ।

—भाभी, तुम्हारी माँग के सिंदूर की उमर ढाई साल से ज़्यादा नहीं है । इसी बीच क्या तुम्हारे स्वामी ने तुमसे सब कुछ कह दिया है ?

विमलाक्ष ने कहा—आखिर गड़े मुर्दे उखाड़ने का लाभ भी क्या है ताड़का ?

—मैं गड़े मुर्दे उखाड़ने नहीं आयी ।—हुस्ना बोली—मैं तुम्हारे पास मनुष्यता का दावा लेकर आयी हूँ। विमल भैया, और कोई नहीं जानता, सिर्फ मैं जानती हूँ कि महज डेढ़ साल पहले तुम बड़े चाचा से नकद पचीस हजार रुपये ले आए हो।

गर्म होकर विमलाक्ष बोला—यहाँ शायद वे यही ढोल पीटते फिर रहे हैं ?

हुस्ना बोली—छिः, इतने गए-बीते वे नहीं हैं ! तुम्हें खबर थी कि उनके बक्स की कुंजी मेरे जिम्मे रहती थी ? उस रात, नाव पर तुम्हारे सँवार होने से पहले बड़े चाचा ने मुझे जगाया। जगाकर कहा—हुस्ना, ज़रा कुंजी तो मुझे दे बिटिया। विमल खाली हाथों लौटना नही चाहता। बड़े चाचा ताली ले गए । कई दिनों के बाद मीरा से पता चला, आँकड़ा पचीस हजार का था। क्या यह झूठ है ? सब जोड़-जाड़कर क्या रकम लाख के करीब न होगी ? भाभी शायद यह समझ रही हों कि ज़्यादा रुपये तुम्हारी कमाई के ही है, मगर मालूम है कि तुम्हारा यह बाग-बँगला बड़े चाचा के रुपयों पर खड़ा हुआ है।

हिरण बोला—तुम क्या लड़ने आयी हो हुस्ना ?

सुषमा बोली—लड़ने नहीं, यह हमें कठघरे में ले जाने को आयी है, कठघरे में !

हुस्ना बोली—यह तुम्हारा ग़लत खयाल है भाभी। रुपया लेते व़क्त भैया ने कच्चा काम नही किया है । कोई गवाह, कोई सबूत, कोई प्रमाण—कुछ भी नही रहने दिया है। सही तक नहीं की है कहीं । हमें ये खाली हाथों ही आज अगर लौटा दें, तो कोई चारा नहीं।

विमलाक्ष झट-से बोल उठा—तुम रुपयों की जुगत में आयी हो क्या ?

—बेशक !—तुम तो जानते हो, मैं परले सिरे की ज़िद्दी लड़की हूँ। फिर बड़े चाचा के लिए आयी हूँ, इसीलिए इतना बल है !

—ऐसी बात है तो अपने बड़े चाचा को ही बुला लाओ। अगर वे

माँगें, तो जो बन पड़ेगा, दूँगा।

हुस्ना इस बार ज़ोरों से हँस पड़ी। बोली—यानी न वे आयेंगे, न तुम दोगे। यही तो ? यह सयानापन तो रहने ही दो भैया। तुम बुद्धिमान हो, ज़िन्दगी में बहुत कमा लोगे। कम-से-कम हजार रुपये आज तुम से लिये बिना तो मैं नहीं जाने की।

—यह क्या कह रही हो तुम, ताड़का ?

—यह ज़िद की बात ठहरी भैया, भीख की नहीं !

सुषमा बोली—रुपये अभी ये कहाँ से लायेंगे बहन ?

हुस्ना ने कहा—तुम्हारी कलाई की चूड़ियाँ ही मिल जाएँ तो दो हजार मिल जाएँगे भाभी !

—चूड़ियाँ मेरे पिताजी की दी हुई हैं—ये तुम्हारे बड़े चाचा के पैसों की नहीं है।

मुस्कराकर हुस्ना बोली—आखिर विलायत-फिरता योग्य पात्र के हाथों तुम्हें सौंपा है, कीमती चूड़ियाँ तो देंगे ही। उन्हें पता थोड़े ही था कि उनका दामाद गाँव की एक अनाथ विधवा का लड़का है ? ब्याह देते समय उन्हें क्या यह मालूम था कि लड़के की माँ ने ज़मींदार के यहाँ कूट-पीसकर अपने बेटे को पाला-पोसा था ?

विमलाक्ष अचानक गुस्सा हो उठा—दोपहर को घर के अन्दर धँसकर खामखा मेरी स्त्री के कानों ये सब बातें पहुँचाने का मतलब क्या है हुस्ना ?

—रुपये पाने में देर हो रही है, इसीलिए।

विमलाक्ष तनकर बैठा। बोला—यह ज्यादती नहीं हो रही है तुम्हारी ?

—बिल्कुल नही। तुम एक परिवार को भूखे मार सकते हो और मैं दो बातें नहीं कह सकती ?

—लेकिन तुमको मैं रुपये न दूँ तो ?

—नहीं क्यों दोगे, सो बताओ।

—तुम आखिर होती कौन हो कि तुम्हें रुपये दूं ?

—मैं कौन हूँ, तुमने आज तक भाभीजी को यह बताया ही नहीं ? लगता है, आज यहाँ बैठकर किस्सा सुनाना ही पड़ेगा !

सुषमा बोली—मगर तुम्हारा किस्सा विश्वासयोग्य कितना है ?

—शुरू से अखीर तक। यह रहे गवाह—श्रीमान हिरण। अपने पति को तुम जानती ही कितना हो भाभी ?

विमलाक्ष बोला—हिरण, आखिर मुझसे इस दुश्मनी की क्या वजह ? अंग्रेज़ी में इसे ब्लैक मेलिंग कहते हैं।

हुस्ना छुरी की चमकती धार-सी हँस पड़ी। बोली—तुम्हारा और किस्सा तो मैं सुनाना नहीं चाहती क्योंकि उस किस्से से मैं भी जुड़ी हूँ और उसकी नैतिक शक्ल भद्दी है।

सुषमा का धीरज टूट गया। बोली—क्या कहा तुमने ?

—मैने वही कहा, जो ज़बान पर नहीं लाना चाहिए !

—स्त्री के सामने उसके स्वामी की छीछालेदर करने का सबक शायद तुम्हारा ही समाज देता है।

हुस्ना की आँखें लहक उठीं। कहा—मुझे उकसाकर तुम क्या शुरू से अखीर तक सारा कुछ छान लेना चाह रही हो ?

विमलाक्ष उठ खड़ा हुआ। बोला—तुम इस हद तक उतर सकती हो, यह मुझे मालूम न था। खैर, रुपये ले जाओ। हजार ही ले जाओ। मैं भी कहे देता हूँ, चाहे जितने दिनों में हो, तुम्हारे बड़े चाचा के रुपये मैं चुका दूंगा।

विमलाक्ष लपककर दूसरे कमरे में चला गया। पलटकर अपनी गर्दन बढ़ाये सुषमा बोली—झूठी धमकी से डरकर रुपये देने की क्या पड़ी है ?

पाँचेक मिनट बाद विमलाक्ष कमरे में आया। नोटों का एक बंडल हुस्ना के आगे फेंककर बोला—मैने अब समझा, कोई भी भला आदमी औरत से क्यों डरता है ?

हुस्ना ने रुपये उठा लिये। पूछा—दुबारा कब आऊँ ?

—यह मैं हिरण को बता दूँगा।

—नहीं-नहीं, मुझी को बताना। घबराओ मत, तुम्हारी चिट्ठी मिलने पर मैं हिरण को ही भेज दूँगी। खैर, आज चलती हूँ।

—जाओ।

हिरण सूटकेस लिये आगे बढ़ चुका था। हुस्ना दो-एक कदम बढ़ी फिर उलटकर बोली—मेरे जाने के बाद दोनों प्राणी आपस में झगड़ मत पड़ना !

सुषमा तब तक वहाँ से चली जा चुकी थी। दबी हुई लेकिन तीखी आवाज में विमलाक्ष ने कहा—तुम लोगों से मेरे मिलने-जुलने का शायद यही अन्त है।

सीढ़ियों से उतरते समय हुस्ना की हँसी सुनायी पड़ी। रास्ते पर उतरकर हिरण ने कहा—माजरा क्या है हुस्ना ? यानी तुमसे विमलाक्ष का संबंध···?

हुस्ना बीच रास्ते में ही फिर हँस पड़ी। बोली—उसके सारे खतूत मैंने हिफाजत से रख छोड़े हैं। इसी से मेरी सूरत देखते ही उसकी रूह फ़ना हो जाती है।

—खतों में क्या है ।

—मुहब्बत की रसीली अर्जियाँ—तुम्हारी कविता की खूराक।

—यानी यह कहो कि तुमसे मिलना-जुलना बड़ा खतरनाक है।

हुस्ना ने कहा—बीस साल साथ रहने के बाद भी अगर तुम्हारा यही खयाल है, तो वही समझो ! लेकिन तुम क्या विमालक्ष को भूल गए ! याद नहीं है, वह बड़े चाचा के कानों में ज़हर उँड़ेला करता था। मीरा उससे नफ़रत क्यों करती थी, याद नहीं ?

—आखिर तुमसे उसका क्या रहा ?

—कुछ नहीं। मैं उससे बराबर मजाक किया करती थी और वह उसी को मुहब्बत माने बैठा था। वैसा सयाना आदमी, मेरे आगे उल्लू बन

जाता था। उस दिन की याद है, मेरे बी० ए० के इम्तहान का नतीजा निकला था, बड़े चाचा ने जमकर दावत दी थी ? विमलाक्ष उस रोज बड़े चाचा से रुपये लेने आया था। रुपये लेकर लौटते समय उसने सोचा आते-जाते कुछ मुनाफा भी कमा जाऊँ, तो बुरा क्या ! सो वह मुझे बुलाकर पोखरे की तरफ एकान्त में ले गया। वहाँ उसने अचानक मुझे जकड़ लिया और जताया, मैने उसे पागल बना दिया है ! मैंने कहा—तो क्या हुआ, पागल जब बना ही दिया, तो पागलखाने चल दो। विमलाक्ष ने कहा—मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। मैं बोली—इस मामूली बात को कहने-भर के लिए तुम मुझे बाँस की इन झाड़ियों मे क्यों खींच लाये ? जो भी हो, नीयत उसकी अच्छी नहीं थी। मैंने कहा—खैर, अभी तो तुम अपनी नाव पर सवार हो। बड़े चाचा से राय करके मैं तुम्हें इसका जवाब दूँगी। वह डर गया और चला गया। जाते-जाते उसने अपनी चिट्ठियाँ वापस माँगी। मैंने कह दिया—चिट्ठियाँ मीरा के पास रखी हैं। उससे माँग लेना।

हिरण जोरों से हँस पड़ा।

बस पर सवार होकर दोनों तालतल्ला पहुँचे। गली-मोड़ पार करते हुए इधर-उधर के चक्कर काटकर एक घर में पहुँचे। हुस्ना बोली—लो, मेरे कमरे में अपना सूटकेस रखो।

हिरण ने पूछा—तुम यहीं रहती हो ?

—हाँ। तुम भी यहीं रहोगे।

—यह किसका मकान है ?

—रिश्ते में मेरे मामा होते हैं।

—तो मैं यहाँ कैसे रहूँगा ?

हुस्ना ऊब उठी—तुम्हें मर्द समझती होती, तो रहने को नहीं कहती। देर न करो। तुरत निकल पड़ना है। मुँह-हाथ धो लो। कुछ खाओगे ?

हिरण ने कहा—कुछ नहीं।

हुस्ना उसके पैरों की तरफ देखकर बोली—राम-राम, जूते की क्या गत है ! घर-जमाई बने बिना शायद नये जूते नहीं खरीदने के, क्यों ?

हिरण बोला—लड़का पढ़ाना जिनकी जीविका है, उनके जूते इससे अच्छे नही होते । खैर, चलना कहाँ है, सो कहो ।

ये रुपये बड़े चाचा तक पहुँचाने नही हैं क्या ? तुम्हीं कहो, कब से उन्हे नही देखा ? जान ही सकते हो , अपना मन तो उनके पैरों तले ही पड़ा है ।

हुस्ना की बड़ी-बड़ी आँखें वाष्प-सजल हो उठीं । हिरण ने और कुछ नही कहा । मुँह-हाथ धोया । तैयार हो लिया । बोला—चलो ।

एक होटल में बैठकर दोनों ने चाय पी । उसके बाद जूते की एक दुकान में दाखिल हुए । ना करने की गुंजाइश ही नही । हुस्ना का तो जन्म ही शासन करने के लिए हुआ है । लोग शायद उसे नायक कहें, मगर हिरण तो यह जानता है कि वह अधिनायिका है । उसका दंभ बहुत बार तो हमलावर होता है, मगर उसका प्रकाश होता है सुन्दर । उसे चोट पहुँचाओ तो वह झेल लेगी, लेकिन उपेक्षा से कतराकर निकल जाना चाहो, तो उसे बर्दाश्त नही हो सकता ।

हुस्ना ने नये जूते खरीदकर हिरण को पहनाये । बोली—औरतों में तुम्हारी कदर क्यों होती है, जानते हो ?

हिरण बोला—कदर होती भी है, यही सोच रहा हूँ ।

—अभी भी है । लेकिन वह कदर तुम्हारे इस सूधेपन के लिए नहीं है, तुम्हारी सूरत के लिए है ।

—सूधे के मानी है बेवकूफ । तुम्हे देखते ही मैं बेवकूफ बन जाता

चलते-चलते ही हुस्ना हँस उठी ।

कई रास्तों को पार करके अखीर में वे बेलघट्टा की उस गंदी गली के मोड़ पर पहुँचे । तब भी साँझ नहीं हुई थी । लेकिन गली की हालत

देखकर हुस्ना के पैर मानो बढना नहीं चाह रहे थे। आँखें जल-सी रही थीं। एक ऐसी ग्लानि, जिसके भाषा नहीं ; एक ऐसी तकलीफ़ जिसका संगी नहीं। फिर भी आगे बढ़ना पड़ा। एक बार हिरण का हाथ थामकर उसने कुछ कहना चाहा। मगर—रहने दो। कहते हुए शायद रोना आये।

घर के अंदर दाखिल होते ही सामने दिख गई मीरा। हिरण हुस्ना के पीछे था। मीरा अचरज से सहसा थमक रुकी। फिर बोली—तुम ? कहाँ, इस मुल्क में ?

हुस्ना ने बढ़कर मीरा का हाथ थाम लिया। बोली—यह तो अपना ही मुल्क है मीरा जीजी !

—यह देखने आ गई कि हम जिंदे हैं या नहीं ?

उसकी बात में तीखा स्वाभिमान भरा था। मगर हुस्ना ने अपने को सख्त बना लिया। बोली—जीना जानती हो, तो मरने की बात ही कहाँ उठती है जीजी ?

मीरा ने कहा—हम तो जिएँगे ही। लेकिन जिनको मर जाना है, उन्हें अंतिम बार के लिए देख लो।

हुस्ना फफक उठी—बड़े चाचा ! कैसे हैं वे ?

मुँह फेरकर मीरा हट गई। हिरण के साथ-साथ हुस्ना पास के कमरे में गयी।

जीवेंद्र अपने बिस्तर पर पड़े थे। सिरहाने रखी थीं दवा की शीशियाँ। एक गिलास में ढका पानी—कुछ फल। बिस्तर के आसपास बैठे थे चार-पाँच आदमी। उनमें से दो थे डॉक्टर।

सुन्दरवन की हिरनी दौड़ी-दौड़ी घर के अंदर आ रुकी। एक तूफान जैसे थमा। सारे लोग अजनबी, मगर उससे क्या आता-जाता है। आग की लपट-सी हुस्ना दमक रही थी। जीवेन्द्र आच्छन्न-से पड़े। कोई उनके मुँह में दवा डालने की कोशिश कर रहा था। हुस्ना चीख-सी उठी—दवा रहने दीजिए। आप कौन हैं ?

उस आदमी ने सर उठाया। बोला—मैं···बेल्लिक हूँ।

—छोड़ दीजिए। उन्हें दवा नहीं चाहिए। दवा से वे आजीवन घिन करते रहे हैं।

—लेकिन, लेकिन इनकी बीमारी जो बहुत सख्त है।—उसने फरियाद-सी की।

हुस्ना बोली—इस तरह जिंदे रहने से बेहतर है वे मर जाएँ। वह मौत इज्जत की होगी। उनकी दवा यहाँ कोई नहीं जानता। उनकी दवा हाजीपुर के काजलतल्ले में है, मधुमती नदी की हवा में, ठाकुर के पोखरे पर के शिवाला में···

जीवेन्द्र की तंद्रा जाती रही। धीमे से बोले—कौन ?

काठ के मारे-से खड़े एकदल लोगों के बीच में खड़ी हुस्ना चिल्ला पड़ी···मैं···मैं···मैं हूँ बड़े चाचा !

—तुम कौन ?

हुस्ना फिर फफक उठी—पहचान नहीं पाये बड़े चाचा ? मैं हूँ—हुस्नबानू ! तुम्हारे सिरिश्ते के जमाननबीश इमदाद अली की लड़की !

आकस्मिक उत्तेजना से जीवेन्द्र ने उठ बैठने की कोशिश की। बोले—लेकिन मैंने तुम्हें तो नहीं बुलाया ?

—बेशक तुमने बुलाया है। तुम्हारी पुकार ही न सुन पाऊँ तो तुम्हारी बिटिया फिर क्या हुई मैं !

दर्द-भरी चीख-सी आवाज में जीवेन्द्र बोले—हुस्ना···!

—हुस्ना तुम्हारी यह दुर्गत देखने के पहले ही मर चुकी। और अगर तुम्हें भी मरना ही है, तो अपनी इस बिटिया की गोद में ही आखिर साँस छोड़ जाओ।

हुस्ना बैठ गई। उसने जीवेन्द्र के सर को अपनी गोद में रखा। आँखों से आँसू की बूंदें अविराम टपकने लगीं। मीरा और हिरण अवाक् खड़े थे !

तीन

हृदय का आवेश दीर्घस्थायी नहीं होता है, इसीलिए वह मूल्यवान होता है। हुस्ना की गोद में सिर रखे जीवेन्द्र बड़ी देर तक चुप पड़े रहे। फिर जैसे धीर स्वर से बोले—बेल्लिक बाबू···?

अब तक बेल्लिक बाबू पड़ोस के दो सज्जन और दो डॉक्टरों के साथ हतवाक बैठे थे। जीवेन्द्र बाबू के पुकारने पर बोले—जी !

—मेरी बिटिया का परिचय मिला ?

—जी, मिल तो गया। आपके कारिंदे इमदाद अली की लड़की है ये ! इनके मुँह से यह भी सुना कि इनका भरण-पोषण आप ही के यहाँ हुआ है, आपकी अन्न-रोटी ।

जीवेंद्र बाबू ज़रा व्यस्त से होकर धीमे-धीमे बोले—छि:-छि: । यह ग़लत बात। उन लोगों ने अपना ही अन्न खाया है। और यही इसका असली परिचय नहीं है। आते ही इसने मेरी दवा बंद करदी, इसे उसी से पहचानो।

हुस्ना बोली—चाचा, तुम चुप ही रहो। लोग तुम्हारी बात से ग़लत समझ सकते हैं।

जीवेन्द्र बोले—मुझे कौनसी दवा चाहिए, हुस्ना जानती है। मुझे डॉक्टर की दवा की जरूरत नहीं है, यह बात इसके सिवा और कोई कहने का साहस ही नहीं करता। जीने से मेरे लिए मौत बेहतर है, यह बात सिर्फ यही कह सकती है—यही कह सकती है । यही इसका परिचय है।

बेल्लिक बाबू इससे खुश न हुए। इस घर में उस लड़की की ऐसी प्रभुता उन्हें न रुची। और चाहे जो हो, यह उनकी अभिज्ञता से परे की बात थी। कौन जाने, इस लड़की की नीयत क्या है! उनके जी में खटका होने लगा। मुसलमान फिर पाकिस्तान—शंका के लिए इतना

ही काफी नही क्या ?

बेल्लिक बोले—तो अब डॉक्टर साहब के आने की ज़रूरत नही है ?

हिरण ने मीरा की तरफ ताका। सुमित्रा पास ही आ खड़ी हुई थी। उन्होंने एक निगाह हुस्ना की ओर देखा और कहा—तो क्या खयाल है हुस्ना, डॉक्टर आये बिना चल जाएगा ?

आँखें पोंछकर इस बार हुस्ना शांत स्वर में बोली—मजे में चल जाएगा छोटी चाची, मज़े मे चल जाएगा। दवा से बीमारी तो छूट जाए शायद, टूटा दिल जुड़ सकता है ? अच्छा आप ही का नाम शायद बेल्लिक बाबू है। आपने इन लोगों के लिए बहुत किया है, मेरे लिए आप नमस्य है ।

हिरण बोला—यही इस घर के मालिक हैं। बड़ी ही मुसीबत की घड़ी में इन्होंने इन लोगों को पनाह दी थी। ऐसा कि—

मीरा ने कहा—हम पर इनका बहुत बड़ा ऋण है !

मुहल्ले के वे दोनों सज्जन और डॉक्टर कैसा तो महसूस करने लगे। बोले—तो हमें अब छुट्टी दीजिए।

बेल्लिक बाबू बोले—हाँ चलिए, अब मैं भी चलूँगा। और ठीक भी है--गाँव-घर के लोग ही अपने होते है ! अब से ये ही अगर आप लोगों के काम आएँ, तो बडी खुशी की बात है। ख़ैर, आज तो हम चलें।

हुस्ना ने कहा—अच्छा।

एक-एक कर वे सभी बाहर चले गए। जाते समय हिरण की ओर नजर किये बेल्लिक बाबू ने कहा—मगर इन्हे तो मैं नही पहचान सका ?

हुस्ना ने कहा—ये ? ये इस घर के दामाद है।

अचानक उल्लसित होकर बेल्लिक बाबू बोल उठे—फिर तो क्या कहने है ! नयी बेटी आयी, दामाद आ पहुँचे, अब तो सुविधा होनी ही चाहिए।

बेल्लिक बाबू चले गए। वे खुश होकर नहीं गये, यह तो उनकी

हरकत से ही पता चल गया। उनकी हँसी में बनावट की जो बू थी, वह किसी से छिपी न रही।

हुस्ना ने पूछा—बड़े चाचा, तुम्हें बीमारी क्या है ?

जीवेन्द्र बोले—बीमारी तो मुझे कुछ नही है बिटिया।

—फिर ये दवा क्यो खिलाते हैं ?

—डॉक्टर बताते है कोई सख्त बीमारी है।

—मेरे साथ चलोगे ?—वह उनकी ओर झुक आई।

—जाऊँ कहाँ बिटिया, यहाँ तो अपने लिए कोई जगह ही नहीं ?

—चलो, एक जगह चले हम सब। वहाँ कोई बीमारी नहीं होगी।

—वह जगह है कहाँ ?—जीवेन्द्र ने उत्सुक होकर पूछा।

हुस्ना चुप हो रही। एक तरफ आकर बैठ गई मीरा। इधर हिरण बैठा था। वह बोला—यहाँ रहने से इनकी तबीयत ठीक नही रहने की। जैसे भी संभव हो, जगह बदल देनी चाहिए।

हुस्ना ने पूछा—चाचा, यह घर छोड़ने में तुम्हें कोई आपत्ति है ? चलो न, एक ऐसे घर में चलें, जहाँ डॉक्टर दवा नहीं देते।

—लेकिन बेल्लिक का हम पर क़र्ज जो बहुत है बिटिया ?

—वह क़र्ज चुकाने में ज़्यादा समय नहीं लगेगा। मेरे मामा का मकान खाली पड़ा है। मैं तुम्हे वहीं ले चलूँगी। वही रहना।

मीरा ने पूछा—वहाँ किसके भरोसे ले चलोगी ?

हुस्ना बोली—मुझे अपना भरोसा तो कुछ है ही जीजी !

हँसकर मीरा बोली—तुम्हारा वह भरोसा बाबूजी का भार उठा लेगा ?

—क्यों नहीं ? यह बल तो उन्हीं का दिया है, इसीलिए उनका भार बेशक उठा सकूँगी।

सुमित्रा कमरे में बत्ती रख गई। जीवेन्द्र के सिर को जतन से सहेज-कर हुस्ना ज़रा बाहर निकली। जहाँ रसोई होती थी, वहाँ पर खड़ी

होकर हुस्ना ने पूछा—छोटी चाची, आप लोग इस अंजाम को क्या झेल जाना चाहती हैं ?

सुमित्रा बोली—तुम ज़रा जेठजी को समझाओ कि अपना सर्बस छोड़कर यहाँ पड़े रहने से हमारा काम चल सकेगा ?

—खैर। वह मैं समझाऊँगी। मगर इस गंदे मुहल्ले को छोड़कर आप सब चले। कल मैं सब को लिवा चलूँगी ? किराया कितना है इसका ?

—बेल्लिक बाबू किराया नहीं लेते।

—सारा खर्च कौन चलाता है ? दोनों के बदन पर नाम को जो दो-एक गहने थे, वह भी गए शायद ?

सुमित्रा बोलीं—पिछले आठ-दस महीनों से सारा खर्च बेल्लिक बाबू ही चला रहे हैं—इसी से सब समझ सकती हो।

हुस्ना बोली—लेकिन इस आदमी को देखकर मुझे खास भक्ति तो नहीं हुई। अत्रि कहाँ है चाची ?

सुमित्रा बोली—इस समय वह बेल्लिक बाबू के यहाँ पढ़ने चला जाता है। वहाँ मास्टर आते हैं। अत्रि को बेल्लिक बाबू बेहद प्यार करते है।

बगल में आ खड़ी हुई मीरा। बोली—हम लोगों के निकल आने के बाद तुम लोग बेशक बहुत सुखी हुए होगे हुस्ना ?

हुस्ना बोली—सुखी हूँ कि नहीं हूँ, यह तुम अपनी आँखों देखकर तो नहीं आईं जीजी। लेकिन तुम लोग जो नुकसान कर आई हो, वह कभी पूरा नही पड़ेगा। और वह नुकसान मुसलमान होकर पैदा हुए बिना समझा भी नहीं जा सकता !

मीरा बोली—नुकसान ? नुकसान की क्या कहती हो ? तुम्हें लाभ नहीं हुआ ?

—लाभ ! लाभ कुत्तों और गीदड़ों को हुआ है, हमें नहीं। लाभ उठा रहे हैं चमगादड़।

—तुम अचानक यहाँ आ धमकीं। किस मतलब से ?

हुस्ना बोली—यह देश अपना है, इसलिए आ गई। यह महज़ तुम्हारा ही देश होता, तो नही आती।

मीरा बोली—आने का मतलब तो ज़रा सुनूँ ? जो लोग वहाँ से तबाह होकर भागे हैं, उनकी एकबारगी मिट्टी पलीद हुई या नहीं, शायद यही देखने आई हो। मतलब बुरा नही है।

हुस्ना हँसी। बोली—बात तुमने ग़लत नही कही जीजी। जो डर को देखते ही भाग खड़े होते हैं, वे आदमी नही, जानवर हैं। उनमें हिंसा भी होती है, पर हिंसा से भी बड़ा होता है उनका प्राणों का भय। स्यार-कुत्तों के काट-खाने के डर से जो पुश्तैनी मिट्टी को छोड़कर भागते हैं, ऐसे लोग अपनी तबाही आप ले आते हैं।

मीरा ज़ोर से बोली—आग की चिनगी छू जाती है, तो तुम हाथ को हटाती नही हो ?

—यह तर्क की बात नहीं है जीजी। हम-तुम एक ही रसोई का खाकर पली हैं—एक ही गाँव की है। तुमसे मेरा कभी भी कोई विरोध नहीं रहा है। लेकिन हिंसा की आँच को लपट लेते देख जो बच निकलते हैं, वे देश के कलंक है। तुम लहकती आग देख अपनी जान लिये चल दिये, उसे बुझाना नहीं चाहा। मरूँ-मारूँ का सकल्प लेकर तुमने अनाचार का मुकाबला नहीं किया—यह बात इतिहास में सदा लिखी रहेगी। और तुम लोग तो शक्ति के पुजारी हो ! हाय रे जला नसीब !

मीरा बोली—क्या खयाल है तुम्हारा, उस रात दो-दो हज़ार खूँखार खूनियों के आगे हम खड़े रह जाते ?

हुस्ना बोली—बला से मर जातीं। मरना बुरा न था। और राह बाट, कैंप में ये कौन लोग बेमौत मर रहे हैं ? भूख से तड़फ-तड़फकर कौन अपनी जान दे रहे हैं ? ये कौन हो रहे हैं शिकार हैजे और तपेदिक के ? कुत्ते-गीदड़ के डर से तुम उस सिंह को, पशुराज को लेकर यहाँ, बेलघट्टा की इस गंदी गली में आ छिपी हो ! इससे वह मौत क्या गर्व

की नहीं थी ? ये पशुराज उस दिन अपने केशर फैलाए खड़े नही हो सकते थे ? गड़े में दुबककर तुमने जीना सीखा है और मैदान में लोहा लेते हुए मरना नही सीखा ? छिः , धिक्कार है, लानत है तुम्हें ।

मीरा बोली --औरतों की आबरू जाती, उनकी इज्जत लूटी जाती—यह तुम्हें बेजा नही लगता !' क्यों ?

हुस्ना बोली—औरतों का अस्तित्व तो शायद बचा, पर उनकी इज़्ज़त नहीं बची जीजी । इससे तो उस पागलपन का वीरता से सामना किया गया होता, तो आज युग का इतिहास ही बदल जाता। रानी लक्ष्मी-बाई हाथ में तलवार लिये दुश्मनों की फौज में कूद पड़ी थी, हमारे इतिहास का यही गौरवोज्ज्वल पृष्ठ है । वीरत्व ही बड़ी बात है, सतीत्व से भी बड़ी बात है, सतीत्व से भी बड़ी ।

सुमित्रा ने हँसकर हुस्ना का हाथ खीचा । कहा—तू सात समुन्दर पार करके अपनी बहन से लड़ने आयी है, क्यों ? रहने भी दे ये फिजूल की बातें । अब तू यह बतला कि तेरा मतलब क्या है ? कल हमें ले कहाँ चलेगी तू ?

मीरा भी अब शांत हो गई । बहुत-बहुत दिनों के बाद आज तीनों जने एक जगह एकांत में बैठे । हुस्ना बोली—चाची, नाम को कुछ मुँह में डालकर सबेरे से निकली हूँ···कुछ खाने को दो न चाची !

—बोल, क्या खाएगी ?

—एक दाना ही सही । वही दो । उसी पर कह जाऊँगी, तस्मिन् तुष्टे जगत् तुष्ट । खाक-पत्थर क्या है, वही दो न !

मीरा बोली—बेख्लिक का अन्न हमी खा सकती है, तू खाएगी ?

उधर से हिरण आ पहुँचा । हुस्ना ने अपना वैनिटी वैग उसके हाथ में देकर कहा—कुछ खाने को तो ले आओ घर-जमाई ।

हिरण बोला—घर-जमाई मैं किधर का हूँ, पूर्वी या पच्छिमी बंगाल का, यह बताये बिना मैं तो नही लाता ।

सुमित्रा बोली—फिक्र न करो, घर मिलते ही तुम घर-जमाई होंगे ।

नये जूते पहनकर हिरण निकल गया।

हुस्ना बोली—कल दोपहर को चलना है। सुबह ही वेह्निक बाबू को कह रखना !

सुमित्रा बोली—और रुपये ?

चाचा से मिलकर वह समझ लूँगी मैं। तुम्हारे हाथों कुछ रुपये दे जाऊँगी—तुम्हारे ही रुपये।

—हमारे रुपये ! मतलब ?—मीरा ने सवाल किया।

आवाज़ धीमी करके हुस्ना ने कहा—चाचाजी को ख़बर न हो, आज मैं विमल से हज़ार-एक रुपये वसूल कर लाई हूँ।

—दिये उसने ? कर सकी वसूल तू ? —मीरा ने अचरज से पूछा।

—बेशक कर सकी। मैं तुल गई कि उसकी बीवी के सामने ही पिछली बातों का भंडाफोड़ कर दूँगी।

सुमित्रा के साथ मीरा भी हँस पड़ी। हुस्ना बोली—उससे और भी बहुत वसूल करना है अभी। जाता कहाँ है बच्चू ! मगर तुम्हारी अक्ल की बलिहारी। हिरण को तुम लोगों ने दूर-दूर क्यों कर रखा है ?

मीरा बोली—दूर रहने को मैंने ही कहा है।

—आखिर क्यों ?

—मैंने इस ब्याह को नहीं माना।

हुस्ना बोली—ठीक तो है, फिर से कोई दिन और घड़ी तय करके जो कुछ मंत्र बाकी रह गए हैं, उन्हें पढ़ डालो।

मीरा बोली—इस बात को अभी रहने ही दो बहन !

—रहने दूँ ? और बेचारा हिरण इधर से उधर भटकता फिरे ?

—क्यों ? वह अपना बपौती पेशा पकड़ ले—पुरोहित का काम करे। मैं पैरों में जंजीर थोड़े ही डालने जा रही हूँ !

—तुम क्या लेकर रहोगी ?—हुस्ना ने जानना चाहा।

मीरा रुखाई से बोली—इस घरौंदे के खेल के सिवा भी तो काम होता है हुस्ना !

हुस्ना बोली—तो तुम और चाची, दोनों नौकरी को निकल पड़ो। चाचा और अत्रि को मैं सँभालती हूँ।

सुमित्रा बोली—मगर तुम्हारे शौहर ऐसा क्यों चाहेंगे ?

हुस्ना ने पूछा—किस शौहर की कह रही है आप ?

—मै फैजूद्दीन की कह रही हूँ।

—मैंने उसे छः महीने पहले ही नमस्कार कर दिया। यह भी सुना कि उसने दूसरा निकाह कर लिया।

मीरा बोली—उस अमीना से किया होगा—क्यों ?

हुस्ना बोली—हाँ। बड़े चाचा ने नूरनगर के ताल्लुकेदार को ज़मीन की बंदोबस्ती दी। अमीना उसी की ममेरी बहन है। उसके भी पति था, लेकिन तीन साल पहले फकीर होकर चल दिया। मज़े में रहे वे, जियें।

मीरा बोली—तो तू गिरस्ती नहीं बसाएगी ?

हुस्ना बोली—एक भी गिरस्ती बसाए बिना तुम अगर सुखी रह सकती हो, तो मैं क्यों नही रह सकूँगी ? फिर मुझे यह सब-कुछ अच्छा भी नहीं लगता।

—क्या अच्छा नहीं लगता ?

—नहीं, कुछ भी नहीं। ज़रा रुककर बोली—बड़े चाचा के हाथों पलकर आफत क्या हो गई है, जानती हो ? मन-मिजाज ऊँचा हो गया है। नीचे उतरने को जी नही चाहता।

मीरा बोली—फिर ज़िंदगी के बाकी दिन ?

हुस्ना बोली—जब तुमने गुरुजी की तरह सवाल करना शुरू किया है, तो मैं भी रटे हुए जवाब देती चली जाऊँ। मैं चहारदीवारी के बाहर काम करूँगी।

अत्रि को साथ लेकर हिरण आया। हुस्ना को देखकर अत्रि उसकी गोद में जाकर कूद पड़ा। बोला—अब तक क्यों नहीं आयी जीजी ?

दोनों बाहुओं में उसे जकड़कर वह बोली—तेरी चिट्ठी मिली थी कि मैं आती ? तूने पता भी भेजा था अपना ?

—तुम लोगों ने तो हम लोगों से लड़ाई की है।

—बेवकूफ कहीं का! भाई-बहन में भी लडाई होती है! फिर मैं अपने मन से यहाँ आयी कैसे? चलेगा मेरे साथ तू?

—चलूँगा। कब जाना है, बोलो?

—अगर कल ही चलूँ? —आदर से हुस्ना ने कहा।

—कल नहीं, आज ही चलो। मुझे यहाँ ज़रा भी अच्छा नही लगता। यह मुहल्ला बिलकुल ठीक नही है। अत्रि ने उसके आँचल मे मुँह गाड़ लिया।

हुस्ना बोली—ठीक है। तैयार हो जा। चल मेरे साथ।

खाने की चीज़ें परोसकर सुमित्रा आह्निक के लिए जाने लगी कि हुस्ना ने कहा—चाची, लग रहा है, घर-जमाई को हिस्सा कुछ ज्यादा मिला है?

हिरण ने कहा—एक तो मिला है जमाई का हिस्सा, दूसरा मिहनताना। चाची ने गलती नही की है।

मीरा बोली—तो जमाई वाला हिस्सा मेरे पत्तल पर डाल दीजिए।

—रुकिए भी—हिरण बोला—मेरा छुआ आप खाने क्यों लगीं? हाँ हुस्ना की सिफ़ारिश से किसी नौकरी मे लग जाऊँ, तो कमाई का मोटा हिस्सा दूँगा।

हुस्ना ने पूछा—किस बिना पर दोगे?

हिरण ने जवाब दिया—लगभग आधा मंत्र पढ़ा जा चुका था, इसी पर। इसी का ज़ोर क्या कुछ कम होता है? भई, यह है हिंदू-शास्त्र। भगवान् साक्षी रहते हैं। यहाँ तीन बार तलाक कह देने से सत्य तो मिथ्या नहीं हो जाता।

मीरा बोली—हाय गज़ब, आप क्या यही सोचे बैठे हैं? अपनी इस दुर्बुद्धि को आप आज ही निकाल फेकें—दुहाई आपकी!

सुमित्रा मुस्कराती हुई पूजा-घर में चली गईं।

हुस्ना हँस रही थी, मगर उसके सामने रहने से हिरण को आज थोड़ा

उत्साह मिल रहा था। वह बोला—यह अगर दुर्बुद्धि है, तो कहना होगा मेरी यह दुर्बुद्धि चाचाजी के इतने दिनों की सामाजिक साज़िश का नतीजा है। शास्त्र के धर्म को स्वीकार करने पर उसके निर्देश को भी मानना चाहिए। महज़ मंत्र की ही बात नहीं, उसके पीछे आचारिक सम्मति भी थी। आप उसे कैसे टाल जा सकती हैं ?

मीरा बोली—मैं अब बंधन नहीं कबूल कर सकती।

—बंधन किस बात का ?

—ब्याह का।

—ब्याह का बंधन तो मानसिक है—मानसिक यानी आत्मिक। आपके पाँवों में रस्सी बाँधकर खींच कौन रहा है ? जिस समय आप धनी-मानी थीं, तब तो यह बंधन अच्छा लग रहा था और आज जब राह पर निकल पड़ने की नौबत आई है, तब बंधन अच्छा नहीं लग रहा है ! यही तो कहना चाह रही है आप ?

—सो आप जो चाहें, समझें।

—मैं सोचता हूँ, ब्याह के साथ वैभव-विलास आपको जँचता है, लेकिन जब ग़रीबी, संघर्ष और भविष्य का भय सामने आ खड़ा होता है, तो आप ब्याह तक को अस्वीकार करने पर तैयार हो जाती हैं। यही तो ?

मीरा विनय के साथ बोली—हुस्ना, बात यह नहीं। बात यह है कि जो टूटन हमारे दिलों में आई है, मैं उसे विचार और परिस्थिति से भली तरह मिलाकर देखना चाहती हूँ। प्रज्वलित आग को सामने रखकर विवाह भी होता है, विप्लव भी। यह समय विप्लव का है। जिस रोज़ हाजीपुर में धू-धू कर आग जल उठी, उस रोज़ ब्याह के अनुष्ठान को छोड़कर हम भाग ज़रूर आए, लेकिन उस अग्निशिखा के सामने मैं यह प्रतिज्ञा कर आई हूँ कि नहीं, अब नहीं। घर से बाहर पाँव बढ़ाने का सुयोग मिला—घर के अंदर अब कदम नहीं रखूँगी। बाहर को मैं अच्छी तरह देखूँगी।

हुस्ना ने पूछा—फिर क्या करने का इरादा है तुम्हारा ?

मीरा बोली—पहले तो पिताजी को भला-चंगा करना है, फिर अपने पैरों खड़े होने की कोशिश करूँगी ।

—और हिरण क्या करेगा ? उसकी जिम्मेदारी अब तक तो तुम लोगों पर थी ।

मीरा बोली—इसका जवाब पिताजी दे सकते है, वही जानें ।

हिरण जरा हँसा । बोला—अब मैं दुधमुँहा बच्चा नहीं रहा कि किसी नैतिक अधिकार की बात कहूँ । हाजीपुर की चौहद्दी से निकलते ही मेरा भी रास्ता जुदा हो गया है, इसमें शक नहीं । सो आज अगर आप यह महसूस करने लगी हों कि हम लोगों की जब-तब भेंट-मुलाकात भी वाजिब नहीं है, तो मैं आपके इस आग्रह की रक्षा करने के लिए भी तैयार हूँ ।

मीरा बोली—लगातार बीस वर्ष तक हम तीनों साथ रहे है, साथ खेले हैं, खाया-पिया है, साथ-साथ ही पले भी हैं । ऐसे में मैं आज आपको दूर हट जाने को भी कैसे कह सकती हूँ ? मगर ब्याह के सिवा और कोई दूसरा संबंध आप सोच ही नही सकते क्या ?

हुस्ना बोली—दोस्ती का नाता कहना चाह रही हो तुम ?

मीरा बोली—आखिर पिछले बीस साल तक हम एक ही गाँव, एक ही घर में किस नाते से रहे ?

हिरण ने कहा—उस गाँव, उस घर के खाक में मिल जाने के बाद भी वह नाता रह जाता है ?

मीरा बोली—अच्छा ! बंधुता क्या दौलत से थी, जायदाद से ? राजत्व हासिल न हो, तो क्या राजकुमारी की भी कीमत फूटी कौड़ी नहीं रह जाती ?

हुस्ना बोली—राज न हो तो राजकन्या महज़ कन्या रह जाती है । अब तुम केवल एक औरत हो और वह एक पुरुष । और सच कहा जाए तो तुम लोगों में कोई प्रेम नहीं था, केवल एक पारिवारिक समझौता-भर था । आज वह समझौता टूट गया । बला टली ।

मीरा हँस उठी। हुस्ना मुँह फेरकर बोली—समझ गए भैया, अब पुरानी रट लगाने का कोई लाभ न रहा। अगर हौसला कुछ बच रहा हो तो फिर नये सिरे से शुरू करो। लिखी-लिखायी कुछ पुरानी कविताएँ हों, तो उन्हें फाड फेंको और नई शैली में अतुकांत गद्य-कविता लिखना शुरू कर दो—नाम रख छोड़ो—पुनश्च।

सुमित्रा निकलीं। हुस्ना बोली—चाची, अपना सारा विश्वास ही टूट-कर बिखर गया। औरत-मर्द में प्रेम न होना फिर भी बरदाश्त होता है, मगर उनमें रस का ही लेश न हो तो असह्य है। एकबारगी असह्य।

हिरण मुस्कराता हुआ खड़ा हो गया। बोला—इस पगली की बात का ख़याल न करें चाची! चलो; आज यहीं तक।

अत्रि तैयार होकर आ पहुँचा। सुमित्रा बोलीं—सच ही क्या यह तेरे साथ जा रहा है?

हुस्ना ने कहा—जा रहा है, मगर जात तो न जाएगी इसकी।

सभी खिलखिला उठे। अत्रि ने कहा—जात नहीं जाती। चलो।

हुस्ना ने बैग से एक हज़ार रुपया निकाला। बोली—इन रुपयों से बेल्लिक बाबू का बकाया चुका दीजिए। हिरण कल सब लोगों को ले जाने के लिए आयेगा। उसके मार्फत कुछ रुपये और भेज दूँगी।

हुस्ना चाचा को प्रणाम कर आने के लिए दौड़ी-दौड़ी गयी, मगर इन सबकी बातों के बीच वे जाने कब सो गए थे। जगाना ठीक न था। हुस्ना कमरे से निकल आई। चौखट से सिर लगाकर उसने उनके प्रति प्रणाम किया। अब तक की सारी चंचलता, तर्क-वितर्क, हँसी-मज़ाक सब मानो श्रद्धा और भक्ति की गहराई में शांत हो गए। छुटपन से जिन्होंने पाला, उस प्रतिपालक के प्रति असीम कृतज्ञता से उसकी दोनों आँखें जैसे वाष्पाच्छन्न हो उठीं।

विदा होते समय हुस्ना बोली—छोटी चाची, मैं एक बात खूब अच्छी तरह से जानकर जाना चाहती हूँ।

सुमित्रा ने पूछा—कौनसी बात?

हुस्ना बोली—छोटे चाचा जिंदे होते, तो यह बात शायद उठती ही नहीं। लेकिन एक घर में रहते हुए अज्ञानता से विधवा के शुद्धाचार में यदि आँच आए, तो वह पाप क्या मुझसे सहा जाएगा चाची ?

सुमित्रा बोलीं—यह मैं पहले ही सोच चुकी हूँ हुस्ना, इसे तू मेरे ही हाथों छोड़ दे।

मीरा बोली—पिताजी को तू चंगा कर लेगी ?

—जीजी, अपने को वह अहंकार नहीं है। वे अपने-आप स्वस्थ होकर खड़े हों, हम सभी यह कामना करेंगे। अत्रि, चल भैया ! चलो हिरण !

रास्ते में उतरने पर मालूम हुआ, रात कुछ कम नहीं हुई। हुस्ना ने अत्रि का हाथ अपने हाथ में लेकर पूछा—गाड़ी से चलेगा कि पैदल ?

अत्रि ने कहा—टैक्सी पर।

—टैक्सी ? यानी बिलकुल पंचम स्वर में। खैर, जरा दूर चल ले।

अत्रि ने पूछा—तुम कलकत्ते की सब जगहों को जानती हो जीजी ?

—बेशक् जानती हूँ। अरे, यह तो अपना शहर ठहरा, घर का। सब जानती हूँ।

हिरण चुपचाप चल रहा था। हुस्ना ने आवाज़ दी—जमाई।

हिरण बोला—क्या है ?

हुस्ना ने कहा—जात और धर्म, ये दोनों ही बड़ी चीज़ होते हैं, क्यों ?

—जो मानते हैं उनके लिए।

—तुम मानते हो ?

हिरण बोला—भूत को न भी मानें, पर उसका भय नहीं जाता।

रास्ते के दोनों किनारे गैस की रोशनी जल रही थी। रास्ता सुनसान। हुस्ना ने कहा—जात-धरम से आदमी क्या बड़ा नहीं होता ?

हिरण ने कहा—अखबारों में छपता तो कुछ ऐसा ही है, लेकिन लोग इसका निर्णय पहले ही ले चुके होते हैं।

हुस्ना ने पूछा—संस्कार के इस घेरे से निकला नहीं जा सकता ?

एक दिन इसी संस्कार की बुनियाद पर यह सभ्यता बनी है। इसके बाहर जा सकना सहज नहीं। जात और धर्म, इन्हीं दो ने बाहर तो बनायी हैं सभ्यता और अंदर बनाया है समाज। ये हमारी नसों के रक्त-प्रवाह में बसते हैं, वंश-परम्परा में रहते हैं। हम-तुम इसका विरोध चाहे करें, फिर भी ये रहते हैं—चोट भी करो, तो भी रहते हैं।

हुस्ना चुप होकर चलने लगी। ज़रा देर के बाद सिर उठाकर बोली—लेकिन मनुष्य का परिचय क्या इनके परे प्रकट नहीं हो सका ?

—नहीं।

उत्तेजित होकर हुस्ना ने कहा—तो फिर आशु मास्टर को बचाने के लिए हमारे जयनाल ने डकैतों के हाथों अपनी जान क्यों गँवायी ?

हिरण बोला—यह उदाहरण नहीं, अपवाद है। ऐसे व्यतिक्रम पर तारीफ के पुल बाँधे जा सकते है, आलोचना नही चल सकती।

—मैं और भी उदाहरण दूँ क्या ?

हिरण हँसा। बोला—रहने दो। किसी हिन्दू को बचाने के लिए किसी मुसलमान ने अपने प्राण दिये या मुसलमान के लिए कोई हिन्दू मर मिटा—इसका लेखा-जोखा हकीकत में भेद-बुद्धि से होता है। सोचना यह है कि आदमी के लिए आदमी की कुर्बानी हुई है या नहीं ?

हुस्ना ने पूछा—यानी ?

—यानी एक बर्बर की प्राण-रक्षा के लिए अगर किसी महत् जीवन की बलि चढ़ती है, तो मैं बरदाश्त नहीं करूँगा।

—महत् की कुर्बानी को तुम बड़ी न कहोगे ?

—वह कुर्बानी नहीं कहाती, उसे हम एक निर्बोध की आत्महत्या कहेंगे। जहाँ आत्म-बलिदान महत् के लिए होता है, पुण्य का प्रकाश वहीं होता है। वहाँ मनुष्य देवता बन जाता है।

हाथ बढ़ाकर हुस्ना ने एक जाती हुई टैक्सी को रोका। गाड़ी रुक गई। पहले उसने अत्रि को चढ़ाया, फिर आप बैठी और अपने बगल में

हिरण के लिए जगह कर दी।

हिरण बैठ गया तब टैक्सी खुली। हुस्ना ने ड्राइवर से कहा—नाल-तल्ला। अत्रि, अब खुश हुए तो? बड़े होकर तू यदि एक मोटर खरीद दे मुझे, तो तुझे रोज़ चढ़ाया करूँ मैं। ले देगा मोटर?

अत्रि बोला—क्या खूब! खुद खरीदकर आप न चढ़ लूँगा मैं?

—धत् बेवकूफ! अपनी चीज का आप ही इस्तेमाल करने से लोग निन्दा करते है। तेरा-मेरा, मेरा-तेरा—यह बात! समझ गया?

अत्रि बोला—तुम मुझे हाजीपुर ले चलो, खरीद दूँगा गाड़ी।

—ले देगा? वचन दिया?

—ज़रूर ले दूँगा! देख लेना!

अपने दाँएँ हाथ से हुस्ना ने अत्रि की गरदन लपेट ली। इस बच्चे से बातें करते हुए उसकी जली आँखों में भाप भर आती है।

दस मिनट की भी राह न थी टैक्सी से। दरवाजे के सामने गाड़ी जा लगी। किराया चुकाकर अत्रि का हाथ थामे वह अंदर गयी। हिरण दोपहर को वहाँ जा चुका था। उसे सब मालूम ही था। मकान था तो पुराना, मगर उसमें आभिजात्य की छाप अभी थी। रिश्ते में ये लोग हुस्ना के मामा होते है। कैसे मामा होते हैं—सिलसिले से उसे न भी जानें, तो कोई हर्ज नहीं। हुस्ना की माँ उसे छुटपन में ही छोड़कर मर गई और हुस्ना जब पाँच साल की थी, उसका बाप इमदाद अली भी चल बसा। इम्दाद एक सुयोग्य कर्मचारी था, लिहाज़ा हुस्ना के लिए जीवेन्द्र बाबू का कुछ नैतिक कर्त्तव्य ज़रूर हो गया। सो वे खुद गये और उस लड़की को अपने कंधे पर बिठाकर ले आए। हिरण तब आठ साल का था, मीरा थी छः साल की। गाँव में चर्चा शुरू हो गई, इस परिवार में यह मुसलमान लड़की कैसे पलेगी? इसके उत्तर में जीवेन्द्र ने कहा—जब मुसलमान खेतिहर का अन्न हमारे पेट में मौजूद है, तो एक मुसल-मान लड़की हमारी गोद में क्यों नहीं पलेगी?

तब से हुस्ना को वहाँ पूरी आज़ादी रही। उस पर न तो रहा

कोई शासन, न विधि-निषेध। जहाँ चाहे जाए। जीवेन्द्र बाबू के सोने के कमरे में ही वह खेला करती और उन्हीं के पास उसकी पढ़ाई का श्री-गणेश हुआ। लेकिन उसकी शिक्षा-दीक्षा के प्रति किसी तरह का अन्याय-अविचार न हो, यह सोचकर उसके लिए एक मौलवी को रखा गया। थोड़ी बड़ी हो जाने पर उसे ढाका के बालिका विद्यालय में भरती किया गया और उसके बाद कलकत्ता।

मैट्रिक पास कर जाने पर मैतुंती थाने के दारोगा जलालुद्दीन के बड़े लड़के अनवर से उसकी शादी हुई। इस शादी में जीवेन्द्र बाबू ने लग-भग पंद्रह हजार रुपये खर्च किये। पर दो ही साल के बाद हुस्ना लौट आई। बोली—बड़े चाचा, बस इतना ही हुआ कि तुम्हारे रुपये पानी में गए। तुम्हारे दामाद ने अपने हाथों से मेरे कपाल का सिंदूर पोंछ-कर मुझे छोड दिया।

जीवेन्द्र ने पूछा—क्यों रे, छोड़ क्यों दिया?

—आपस में बनी नहीं चाचा!

—बनी नहीं, इसलिए छोड़ दिया?

—क्यों न छोड़ता? उसने पहले ही एक शादी कर रखी थी, इसका तुम्हे पता था?

—बला से पता न था। पर मैंने तो सुन रखा है, चार-चार शादियाँ तक चलती है?

—चलने को तो कोई बाँदियों की जमात रख सकता है। कहकर हुस्ना अंदर चली गई थी। जीवेन्द्र ने फिर कुछ नहीं कहा था।

दूसरी बार उसकी शादी फैजुद्दीन से हुई। उसमें भी बड़े चाचा ने काफ़ी रुपये खर्च किये। दहेज में थोड़ी-सी ज़मीन भी दी। मगर यह शादी भी न निभी। उस पर यह इलज़ाम लगा कि वह आबरू की परवा नहीं करती, अधीनता नहीं मानती, पढ़ने-लिखने से बाज़ नहीं आती और तरह-तरह की कानाफूसी का जो सारांश निकला, वह यह कि पति के साथ गिरस्ती करना उसके भाग्य में नहीं बदा है। वही

किसी बिछाई लीक पर चलना हुस्ना से शायद हो नहीं सकता था।

दो-दो बार पति-विच्छेद हुआ। परन्तु अचरज की बात यह थी कि दोनों ही बार वह अच्छी तंदुरुस्ती और दमकती हुई प्राण-शक्ति लेकर लौटी। लाचार बड़े चाचा ने कहा—अब मैं कर भी क्या सकता हूँ, बता? अब से मेरे मालखाने और संदूक की कुंजी तू ही रख। भंडार की ज़िम्मेदारी भी तुझी पर रही।

अपनी खिलखिलाहट से हुस्ना ने वातावरण को मुखरित कर दिया। सच तो यह कि किशोरावस्था में मीरा उससे ईर्ष्या भी रखती थी। हुस्ना की यह खासियत थी कि वह मिनटों में किसी से बंधुता कर लेती थी, इस हिसाब से मीरा पड़ती थी नाजुक। हुस्ना को कभी किसी ने गाना सिखाया नहीं था, किंतु जब वह लालन फकीर का बाउल-संगीत गाती तो उसके स्वर की सुमधुर मूर्च्छना से उस पार के मल्लाह अपनी नाव रोककर सुना करते। निधु बाबू का टप्पा तो उसके कंठ से लगा ही रहता। चैत की दोपहरी में शृंगारी वेदना की वह करुण स्वर-लहरी अजूरी की हाट पार करके, गाजनतला से आगे एक से दूसरे गाँवों तक चिटकती हुई फैल जाती। गीत थम जाने पर लोग जब उसकी प्रशंसा करने लगते, तो बाद में पता चलता, किसी निर्जन कोने में बैठे जीवेन्द्र बाबू की आँखों में आँसू की बूंदें झलमला उठी हैं। कभी किसी कमरे में घाघरा पहने हुस्ना नाच सीखा करती। उस नाच की शैली उसकी अपनी थी। अचानक कहीं मीरा जा पहुँची। कमरे के सुनहले फ्रेम वाले आदमकद आईने में हुस्ना की गज़ब की परछाईं देख वह चिल्ला उठती—अरी अभागिन, हया क्या तुझे छू ही नहीं गई? और मीरा वहाँ से आप ही भाग जाती।

हुस्ना कमरे के अन्दर आयी। हिरण को अविचल बैठे देख बोली—पराये घर में कुछ करते नहीं बनता, क्यों?

हिरण बोला—उँहु। ऐसी बात नहीं। बैठा-बैठा तुम्हारे उस नाच-गान के बारे में सोच रहा था। सोच रहा था, किसी के साथ तुम्हारी

निभ नहीं सकी, आखिर इसका क्या राज़ है ?

हुस्ना हिरण के पास आ बैठी। ज़रा रुककर बोली—सच बताऊँ, घर मुझे जकड़ नहीं लेता।

—मतलब ?

—मतलब यह कि मुझे घर का लोभ नही है।

—लेकिन स्वामी, गिरस्ती—

हुस्ना हँस उठी—तुम्हारा यह कौतूहल नही सोहता हिरण !

—क्यों ?—हिरण ने सवाल किया।

—तुम्हें याद नहीं, तुम्हारी कविता मुझे बेचैन बना डालती थी। उसके अन्दर होती क्या चीज थी ? उसने क्या कभी रहने दिया है घर मे ? चाँदनी रातों में मै तुम लोगों को तैरने के लिए नदी-किनारे क्यों खींच ले जाया करती थी ?

—लेकिन बसेरा बाँधे बिना औरतें रह सकती है ? उसके लिए एक प्राकृतिक ताड़ना जो होती है !

—ताड़ना होती है, इसीलिए तो दो-दो बार शादियाँ हुई, एक बार निकाह हुआ !

हिरण ने अचरज से पूछा—निकाह ? यह फिर कब हुआ ?

हुस्ना बोली—उसकी एक मज़ेदार कहानी है। याद है तुम्हें, अपने गाँव में कभी-कभी एक संपेरा आता था—शेख ? वह शेख, जिसने धानकुड़ी के जमींदार को साँप काटे से बचाया था···

हिरण ने कहा—हाँ याद आ रहा है।

हँसती हुई हुस्ना बोली—अपने दूसरे खसम से छिपकर मैं उसके पास साँप का मंतर सीखने जाया करती थी। साँप खिलाना मुझे अच्छा लगता था। एक दिन उसने मुझे कमरे में बन्द किया और लुटेरे की तरह कहा—अगर मेरे प्रस्ताव पर तुम राज़ी नहीं होगी, तो तुम पर साँप छोड़ दूँगा। मैं मतलब भाँप गई उसका। मगर मैं डरी नहीं। कहा—जी चाहे, छोड़ दो साँप तुम ! लेकिन यह बताओ, मै अगर तुम्हारे

साँप को काबू में ले आऊँ तो तुम मेरा प्रस्ताव मानोगे ? शेख राजी हो गया और साँप को उसने मेरी तरफ ललकार दिया। मुझे खुशी हुई कि साँप गेंहुअन था। फुफकारकर वह फन फैलाए मेरे सामने खड़ा हो गया। मैं तब तक गाना शुरू कर चुकी थी। मेरे गले की शिरा-उपशिराओं में जहाँ भी, जितनी भी मिठास संचित थी, सबको मैंने सुर में निचोड़ डाला। साँप शांत खड़ा रहा और मौत को निश्चित जान मैं गाती ही चली गई।

हिरण बोला—फिर ?

—गीत गाती हुई हाथ से मैं उस गेहुअन की आरती उतारने लगी। साँप धीरे-धीरे अपने पिटारे में जा घुसा। मैंने पिटारे का ढक्कन बंद कर दिया और कहा—क्यों, औरतें पैदा क्यों होती हैं, जानते हो ?

सँपेरे ने पूछा—क्यों ?

मैंने कहा—साँप खिलाने के लिए। गेहुअन डस लेता तो तुरत दम तोड़ देती और कहीं तुम डँसो तो आजीवन घुलती रहूँगी, घुल-घुलकर मरूँगी।

हिरण ने पूछा—फिर शेख ने क्या कहा ?

—कहा, बेग़म, मुझे मुआफ कर दो। मैं बोली, सुनो मियाँ, साँप खिलाना तो मैं जानती हूँ। हाँ, अगर तुम मुझे साँप का मंतर सिखा दो तो मैं तुम्हारी बात कुछ सोच सकती हूँ। वह बोला—मैं अभी सिखाऊँगा। मैंने कहा—ठीक है। मैं भी निकाह करूँगी तुमसे।

हिरण ने पूछा—सीख लिया मंतर ?

—ठहरो—हुस्ना उत्साह से बोली—मंतर सीखने में तीन महीने लग गए थे। वह सँपेरा भी एक ही बेवकूफ था तुम्हारा! मैं रोज़ जाती, वह रोज मंतर पढ़ता। जब भी उसकी भाषा जानना चाहती, अर्थ समझना चाहती, तभी उसकी कलई खुलने लगती। उसका तो दिमाग खराब होने की नौबत आ जाती। साफ देख रही हूँ कि वह वासना की आग में झुलस रहा है और मुझे पाने का कोई उपाय

नहीं—अल्लाह के नाम की शपथ ले रखी है। एक रोज़ श्रीमंत महुए की मदद से मैं खेत से पकड़ लाई एक विषधर। देखते ही उसका तो हाल खराब। मैंने कहा—क्यों, यह साँप यदि तुम्हें नहीं काटे, तब मैं तुम्हारे साथ सोऊँगी। निकाह के तीन माह हो गए, तुमसे मेरा आस-उल्लास कुछ तो न पूरा हुआ। और दूसरे दिन जाकर देखती क्या हूँ कि शेख लापता हो गया है।

अब की हिरण ज़ोरों से हँस पड़ा।

चार

हुस्ना के मामा हुसैन मियाँ सपरिवार चटगाँव में रह रहे थे—सरकारी पूर्तिविभाग में काम करते थे। उनके दूर के रिश्ते के बहनोई की माँ-बाप-विहीन लड़की कभी इस मकान में आकर रहेगी, इसकी वे कल्पना भी नहीं कर गए थे। निकट भविष्य में लौटने की संभावना भी नहीं थी। सो वे मकान की ज़िम्मेदारी मुहल्ले वालों पर ही छोड़ गए थे। उन्हीं में से कोई-कोई नीचे के तल्ले के कुछ कमरे दखल किये बैठे थे। आने के बाद हुस्ना ने उन्हें हटा दिया। अन्याय भी क्या था, सूने घर में चमगादड़ों का डेरा लगता है।

चाचा के लिए हुस्ना ने दक्खिन का बड़ा कमरा ठीक किया था। उसमें पलंग था। दूसरे सरो-सामान सज्जित थे। सुमित्रा का कमरा उत्तर-पूरब कोने में। सुबह ही आदमी भेजकर उसने सुमित्रा के लिए गंगाजल मँगवाया। सुबह ही वसंत नाम के एक नौकर की बहाली कर ली। विधवा के शुद्धाचार उससे अविदित नहीं, इसलिए सुमित्रा के लिए जो व्यवस्था की गई, उसकी शक्ल ही सबसे अलग थी। बीच वाले

कमरे में वह और मीरा। हिरण बाहर की तरफ।

वसत के साथ हुस्ना खुद बाजार गयी। सभी चीजें खरीद लाई। बढ़िया चावल, आटा और चीनी काले बाज़ार से काफी तादाद मे ले आई। चाचा के लिए शुद्ध दूध का इंतज़ाम किया गया।

हिरण जब सब लोगों को साथ ले आया, तब कोई दस बज रहे थे। हुस्ना सबसे पहले धर-पकड़कर जतन से चाचा को अन्दर ले गई। पलग पर नया बिस्तर बिछाकर उन्हें सुलाया। सच पूछिए तो उनके पास सामान कहने को कुछ था ही नही। इतने दिनो मे दो-एक बरतन और बिछावन जुट गए थे, बस। लेकिन हुस्ना की ऐसी सर्वांगीण व्यवस्था देखकर सुमित्रा और मीरा तो अवाक् रह गई। अपने कमरे में जाकर सुमित्रा ने देखा, जरूरत की सभी चीजें मुहैया हैं, और जहाँ जो चाहिए, वही है। अत्रि ने कहा—माँ, वसत के सिवाय तुम्हारी चीज़ों को और किसीने नहीं छुआ है। वह देखो, वहाँ तुम्हारे लिए पीतल के नये घड़े में गंगाजल है—वह कमरा पूजा के लिए। लेकिन जीजी कह रही थी माँ, वह तुम्हारे कमरे में नही आयेगी।

सुमित्री बोलीं—अच्छा, ऐसा कहा! ठहर जा तू। मैं खुद जाती हूँ, जलमुँही की गरदन पकड़कर ले आती हूँ।

मीरा रसोई में गयी, तो क्या देखती है, गले मे मोटा जनेऊ डाले एक राढ़ी ब्राह्मण रसोई कर रहा है। बिगड़कर वह बोली—हुस्ना, लगता है, तू हमें यहाँ इंद्रजाल दिखाने को ले आई है!

हुस्ना बोली—गिरस्ती सँवारना इंद्रजाल नही है जीजी!

मीरा बोली—तेरा यह क़र्ज़ पिताजी कभी चुका भी सकेंगे? इतना खर्च क्यों किया?

हुस्ना बोली—आखिर तुम मुझे इतनी नादान क्यों समझती हो? मैं पैसा कहाँ से लाऊँ? मेरे पास क्या कुछ है?

—फिर इतने पैसे तूने पाए कहाँ? किस पक्ष के पति ने दिया है, सुनूँ मैं!

हुस्ना ऊँचे स्वर में बोली—लगता है, छुटपन से मैं पाँच-सात पति के पैसों पर ही नवाबी करती आई हूँ ?

मीरा बोली—तेरा इशारा बाबूजी की तरफ़ है। मगर वे तो आज राह के भिखारी हैं !

—चाचा राह के भिखारी हैं, मान लिया। मगर उनके मालखजाने-की कुँजी किसके पास थी ? उनका बक्स किसके जिम्मे रहता था ?

—वह सारी पूँजी तो लुट गई।

खेतों से फसल काट ले जाओ, फिर भी दाने बिखरे रहते हैं जीजी—उन दानों को चुगती हैं बुलबुलें।

मीरा ने आवाज धीमी करके कहा—लेकिन अगर ये बातें पिताजी के कानों पहुँचें, तो उन्हें दुःख होगा हुस्ना !

—वह मुझे मालूम है। उन्हें न ही बताया तो क्या ?

—जानना तो वे जरूर चाहेंगे। क्या बताएगी तू ?

हुस्ना बोली—लडकपन से जाने कितना झूठ बोलती आई हूँ, बना-कर एक बात नहीं कह सकूँगी ?

मीरा बोली—कितने रुपये लाई है ?

हुस्ना बोली—हाजीपुर के घर में क्या केवल रुपये ही थे ?

मीरा सिहरकर बोली—तो ? सच-सच बता तो ?

हुस्ना ने कहा—कल रात हिरण के कानों मैंने गुनगुनाकर कहा है, तुमको नहीं बताऊँगी।

—हिरण तुम्हारा इतना ही अपना है ?

—तुमसे तो अपना है, यही मेरी खुशी है।

—मुझे नहीं बताएगी ?

हुस्ना फिर हँसी। कहा—तुम्हें बता दूँगी तो तुम इसी दम जाकर हिरण के गले माला डाल दोगी।

मीरा ने तीखे स्वर में कहा—कभी अगर डालती भी तो अब नहीं डालूँगी।—कहकर वह वहाँ से चली गई।

हुस्ना हँसते-हँसते लोट पड़ी।

हँसने की आवाज दूर तक गयी। सुमित्रा कमरे में आ खड़ी हुई। पूछा—क्या बात है हुस्ना ?

हुस्ना बोली—कुछ नहीं, तुम्हारी मीरा का पागलपन !

सुमित्रा ने कहा—वह जितनी ही शांत है, उतनी ही गंभीर। लेकिन तुझे देखकर ऐसा लग रहा है कि पागलपन शुरू से आखिर तक तुम्हारा ही है। माजरा क्या है, सुनूं ?

—तुम तो जानती ही हो चाची, थोड़ा-बहुत झूठ मैं बोला करती हूँ।

हँसकर सुमित्रा ने कहा—जानती हूँ। चौदह की उमर तक तो तू एक-आध ही सच बात बोलती थी।

हुस्ना बोली—तुम लोग सोच रही हो यह सारा खर्च मैंने अपनी गाँठ से किया है। यहाँ आते वक्त मालगुजारी वसूल करके कई हजार रुपये मैं ले आई हूँ, मगर मीरा से मैंने और ही कुछ कहा है।

सुमित्रा बोली—इसी पर मीरा तुनक गई।

एक कारण और भी है, मगर उसका संबंध हिरण से है। चाची होने के नाते तुम उसे सुनो भी क्या !

—जलमुँही, तेरे सारे मनसूबे मै समझती हूँ !—कहती हुई सुमित्रा बाहर चली गई।

बाहर गले की आवाज सुनायी दी। हिरण के पीछे-पीछे डॉक्टर अंदर आये। नमस्कार करके हुस्ना बोली—आइए।

जीवेन्द्र पलंग पर शांत पड़े थे। वे तीनों बिस्तर के पास जाकर खड़े हुए। डॉक्टर दिल की बीमारियों के विशेषज्ञ थे। जीवेन्द्र ने उनका स्वागत करते हुए कहा—आइए डॉक्टर साहब !

दो-एक सवाल पूछने के बाद डॉक्टर ने नब्ज पकड़ी। बोले—यों तो ये नीरोग हैं, दवा-दारू की जरूरत नही। बहुत दिन पहले शायद आपको बेरीबेरी हुई थी ?

जीवेन्द्र ने कहा—जी हाँ। बीस साल पहले।

—आँखें खराब हुई थीं क्या ?

—कुछ दिनों के लिए हुई थीं ।

मुस्कराते हुए डॉक्टर बोले—उत्तेजना होने से आपको तकलीफ होती है, लिहाज़ा आपको होशियार रहना चाहिए । तो मैं चलूँ । लीवर के लिए एक मामूली-सी दवा मैं भेज दूँगा ।

हिरण के साथ डॉक्टर निकल गए ।

अपना नरम हाथ जीवेन्द्र के माथे पर फेरती हुई हुस्ना ने कहा—बड़े चाचा !

—क्यों बिटिया ?

—सच बताऊँ, मुझे देखने के बाद से ही तुम कुछ अच्छे हो !

जीवेन्द्र ने पूछा—यह तुमने कैसे जाना ?

—ऐसे कि तुम सदा कहा करते थे, मैं खड़ी होती हूँ तो तुम्हें भरोसा होता है ।

जीवेन्द्र ने आँखें बंद कर लीं । ज़रा देर बाद बोले—अच्छा हुस्ना !

—जी, चाचाजी !

—लोग कहते है, मैंने तुम्हें मुस्लिम समाज में नहीं जाँने दिया—यह क्या सत्य है ?

हुस्ना कुछ देर चुप रही । उसके बाद बोली—मन में उत्तेजना आने से कष्ट होगा । ये बातें अभी रहने दो ।

शाँत स्वर में जीवेन्द्र बोले—तू आज मुझे कीचड़ में से उठा लाई है । लेकिन इस बात का उत्तर पाए बिना मैं स्वस्थ हो सकूँगा ?

हुस्ना ने कहा—मुझे पता है, कभी-कभी कोई-कोई झोंक तुम पर सवार हो जाती है । खैर, पहले मेरी बात का जवाब दो चाचा ।

—बता, किस बात का ?

हमारे देश में हिन्दू और मुसलमान, दो समाज हैं—यह बात जानने का कभी मौका दिया था तुमने मुझे ? तुमने क्या कभी सिखलाया था कि ये दो अलग-अलग हैं ?

ज़रा देर चुप रहकर जीवेन्द्र बोले—लेकिन सब-कुछ छोड़कर तू अपनी जिन्दगी क्यों बरबाद करने पर तैयार हुई ?

—बरबाद आप किसे कहते हैं ?

—तू किसी के यहाँ नही टिक सकी, इसकी वजह ?

हुस्ना बिना सकुचाए सवाल का जवाब दे बैठी। बोली— चूँकि मैं तुम्हारे यहाँ पली, इसलिए और किसी घर में मेरा जी नहीं लगा चाचा।

—लेकिन पति ?

—पति से आदमी कहीं बड़ा होता है।

जीवेन्द्र हँसे। मृदु स्वर में बोले—कच्ची मिट्टी को साँचे में ढालकर जब आग में पकाया जाता है, तब पुतला बनता है। याद है, तुम्हारी पहली शादी के समय कितने मुल्ले और मौलवी बुलाये गए थे ? हाजी साहब तक आये थे नूर नगर से, याद है ?

—हाँ, याद है।

—उन्होंने ही अपने परिचित से तुम्हारी शादी ठीक की थी।

—परिचित ही कहना होगा !—हुस्ना कुछ तप्त स्वर में बोली—जिसे चार पाँवों चलकर आना था, वह ब्याह करने को पहुँचा दो पाँवों पर चलकर। कच्ची मिट्टी का होता, तो उसे शायद अपने साँचे में ढाल सकती चाचा, लेकिन बनमानुस को बदलकर नहीं बनाया जा सकता। उस दिशा में तो अपनी जिन्दगी बरबाद नहीं हुई, लेकिन लगता है अब बरबाद होने को आई।

जीवेन्द्र बोले—क्यों ?

उनके कपाल पर हाथ फेरती हुई हुस्ना शांत कंठ से बोली—तुम आज उसे सुनने की इच्छा न करो चाचा।

—अगर न सुनने से बीमारी बढ़ जाए ?

—और सुनकर यदि बढ़े ?

—तूने ही तो कहा है, बीमारी मुझे कोई नहीं ! फिर तू तो पास

ही है। डर क्या है ?

गला साफ करके हुस्ना ने कहा—तुम्हारे हाथ में रोशनी थी, इसीलिए अँधेरे में भी हम देख पाते थे। चाचा, वह रोशनी तुम अपने ही हाथों बुझा आए।

जीवेन्द्र बोले—मैंने बुझायी ?

—हाँ, तुमने। तुम आदर्शवादी थे। इसी आदर्शवाद की छाया में हम आदमी बने। इसी खूँटे को पकड़कर हम खड़े थे। क्या बाढ़, क्या अकाल, क्या हैज़ा और क्या राष्ट्र-विप्लव—वह खूँटा मजबूत था। तुम रोशनी दिखाते थे—हम अपनी राह पहचान लेते थे। किंतु जिस दिन उस आदर्शवाद की अग्नि-परीक्षा की घड़ी आई, तुम सबको छोड़कर भाग गए। उस अग्निकांड के दिन तुम तदि पीछे मुड़कर देखते तो तुम्हें दिखाई देता—उस अँधेरे में बैठे कौन लोग रो रहे है। वह बुड्ढा मोतहार, तुम्हारा दोस्त आबू मंडल, मुनीरुद्दीन मुख्तार, फूलबानू की दादी—सब रोते-रोते लोट रहे थे। तुम क्या यह जान आए हो कि तुम्हारे यहाँ की आग बुझाने में हब्बू मियाँ का लड़का अबुल जल मरा ? चाचा, तुम हमारा विश्वास, बल, हमारी जिन्दगी, सब बरबाद कर आए हो।

कहते-कहते हुस्ना का गला भर आया। मगर वह मजबूत दिल की लड़की, आँखों में पानी उसने छलकने न दिया।

जीवेन्द्र शांत भाव से ऊपर की ओर ताक रहे थे। दोनों आँखें उनकी थिर थीं। उन्होंने उत्तर देने की कोशिश भी न की।

हुस्ना ने कहा—तुमने ही तो कहा था चाचा कि प्यार से ही चोट आती है। यहाँ तक कि हनन की बुद्धि भी आती है। वे अर्जुन वैरागी को मारने नहीं दौड़े, दाशू साँतरा पर उन्हें कोई गुस्सा नही—वे टूट पड़े तुम पर। इसका कारण मगर मैं जानती हूँ। वे सदा तुम्हारा मुँह जोहते रहे थे। पठान आये, मुगल आये, अंग्रेज़ आये—लेकिन उन लोगों ने केवल तुम्हीं को जाना। उन्होंने तुम्हें प्यार किया, बदले में तुमने उन पर दया की। आज तक तुम उनकी जितनी उपेक्षा करते आए हो, उतनी ही

घृणा वें तुम्हें दे रहे हैं।

जीवेन्द्र ने पुकारा—बिटिया !

मुँह को करीब ले जाकर हुस्ना बोली—क्या चाचा ?

—मेरा घर फूंकने से क्या इसका प्रतिकार होगा बेटी ?

—होगा चाचा, होगा। तुम्हारे ही घर में आग लगाना ज़रूरी है। निरपराध आदर्शवादी की जब अकाल मृत्यु होती है, तभी मनुष्य के कलेजे में दर्द होता है। तुम्हारे घर मे आग लगाकर उन्होंने अपनी छाती की आग का भयावना चेहरा देखना चाहा ! उन्हें जाति की बला छू नहीं गई चाचा, किसी धर्म का टंटा नहीं।

—हुस्ना !—जीवेन्द्र ने फिर पुकारा।

वह बोली—चाचा।

—जात और धर्म पर आज क्या र जोनहीं डाला जा रहा है ?

मृदु स्वर में हुस्ना बोली—जाए। जो अज्ञान हैं, उनके यही तो दो सहारे हैं। असल में जोर सुभीते के लिए डाला जाता है चाचा ! आज जात से ज्यादा दाम हो गया है जाति-भेद का, धर्म से ज्यादा हो उठी है धर्मांधता की कीमत। धर्म अगर वैर-फूट को जगाए रख सके तो उसका बहुत लाभ है और जात अगर बज्जात को राजपाट की गुंजाइश कर दे, तो यही तो ठीक चाहना है। तुमने उन लोगों पर दया ही की, उन्हें दीक्षा नहीं दी। जब तुम अंग्रेज़ों के हाथों से अपनी मुक्ति का उपाय खोज रहे थे, उस समय वे तुमसे मुक्त होने की तरकीब ढूँढ़ रहे थे। सौ साल पहले जिन अंग्रेज़ों ने लात मारकर उनसे तख़्त-ताऊस छीन लिया था, उन्हीं अंग्रेज़ों से उन्होंने जबरन नाता जोड़ा, सिर्फ तुम.लोगों से रिहाई पाने के लिए।

कुछ सोचकर हुस्ना सहसा चुप हो गई। फिर बोली—मुझसे कहीं भूल हो रही है चाचा ?

जीवेन्द्र बोले—अपने ऊपर संदेह क्यों बिटिया ?

—तुम पर अन्याय नहीं हो रहा है ?—हुस्ना की आँखों में अब आँसू दिखाई दिए।

—अन्याय कभी किया है तुमने ?

हुस्ना बोली—तुम सब छोड़ आए हो चाचा। आये हो अनचीन्हे देश में, पनाह ली है एक अजाने घर में—सहारा-संबल कुछ भी नहीं—अस्वस्थ होकर खाट पकड़ी है—ऐसे में मेरी हिमाकत के लिए मुझे माफ़ करना।

ऐसा नहीं कहते बिटिया—जीवेन्द्र ने कहा—तेरी जुबान बंद होने से मेरी अपनी बात भी खो जाएगी। तेरे मुँह से मैं अब की बातें जानना चाहता हूँ।

—तुम जरा टहलने चलोगे चाचा ?

—जाऊँ कहाँ बेटी। जमाना पहले एकाध बार कलकत्ते आया था, अब कुछ भी याद नही है।

हुस्ना बोली—गाड़ी से ले चलूँगी। बाहर जाने से जी कुछ अच्छा ही रहेगा। चलोगे ?

—चलो।

नया नौकर होने पर भी वसंत को सूझ-बूझ थी। बाहर के कमरे में उसकी नज़र पड़ी, हिरण अपने नये जूते को झाड़-पोंछ रहा है। आँखें कपाल पर चढ़ाकर वह बोला—यह आप कर क्या रहे हैं बाबू ? कहीं मेम साहब ने देख लिया, तो मेरी नौकरी गई !

—तुझे माहवारी मिलेगा क्या वसंत ?

—जी, पच्चीस रुपये।

—इन पच्चीस रुपल्लियों पर जूते भी साफ करोगे ?

—जी बाबू !

—मेम साहब तो यहाँ दो हैं। तू किसकी बात कह रहा है—काली की कि गोरी की ?—भवें सिकोड़कर हिरण ने देखा।

वसंत ने कहा—मैं दोनों की कह रहा हूँ।

हिरण मन लगाकर जूतों की सफाई कर रहा था। बोला—अच्छा

यह तो बता वसंत, तेरे खानदान में कोई घर-जमाई भी रहा था ?

—जी, मुझे नहीं मालूम।

—खुद तूने कभी औरतों के मन जुगाने की कोशिश की है ?

—बाबूजी की बात ! छोड़िए आप, जूते छोड़ दीजिए।

हिरण ने कहा—ठहर रे अभागे…अच्छा सच-सच बता, तू कभी नाटक में उतरा है ?

—नही।

—कभी नादान का पार्ट किया है तूने ?

पीछे मीरा आकर खड़ी थी। बोली—वसंत, तू यहाँ से जा। वसंत चंपत हो गया। रूखे कंठ से बोली—घर-जमाई का हर गुण ही आपमें मौजूद है, यहाँ तक कि घर के नौकर को पहले से ही आपने बंधु बना लिया है !

निर्विकार उदासीनता से हिरण बोला—आपने घर-जमाई के इन गुणों को कैसे जाना ?

—जानने की ज़रूरत नही होती, खुद वही जना देते हैं। जूतों की सफाई पर तो उतर आए है, अब शायद पाँव पकड़कर ही रहेंगे !

हिरण बोला—पाँव-जैसा पाँव मिले तो पकड़ने में भी आनंद है !

मीरा बोली—पाँव पकड़ना फिर भी बेहतर है, मगर लगे-लगे डोलने से आबरू जाती है, जानते है ?

जूते सहेजकर रखने के बाद हिरण बोला—मैं यहाँ से चला जाऊँ तो आप खुश हों ?

—कुछ दुखी भी न होऊँगी।

—आखिर क्यों भला ?

—मान गँवाकर पास रहने से मान बचाए दूर रहना बेहतर है।

हिरण बोला—मान भंजन करके पास रहना लेकिन क्या बेजा है !

मीरा बोली—मान किसका भंजन करना है ?

—उनका, जो रोज़ मान के लिए भयभीत हैं !

—कौन हैं वे ?

—वही, मान के लिए पद-पद पर जिनका मन टूटता है !

मीरा बोली—आपको क्या अभी भी यह उम्मीद है कि राज और राजकुमारी दोनों मिलेंगी ?

मुँह फेरकर हिरण बोला—यह मैं जानता हूँ कि राज खो जाने के बाद राजकुमारी का दाम बहुत घट गया है। लेकिन दो में से एक भी मिल जाए, तो बहुत-कुछ दिलासा हो !

मीरा बोली—मगर इनमें से एक भी नहीं मिलने का। असल में उन दोनों को मिलाकर एक होता है—एक को छोड़ने से दूसरा भी बाद पड़ जाता है।

—क्यों, सिर्फ राज ही मिल जाय तो क्या बेजा है ?

—आखिर मिलेगा किस अधिकार पर ?—मीरा ने भवें सिकोड़ीं।

—उसी अधिकार से, जिससे कोई चरवाहा यक-ब-यक राजा बन जाता है ! मान लें, ब्याह में चाचा ने मुझे जमींदारी दहेज में दी और भाग्य के फेर से आप दूसरे ही दिन चल बसी।

मीरा बोली—भाग्य के फेर से ! यानी आप मेरी मौत मनाते है ?

हिरण बोला—मौत नहीं मनाता, लेकिन जानती हैं, यह देश अद्वैत-वाद का है। कमल की पंखड़ियों पर पानी की बूँद टलमल कर रही है ! कब झर पड़ेगी, कहा जा सकता है ?

—जायदाद मिल जाती तो आप क्या करते ?

—कहना फिजूल है कि हुस्ना को अपनी प्राइवेट सेक्रेट्री बनाता, वह अपना नाच-गान लिये रहती और ईरानी नाचवाली का घाघरा फुर-फुराकर मेरी गुप्त सचिव का काम करती !

—और आप ?

—मैं ? अचानक लखपती होकर और—और भले लोग सोमरस के आनंद में चूर होकर जैसे चरणों में नूपुर होकर बजते फिरते हैं, मैं भी बजता फिरता !

मीरा बोली—हूँ। देखती हूँ, रवि बाबू की कविता आपने कंठ कर रखी है। इन दिनों आप मन लेने-देने के कारोबार में खूब व्यस्त हैं शायद।

हिरण इस बार जरा हँसा। बोला—राज के साथ-साथ आपको भी जब खो बैठा, तो साल-भर तो ऐसा कटा जैसे जान में जान आई हो, लेकिन अब फिर अचानक ही प्रौढ़ता की बू आने लगी है। औरत जब पुरुष के चरित्र की रक्षा का भार ले बैठती है, तो आफत जानिए मीरा देवी!

मीरा ने कहा—जूते में पालिश क्यों लगा रहे थे?

—मतलब आपका?—हिरण ने अचरज के साथ कहा—आखिर अपने जूतों में क्या आपसे पालिश कराता! फिर तो पहले ही कहना चाहिए था! हुस्ना के साथ आज सिनेमा जाऊँगा। अच्छी तस्वीर आई है।

—अकेले नहीं जा सकते थे आप?—गुस्से से वह फुफकार उठी।

—अकेले? यह तो मैं सोच भी नहीं सकता। मन की मीत पास न हो तो अच्छी तस्वीर भी अच्छी नहीं लगती!

मीरा की आँखें जल उठीं। बोली—इससे पहले हुस्ना के साथ आप कितनी बार सिनेमा गये हैं?

हिरण ने कहा—जैसे सवाल आप कर रही हैं, लगता है, अभी भी मैं आप ही के राज में बस रहा हूँ। वास्तव में, आपकी माँग में सिंदूर पड़ता, तो जाने क्या दुर्गत होती मेरी!

—आपको छोड़कर भी मेरी माँग में सिंदूर पड़ सकता है। इतना याद रखेंगे।

उल्लसित होकर हिरण बोल उठा—सुभान-अल्लाह! ऐसी सद्बुद्धि भी कभी आएगी आपको?

मीरा ने रुखाई से कहा—मैं अपनी बात का जवाब चाहती हूँ। हुस्ना के साथ आप कितनी बार सिनेमा गये हैं?

—याद थोड़े है। आप तो बराबर हाजीपुर रहीं! बहुत हुआ तो

इम्तहान देने ढाका पहुँचीं। कलकत्ते के होस्टल से हुस्ना मामा के घर जाने के बहाने निकल पड़ती और मैं होस्टल से निकल पड़ता, कोई-न-कोई काम लेकर। दोनों की भेंट होती कर्जन पार्क के मोड़ पर। सामने ही मैट्रो! लौटते वक्त कभी वर्षा होती रहती—पास ही तिरपाल-ढँकी फिटन गाड़ी मिल जाती और हम महज़ आध घंटे की राह को ढाई घंटे में तय करते। हाजीपुर की जमींदारी के रुपयों से गाड़ीवाले को इनाम में दस रुपये देते कतई नहीं खलता। और तस्वीर का कथानक हमारे नैश-अभियान में उत्साह ही देता।

भौं सिकोड़कर मीरा बोली—हुस्ना क्या कहती?

हँसकर हिरण ने कहा—चारों तरफ से ढँकी गाड़ी के अंदर बैठकर मुँहजलियाँ पुरुष के कानों में सदा से जो कहती आई हैं, हुस्ना भी वही कहती। चिड़ियों के मधुर कलरव की क्या कोई निश्चित भाषा होती है?

मीरा काँप रही थी। कहा—आपने मुझे यह सब पहले क्यों नहीं बताया था?

—बताता तो आप क्या करतीं?

—होशियार रहती। बाबूजी से कहती।

—क्या कहतीं?

—आप दोनों के बेहयापन की बातें।

—आपके विचार और बुद्धि की बलिहारी! दो तरुण-तरुणी निर्जन बगीचे में घूमते-फिरते हैं या किसी नदी किनारे या कि यहाँ-वहाँ, कहीं। बहुत ज्यादा तो दो-चार बार सिनेमा। हँसी-खुशी से मग्न-मुखर हैं दोनों, या ज़रा रस-गदगद भाव—रोटी-कपड़े आसानी से जुट जाते हैं, जेब-खर्च की फिक्र नहीं—या तो गीत और कविता के प्रवाह में तिरते चलते हैं, या राह-बाट में किलकारियाँ भरते फिरते हैं! ऐसे मनोहर दृश्य को आप बेहयापन कैसे कहती हैं? हुस्ना के बजाय कहीं आप मेरे साथ उस फिटन में बैठी होतीं, तो क्या रुद्राक्ष की माला फेरतीं? या आँखें बंद किये ईश्वर की असीम दया को याद करके प्रार्थना करने

लगतीं ?

मीरा बोली—तो यों कहिए कि मेरे भविष्य की मिट्टी पलीद के लिए ही आप तैयारियाँ कर रहे थे ?

—आपका भविष्य किस बात से बरबाद होता ?—हिरण ने पूछा।

—कापुरुष के पल्ले पड़कर स्त्री का भविष्य बड़ा उज्ज्वल होता है, क्यों ?

हँसकर हिरण बोला—और किसी रोनी लड़की के चरणों तले कोई भला लड़का आजीवन सर कूटता रहे, तो शायद आपकी निगाहों में वह वीर पुरुष होगा ?

मीरा बोली—बस भी कीजिए, बहुत हो गया। आपसे मेरा ब्याह हुआ है या नहीं, यह मैं आज भी नहीं समझ सकी; लेकिन आपके साथ रहने की नौबत नहीं आई, यही मेरा बहुत बड़ा सौभाग्य है। लेकिन इन नये जूतों को आप पैरों में क्यों पहनने चले, माथे पर रखकर सिनेमा जाइए।

मीरा जाने लगी थी। हिरण ने पुकारा—रुकिए जरा। यह सब होने-हवाने के बाद मैं इस घर में रहूँ या चला जाऊँ ?

—यह घर मेरा नहीं है।

—लेकिन दाना-पानी तो आप लोगों का है।

मीरा बोली—जो आदमी बनने की कोशिश नहीं करते, वे इस घर में कैसे रह सकते हैं ?

—मैं आदमी नहीं, घर-जमाई हूँ।

—फिर तो इस घर में भीख नहीं मिलने की। गिरस्थ के हाथ बँधे हैं, आप बल्कि और कहीं जायँ।

हिरण ने कहा—तथास्तु।

मीरा पीछे को मुड़ी कि सामने राह रोककर हुस्ना खड़ी हो गई। बोली—वाह, इस तरह भागने से चलता है कहीं !

मीरा ने कहा—मुझे जाने दो, अपनी भूलें आ गईं समझ में।

—ऊँहूँ। यह भी तुम्हारी भूल है।

—कैसी भूल ?

हुस्ना बोली—तुम्हारी सारी भूलें अभी चुकी नहीं हैं, एक बाकी है।

मीरा बोली—मैंने आदि से अंत तक तुम लोगों की करतूतों का किस्सा सुना है, पता है ?

हुस्ना हिरण की ओर देखकर एक बार हँसी, उसके बाद बोली—और तुम यह जानती हो कि मैंने तुम लोगों की सारी बातें अभी खड़ी-खड़ी सुनी हैं ? तो अब जो सत्य है, सो सुनो।

मीरा बोली—तुम्हारी सच्ची बात का अब मुझे यकीन नहीं रहा हुस्ना ! अपनी सचाई अपने ही पास रखो और मेरा पिंड छोड़ दो।

हुस्ना बोली—अभी छोड़ दूँगी। तुम सच्ची बात सुनना नहीं चाहती, लेकिन किस्से को तुम सच मान बैठी, यह कैसी बात ?

हिरण बगल के कमरे में चला गया। हुस्ना ने पूछा—अच्छा, तुम यह बताओ कि हिरण पर तुम्हें विश्वास है या नहीं ?

मीरा बोली—नहीं। कभी विश्वास करूँगी भी नहीं।

हुस्ना हँस उठी। बोली—तो फिर उसके किस्से पर कैसे विश्वास कर लिया ? वह सही नहीं भी तो हो सकता है।

—चूंकि उसका सही होना संभव है, इसीलिए।

—तुमने ढेरों उपन्यास पढ़े है, उनकी कौनसी कहानी सच है ? मगर झूठी कहानी पढ़कर रोती क्यों हो, हँसती क्यों हो या गुस्सा क्यों करती हो—कह सकती हो ?

हिरण फिर कमरे में आ खड़ा हुआ। कहा—मैं लेकिन कपड़े पहनकर तैयार हो गया हूँ। अरे हाँ, हुस्ना, इत्र की जो शीशी तुमने मेरे लिए छिपाकर रखी थी, वह कहाँ है ?

हुस्ना नें जरा आगा-पीछा किया। झट से मीरा बोल उठी—हुस्ना, निकाल दो शीशी। खुद भी लगा लो जरा।

हुस्ना और हिरण ने हँसकर घर को गुलज़ार कर दिया। उसी हँसी के प्रवाह में तिरकर मीरा बगल के कमरे में चली गई।

यह विवाद, जो महज़ गपोड़-गाथा था, इसे साबित होते देर न लगी। हुस्ना के कंधे हाथ रखे जीवेन्द्र बाहर निकल आए। मीरा बीच रास्ते में खड़ी थी। उसके चेहरे पर कौतूहल देख हुस्ना ने कहा—चाचा को जरा टहला लाऊँ। हमारे साथ तुम भी चलो जीजी!

—चलो।—मीरा तैयार ही थी। सिनेमा जाने का किस्सा हुस्ना और हिरण की एक साज़िश थी, अब मीरा साफ समझ गई।

बाहर गाड़ी खड़ी थी। अत्रि उस पर पहले से ही जा बैठा था। जीवेन्द्र गाड़ी पर अत्रि के बगल में बैठ गए। अत्रि ने कहा—बड़े चाचा, आज आपको कलकत्ता शहर दिखाऊँगा।

जीवेन्द्र ने कहा—तेरी आँखों सब देख लेता तो अच्छा ही होता। अच्छा, हिरण नही दिखाई देता। वह कहाँ गया?

हुस्ना ने कहा—कुछ पता नही कि कहाँ गया।

—उसे यहाँ अच्छा नहीं लग रहा है, क्यो?

—अच्छा न लगने की ही बात है।—हुस्ना बोली—मैं इस घर में उसे जबरन ले तो आई हूँ, लेकिन रहना उसे भा रहा है या नहीं, कहना कठिन है। वह किसी नौकरी पर बाहर चल देना चाहता है।

जीवेन्द्र ने पूछा—वह क्या बहुत दुखी है?

—हँसकर हुस्ना बोली—दुःख-शोक की उसे कम परवाह रहती है।

सब सम्हलकर बैठ गए, तो गाड़ी खोल दी गई। टैक्सी वाले से यह तय हो गया कि रोज दो घंटे तक, पंद्रह मील का चक्कर काटकर घुमा दिया करेगा और सात दिनों पर अपना किराया ले लिया करेगा। यह तय-तमाम हुआ है हुस्ना से। गाड़ी खुल जाने के बाद तक भी सुमित्रा वसंत के पीछे खड़ी थीं। कलकत्ते आकर किसी विलासिनी को खुश करने के लिए रामेन्द्रनारायण ने एक मोटर खरीदी थी। स्वामी की आज मृत्यु हो गई है, लेकिन पिछले चौदह-पंद्रह वर्षों का इतिहास गौरव का नहीं

है। उस इतिहास में कुछ आँसू, कुछ अनादर, कुछ अनाचार रह ही गया है।

वसंत ने पूछा—चाची, दरवाजा बंद कर दूँ ?

—बंद कर दे।—कहकर वह अंदर हो गई।

संध्या-पूजा का समय हो गया था। लेकिन आँखें मूँदकर पूजा पर बैठने से अंधकार के सिवा और कुछ नहीं दीखता। और उस अधकार में से धीरे-धीरे रूप लेकर खड़ा हो जाता हाजीपुर। कुल छः ही महीने तो हुए पति को गुजरे, वह भी मृत्युकाल में वे पास नहीं थे। सो उपासना के समय स्वामी के मृत्युकालीन मुखड़े की छवि धुँधली-सी हो जाती। ऐसा पता चला है कि स्वामी के अंतिम दिन बहुत ही दयनीय दशा में बीते। वह दयनीय दशा क्या थी, सुमित्रा यह भी नहीं जानती। चौदह साल तक स्वामी जीवित थे, मगर दोनों की उम्र में इतना फर्क था कि दोनों की एकांत अंतरंगता का अवकाश ही बहुत कम रहा। एक ऐसा समय आता है, जब स्वामी के सभी कामों की समालोचना करने का स्वाभाविक अधिकार आता है। लेकिन उस उम्र तक पहुँचने के पहले ही सुमित्रा को वैधव्य को उठाना पड़ा है।

आँखों के सामने हाजीपुर की तस्वीर खिंच जाती है। सुमित्रा छोटी रानी थीं—इनका महल अलग था। मीरा की माँ बहूरानी थीं—उम्र में सुमित्रा की माँ के बराबर। वे जबरदस्ती देवर की शादी करके सुमित्रा को घर लायी थीं। लेकिर ब्याह के तीन ही महीने बाद मीरा की माँ चल बसीं। संसार का सारा उत्तरदायित्व सुमित्रा के ऊपर आ पड़ा। रामेन्द्र का ज्यादा समय कलकत्ते में कटता। किस-किस आकर्षण ने उन्हें कलकत्ते के एक शौकीन मुहल्ले में बाँध रखा था, इसकी आलोचना की यहाँ जरूरत नहीं। मोटामोटी इतना पता था कि अंगरेजी शराब, अंगरेजी कविता, अंगरेजी खाना और अंगरेज लड़की—इसके सिवाय कुछ भी उन्हें प्रिय नहीं था। शादी कराकर मीरा की माँ ने उनको इस आदत का सुधार करना चाहा था, लेकिन चूँकि सुंदरी सुमित्रा विलायती समाज में नहीं पैदा हुई थी, इसलिए उनकी वह कोशिश कामयाब न

हो सकी। और, अत्रि के पैदा होने से पहले ही रामेन्द्र अपनी पुरानी आदत से जा लगे थे। घर में शौक की सारी सामग्रियाँ थीं— सुमित्रा के लिए विलास के सारे उपकरण थे। जवाहरात के जड़ाऊ गहने, साज-सज्जा, दोनों हाथों चाहे जितना खर्च करो, इतने रुपये, बेरोक अधिकार। वहाँ सुमित्रा की क्षति की पूर्ति थी। अत्रि का भविष्य निश्चित था। रानी होने के सारे लक्षणों-सहित सुमित्रा राय परिवार की बहू बनकर आयी थीं, मगर उसके पहले ही दुर्भाग्य की साज़िश उन्हें कलकत्ते के एक भद्दे मुहल्ले में खींच लाई। उनके लिए हुस्ना आज चाहे जितना ही आयोजन क्यों न करे, उन्हें सब उपहास-सा लगता है। हुस्ना आज तक भाँप भी न पाई है कि भीतर-ही-भीतर उनमें असंतोष धुँआने लगा है। वह सोच रही हैं कि इस कष्ट-क्लिष्ट और पराश्रित जीवन के बाहर कदम बढ़ाया जा सकता है या नहीं।

बाहर किसी ने कड़े खटखटाए। ठाकुर रसोई में था। वहीं से आवाज़ दी—कौन ?

उत्तर नहीं मिला। सुमित्रा बोलीं—वसंत, देख तो, बाहर शायद हिरण आयी है।

—अभी गया चाची !—कहकर वसंत बाहर की तरफ लपका।

दूसरे ही क्षण वसंत लौट आया। बोला, कोई भले आदमी आये हैं।

—मगर घर में कोई है जो नहीं ?

वसंत बोला—वह तो मैंने बता दिया, लेकिन वे बोले, छोटी बहू-रानी से भी भेंट हो जाए, तो काम चल जाएगा।

छोटी रानी! सुमित्रा दो कदम आगे बढ़ गयीं। कहा—पूछ तो देखो, कहाँ से आ रहे हैं वे ?

वसंत फिर से गया। किन्तु तब तक वह भले आदमी अंदर की तरफ आये। गरदन बढ़ाकर बोले—मैं हूँ, वेणु।

ओ, आप !—सुमित्रा ने घूंघट को ज़रा-सा खींच लिया। कहा, सब लोग बाहर गये हैं। वसंत, कुरसी ला। जेठजी, हिरण—कोई घर नहीं

हैं। लड़कियाँ भी बाहर गयी हैं।

बेह्निक बाबू ने एक निगाह चारों तरफ देखा और हँसकर बोले—अब आप लोग खासे मकान में आ गए हैं। मेरे यहाँ आप लोगों को तकलीफ थी। जरा देखने आ गया—वाह, अच्छा मकान मिला है!

सुमित्रा बोली—बड़ी मुसीबत के दिनों मे आपके यहाँ आश्रय मिला था।

—अरे, वह भी क्या! आप बड़े घर की बहू ठहरी, वह घर आपको सोहता क्यों? पता आप दे आई थीं, इसीलिए ढूँढ़ सका। हाँ हिसाब में आप लोगों ने भूल की थी। मैंने ठीक से देख लिया है। मेरे सिर्फ बारह सौ रुपये निकलते थे और आपके हिरण बाबू मुझे डेढ हजार दे आए।

सुमित्रा बोलीं—किंतु आपके एहसानों का कर्ज तो चुकाया नहीं जा सकता। उन सारे ही रुपयों को आप रख लीजिए।

वेणु बाबू ने एक बार इधर-उधर ताका। फिर बोले—नहीं-नहीं, ये रुपये मैं नही ले सकता। पावना से ज्यादा लेकर में रखूँगा कहाँ? यह न होगा। बल्कि आप उसे अपने खर्च के लिए रख लीजिए।

बेह्निक बाबू ने निकालकर रुपये दिये। आवाज को जरा धीमी करके कहा—आपकी इज्जत और है। बात-बात में आप उस मुसलमान लड़की के आगे हाथ पसारें, मैं यह सोच भी नहीं सकता। आज आप अगर अपने राज्य में जाकर खड़ी होतीं, तो जंगली पशु भी वश में हो जाता। हीरे का टुकड़ा कीचड़ ही में पड़ा हो, तो उसकी कीमत नहीं घटती। लीजिए, ये रुपये रख लीजिए। नौकर की निगाह न पड़ जाए।

सुमित्रा ने भारी हाथों उन तीन सौ रुपयों को उठा लिया। बोलीं–यहाँ रहने की मेरी इच्छा नहीं। जेठजी से रैयतों की अनबन हुई है—शायद वे वहाँ लौटकर न जाएँ। वहाँ अपने भी रैयत है और वे मेरी हेठी न करेंगे, यह मैं जानती हूँ।

जरा देर बाद मीठे स्वर में बेह्निक बाबू बोले—देखिए, मुझसे आप लोगों की जान-पहचान दो दिनों की है। दो ही दिन में मुझे भूल भी

जाएंगे आप लोग। मैं जानता हूँ कि मीरा देवी को मैं नही सुहाता, बड़े बाबू मेरा मखौल उड़ाते है—मुझे बेल्लिक कहकर पुकारते है। आपके जो घर-जमाई है, वे जाने कैसी निगाहों से तो मुझे ताकते है और वह मुसलमान लड़की, वह तो पहले ही परिचय में मारने दौड़ी मुझे। लेकिन मैने निःस्वार्थ भाव से जो थोड़ी-सी सेवा की है, वह केवल अत्रि का मुँह देखकर। ऐसी श्री, ऐसा लावण्य, ऐसा रूप—मैंने इन आँखों कभी नही देखा। ठीक राजकुमार! आपके योग्य है आपकी संतान—यह सभी कहेंगे।

—देखिए,—बेल्लिक बाबू बोले—लड़के पर खास निगाह रखेंगी। उसके एक ओर तो ये सगे-संबंधी है और दूसरी ओर है वह मुसलमान लड़की। आपका नुकसान होगा तो जबान खोलकर कुछ कह न सकेंगी। आपके जेठ हैं तो क्या हुआ, वे एक साझेदार के सिवाय तो कुछ नही हैं। लड़की की शादी हुई नही कि उन्हें छुट्टी मिल गई—जमीन-जायदाद छोड़ भी दें, तो उनको नुकसान क्या है। मगर आपकी हालत? और अत्रि का क्या होगा? यह सब क्या उस पाकिस्तानी जासूस पर ही छोड़ देंगी?

सुमित्रा कैसी तो रोमांचित हो उठी। बोली—इसके पहले मुझे किसी ने इस तरह से नही समझाया। मैं आपकी बातों पर गौर करूँगी वेणु बाबू!

वेणु बाबू बोले—सोच देखें, इतनी तो कम है उमर आपकी। स्वामी ही नहीं रहे, लेकिन सारा जीवन तो पड़ा है! आपकी गोद उजाला किये यदि आज अत्रि नहीं होता, तो सोचता, दूसरी लाखों-लाख लड़कियों की तरह एक और विधवा का जीवन मरुभूमि बन जाने से कोई क्षति नहीं! और दूसरे जो भी आपको छोटी समझें, अपने आगे तो आप कोई मामूली हैं नहीं।

सुमित्रा बोलीं—कहने की मुझे जुर्रत नहीं होती, शायद मैं आपको तंग ही करूँ। लेकिन—

—क्या कहना चाहती हैं, कहें। मुझसे आप जरा भी संकोच न

करें—हाँ, क्या नाम तो है भई तुम्हारा ? हाँ, वसंत !—वेणु बाबू ने कहा—भैया, बाहर मेरी गाड़ी खड़ी है, जरा उसके पास खड़े तो रहो। इन दिनों गाड़ी से बड़ी चोरियाँ होती हैं।

चालीस की उम्र हो गई थी, फिर भी वेणु बाबू के चहरे पर कुछ तरुणाई थी। सुमित्रा की ओर देखकर वे हँसे। वह हँसी उनके चेहरे पर स्वास्थ्य की आशा ले आई। बोले—मैं मल्लिक वंश का हूँ। कोई हमसे सहायता माँगे, हम उसके पहले ही अपना फर्ज अदा करते हैं। फिर आप मदद माँगे और न पायें, यह भी मुमकिन हो सकता है ? आपके लिए मेरी गाड़ी रही, घर रहा, यहाँ तक कि बैंक की पासवुक भी रही।

संतोष की साँस लेकर सुमित्रा बोली—आपके लिए चाय बना लाऊँ ?

—वेणु हँसे। चाय पीने लगिए तो गप्प का ताँता लग जाता है। इतने में घर के लोग आ जाएँगे। उन्हें शायद यह अच्छा न लगे।

सुमित्रा बोली—अपना अभिभावक मैं खुद हूँ।

वेणु बाबू बोले—जिस दिन मै यह जानूंगा कि अपना अभिभावक आप स्वयं है, मैं भी उसी दिन आकर आपके हाथ की चाय पी जाऊँगा। आज मैं इजाजत चाहता हूँ।

सुमित्रा बोलीं—मेरा अनुरोध याद रहेगा तो ?

—अनुरोध नहीं, आज्ञा ! वह मेरे जीवन का मंत्र होकर रहा ! कहते-कहते बेल्लिक बाबू किसी के आने से पहले ही वहाँ से चले गए।

पाँच

खटखटाने की आवाज से दरवाजा खोलकर नौकर ने पूछा—किनको चाहती हैं आप ?

मीरा ने पूछा—विमलाक्ष बाबू है ?

नौकर बोला—दोपहर को वे मरीज नहीं देखा करते। आप शाम को पाँच बजे आएँ।

मीरा बोली—मैं यह जानना चाहती हूँ कि वे घर हैं या नहीं ?

नौकर ने एड़ी से चोटी तक एक बार उसे देखा। धूप में मीरा का सुंदर चेहरा लाल हो रहा था। सामने की लटों के अंदर से पसीने की बूँदें कपाल पर आ पड़ी थी। नौकर ने कहा—वे घर ही हैं। भोजन कर रहे हैं।

—उन्हें मेरे आने की खबर कर दो।

नौकर आगा-पीछा करने लगा। बोला—देखिए, मालकिन ने ताकीद कर रखी है, दोपहर को कोई औरत डॉक्टर साहब से मिलने आएँ, तो···

मीरा ने पूछा—तो ?

—तो उसे अंदर न ले जाया जाए।

—क्यों ?

नौकर बोला—कुछ दिन पहले इसी तरह एक मुसलमान लड़की आयी थी। डरा-धमकाकर वह बहुत-से रुपये ले गई। इसीलिए···

मीरा ने कहा—तुम अपनी मालकिन से जाकर कहो, इस बार हिंदू लड़की आयी है, जिन्हें बकाया वसूलने में भी डर लगता है।

मालकिन शिवपुर गयी हैं, अपने मैके। आप जरा ठहरिए, मैं डॉक्टर साहब से पूछूँ ?

जरा ही देर बाद विमलाक्ष आया। अचानक सामने मीरा को देख-

कर वह उल्लसित हो उठा। बोला—ऐसी खुशकिस्मती अपनी? आओ-आओ, इतनी धूप में? लगता है, पैदल ही आयी हो!

मीरा बोली—तुम्हें खौफ तो नहीं हुआ?

—खौफ! तुम से? साथ और कोई है क्या? हुस्नबानू से मैं आज भी थोड़ा खौफ खाता हूँ।

—वाजिब है! मगर मैं तुम्हें भय दिखाकर रुपये वसूलने नहीं आयी हूँ।

विमलाक्ष ने कहा—छिः, तुम्हीं लोगों की कृपा से आज मैं अपने को खड़ा कर सका हूँ। तुम लोगों के बहुत रुपये लिये हैं मैंने। इस समय हर तरह से तुम्हारे काम आ सकता, तो धन्य ही होता। तुम यह न सोचो कि हुस्ना मुझे डराकर रुपये ले गई है। यह गलत खयाल है। मैं वह शख्स ही नहीं कि डर से सुपये निकालूँ। रुपये मैंने बड़े चाचा को प्रणामी में भेजे हैं। मेरे मन में यह भी नहीं आया कि मैंने कर्ज की वसूली की है। झंटू—शरबत ले आ।

मीरा बोली—शरबत रहने दो। पीकर भी मेरी प्यास नहीं मिटने की। मैं दूसरे काम से आयी हूँ।

—बताओ। दम-भर बाज़ न आऊँगा।

मीरा बोली—मेरा एक उपकार करोगे?

विमलाक्ष उत्साहित होकर बोला—सिर्फ सूखा उपकार! कभी तुम्हारी उँगली के इशारे पर मैं अपने जीवन की ही शक्ल बदल दे सकता था! याद नहीं है?

मीरा जरा हँसी। कहा—घर में तुम्हारी स्त्री के होते तुम यह उच्छ्वास प्रकट कर सकते!

—ऐसा न कहो। देवीजी ने आज तक तुम लोगों को कभी देखा नहीं है, पर तुम लोगों का सब-कुछ उन्हें मैंने कहा है। गरीब घर की लड़की, मुझसे जुड़कर आज वह ऊँचे चढ़ सकी है—इसमें तुम लोगों की सहायता का ही सबसे बड़ा हाथ है। अगर इस बात को वह न समझें, तो

समझूँगा कि वह छोटे घर की लड़की है ।

मीरा ने कहा—तुम्हारी स्त्री को मैंने देखा नहीं है, लेकिन उनके बारे में सुना है ।

अपनी बाँकी निगाह घुमाकर गद्‌गद कंठ से विमलाक्ष बोला—तुम मुझसे निःसंकोच बातें करो, मीरा । अगर रुपयों के लिए ही आयी हो, तो रुपये मैं दूँगा । चलो, हम अन्दर बैठकर बातें करें ।

मीरा आयी ही मजबूत बनकर थी, क्योंकि उसे फिक्र थी कहीं विमलाक्ष की लच्छेदार बातों में वह बह न जाए । बोली—आज रहने दो, बातें फिर कभी होंगी । हाँ, यह कह लूँ, मैं रुपयों के लिए नहीं आयी हूँ । रुपये तुम दोगे भी तो मैं लौटा दूँगी ।

विमलाक्ष बोला—लेकिन रुपयों के बिना तुम लोगों का काम कैसे चलेगा ? उस रोज हुस्ना हजार रुपये मुझसे ले गई है; नये सिरे से तुम्हें गिरस्ती बसानी है—उसके लिए उतने रुपयों की बिसात ही क्या !

मीरा बोली—मत्थे मढ़कर रुपये देने का तुम्हारा यह आग्रह कुछ नया-सा लग रहा है लेकिन !

विमलाक्ष बोला—तुम मुझे गलत न समझो मीरा ! हाजीपुर के जमींदार की लड़की उस मीरा, और यह जो दोपहर की चिलचिलाती धूप मे पाँव-पयादे आयी है, इस मीरा में बड़ा अन्तर है । वहाँ तुम्हें राज-पाट था, यहाँ तुम बेसहारे हो । यही सोचकर कह रहा हूँ ।

मीरा बोली—दया करोगे कि दान करोगे ?

दो में एक भी नहीं । यों कहो कि कर्ज अदा करने की कोशिश करूँगा ।

गला साफ करके मीरा ने कहा—हमारे बुरे दिन आये, यह जानने के बाद भी तुमने खत का जवाब नहीं दिया था, कर्ज चुकाने की बात तो दूर । और हुस्ना ने आकर जब तुम्हारी स्त्री के सामने तुम्हारी पुरानी प्रेम-कहानी कह देने की धमकी दी, तो तुमने आनन-फ़ानन में रुपये निकाल दिये !

उत्तेजित स्वर में विमलाक्ष बोला—जमाने के बाद तुमसे भेंट हुई है। जैसा चाहिए, तुम्हारा वैसा स्वागत-सत्कार नहीं कर पा रहा हूँ, यह मेरी बदकिस्मती है। लेकिन हुस्ना की बात तो मत ही करो। उसकी इस विजातीय विश्वासघातकता से अपनी स्त्री के आगे मेरा सर नीचा हुआ है।

छिः भैया!—मीरा बोली—तुम्हारी वे बुरी आदतें आज भी रह गई हैं। विजातीय विश्वासघातकता कहकर तुमने हुस्ना का तो अपमान किया, मगर अपनी गंदगी की तो तुमने नहीं सोची? तुमने कुछ भद्दी चिट्ठियाँ ही नहीं लिखीं, बल्कि तुम हुस्ना को लेकर पागलपन में इतना आगे बढ़ गए कि सोचकर भी रूह फ़ना हो जाती है।

विमलाक्ष बोला—तो क्या तुम यह कहना चाहती हो कि उसने पुरुष को लुभाया नहीं?

मीरा ने उस पर सीधी नजर डाली। साफ-साफ कहा—लुभाया तो शायद तुम्हें मैंने भी था? वरना तुम वैसी चिट्ठियाँ मुझे क्यों लिखते? शायद तुम्हें अब याद न हो कि उन खतों में कैसे-कैसे प्रस्ताव रहते थे तुम्हारे!

—उससे तुम्हारी तुलना नहीं हो सकती मीरा!

—हो सकती है। तुम्हारे लोभ के सामने हम दोनों समान थीं। तुम्हारी स्त्री मौजूद नहीं है, इसी से चर्चा छिड़ गई। वह होती तो काम की बातें करके ही चली जाती मैं। फिर भी कहती हूँ, तुम फिक्र न करो, तुम्हारी स्त्री के सामने मेरे मुँह से ऐसी बात न निकलेगी, जिससे तुम्हें अपमानित होना पड़े।

विमलाक्ष बोला—अपमान जो होना था, सो हो चुका। होने को मैं कितना ही बड़ा मशहूर डॉक्टर क्यों न हो जाऊँ, पत्नी के आगे मैं एक बदचलन के सिवाय कुछ नहीं।

मीरा बोली—इसके लिए भी डरने की कोई बात नहीं। यह अच्छा है कि स्त्री स्वामी का सच्चा परिचय जाने। वह तुम पर भरोसा करके

कभी भूल न करेंगी और तुम भी सदा अपने को सुधारने की चेष्टा किया करोगे। मगर आज एक बात बता दूं तुम्हें! हुस्ना ने तुम्हें कभी लुभाया नही; हँसी-मजाक करने से लोभ दिखाना नहीं होता। उसका नाचना-गाना तुम्हें अच्छा लगता था, हमें भी अच्छा लगता था। लेकिन नाच-गाकर क्या वह तुम्हें आकर्षित किया करती थी? आखिर तुम नाबालिग तो नहीं थे। हुस्ना ने एकाध बार तुम्हें सावधान भी तो कर दिया था?

विमलाक्ष ने कहा—अगर मैं तुम लोगों की इतनी ही उपेक्षा का पात्र था, तो तुम लोगों ने मेरी चिट्ठियाँ क्यों रख छोड़ी है?

मीरा हँसी। बोली—उसका तुम्हें खौफ है, क्यों?

—भय न हो चाहे, कुछ सकपकहाट है।

—शायद यह सोचते हो, कहीं हम वे चिट्ठियाँ तुम्हारी स्त्री के हाथों न सौंप दें?

विमलाक्ष बोला—यकीन मानो, उस रोज हुस्ना का जैसा मिज़ाज देखा मैंने, सचमुच ही सोच में पड़ गया। वे चिट्ठियाँ कभी मेरी स्त्री के हाथ लग जाएँ तो आत्महत्या करने के सिवाय दूसरा चारा न रहेगा। मगर यह भी खयाल रहे, कभी अगर मैं आत्महत्या करूँ, तो उससे तुम लोगों का भी गौरव नहीं बढ़ेगा।

मीरा के मन में दबा उल्लास जग उठा था। लेकिन अपने कंठ-स्वर को यथासंभव शांत रखकर बोली—हुस्ना का तो तुम्हें पता है, उस बेचारी के संग्रह नाम की कोई चीज नही। इसीलिए चिट्ठियाँ उसने मेरे ही पास रख छोड़ी हैं।

—तुम्हारे पास? सारी ही चिट्ठियाँ?—बिमलाक्ष की दोनों आँखें दपदपाकर जलने लगीं।

मीरा बोली—हाँ, सारी ही चिट्ठियाँ। वे चिट्ठियाँ अब तुम्हें लौटा देने की सोच रही हूँ।

—लौटा दोगी? सच, लौटा दोगी?

—हाँ, लौटा दूँगी। अपने पागलपन की चिट्ठियाँ तुम आप ही

रखना।

असीम कृतज्ञता-भरे स्वर में विमलाक्ष बोला—मुझे सदा से यह भरोसा रहा कि तुम्हारे चलते कभी मुझे मुसीबत में नहीं पड़ना पड़ेगा। यह भी जानता था कि मैं जितना नीच चाहे होऊँ, कम-से-कम तुम कभी उतना नीचे न उतरोगी। वे चिट्ठियाँ मुझे शीघ्र ही मिल जाएँगी?

अधीर आग्रह से विमलाक्ष भीतर-ही-भीतर उमड़ पड़ा।

मीरा बोली—शीघ्र ही मिलेंगी, लेकिन एक शर्त है।

—शर्त क्या है, कहो। कहना फिजूल है कि तुम्हारी जो भी शर्त होगी मान जाऊँगा मैं।—आवेग से आलोड़ित होकर विमलाक्ष ने कहा—उन चिट्ठियों को अपनी मुट्ठी में पाये बिना सदा के लिए मेरा सामाजिक सम्मान, ससुराल का समादर, मेरी यश-प्रतिष्ठा, स्त्री के आगे आत्मसम्मान—अपनी इज्जत, अपना भविष्य—सब-कुछ दूसरों के हाथों सदा डगमग रहेगा—यह बात मैं साफ कबूल करता हूँ। मीरा, कहो, तुम्हारी शर्त क्या है?

मीरा मन-ही-मन फिर हँसी। बोली—शर्त मेरी निहायत ही मामूली-सी है। तुम्हें तो खूब पता है, कलकत्ते में हम लोगों का कोई नहीं है अपना। यह भी जानते हो कि बाबूजी का हाथ कितना खुला रहा है! उनके बक्स के रुपयों के बंडल को बैंक तक जाने का कभी सौभाग्य न हुआ। लिहाजा आज हमारी यह दशा है!

विमलाक्ष बोला—और यह भी जानता हूँ मैं कि उनके सभी बक्सों की तालियाँ हुस्ना के जिम्मे रहती थीं।

विमलाक्ष की बात में एक छोटी किस्म का संदेह था। मीरा ने तत्काल ही कहा—इसकी वजह यह थी कि वही हमारे घर की लछमी थी।

विमलाक्ष ने अपने को सँभालकर कहा—रहने भी दो। उसके बाद? अपनी शर्त बताओ!

बता तो दिया—अपनी शर्त बड़ी मामूली है। पिताजी के कोई लड़का नहीं, इसलिए सारा कुछ मुझे ही देखना-सुनना है। जैसे भी हो, मुझे

अपने पाँवों पर खड़ा होना पड़ेगा।

विमलाक्ष बोला—तुम तो बी० ए० पास हो। फिक्र क्या है ?

मीरा बोली—आज किसी बी० ए० पास की कीमत क्या रही ?

—लड़कियों के लिए बेशक कीमत है !

—यानी लड़कियों के स्कूल मे मास्टरी की कहना चाहते हो ? वह मुझसे न हो सकेगी। मैंने सुना, सरकार में तुम्हारी पैठ है—इलाज के लिए बहुतों के यहाँ आते-जाते हो—

विमलाक्ष हँसा। बोला—तुमने गलत नहीं सुना है। कोई-कोई बड़े अधिकारी छिपकर आया करते है घिनौनी बीमारी के इलाज के लिए। और बहुतेरों के प्रणय के कलक भी धोने पड़ते है। तुम तो शायद कोई अच्छी-सी नौकरी चाहती हो, है न ?

मीरा बोली—अच्छी नौकरी नसीब में होगी ?

विमलाक्ष ने एक बार मीरा की ओर ताका। आँखों की वह भाषा केवल औरतें ही समझ सकती है। मीरा ने मुँह झुका लिया। रुद्ध निःश्वास छोड़कर विमलाक्ष बोला—उम्मीद तो करता हूँ, कोई अच्छी-सी नौकरी तुम्हें दिला सकूँगा। लेकिन मेरी भी एक शर्त है।

—क्या ?

विमलाक्ष हँसा। कहा—सुना है, किसी सिनेमा-निर्देशक के कब्जे में कोई खूबसूरत अभिनेत्री होती है, तो बहुत-सी कंपनियों में उसकी खासी पूछ बढ़ जाती है। पहले तुम मुझे वचन दो कि तुम मेरी बातों के खिलाफ न होगी कभी।

—वचन देती हूँ।

—यह भी वचन दो कि मेरे सहारे अपनी स्थिति बनाकर तुम किसी और के तंबू में नहीं चल दोगी।

अचानक मीरा को हिरण्य की याद आ गई। लेकिन जबरन उसे दबाकर बोली—दिया वचन।

विमलाक्ष ने पूछा—तुम्हारी माँग में सिंदूर नहीं है ?

—सिंदूर ! मीरा बोली—सिंदूर मेरी माँग में नही चढ़ा !

—मतलब ? तुम्हारा पति हिरण ?

मीरा बोली—और आध घण्टा समय नहीं मिल सका, इसलिए वे संपूर्णतया पति नही बन पाये ।

—समझ गया, अगलग्गी जो हुई, सो सब भाग निकले । मगर हिरण क्या अपना फर्ज अदा नही करेगा ?

मीरा बोली—माँग में सिंदूर होता, तो अपना फर्ज वे जरूर अदा करते । मै समझ रही हूँ, सारी बातें तुम पहले ही समझ लेना चाहते हो । जो हो, हिरण के कर्त्तव्य की तुम चर्चा ही न करो । जिस आदमी ने कविता लिखकर और साहित्य-चर्चा करके ही सारा समय निकाला, उससे मुझे कर्त्तव्य की आशा नही । मैं उसे कवि समझती हूँ, आदमी नहो ।

लेकिन तुम पर उसका हक है मीरा । तुम उसे यदि अपना पति न मानो तो बड़े चाचा की सामाजिक प्रतिष्ठा पर आँच आएगी ।

—ये सब बातें रहने ही दो भैया—मीरा ने कहा—मै काम करना चाहती हूँ, चाहती हूँ घर के बाहर खड़ी हो सकूँ, मैं भूल जाना चाहती हूँ कि मैं जमींदार की लड़की हूँ । जिनके दिन कष्टों में कटते हैं, सुबह-शाम झगड़कर जिनकी रोटियाँ जुटती हैं, मैं उन लोगों में शामिल होना चाहती हूँ । यह सुयोग मेरे लिए कर दोगे तुम ?

विमलाक्ष बोला—नौकरी में जुटा दूँगा मीरा, जल्दी ही ।

तो आज अब मैं चलूँ । फिर कब भेंट होती है ?—मीरा ने जानना चाहा ।

नौकर कुछ दूरी पर था । उसकी तरफ एक बार देखकर विमलाक्ष ने अंग्रेज़ी में कहा—मुझसे तुम मेरे यहाँ न मिलो, यही अच्छा है । धरमतल्ले के अपने चेम्बर में मैं सबेरे दस से ग्यारह और शाम को छः से आठ तक रहता हूँ ।

मीरा बोली—वहाँ मुझे कितने दिनों तक हाज़िरी बजानी पड़ेगी ?

विमलाक्ष बोला—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि पंद्रह दिन से ज्यादा समय

न लूँगा । हफ्ते-भर बाद एक बार वहाँ आकर पूछ जाना ।

दोनों बाहर निकल आए। मीरा बोली—तुम्हारा क्या यह ख़याल है कि तुम्हारी स्त्री मेरा यहाँ आना-जाना पसंद न करेंगी ?

विमलाक्ष हँस पड़ा । मजाक में ही अपने मन की बात कह बैठा—आज भी जिसे देखकर स्वामी चंचल हो उठता है, उसे देखकर स्त्री भी चंचल हो सकती है। हाँ, दोनों की चंचलता की सूरत एक जरूर नहीं है । यह लो ।

उसने अपनी जेब से चेम्बर के नाम-पता का एक कार्ड निकालकर मीरा को दिया। मीरा उसे घुमा-फिराकर देखती हुई बोली—घर से बाहर मैं काम करने लगूँ तो कोई आफत तो नहीं आएगी मुझ पर !

—कैसी आफत ?

—किस आफत की बात औरतों के जी में पहले जग सकती है ?

विमलाक्ष फिर हँस पड़ा। मीरा रास्ते में उतर पड़ी । वह उसी तरफ ताकता रहा। उस ललित लावण्य पर उसकी लोलुप दृष्टि लगी थी। यह वही राजकुमारी है, कुछ दिन पहले जिसे आकाशचुंबी आत्माभिमान था । यह वह परी है, जिसके व्यंग-बाण हर कदम पर विमलाक्ष को बेपानी करते थे। यह वही ऊँचे महलों में रहनेवाली सम्राज्ञी है, जिसके चरणों तक पहुँचने के लिए अनगिनती पहरेदारों को झुक-झुककर सलाम बजाना पड़ता था। विमलाक्ष की हँसी में विजय के गर्व की आभा झलमलाने लगी।

मीरा ने पीछे पलटकर नहीं देखा। नये पैरों वह रास्ते पर जिधर खुशी, चल पड़ी। याद आ गया, हाजीपुर के ठाकुर के पोखरे के बाँध पर फुलवारी दूर तक फैली है। उसके पाँवों में खुशनुमा काम वाले जूते हैं। शिवालय में रह-रहकर घण्टों की ध्वनि। घण्टे की वह ध्वनि गीत की मूर्च्छना जैसी खेतों-बँहारों को पार कर दिगंत तक फैल जाती, जिधर से सफेद हंसों की पाँत अपने उजले डैने फैलाकर आती। उसके परे पृथ्वी नहीं होती, नहीं होता सभ्यता का कोई संवाद। लोगों को दुःख है,

ऐसा असम्मान हुस्ना कभी बरदाश्त नही करती। आज की बात कभी उसके कानों तक न पहुँच सके।

दो-एक बार राह भूल-भटककर जब मीरा घर पहुँची, तब भी साँझ को देर थी। मर्द राह भूल बैठें तो निरुद्देश्य चल पड़ते हैं और औरतें भटक भी जाती हैं तो कभी घर लौट आती हैं। घर पुरुष बनाते है, सजाती हैं उसे औरतें। औरतें हैं घरनी, मर्द घरवाले। एक अंतर्मुखी है दूसरा बहिर्मुखी। एक हाथ में मंगल कँगन पहने बाहर से घर मे आती है और दूसरा पाँवों की बेड़ी तोड़कर घर से बाहर जाता है। मीरा को ठीक उलटा बनना है, नही तो उसका काम नही चल सकता। आज उसे कँगना सहेजकर और बंधन उतारकर निकलना पड़ रहा है।

दरवाजे पर पहुँचते ही अन्दर नजर आया, एक चटाई डाले हिरण किसी ध्यान में एकबारगी निमग्न है। शायद हो कि किसी कविता के दो पदों की नूपुर-ध्वनि उसके प्राणों में गूंज रही हो। अचानक वहाँ मीरा आ खड़ी हुई। हिरण ने उसकी ओर ताका। रूप के साथ ऐसी कर्कश कठिनता सहज ही नही दिखाई पड़ती।

मीरा ने कहा—आपका मुँह देखकर निकलती तो शायद मेरा काम नहीं होता, लेकिन आपका मुँह देखकर घर पहुँच रही हूँ, हो सकता है काम बन जाए। जगह मिले कोई।

हिरण ने कहा—औरतें कमाकर खिलाएँ तो युग की बहुत सारी समस्याओं का समाधान हो जाए। कुछ दिनों तक हम लोगों को कम-से-कम आराम तो मिले।

अन्दर जाने से पहले मीरा बोली—यानी आप घर छोड़कर कहीं जाना नहीं चाहते ?

—जाऊँ भी कैसे। देख लो, पहरेदारी करनी पड़ रही है। हुस्ना के साथ चाचा घूमने गये हैं, अत्रि को लेकर छोटी चाची भी साथ लग गई हैं और

ठाकुर चल दिया है बाजार। हुस्ना का हुक्म है, खबरदार जो हिले भी !

--और बसंत !

—वह कोई घर-जमाई तो है नहीं। वह भी घूमने निकल पड़ा है। फिर वह नौकर ठहरा आधुनिक युग का। डाइंग-क्लिनिंग में अपने कपड़े धुलवाता है—सिनेमा भी देखता है।

—हुँ।—मीरा अन्दर चली गई।

दसेक मिनट बाद वह फिर लौट आई। बोली—अनादर तो आप खूब झेल लेते है !

हिरण बोला—आप से भी झिलने लगेगी—ज्यादा देर नहीं है।

मीरा चौंक उठी। कहा—आपने यह कैसे जाना ?

—हाथ की रेखा से। कहावत है, घर का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का सिद्ध।—हिरण ने कहा—क्या खयाल है आपका, कलकत्ते में आप-को बड़ी इज्जत मिल रही है ?

मीरा बोली—इज्जत की अब चाह नहीं रही, अब प्रतिष्ठा हो सके, तो अपना काम चल जाएगा।

हिरण हँसकर बोला— प्रतिष्ठा के लिए कही मान गँवाना पड़े तो ?

मीरा फिर जैसे कुछ सकपका गई। उसे विमलाक्ष के चेहरे पर क्रूर उल्लास की थिरकती हुई छाया याद आ गई। बोली—आखिर आपको संदेह क्यों है ?

हिरण बोला—आपके भविष्य के बारे में मुझे कोई संदेह नहीं है। वह पानी-सा निर्मल है। लेकिन जाने से पहले अगर आपकी प्रतिष्ठा की शक्ल देख लेता, तो खुशी होती मुझे।

—तो आप कहीं जा रहे हैं ?

—हाँ।

—कहाँ जा रहे हैं ?

हिरण ने कहा—जो बैल गाड़ी नहीं खींच सकता, उसे जगह मिलती है पिंजरापोल में !

मीरा जरा उत्तेजित होकर बोली—आप लेकिन उस गौरव के भी हकदार नहीं, क्योंकि गाड़ी आपने कभी भी नहीं खींची।

—निस्संदेह यह सत्य है। लेकिन इसमें दोष किसका है? गाड़ी खींचने किन्होंने नहीं दी?—हिरण ने नजर उठाकर देखा।

मीरा आज तैयार बैठी थी। बोली—निकम्मों की यही शिकायत होती है। लोग एम० ए० पास करके आदमी बनने की कोशिश करते हैं, आप एम० ए० पास करके घर-जमाई बनने की ताक में बैठे रहे।

—मैं बैठा था या मुझे एक निहायत खूबसूरत पाताल-कन्या के लिए बैठाकर रखा गया था?

मीरा बोली—पाताल-कन्या! इस मजाक का मतलब?

मजाक नहीं।—हिरण बोला—आज मैं उसी पाताल-कन्या के अंध-आकर्षण में अतल में जो आ पड़ा हूँ। आदमी शायद मैं बन सकता था, पर रास्ते में पहाड़ की तरह अड़ा खड़ा रहा लोभ।

मीरा बोली—उस लोभ के शिकंजे से विमलाक्ष ने पिंड नहीं छुड़ाया? उसके आचरण में भद्दापन चाहे जितना हो, उसके दम की तारीफ करनी ही पड़ती है।

हिरण हँसा। बोला—छुटपन से ही उसे अगर कह दिया गया होता कि तुम हाजीपुर के घर-जमाई होगे, तो उसका भी इहकाल-परकाल निर्मल हो जाता! मैं कहता हूँ, यह पचड़ा यहीं रहे। मुझे यकीन है, हम अगर फिर से हाजीपुर की उस नवाबी व्यवस्था में पहुँच भी सकें, फिर भी इस मसले का कोई हल न हो सकेगा।

मीरा बोली—आपको अगर वह राज दिया जाए?

—नहीं लूँगा।

—राजकुमारी?

—वह भी नहीं लूँगा।

—राजकुमारी पर आखिर ऐसी अरुचि क्यों?

हिरण ने कहा—अरुचि इसलिए कि वह झूठ है। दरअसल राजकुमारी

औरत के सिवाय और कुछ नहीं होती। राजकुमारी शब्द केवल उसका स्वाँग है। वह ब्याह वाले घर की औरतों की कानाफूसी के काम आता है, मर्दों के नही।

मीरा बोली—तो आप यह अरुचि लेकर ही चले जा रहे हैं?

—बेशक!

—लेकिन मन में गलत खयाल लिये न जाएँ। यह याद रहे कि आपसे कभी कोई सम्बन्ध ही नहीं हुआ।

गरदन घुमाकर हिरण बोला—ऐसा लग रहा है कि आप जैसे कोई मुक्ति-पत्र चाह रही हैं।

मीरा बोली—ऐसा बाजदावा रहे, तो आपको भी आफियत होगी!

—मसलन?

—आप और कहीं ब्याह कर सकेंगे।

हिरण ने कहा—आखिर सोचती क्या हैं आप? ब्याह न हो सकेगा तो वाणप्रस्थी होकर मैं जंगल की राह लूँगा?

—यह सौभाग्य भी कभी मिलेगा हमें?—यह कहकर मीरा मुस्कराती हुई अन्दर चली गई।

अपनी आवाज ऊँची करके हिरण बोला—लेकिन मेरी भी सुनती जाएँ, मैं जा रहा हूँ। मित्रों को खबर है, जाने की मेरी सारी तैयारियाँ हो चुकी है।

मीरा हँसती हुई फिर लौट आई। बोली—जो इस तरह चिल्ला-कर मुहल्ले-भर को जताकर जाता है, वह फिर जल्दी ही लौट आता है।

हिरण ने शांत गले से कहा—आप क्या यह चाहती हैं कि मैं यहाँ फिर कभी लौटकर न आऊँ?

मीरा ज़रा रुक गई। बाद में कहा—आप मेरी आँखों के आगे होंगे, तो मैं खड़ी होने की कूवत भी ढूंढ़े न पाऊँगी।

—मैं क्या आपकी राह का रोड़ा हूँ?

—जी। औरत की जिन्दगी में इससे बड़ा राह का रोड़ा और नहीं

होता ।

—तो यह बात अब तक आपने चाचाजी को बतायी क्यों नहीं थी ?

मीरा बोली—बताने की जरूरत नही पड़ी थी । तब दुनिया बड़ी छोटी थी । उन्होंने सोने की जंजीर से आपको बाँध रखा था, मुझे भी । आज वह जंजीर टूट गई है । अब तमाम जिदगी दानों की टोह में भटकना है ।

हिरण बोला—मुझे इसका रत्ती-भर भी गम नही । लेकिन यह सजा आप लोगों की प्राप्य थी ।

—आखिर हमारा कसूर ?

—कसूर है । अँधों की तरह महज उपभोग करते रहे, परन्तु जो लोग उपभोग के उपकरण जुटाते रहे, उनकी तरफ कभी आपकी निगाहें नहीं गई । आपने उसे कही अधिक पाया, जितना कि आपका प्राप्य था, मगर पीछे मुड़कर यह देखना गवारा नहीं किया कि आपके भंडार को भर किन लोगों ने दिया । बेफिक्री का अनाज आदमी को किस कदर मूढ़ बना छोड़ता है, भूले भी कभी सोचा था ?

मीरा बोली—पिताजी के खिलाफ भी आपकी यही शिकायत है ?

हिरण बोला—यहाँ उनकी नहीं, जमींदार की बात हो रही है । कभी ऐसा भी सुना है कि कोई जमीदार भूखा मर गया ? लेकिन यह जरूर सुना होगा कि जिनका जीवन खेतों में ही कटता है, उनमे से वहुतेरे एक मुट्ठी अन्न बिना प्राण गँवाते हैं । आपकी निगाहें नीचे की तरफ न थीं, आपके पैरों में कभी धूल-माटी के दाग नहीं लगे, इसीलिए आज आपकी ऐसी लांछना है । आपके ज्ञान के वगल में थी मूढ़ता, विद्या से मिली हुई थी स्वार्थ-बुद्धि, दया के नीचे थी अवज्ञा, दान के साथ था अहंकार । हर एक की जबान से एक ही बात सुनता आया हूँ—हम प्रेम बाँटते हैं, किन्तु वे दिखाते हैं भय । हम विरोध नहीं करते, फिर भी वे विवाद खड़ा करते हैं । हम भद्र जीवन बिताना चाहते हैं, मगर वे चैन

नहीं लेने देते । यही शिकायत है न आपकी ?

मीरा बोली—यह बाल की खाल खींचना हुआ ।

—यही वाकया है । आज से डेढ़ सौ साल पहले अंग्रेजों से काना-फूसी करके स्वार्थ की साजिश किन्होंने की थी ? व्यवस्था को कायम किन्होंने रखा था ? निचले स्तर के लोगों के कंधो पर पाँव रखकर अपनी गरदन किन लोगों ने ऊँची रखी थी ? आज अगर उसका प्रतिफल मिला है तो रोना-धोना नहीं जँचता । आप हजारों-हजार, लाखों-लाख की तादाद में भाग आए है । लेकिन जो भले लोग नहीं हैं, बड़े लोग नहीं हैं, मध्यवित्त नहीं हैं, शिक्षित नहीं है, महत्त्वाकांक्षी नहीं,—वे आखिर क्यों नही भागे ? उन्हें आप छोड़ क्यों आए ? वे अपनी माटी को दाँतों से पकड़े रह क्यो गए ? चाचाजी ने इसका कोई कारण सोच देखा है क्या ?

—आपने सोचा है ?

—हाँ, सोचा है । दरअसल वर्ग भाग आया है, जाति नहीं भागी । यह वही वर्ग है, जिसने अंग्रेजों से गठबंधन करके बृहत्तर जाति को अपनी शिक्षा-दीक्षा की सीमा-रेखा के बाहर रखा था । कहते है, क्या तो उन्नीसवीं सदी में इन्होंने ज्ञान, विद्या, साहित्य, संस्कृति के क्षेत्र में भारत का मुँह उज्ज्वल किया था ? आपने सोचा है कि जाति की उन्नति नही हुई थी, उन्नति हुई थी वर्ग-विशेष के लिखे-पढ़े लोगों की ! अंग्रेजों के आकर्षण से उन लोगों ने गाँवों को विच्छिन्न करके समग्र जाति को पानी में बहाकर शहरों का निर्माण किया था । उनके हाथों सारी जाति का नहीं, वर्ग-विशेष का कल्याण-साधन हुआ था । उसी वर्ग का नाम है शिक्षित समाज, उन्ही को कहते हैं सम्भ्रांत लोग, भद्र सम्प्रदाय । उन्ही के कब्जे में थे विश्वविद्यालय, छापाखाना, अहिन-अदालत, नौकरी-चाकरी—उन्होंने ही अंग्रेजों की मदद करके उनके सौदागरी दफ्तरों को भर दिया था । जात कहाँ ? कहाँ रहे थे करोड़ों-करोड़ लोग ? इस सम्भ्रांत वर्ग की माया त्यागकर किसी बड़े डॉक्टर ने किसी अँधेरे गाँव में कभी बसेरा बाँधा ? कोई बड़ा विद्वान किसी दीन-हीन किसान के झोंपड़े में जाकर बैठा ? ऐसा

भी कभी सुनने को मिला आपको कि फलाँ न्यायाधीश या अमुक राय-बहादुर ने किसी मामूली गाँव में जाकर आम लोगों के साथ बैठकर उपदेश दिया है ?

मीरा बोली—उत्सव-त्यौहारों के समय गाँवों में कपड़े बाँटे जाते हैं, आपको नही पता है ?

हिरण बोला—पता है । लेकिन वह एक घिनौना दृश्य है, क्योंकि वह अहंकार का परिचय है । भूखे कुत्तों के आगे माँस की बोटियाँ फेंकने से यह नहीं कहा जा सकता कि आप दाता कर्ण हैं ! वह अपने समारोह का प्रचार करना है, अपने वैभव के अभिमान को लोगों को जताना है । यह उदारता कुत्सित मनोवृत्ति की देन है । यह मध्यवित्त मनोवृत्ति है—इसी को कहते हैं, अपना बड़प्पन दिखाकर गरीबों के अचरज को जगाए रखना । मगर जो सच्ची बात है, वह सुनिए—जिसे हम भद्र समाज कहते हैं, वास्तव में देश की मिट्टी से उसका कोई संपर्क नही था । उन लोगों ने ज्ञान को अपने ही बीच बाँटा, अपनी ही सुविधा के हिसाब से शिक्षा की व्यवस्था की, अपने स्वार्थों को कायम रखने के लिए ही अंग्रेजों से मिलकर नियम-कानूनों को बनाया । लेकिन इसकी भी खोज-खबर रखी है कि इसका रसद किन लोगों ने जुगाया, विलास के उपकरण किन्होंने जुटाये ? उनकी जीवन-यात्रा देखी है आपने ? दो सौ साल इस तरह झेलते रहने के बाद आज अगर उन्होने अपना सर उठाया है, तो कौनसा बड़ा अपराध किया? अपनी भूमि को छोड़कर आने से पहले ये जमींदार, भद्र समाज के ये लोग जरा थमककर रुक नहीं सके ? मुँह से एक बार भी यह कहते न बना कि अब तक हम तुमसे लेते आए हैं—आज तुम्हें लौटाए दे रहे हैं ? आज तक हम तुम्हें धन, मान, ज्ञान, विद्या, ऐश्वर्य से वंचित करते आए हैं—आज घुटने टेककर उस अपराध के लिए क्षमा चाहते हैं ? एक बार भी मुँह से यह उच्चारण नहीं कर सके ? इतने दिनों के अपराध ने जिनकी रीढ़ में घुन लगा रखा है, आज इतनी बड़ी चोट खाकर खड़े रह सकने की शक्ति उनमें कहाँ ? हम मनुष्य से

मनुष्य को मिला नहीं सके, क्या इसीलिए उन्हें बर्बर कहकर गालियाँ देंगे ?

बाहर अत्रि के कंठ की आवाज़ सुनायी पड़ी। सब आ गए। साँझ कब निकल गई, उन्हें खबर ही न रही। ठाकुर ने आकर रसोई चढ़ा दी, वसंत रोशनी जलाकर रख गया—उन्हें जरा भी होश न रहा। हुस्ना की ऊँची आवाज़ सुनकर दोनों रुक गए।

अत्रि दौड़ा-दौड़ा आया। सुमित्रा आते ही पहले अपने कमरे की तरफ चली गई। बड़े चाचा का हाथ पकड़कर हुस्ना धीरे-धीरे उन्हे उनके कमरे में पहुँचा आई।

बीच में खड़ी होकर हुस्ना ने एक बार इसके फिर उसके मुँह की ओर ताका। उसके बाद बोली—तुम्हें हो क्या गया है ? आँखों में बन्धुता की निशानी तक नही। माजरा क्या है ?

हिरण बोला—मैं तुम्हारी भूमिका में अभिनय कर रहा था।

हुस्ना बोली—इमदाद अली की बेटी की भूमिका बड़ी सख्त है, जमाई ! इधर आओ, सुनो। जरूरी बात है।

दोनों का हाथ पकड़कर हुस्ना उन्हें बाहर के कमरे की तरफ ले गई। वहाँ देखा, अत्रि का मास्टर आ पहुँचा है। बोली—मास्टर साहब, कृपा करके आप बगल के कमरे में चले जाइए। वसंत, अत्रि को उस कमरे में पहुँचा दे।

मास्टर साहब वहीं चले गए। हुस्ना की बात उठायी नहीं जा सकती। उसके आगे किसी के व्यक्ति-स्वातंत्रय की बात ही नहीं उठती। तीनों एक तख्त पर बैठ गए। बीच में बैठी हुस्ना।

मीरा ने पूछा—आज कहाँ तक निकल गई थी ?

हुस्ना ने कहा—विक्टोरिया मेमोरियल। मगर चाचा से बातचीत की दौड़ बड़ी दूर तक रही। हाँ, यह तो कहो, चाचीजी ऐसी अनमनी क्यों रहीं ? क्या हुआ है ?

हिरण बोला—जिस चर्चा को हम जानकर दबा रखते हैं, तुम खोद-

खोदकर उभारती क्यों हो ?

—यानी ?

मीरा बोली—चाची के जी में चैन नहीं है।

हुस्ना बोली—और हमें चैन है, क्यों ?

—अत्रि के भविष्य की उन्हें बड़ी चिंता रहती है।

हुस्ना धीमी आवाज में बोली—लेकिन मेरी ओट लेकर उन्होंने चाचाजी को जो कुछ कहा, उसमें और चाहे जो कुछ भी हो, अत्रि के भविष्य की तो बू भी नहीं।

मीरा को माजरे का पता था, इसलिए वह चुप हो रही। सुमित्रा के मन के जबरदस्त असंतोष की शक्ल जब-तब जाहिर होने लगी है। स्वामी के अनाचार को वह बरदाश्त करती आई है, लेकिन जेठ के अविचार को वह हरगिज नहीं सहना चाहती। उन्हें उम्मीद है, आकांक्षा है, भरोसा है। ससुराल पर उनका जो स्वाभाविक दावा है और जमीन-जायदाद पर जो न्यायसंगत हक है, उसे छोड़कर वे टस-से-मस होने को तैयार नहीं। वे हाजीपुर लौट जाना चाहती है और उनका विश्वास है, जाते ही उनकी रिआया उन्हें सिर-आँखों पर उठा लेगी।

हिरण बोला—बेजा क्या है! चाची चलें। कहीं मेरे नसीब में नायबी जुट जाए!

हुस्ना बोली—सो नहीं होने का। वह तो गुड़ में बालू समझो। वह अकेली ही जाना चाहती हैं।

—वही सही। न हो तो मैं वहाँ के मंदिर का पुजारी बनूंगा। यह तो अपना जाति पेशा है।

हुस्ना ने कहा—अत्रि के सिवाय वे किसी को भी साथ नहीं ले जाएँगी। तुम लोग दूसरी जमात के हो।

मीरा अब तक चुप सुन रही थी। बोली—इस पर बाबूजी की क्या राय है, मालूम हुई ?

—बड़े चाचा ? हुस्ना बोली—उन्होंने मेरी तरफ उंगली का इशारा

करके कहा, चिरकौमार्य-व्रत पालन करनेवाली हुस्ना से राय-मशविरा करके अगर वहाँ लौटना तय कर सको, तो मुझे कोई एतराज़ नहीं बहू !

—बाबूजी क्या खुद भी वहाँ लौटना चाहते हैं ?

हुस्ना बोली—तू पगली हो गई है। कम-से-कम जब तक चाँद-सूरज कायम हैं, तब तक तो नहीं।

—रुको जरा—हिरण ने भौं सिकोड़कर कहा—महीयसी हुस्नबानू की बायीं ओर जो दाँत टूटा शब्द का इज़ाफ़ा हुआ, वह क्या चाचा की उक्ति है ?

हुस्ना हँसी। बोली—जब पाँच पतियों के होते द्रौपदी सती-साध्वी हो सकती है, तो ढाई बार में ढाई पति को त्यागकर मैं चिरकुमारी क्यों नहीं हो सकती ?

मीरा बोली—बक-बक मत कर हुस्ना ! सतियों का आदर्श तेरे लिए मजाक है ?

हुस्ना ने कहा—मेरे लिए नहीं जीजी, उन हजारों-हजार औरतों के लिए, जो उसकी महिमा को समझ नही सकी और दूसरे समाज में पनाह लेकर लाखों-लाख मुसलमानों की तादाद जिन्होंने बढ़ायी ?

इतने में ठाकुर चाय ले आया। हिरण खुश होकर बोला—हुस्ना के साथ एक मजे की बात है कि वह केंचुआ खोदते हुए साँप निकालकर मारती है।

छः

तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ चाचा, मुझे बात को और सहज बनाकर कह लेने दो !—स्वार्थ के साथ स्वार्थपरता की लड़ाई और बर्बरता से विद्वेष

की। उन्हें तुमने विद्या के मंदिर में नहीं खींचा, आनंद के मेले में उन्हें जगह नही दी, उनके सामने ज्ञान का दीया नहीं जलाकर रखा। तुम लोगों की घृणा में है भय, उनकी घृणा में है श्रद्धा। लुटेरे अंग्रेज़ दो सौ वर्ष तक तुम्हें लूटते रहे, फिर भी तुमसे उनका अनुराग नही गया। और ये? वे बेचारे आते थे भूखे, बेसहारे भिखमंगों के वेश मे—आये थे तुम्हे प्यार करने, तुम्हारी शरण मे—तुम्हारी मिट्टी में आश्रय लेने। इन्होंने माटी खोदी, नाव की डाँड़ चलायी, करघा चलाया, घर बना दिए···सब किया, फिर भी तुम्हारा मन न जीत सके। तुमने ज्ञान और विद्या के लिए अंग्रेज़ों का लांछन सहा था, अपमान झेला था, किंतु इन्होने तुम्हारे मुँह का अन्न जुगाकर तुम्हारे घूरे पर बैठकर ज्ञान की भीख माँगी थी और तुमने घृणा से इन्हे दूर हटा दिया था! फिर आज तुम्हारे मुँह में यह अभिमान कैसा चाचा?

मोटर तेजी से चली जा रही थी। दक्खिन कलकत्ते को पार करके और भी दक्खिन की तरफ जा रही थी। बेला डूबने मे तब भी देर थी। ड्राइवर के पास बैठा था हिरण, पिछली सीट पर बीच में थी हुस्ना—अगल-बगल जीवेन्द्र और मीरा। मीरा अपलक बाहर की तरफ ताक रही थी। हिरण हुस्ना की बातों पर कान लगाए था। रास्ते के दोनों किनारे की झाड़ियाँ, बगीचे, गाँव छाया-चित्र-से पीछे खिसकते जा रहे थे। डूबती हुई बेला की रंगीन धूप हिरण के तांबे के रंग की घनी बिखरी लटों पर पड़ रही थी। एक तरफ उसकी बड़ी-बड़ी पलकें दिखाई पड़ रही थीं, गाल तक बिखर पड़ी थीं लटें, चेहरा साफ-सुथरा घुटा। संदेह नहीं कि हिरण चाचा के हाथों का घड़ा हुआ खिलौना था। जैसा रंग, वैसी ही तन्दुरुस्ती, वैसा ही रूप। मीरा गुस्से से कहा करती—खिलौने में कोई शक नही, मगर है कचकड़े का! न तो जान है, न वजन। अलमारी में सजाकर रखो, देखने में अच्छा लगेगा, लेकिन हास्यकर। ब्याह के उपहार में चल सकता है, रोज़मर्रा के व्यवहार में नहीं। समाज में उसे निकाला जा सकता है, सौ मुँह से उसके रूप की तारीफ की जा

सकती है, लेकिन कामों की दुनिया में यह खोटा सिक्का है—यह कच-कड़े का गुलाबी खिलौना !

मोटर तेजी में जा रही थी। जीवेन्द्र ध्यान से हुस्ना की बातें सुनते जा रहे थे। अब उन्होंने आवाज दी—बिटिया।

—क्या चाचा ?

—बेटी, तू मेरी शिकायत करती रही, मगर अपने मन को जहाँ तक मैं समझ सकता हूँ, उसमें अभिमान तो नहीं है ?

हँसकर हुस्ना बोली—है चाचा, है। अपने मन के रहस्य को तुम जानते भी हो ? तुम्हारे मन को तुमसे मै ज्यादा जानती हूँ। तुम डर-पोक की तरह ऐसे शायद भाग नही खड़े होते, तुम्हारे आत्माभिमान ने ही तुम्हें वैसा करने के लिए उकसाया। चाचा, असल में बड़े-बड़े सेनापति बड़े-बडे बर्बर होते है—उनका काम ही लोगों को मौत के घाट उतारना है। डकैत लोगो को मारने नही आते, आते है लूटने। उन्हें जब लूट में रोक मिलती है तभी वे खून करते है। मगर लूट करते कौन हैं ? और करते क्यों है ? विचार देखिए, दो दलों में जब-जब दंगा मचा है, तब-तब एक दल ने लूट मचायी है। अभाव से आई ईर्ष्या और ईर्ष्या से पैदा हुई हिंसकता ! तुम्हें न लूट मचानी पड़ी है, न मार-काट की नौबत आई है। शशांक गुप्त से लेकर केदार राय और बारह-भुइंया के मुल्क में तुम्हें प्रचुरता ही रही थी, कमी न थी, इसलिए लूट का लोभ भी न था। लेकिन उनके लिए लूट वाजिब है चाचा ! तुम लोग जब नगरों के राज्यपथ पर 'सुजला सुफला शस्य श्यामला' की कड़ी गाते चल रहे थे, तब वे गरीबी के कठिन शिकंजे में तड़प रहे थे, रोग-दुःख के शिकार थे, मलेरिया से मर रहे थे, प्यादों के जुल्मों से परेशान थे, महाजनों के जूतों के नीचे पिस रहे थे। तुम्हारे गीत का उनके लिए कोई अर्थ न था, तुम्हारी जगद्धात्री दुर्गा की षड़ैश्वर्यशालिनी मूर्ति उनकी आँखों में न आई, तुम्हारी जगत्-प्रसिद्ध विद्या-बुद्धि और विद्वत्ता उनके लिए हँसी की चीज थी। आप नाराज़ न हों चाचा, बंगाली संस्कृति का जो सिक्का आज

संसार के बाजार में चल पड़ा है वह उनकी है या आंग्ल-हिन्दू संस्कृति है ? बंगाली जाति का जिक्र आते ही तुम लिखे-पढ़े महज कुछ लाख भद्र पुरुषों की नहीं सोचते ? लेकिन यह तो जरूर पता है कि वे जाति नहीं, महज एक वर्ग है। जाति बहुत बड़ी है, तुम्हारे इस पढ़े-लिखे वर्ग से भी बड़ी और किवाड़-खिड़कियों से बंद विश्वविद्यालय से भी बड़ी—इसे क्या तुम नही मानते चाचा ? अपने जाति-अभिमान को लेकर भाग जाना तुम्हें कबूल है, किन्तु उस हिंसक बर्बरता के बीच खडे होकर यह कहना तुम्हें गवारा नहीं कि भई, मेरा सब-कुछ तुम लोग ले लो ! हमारी धन-दौलत, विद्या-बुद्धि—जो भी श्रेष्ठ है, जो भी महत् है, सब तुम ले लो। क्योंकि तुम अगर बड़े नहीं हो सकोगे, तो हम छोटे हो जाएंगे, तुम इन्सान न बन सकोगे तो मेरी मनुष्यता कौड़ी काम की न होगी।

—हुस्ना !—बड़े चाचा काँपती हुई आवाज में बोले—तू मुसलमान की लड़की है। तू ही बता, मैंने क्या कभी तुम लोगों पर अन्याय किया है ? शरमाने की बात नहीं, बेखटके बता बेटी।—कहकर उन्होंने हुस्ना का एक हाथ पकड़ लिया। मीरा और हिरण उत्कंठित हो उठे।

स्निग्ध-मधुर कंठ से हुस्ना बोली—हाँ, अन्याय तुमने किया है चाचा !

—किया है ?

—हाँ, कया है ! तुम्हारे-जैसे निर्मल और देव-चरित्र आदमी ने भी उन पर अन्याय किया है ! तुम लोगों ने मुस्लिम गणसंघ का नारा उठाया था—यह तुम्हारी भेद-नीति का ही एक पहलू था। किसी बहाने मुसलमानों के ज्यादा मत को अपनी ओर ला पाने से तुम्हें अपनी अधिकार-प्राप्ति में सहूलियत होती ! खिलाफ़त आन्दोलन से जो आपसी सद्भाव बढ़ा था उसे तोड़ा आखिर किसने चाचा ? उन लोगों को तुमने अपनी जमात में बुलाया था, घर में नहीं। बहुत हुआ तो उन्हें चाय की मेज पर गुंजाइश दी, सहभोज में शामिल नहीं किया। घर की बाहरी बैठक में उन्हें बटोरकर उनको अंग्रेजों के खिलाफ उभारा, अंतर से उन्हें अपना

आत्मीय नहीं माना।

सब चुप ! हुस्नबानू ने फिर कहा—चाचा, यह तो कहो, बंगाल की छाती को चीरकर उसके दो टुकड़े किन लोगों ने किये ? वोट देकर अंग्रेजों की कूटनीति को मदद किन्होंने पहुँचायी ? उन्हें सबक देने के खयाल से हजारों-हजार सरकारी और गैर-सरकारी कर्मचारियों को इशारे पर नौकरियों से किन्होंने अलग किया ? जच्चाखाने में ही उनके नवजात राष्ट्र की अकाल मृत्यु हो, यह झूठी आशा किन लोगों ने अपने मन में पाली थी ? अपने लिखे-पढ़े वर्ग की इस मूढ़ता का तुम प्रायश्चित्त कर सकते थे ! हजारों-हजार लोगों की प्रत्याशा तुम्हें घेरे खड़ी थी, सब तुम्हारा मुँह जोह रहे थे ! वे तुमसे जानना चाहते थे कि नवजात-राष्ट्र का निर्माण कैसे करें, समझना चाहा था कि इस नयी आजादी का अर्थ क्या है, इसका भविष्य क्या है, इसकी सांत्वना क्या है ? इच्छा के बल पर उन्होंने राष्ट्र को वसूल किया था, शक्ति के बल पर उसे कायम रखेंगे, यही उनका सपना था। तुम क्या उनकी इस शक्ति को जुगा नहीं सकते थे ? जाति, धर्म, संस्कार, स्वार्थ—सबको जलांजलि देकर तुम क्या उनके आनंद में मतवारे नहीं हो सकते थे ? तुम्हारे दर्शन, पुराण, महाकाव्य कहाँ गए ? तुमने किस तरह से गँवाया अपने भगवान् बुद्ध को, महाप्रभु चैतन्य को, महात्मा गांधी को ? सब त्यागकर देश की उन्नति के महान् लक्ष्य के नाते सर्वहारा संन्यासी की नाईं उनके दरवाजे पर जाकर यह कहते न बना कि हमें क्षमा कर दो ? यह लूट-खसोट न करो, आग मत लगाओ, खून-फसाद न करो, माँ की जात का अपमान मत करो। यह तुम न कह सके कि हम तुम्हारी सेवा करने आये हैं। जब तक मानवता के महान् आदर्श को लेकर विश्व के दरबार में तुम लोग सिर ऊँचा किये खड़े नहीं हो जाते, तब तक यह नैतिक जिम्मेदारी लिये हम तुम्हारे दरवाजे पर खड़े रहे ! नहीं कह सके यह ?

—हुस्ना !

—मुझे रुकने को न कहो चाचा ! अन्याय का प्रतिकार करने से डर

गए ! देश के चालीस करोड़ लोगों में से लेकिन एक आदमी इसे कबूल करने में भयभीत न हुआ । वह आदमी किसी देश, किसी जाति, किसी धर्म, किसी समाज का नहीं । हत्या, लूट, बर्बरता, हिंसा, दंगा, खूनी होली—किसी से वह नहीं डरा, धीरज नही खोया, इस सत्य को नहीं भूला ! जीवन के अन्तिम दिनों गीता, कुरान, बाइबिल, सबको हाथों में लेकर उसने प्रतिज्ञा की थी कि इसका प्रायश्चित करना पडेगा। तीस करोड़ हिंदुओं की विरक्ति और आक्रोश को देखते हुए उन्हे यह गीत गाना पड़ा था—"यदि तोर डाक शुने केउ ना आसे, तवे एकला चलो रे !" उन्हें यह मत्र लेना पड़ा था—"निर्भय करो प्रभु राजाराम !" और तुम लोग ? तुम लोगों ने शक्ति-लाभ के सपने को साकार देखने के लिए एक दिन जिसे महात्मा कहकर अपने माथे चढ़ाया था, शक्ति-लाभ के बाद ही उसके सत्य-पालन के डर से उसे गोली का शिकार बनाया !

जीवेन्द्र हँसमुख होकर ही बैठे रहे, उसकी बातों का कोई जवाब न दिया ।

मोटर एक मैदान के पास रुकी । पहले मीरा उतरी, फिर हिरण उतर पड़ा । बाद में जतन से जीवेन्द्र का हाथ पकड़कर हुस्ना उतरी । हुस्ना के चेहरे पर किसी उद्दीपन का आभास आ रहा था, लेकिन चूँकि चाचा आज कुछ विशेष कमजोर से दीख रहे थे, इसलिए किसी तरह की उत्तेजना दिखाना ठीक न था । सो हँसकर हुस्ना चुप ही रह गई थी ।

खुले मैदान में वे कुछ दूर तक निकल गए । बीच में जीवेन्द्र पूछ बैठे—मीरा, आज अत्रि नहीं आया ?

मीरा बोली—उसने आना चाहा था, मगर चाची की इच्छा थी कि वह घर ही रहकर लिखे-पढ़े ।

—सुना, हुस्ना ने उसके लिए मास्टर रखा है ?

मीरा के बदले हुस्ना ही बोल उठी—उसकी लिखाई-पढ़ाई के लिए चाची को बड़ी फिक्र हो आई है ।

जीवेन्द्र उसकी तरफ ताककर बोले—तो तेरी गिरस्ती खासी बड़ी

हो गई है, क्यों ?

हुस्ना बोली—बड़ी क्यों न हो, कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा।

—लेकिन इस तरह चलाएगी कै दिन तू ?

—जब तक तुम्हारा मन नहीं बदल जाता चाचा !

उसने कहा कुछ इस ढंग से कि सब-के-सब हँस पड़े। हुस्ना फिर बोली—अपना उत्तरदायित्व तुम सँभाल लोगे, मुझे छुट्टी मिल जाएगी।

जीवेन्द्र बोले—छुट्टी ! तुझे क्या छुट्टी मिलेगी बिटिया ! छुट्टी लेकर जायगी कहाँ ?

हुस्ना ने झट से उनके पाँवों की धूल ली। बोली—तुम्हारे पास से कभी छुट्टी नहीं लूँगी चाचा !

हिरण बोला—देखने से लगता है, आजकल आप पहले से कुछ अच्छे ही हैं।

जीवेन्द्र बोले—और कुछ नहीं, नौ महीने बेल्लिक के यहाँ रहा, रोज ही लगता कि मैं बहुत बीमार हूँ। वह बात अब नहीं रही।

मीरा बोली—बेल्लिक बाबू को डर था, इसीलिए आपको बार-बार कड़ी दवाइयाँ खानी पड़ीं।

हुस्ना ने कहा—तेज दवाइयों से बीमारी भागती तो है, लेकिन दूसरी बीमारियाँ पैदा होती है। आपकी दवा बंद है, इसीलिए आप अच्छे हैं।

जीविन्द्र बोले—मुझे चंगा करने को इस तरह जो तुली है, तेरी मंशा क्या है ?

हुस्ना बोली—है कुछ।

—कह देने में कोई रोक है ?

हुस्ना अबकी मीरा की तरफ देखकर जरा हँसी। बोली—नहीं, रोक क्या है। सोचती हूँ, किन कष्टों से तुमने हमें पढ़ाया-लिखाया, आखिर हमें कुछ करना चाहिए कि नहीं ?

—तुम लोग क्या करना चाहती हो, कुछ सोचा है ?

—यह तो हमारे सोचने की बात नही चाचा !

जीवेन्द्र कुछ क्षण चुप रहे। कहा, बनी-बनायी एक व्यवस्था थी, सो टूट गई और सिर्फ घर ही नहीं टूटे, हमारा दिल भी टूट गया। यह जमाना ही टूटने का है। आदत, विश्वास, साँचा, नियम—एक-एक कर सब टूटे। चौंसठ साल की उमर तक जो सोचता आया, जो जानता आया—रातों-रात सब झूठ हो गया। भावों की क्रांति शायद इसी को कहते है। लगता है, नया कुछ सोचने के लिए नई उमर की जरूरत है। मगर तुम्हीं बताओ, वह मुझे कैसे मिल सकती है ?

हिरण अब तक चुप ही था। अब बोला—चाचाजी, नई उमर या नई नजर !

—खैर, नजर ही सही। इतने दिनों तक देखते-देखते जिसकी आँखों मे बुढ़ापे की धुँधली छाया पड़ी है, उसे नई नजर की बेशक जरूरत है।

—लेकिन हम क्या केवल चमड़े की आँखों से ही सब देखते है—मन से नहीं देखते ? बुद्धि से नहीं देखते ?

जीवेन्द्र बोले—तुम्हारी यह बात भी मैं मान गया हिरण ! लेकिन बुढ़ापे में मन और बुद्धि की जड़ता नहीं आती।

हिरण बोला—यह कैसे मान लूँ ? बाल पकते है, जभी तो विचार-बुद्धि बढ़ती है। जो कानून बनाते है वे वृद्ध है, जो देश का शासन करते हैं वे प्रायः बूढ़े होते हैं—विचार की परिपक्वता जताने के लिए ही तो विचारक को सफेद परचूला पहनाया जाता है। पकी दाढ़ी-मूँछ और सफेद बाल के सिवाय हम मुनि-ऋषि की कल्पना ही नहीं कर सकते। समाज के अगुआ, देश के रहनुमा, राष्ट्रपति, प्रधान मंत्री, शास्त्र-विशारद, बड़े-बड़े सेनानायक, धनकुबेर, व्यापारी—इनमें से कौन बूढ़े नहीं है चाचा ? संसार के सभी देशों के कर्त्ता-धर्त्ता तो बूढ़े हैं !

हिरण की ओर देखकर जीवेन्द्र स्नेह की हँसी हँसे। उसके बाद बोले—बूढा और बुढ़ापा क्या एक ही चीज है बेटा ? मैं बूढ़ा होता तो खुशी होती मुझे, लेकिन मैं तो बूढ़ा होने से पहले ही बुढ़ापे से झुक

पड़ा !

हिरण चुप हो गया। जीवेन्द्र फिर बोले—एक ही रात में सर सफेद हो सकता है, पहले मुझे यकीन नहीं होता था। एक दिन में विधाता का विधान बदल जाता है, लहमे के भूकंप में सृष्टि उलट-पुलट हो जाती है—यह सब क्या इन आँखों देखा था कभी ? मन और बुद्धि की जड़ता कब आती है ? साधु भाषा में तुमने सुना किया है, अप्रत्याशित आकस्मिकता का प्रचड आघात आदमी को गूँगा किये देता है, या पागल बना देता हैं, अथवा मार डालता है। मन और बुद्धि की जवानी मुझमें महज उस दिन तक भी थी, लेकिन आज क्यों नहीं है ?

हुस्ना मीरा के साथ कुछ आगे बढ़कर चहलकदमी कर रही थी। अब दोनों समीप आ खड़ी हुई। बेला जाती रही, लौटना चाहिए।

हिरण बोला—अच्छा चाचाजी, पुराना साँचा अगर टूट ही गया हो, तो नया नही बनाया जा सकता ?

जीवेन्द्र बोले—नया टपक नही पड़ता। नये का जन्म पुराने से ही होता है। अचानक नया होना विवेचको के लिए श्रद्धेय नही होता। तुम नया साँचा किसे कहते हो ?

मीरा एक जगह बैठ गई। हुस्ना उसी के पास बैठी। उसकी आँखों में उद्दाम कौतूहल झलक रहा था। मीरा जड़-सी हो बैठी।

हिरण बोला—जिनका सब-कुछ टूट गया है, सब-कुछ खो गया है, उन्हें फिर से बचाना तो पड़ेगा ?

जीवेन्द्र ने कहा—मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ, वे जिये, आप अपने पैरों पर खड़े हों, सरकार के दातव्य से अपने को दूर रखकर उन्नति करें।

हिरण ने पूछा—आप क्या इसे नया साँचा नहीं कहेंगे चाचा ?

—तुम लोग कहोगे तो मैं प्रसन्न ही रहूँगा हिरण ! किसी भी तरह से जिन्दे रहने को अगर मुझे नया साँचा मानना पड़े तो चिड़ियाखाने को जंगल कहने में क्या उज्र है ? पशु-पंछी वहाँ खासे जतन में रहते हैं,

बहुतेरे गीत भी गाते हैं, बहुतेरे बसेरा भी बाँधते है।

हिरण को थोड़ा उत्साह मिला। बोला—फिर आप यह कैसे कह रहे थे कि घर-द्वार, जगह-जमींदारी छोड़कर आने का आपको जरा भी गम नहीं है?

जीवेन्द्र बोले—हाँ, नहीं है। आज भी कहता हूँ, नही है। वे सारी नकली चीजे है, हाथों की बनी—वे उपकरण की बहुलता है। लेकिन जो खो गया है, उसकी पूर्ति ससार के किसी रत्न-भंडार से नही हो सकती हिरण! वह है हमारे उस गाँव की पवित्र मिट्टी, और उस मिट्टी पर कान लगाकर जो पड़ा रहता था, मेरा वह मन! युग-युग की मिट्टी, जो आग में नहीं जलती, पानी में नहीं डूबती, जो खोती नहीं—जो मेरी माँ के दिल से भी नरम है। और मेरा मन? वह मन क्या हुस्ना के वालिद इमदाद अली के सिरिश्ते में तैयार हुआ था? उस मन की खूराक क्या मुझे महल में मिलती थी कि मिलती थी मालखाने में? हिरण, सब-कुछ छोड़ आने का मुझे दुःख नहीं है, दुःख है अपने विश्वासी मन की अकाल मृत्यु का!

अचानक रुककर जीवेन्द्र ने एक उसाँस ली। फिर आवाज धीमी करके बोले—राजमहल लुट गया! भला हुआ—उनकी चीज थी, उन्होंने ले ली। मुझे उखाड़कर अगर उन्हें खुशी हुई है, तो मुझे कुछ नहीं कहना। समझूँगा, मेरी बारी पूरी हो चुकी थी। आज दूर बैठे उनके कार्यों की आलोचना करके आप अपने आगे छोटा न बनूंगा।

हुस्ना ने पुकारा—चाचाजी!

—क्यों बिटिया?

—बर्बरों के आगे आपके इस दिल की कोई कीमत भी है?

जीवेन्द्र ने कहा—वे बर्बर नहीं हैं, यह बात तुमने मुझे सिखायी है। मगर उनसे कोई प्रत्याशा नहीं। बला से कीमत उन्होंने न दी। बला से अपना पावना न मिला। दौलत गँवाने का मुझे गम नहीं, तुम मेरी इस बात का यकीन करो हुस्ना! उन्होंने मुझे बहुत दिया है, बहुत दिनों तक

उनके परिश्रम का फल मैं भोगता रहा हूँ—अब अपना पावना वे समझ लें, तो कोई दुःख नही।

हुस्ना ने कहा—लेकिन तुम्हारी बातों पर वे लोग अगर विश्वास न करें ? यदि वे यह कहें कि चूँकि तुम भाग आए हो, इसीलिए ऐसा कह रहे हो ! यदि वे यह कहना शुरू करे कि तुम्हारा यह मायावादी संन्यास वंचित के हृदय-विक्षोभ से हुआ है ? यदि वे लोग यह कानाफूसी करने लगें कि तुमने मिट्टी को प्यार नही किया है ? किया होता तो उसे कसकर पकड रखा होता। असल में तुमने धन-दौलत और महल को ही चाहा था—आज वह सब बेहाथ हो गया है, इसी से तुमसे बरदाश्त न हो सका।

जीवेन्द्र ने कहा—मेरे निजी जीवन में क्या इस मनोवृत्ति का परिचय था बेटी ?

— न, नही था, ! हुस्ना उत्कंठित होकर बोली—इसी से तो तुम्हें लौटने को कह रही हूँ चाचा। अबकी तुम गरीब होकर वहाँ चलो, चलकर उन लोगों से कहो कि मैने सारा अधिकार छोड़ दिया है। जनता के हक के लिए मैं अपने व्यक्तिगत हक का विसर्जन करने आया हूँ—तुम सब मिलकर इसे बाँट लो। इतना तुम नहीं कह सकोगे चाचा ?

—कह तो सकूँगा।—वे बोले—लेकिन वे कहीं यह कहे कि मैं प्राणों के डर से ऐसा कह रहा हूँ ?

—प्राणों का डर तो तुम्हें नही है।

—लेकिन वे क्या इसका यकीन करेंगे ?

हुस्ना ज़रा देर चुप हो गई। उसने मीरा की ओर देखा, जो सिर झुकाये बैठी थी। हिरण दूर हटकर अपने आप में डूबा बैठा था। हुस्ना ने एक बार उसका ओर भी देख लिया और मुड़कर बोली—समझ रही हूँ, विश्वास तो वे नहीं करने के। वे बहुत ठगे गए है बहुत पिटे हैं, बहुत सताये गए हैं। हो सकता है, अब वे इस पर यकीन करना न चाहें। शायद वे तुम्हारे प्राण लेना चाहें, धर्म, जात, मान लेना चाहें।

चाहें रक्त, माँस और मेद-मज्जा लेना। कभी उन्होंने तुमसे प्यार के सिवाय और कुछ भी न चाहा था। और आज सर्वस्व शायद छीन लें, एक प्यार ही न चाहें। चाचा, इन दो नये राष्ट्रों में सुलह की जो पहली शर्त थी, याद है तुम्हें ? उसकी पहली शर्त यही थी कि दोनों के फिर से मिलने की बात गैरकानूनी होगी। प्यार करने से अपमानित होना पड़ेगा, मेल-मिलाप की कोशिश करने से जुल्मो-सितम का भागी होना पड़ेगा ! एक घर मे रहते हुए भी दो भाइयों मे अनबन ! छोटा भाई गोबर-गणेश, अपढ़, बर्बर और बड़ा भाई विष रस भरा कनक घट जैसे, कूटनीतिपरायण। जायदाद की देखभाल बड़े पर है, आमदनी की रकम वही रखता है, खर्च करता है और छोटा भाई एड़ी-चोटी का पसीना एक करता है ! आधा पेट भोजन मयस्सर होता है, तन में कूवत नहीं आती। बात-बात में छोटा भाई मार-पीट पर आमादा—बड़ा भाई पंचायत के लिए गाँववालों को बुलाया करता है। आनेवाले लोगों की निगाह मे छोटे भाई का हमला ही आता है। आखिर में बँटवारे की बात आती है। बीच-बचाव के लिए काइयाँ अंग्रेज आ धमके। उसने सोचा, अभी अगर मूर्ख की तरफदारी की जाए, तो आगे अपना उल्लू सीधा करने में आफ़ियत रहेगी। सो उसने पाँच कमरों में से तीन छोटे भाई को हिस्से में दिये, क्योंकि उसका परिवार बड़ा था। इधर दोनों भाइयों में ठन गई। दोनों तरफ के लोगों की एक ही हाय-हाय रही। बड़े भाई के हलके से गए बिना पैठ तक जाया नहीं जा सकता। और बाँध-पोखरे, धान के गोले सब पड़े छोटे भाई के इलाके में। दोनों के अपने-बिराने, सगे-संबंधी एक ही, लेकिन जाते वक्त अंग्रेज बीच में घेरा डालकर गये। उस रोक के इस पार रहा वैर, उस पार रही घृणा ! गोकि लहू एक ही, जात एक ही, स्वार्थ और संस्कृति भी एक।

मीरा ने मुस्कराकर कहा—तुम्हारा किस्सा तो खूब जम गया हुस्ना। लेकिन उसके बाद ?

हुस्ना भी हँसी। हँसकर बोली—उसके बाद ! उसके बाद बड़ा

भाई सोच-विचार करके अपने किये पर पछता रहा है और प्राणों के डर से फिर से मिलने की सोच रहा है !

—और छोटा भाई ?

—वह झगड़ालू गोबर-गणेश ! उसने बँटवारे में हिस्सा ज़्यादा पाया है। हालत उसकी अच्छी हो गई है। उसकी हिमाकत देखकर बहुतेरे अपने लोग अपना-अपना हिस्सा छोड़कर हट गए हैं। सो फ़िल-हाल उसे यह मलाल मिटाने की गरज नहीं पड़ी है ! झगडा निबट जाने से ही तो उसे नुकसान होगा। ज्ञान-बुद्धि कही बढ़ जाए, आदमी बनना पड़ जाए—इसलिए वह शिक्षित भी नहीं होना चाहता !

जीवेन्द्र बड़ी देर से चुप थे। बीच में बोले—और तुम्हारी इस कहानी का अत ?

हुस्ना बोली—खत्म अभी हुई कहाँ कहानी चाचा। अभी तो बहुत बाकी है।

मीरा ने पूछा—अंत कैसा होने से तुम्हें खुशी होगी ?

हुस्ना ने जवाब दिया—कहानी अपनी गति से चलेगी—वह मेरी खुशी पर मुनहसर नहीं। इस घृणा और विद्वेष का अजाम भयानक भी हो सकता है। इतिहास के पन्ने लाल रंग से भी लिखे जा सकते है—कौन जाने ?

मोटर का भोंपू बजा। जाने का समय हो गया। दक्खिन की झील से शिकारी चिड़ियाँ पच्छिम क्षितिज की लालिमा की तरफ उड़ी जा रही थी। साँझ हो चली थी।

हिरण आकर सामने खड़ा हुआ। हुस्ना का हाथ पकड़कर जीवेन्द्र चल पड़े। पीछे-पीछे मीरा। हिरण उनके बगल से। बीच में मीरा ने कहा—आप दोनों की बहस जो छिड़ी, सो मेरी असली बात ही रह गई।

हिरण बोला—मेरी भी असली बात रह गई।

—आप तो नौकरी पर जाने की तय कर चुके हैं, फिर असली बात

क्या रही ?—मीरा ने बड़ी-बड़ी आँखों से उसे ताका ।

हिरण बोला—उसकी इजाजत पाना ही तो असली बात है ।

मीरा बोली—आप सोचते हैं, बाबूजी अड़चन डालेंगे ?

हिरण बोला—हुँ । खैर, आपकी असली बात क्या है ?

—मैं भी नौकरी करना चाहती हूँ, बाबूजी को बताना था ।

—आखिर यह बताकर उन्हें चोट क्यों पहुँचाना चाहती है ?

मीरा बोली—बताये बिना नौकरी करूँ किस साहस पर ?

आलोचना को अधूरी छोड़कर ही गाड़ी पर बैठना पड़ा । आते वक्त जैसे बैठे थे, सब उसी हिसाब से बैठ गए । गाड़ी खोल दी गई । अचानक हुस्ना बोल उठी—आज आपसे बहुत बातें कराई गई चाचा । तुम थकते जा रहे हो, यह मैं समझ नहीं सकी । घर जाकर तुम्हें शांति से सुला सकूँ तो जी में चैन आए ।

जोरों से साँस खींचते हुए जीवेन्द्र बोल—तुझे इतना डर क्यों है बेटी ?

हुस्ना श्रद्धा-सने स्वर में बोली—तुम सघन पेड़ हो, हम सब हैं चिड़ियाँ । तुम्हारी डालों पर हमने बसेरा बनाया है । तुम्हारे शरीर को कुछ होता है, तो हमारे नीड़ डोलते हैं—इसी से !

मीरा ने एक बार पिता की ओर देखा और ड्राइवर से बोली—धीमे ले चलो ।

हुस्ना जरा उत्कंठित होकर बोली—आज कुछ ज्यादा देर रह गए हम । बातों में देर हो गई ।

जीवेन्द्र ने पाँव फैलाये और पीठ को पीछे की तरफ टिकाया—न, कोई बात नहीं । मैं ठीक हो हूँ । न हो तो, कुछ और तेज ही चलने को कहो ।

मीरा बोली—तेज चलने से आपके सिर में चक्कर आ सकता है ।

एक लंबी साँस खींचकर जीवेन्द्र बोले—खैर, धीमे ही चलने दो ।

हिरण बोला—दसेक मील की दूरी तो होगी ही ।

—दस मील ! जीवेन्द्र बोलें—काफी दूर है । शांत भाव से उन्होंने आँखें बंद कर लीं । अपनी नर्म उँगलियों से हुस्ना उनका सर सहलाने लगी । मोटर खासी तेज चलने लगी ।

आज किसी को भी जीवेन्द्र की शारीरिक दशा की याद न रही । इसका सबको थोड़ा-बहुत पछतावा होने लगा । पिता की ओर देखकर मीरा कुछ सकपका-सी गई ।

सभी उनके मुँह की ओर ताकते रहे । उन्हीं की आयु पर उन सबकी समस्या का समाधान निर्भर करता है । हुस्ना की भाषा में यों कहा जा सकता है—पेड़ की डाल-डाल पर नये युग की चिड़ियों का बसेरा । यह जानी हुई बात है कि केन्द्र से वे सब टूट गिरे है, अब हर किसी को अपना लूट लाना, कूट खाना है; यह भी स्पष्ट है कि उन सबके मसलों का हल जीवेन्द्र के जीने-मरने पर ही वास्तव में टिका नही है । दरअसल जिसके डैनों में जितनी शक्ति है, भाग्य के आकाश का वह उतना ही चक्कर काट सकेगा । जिसमें जितनी प्राण-शक्ति है, आँधी-तूफान के आगे वह उतना ही ज्यादा खड़ा रह सकेगा ।

फिर भी जीवेन्द्र उन सबों के आंतरिक योग-सूत्र हैं । चूंकि वे मौजूद हैं, इसीलिए आपस में वे सब मिले-जुले है, एक से दूसरे की किस्मत जुड़ी हुई है । एक को खीचो तो दूसरा भी खिंच आता है । फूल सब जुदा-जुदा हैं, पर पिरोये हुए हैं एक धागे में । यह धागा टूट जाए, तो सारे के सारे फूल बिखर पड़ें ।

मीरा ! उनकी इकलौती बेटी । लेकिन वह उन सबसे अलग नहीं है । उनके सामने मीरा का मोल हुस्ना से ज्यादा नही है । हुस्ना का महत्त्व हिरण से कम नहीं है । सुमित्रा है, अत्रि है । अत्रि के जीवन-निर्माण का सारा कुछ उनकी व्यवस्था पर निर्भर करता था—उसके भविष्य की सारी जिम्मेदारी हुस्ना, मीरा और हिरण के कंधों पर थी । यह ग्रंथि हुई पारिवारिक—इसका बाँधना-खोलना जीवेन्द्र के अपने ही हाथों था । इसमें किसी दूसरे ने अपनी आजादखयाली नहीं दिखाई । सभी नदियां

जब समुद्र में जा मिलती हैं तो किसी की निजस्वता नही रह जाती।

दस मील की दूरी तय करने में आध घंटे के करीब लग गया। मोटर के लिहाज से आधा घंटा बहुत हो गया। तेज चाल होने की वजह से और भी तेजी का खयाल था। गाड़ी दरवाजे के सामने आ लगी। लेकिन जीवेंद्र को उतारने गयी तो हुस्ना के मन में खटका हुआ। उसने आवाज़ दी—बड़े चाचा!

जीवेन्द्र ने तुरत जवाब न दिया। मीरा और हिरण्ग बगल से घूमकर पास आ खड़े हुए। आवाज पाकर सुमित्रा भी निकल आई।

मीरा ने पुकारा—बाबूजी!

—चाचाजी!—हिरण ने पुकारा।

हुस्ना ने ग़ौर किया। बोली—चाचाजी बेहोश हो गए हैं!

ड्राइवर की मदद से हिरण उन्हे उतार लाया और दक्खिन-पूरब वाले कमरे में उनको सुलाया। हुस्ना के इशारे पर ड्राइवर गाड़ी लेकर डॉक्टर के यहाँ भागा।

मीरा की भयभीत आँखें सजल हो उठीं। किंतु हुस्ना की आँखें प्रखर हो रही थीं—कोई भावावेग नहीं।

हिरण ने पूछा—बर्फ ले आऊँ हुस्ना?

काँपते गले से हुस्ना बोली—डॉक्टर को आ लेने दो।

तालतल्ले से बहू बाजार मोटर के लिए कुछ खास दूर नहीं। पंद्रह एक मिनट में डॉक्टर आ धमके। तजवीज के बाद बोले—यह ठीक-ठीक बेहोशी नहीं है, कोमा-सा है। पहले भी हो सकता था। तुरत कोई खतरा नहीं है। होश में आ जाएँगे।

सुई देने के पाँचेक मिनट बाद धीरे-धीरे साँस का छन्द बदलने लगा, नाड़ी की चाल सहज हो आई। डॉक्टर बैठे रहे। बीमारी दिल और दिमाग की थी।

अत्रि धीमे से हुस्ना के पास आकर खड़ा हुआ। धीमे से पुकारा—छोटी जीजी?

—क्या है अत्रि ?

—चटगाँव से वे लोग आये हैं। तुम्हें बुला रहे हैं।

धीमे से हुस्ना ने पूछा—कौन आया है ?

—चलकर देखो।

धीमे से हुस्ना ने फिर पूछा—हैं कहाँ वे ?

—ऊपर।

—ऊपर ? अच्छा चल।

कमरे से निकलते ही हुस्ना को सुमित्रा ने बुलाया। बोली—तुम लोग निकले और कोई घंटे-भर बाद ही ये आये। मामला कुछ ठीक नहीं नज़र आता। यह मकान हमें छोड़ना पड़ेगा।

हुस्ना का चेहरा अचानक सख्त हो उठा—क्यों ?

सुमित्रा बोली—जाकर उनसे बातें कर। ऊपर है। तेरे ही इन्तजार में है।

हुस्ना बोली—जानती हो चाची, बड़े चाचा की यह हालत है, मुझे ऐसे में यह सब अच्छा नही लगता ?

—मगर मैं क्या करूँ, तू खुद ऊपर जा।

मकान खासा बड़ा है। दोतल्ले के पास का बड़ा हाल खाली पड़ा है। जिस हिस्से में ये लोग हैं, उसमें जगह इफरात है। लेकिन सीढ़ी आम है। हुस्ना सीधे ऊपर गयी। ऊपर जाते ही दाहने बाजू जो कमरा था, उसमें से आदमी की बातचीत सुनाई पड़ी। इसी बीच दरवाजे पर परदा पड़ चुका था।

परदा हटाते ही नजर आया, हुसैन साहब के एक साले का लड़का अफजल बैठा है। उसके पास एक युवती। युवती अपरिचित थी। फर्श पर सामने की ओर झुका बैठा था एक काला-कलूटा-सा आदमी—शायद नौकर होगा। तीनों आपस में कुछ बातें कर रहे थे। हुस्ना के आते ही चुप हो गए।

—अरे, अफजल भैया ! कब आये ? जमाने से कोई खबर नहीं।

मजे में हो ?

—आओ, आओ हुस्ना। हम तीसरे पहर की गाड़ी से आये हैं।

—अच्छा, एकाएक आ गए। बात क्या है ?

अफजल ने कहा—फूफाजी ने भेजा है। तुमसे जरूरी काम है।

—खैर, बातें होगी। और यह युवती ?

—तुम इसे कैसे पहचानोगी ? यह अमीना की ननद कुलसुम है।

हुस्ना ने हँसकर कहा—ओ ! शादी नहीं हुई है शायद ? तुम्हारे साथ आयी ?

अफजल बोला—कुछ पूछो मत। आते वक्त जिद पकड़ बैठी—कलकत्ता घूमेगी। बचपना कहो।

—लेकिन उमर बचपने की नहीं है !—हुस्ना ने फिर हँसकर कहा—फिर तुम्हारे साथ कलकत्ते आना कुछ और अर्थ रखता है। और यह कौन है ?

—वह रहमान है। हमारे यहाँ काम करता है।

—बेसरवाली कुलसुम ने अब बात शुरू की। आवाज ही उसकी रूखी थी। बोली—आप तो हिंदुओं की दोस्त है। यहाँ हमें कोई खतरा तो नहीं ?

—खतरा किस बात का ?

साफ सीधा सवाल ही कठिन होता है। कुलसुम सकपका गयी। कहा—चटगाँव में यहाँ के बारे में तरह-तरह की अफवाहें सुनती रही हूँ। इसी से पूछती हूँ, खतरा तो नहीं है ? घर पर धावा तो नहीं करेंगे लोग ?

हुस्ना बोली—यह तुम्हें किस तरह बताऊँ ?

अफजल ने कहा—बेहद डरती है यह। जरा भी खटका हुआ कि चिड़िया की तरह काँपने लगती है। स्यालदह स्टेशन पर उतरते समय थर-थर काँप रही थी। घर के अंदर जो दाखिल हुई है, सो निकलना ही नहीं चाहती। इसे लेकर मैं मुसीबत में पड़ गया हूँ !

कुलसुम बोली—आप कुछ हिम्मत दिलायें मुझे।

हुस्ना बोल—मैं हिंदुओं की दलाल तो हूँ नहीं भाई कि तुम्हें ढाढ़स बँधाऊँ? तुम जिसके साथ यहाँ आयी हो, वह मेरी ही तरह कलकत्ते में बड़ा हुआ है। वही तुम्हें हिम्मत दिलाये। रहमान, तुम जाकर बाहर बैठो। तुम लोगों के लिए खाना भिजवा दूँ अफजल?

रहमान ने देखा, मामला बेढब है। वह बाहर चला गया।

अफजल ने कहा—सोचा था, स्टार होटल से भोजन कर आऊँगा। मगर यह कुलसुम तो हिलना ही नहीं चाहती।

कुलसुम बोली—डर नहीं लगता है? यहाँ जब-तब तो मचता है दंगा! दंगाई कहीं औरतों की आबरू रखते है?—हुस्ना जीजी, ये जो लोग नीचे रह रहे हैं, कैसे लोग है ये? सीढ़ी का दरवाजा तो लग जाता है न?

हुस्ना ने कहा—रिफुजी हैं।

—रिफुजी?—कुलसुम चौंक उठी—यही तो सबसे ज्यादा बिगड़े हैं। ऐसा काम ही नही जो ये न कर सकें! इस मकान पर तो उन्होंने जबर्दस्ती ही दखल जमा लिया है?

हुस्ना को जीवेन्द्र की फिक्र पड़ी थी। फुर्सत कहाँ। उसने कहा—खाना भिजवाऊँ अफजल भैया?

अफ़जल ने कहा—तुम्हें तकलीफ तो न हो जाएगी?

—नहीं, तकलीफ क्या। खैर, अभी मैं जाती हूँ। फिर आऊँगी। बड़े जाचा की बीमारी से मैं बेतरह परेशान हूँ।

नीचे जाकर हुस्ना ने ठाकुर को भोजन के लिए कह दिया और जल्दी से जीवेन्द्र के कमरे में चली गई।

उतने ही थोड़े समय में अफजल को हुस्ना के चरित्र और स्वरूप की दृढ़ता का आभास मिल गया। वह खूब समझ गया, उसे दिलोजान से अपनी जमात में ला सकना मुश्किल है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि वह जो काम लेकर यहाँ आया है, उसमें किस हद तक कामयाबी

मिल सकेगी। यह मकान उन्ही का है, यहाँ इतने दिनों तक उनका पैतृक निवास रहा, लेकिन आज इसके चारों ओर आतंक की छाया घिर आई है। आज शायद यह घर खतरों का अड्डा है ! अफजल को अब कलकत्ते की किसी चीज में भी विश्वास नहीं रह गया है। आज की सारी राजनीति की आड़ में जिस खौफ की सृष्टि की चेष्टा है, अफजल उसी चेष्टा का एक खिलाड़ी है।

कुलसुम ने पूछा--यह बड़े चाचा कौन ? हाजीपुर के वही जमींदार ?

सिगरेट सुलगाकर अफजल ने सिर्फ 'हाँ' कहा।

—तुमने तो कहा—कलकत्ते में अब कोई डर नहीं रहा। तो मुझे डर क्यों लगता है ?

कुलसुम की पीठ पर आश्वासन की थपकी देकर अफजल ने कहा—ठीक है, यदि कोई गड़बड़ी हुई तो हम मकान छोड़कर चल देंगे ?

कुलसुम रोकर अफजल से सटकर बैठ गई। बोली—कुछ हो जाएगा तो हम भागेंगे कैसे ? यहाँ का दंगा तो आतिशबाजी की तरह तमाम फैल जाता है ! तुमने पहले तो दंगे की बात नहीं बताई। खुद भी डर गए हो शायद ?

—मैं ? पगली।—अफजल खड़ा हो गया। जाकर उस ओर की सारी खिड़कियाँ उसने बंद कर दीं, ताकि रास्ते से कोई इधर देख न सके।

सामने आकर रहमान ने कहा—मुझे तो लेकिन अच्छे आसार नहीं दीखते।

अफजल ने आशंकित आँखों से एक बार इधर-उधर फिर ताका। गंभीर होकर बोला—कोई बात नहीं, लेकिन मुझ पर मुहल्लेवालों को गुस्सा है !

कुलसुम बोली—गुस्सा ? क्यों ? आने के पहले तुमने बताया तो नहीं ? फिर आये ही क्यों ? अब भागा कैसे जाए ? नाहक ही मुझे क्यों

ले आए तुम ?

अफजल ने पूछा—तुम सीढ़ी के पास पहरा दे सकोगे रहमान ?

—बेशक हुजूर। आपके लिए खाकसार जान दे देगा !

रहमान को कनखी से ताककर कुलसुम ने कहा—मगर उस रोज, चटगाँव में जब दंगा हो रहा था, तुम बाबू को छोड़कर कोयलेवाले कमरे में बोरे में क्यो जा छिपे थे ?

रहमान बोला—मै ? आप देख लेना, आज मैं जान देकर ही रहूँगा।

मगर कुलसुम की इससे जरा भी हिम्मत न बढ़ी। कहा,—अफजल, इस कम्बख्त का कोई भरोसा नहीं। बात-बात में जान देने की बात करता है—मौके पर यह जरूर दुम दबाकर खिसक पड़ेगा।

रहमान ने अपनी जीभ काट ली और वहाँ से खिसक गया—मानों आफत की घड़ी में जान लेकर भाग खड़ा होना उसके लिए बहुत बड़ा पाप है !

कुछ सोचकर अफजल उठ खड़ा हुआ, कोने के पास जाकर बड़े सूट-केस को खोलकर उसने किसी गुप्त चीज की जाँच की और बोला—हमला कहीं हो ही गया, तो दो-चार जने की तो खबर जरूर ही ले सकूँगा, समझ गई कुलसुम ?

—तुम्हारे बदन में है इतनी कूवत ?

—बदन की ताकत ही सिर्फ ताकत नहीं होती कुलसुम ! हिन्दू सिपाही दुश्मनी न करेगे, लेकिन मुहल्ले के लोग मुझे पहचानते हैं। छियालीस के दंगे में मेरे हाथों पिटे हैं न ! वह गुस्सा अभी उतरा नहीं है।

कुलसुम बोली—अच्छा, तुम्हारी वह हुस्ना जो है, वह हिंन्दुओं से इस कदर क्यों सटी रहती है ?

अफजल बोला—हिन्दू के ही घर वह पली है ! उसने हिंदू का नमक खाया है। मुसलमान कभी एहसान-फ़रामोश नहीं होते कुलसुम !

कुलसुम ने कहा—मैं लेकिन शर्त बदकर कह सकती हूँ, वह हिंदुओं से घूस खाती है। उनकी रकम खाकर पाकिस्तान के भेद लाती है। वह तुम लाख कहो, मैं यकीन नहीं कर सकती! इस जमींदार ने उसे हाजीपुर के लोगों को फुसलाने के लिए रखा है—उसी के जरिये मालगुजारी अदा कराता है।

अफजल बोला—यह मैं खूब जानता हूँ कुलसुम! अब्बा को भी मालूम है। लोग इस जमींदार को फूँककर मार डालते। मगर हुस्ना ने इनके भागने में मदद पहुँचाई थी!—कौन है?

सीढ़ी पर पैरों की आहट हुई और रहमान ने उछलकर अपना हाथ अपने फेटे के पास रखा, कुलसुम कमरे में जा छिपी और लहमे में अफजल ने कोने के सूटकेस के अंदर अपना हाथ डाल दिया।

हुस्ना खाना लेकर खुद आयी। बोली—कहाँ, अफजल भैया? कुलसुम कहाँ है? हो कहाँ तुम लोग?

कुलसुम की जान-में-जान आई। रुँधी साँस को धीरे-धीरे छोड़कर वह बाहर निकल आई। चेहरे पर जान के खतरे की उत्तेजना थी। कोशिश करके हँसती हुई बोली—अरे आप! मैंने सोचा, जाने क्या···!

अफजल ने झट से सूटकेस को बंद कर दिया। पास आया। हुस्ना ने रहमान से कहा—देख, जल्दी से मेज को साफ कर दे···

रहमान ने तुरत हुक्म बजाया। मेज पर खाना लगाकर हुस्ना ने कहा—अपने इस बंदे से कहो, बाहर जाकर खा आए। पास ही दूकान है। तुम लोग खा लो।

अफजल ने पूछा—यह सब तुमने ही पकाया है हुस्ना?

फिक्र न करो—इसमें जहर नहीं है। बेखटके खाओ। हाँ, तुम सोओगी कहाँ कुलसुम?

कौर उठाते हुए कुलसुम ने कहा—मैं? हाँ, वही तो···

साफ सवाल का जवाब भी साफ होना चाहिए। लेकिन अफजल

सकपका गया। बोला—ठीक तो···सोचने की बात है। फिर यह कुलसुम डरपोक भी है बड़ी ! पहले ऐसा खयाल था कि इस मकान में कोई हिन्दू नहीं है—अकेली तुम हो।

हुसना ने आवाज दी—वसंत ?

—जी आया।—और सुराही में पीने का पानी, एक गिलास और अलग से एक डोल पानी लेकर वसंत ऊपर आया।

हुस्ना ने कहा—देखो, हम और बड़ी जीजी जिस कमरे मे सोती हैं न, उसी में एक बिस्तर और लगा दो। बड़े चाचा को दूध दे चुके हो ?

—जी।—कहकर वसंत ने सुराही और डोल को रख दिया।

हुस्ना ने कहा—अच्छा, तू जा।

हुस्ना की पैदाइश ही शासन करने के लिए हुई है। वह टूट सकती है, झुक नहीं सकती। मामला बड़ा टेढ़ा-सा हो उठा। दो दिन गाड़ी का सफर रहा। कुलसुम ने आज स्नेह के आश्रय में सुख से सोने की कल्पना कर रखी थी। सब चौपट हो गया। बोली—यहाँ जनाना सूरत तो नजर नही आती कोई ?

—आखिर यह आगरे का किला तो है नही कि हरम हो !

—लेकिन, जी चाहे जहाँ सोऊँ तो नीद भी आएगी मुझे ?

—तो क्या हम और जीजी जहाँ-तहाँ सोती है ?

कुलसुम बोली—मेरा यह मतलब नहीं। लेकिन हिन्दू का छुआ बिस्तर, काफिर के पास सोना—कुरान मे मना है।

—तुमने कुरान पढ़ा है ?

—सुना है !

—तुमने तो यह भी सुन रखा है कि कलकत्ते में कदम रखते ही बाघ निगल जाते है—लेकिन सच है यह ? अरे, अफजल भैया, खाओ !

—हाँ, खा रहा हूँ।—हाँ, मैं जिस काम से आया हूँ···

हुस्ना बोली—कहने की जरूरत नही। मामा की चिट्ठी मुझे आज

ही मिली है। उनसे कहना—उनके मकान पर हिन्दू ने नही, उनकी भानजी ने दखल जमाया है। ढाई सौ रुपया किराया मिलेगा माहवारी। और किस काम से आये हो तुम, बताओ।

अफजल ने कहा—इसीलिए आया हूँ। कुछ तय-तमाम हो जाता, तो अच्छा था।

हुस्ना बोली—इस मामूली-सी बात का फैसला तो खत से ही हो जा सकता था। तुम लोग बेकार आये!

अफजल बोला—जरा घूमना हो गया।

—कुछ खयाल मत करना भैया,—हुस्ना ने कहा,—तफरीह ही दरअसल तुम्हारी असली बात है। कुलसुम चिड़ियाखाना देखेगी—यही न? इससे पहले तुम दो शादियाँ कर चुके हो—फिर नाहक क्यों एक नयी लड़की को चिडियाखाना दिखाने ले आए?

कुलसुम ने कहा—आपकी बात मैं कुछ भी समझ नहीं पा रही हूँ। मत पूछिए, सुनकर मुझे शरम आ रही है!

हुस्ना ने पुकारकर कहा—रहमान, जूठे बर्तनों को साबुन से धोकर नीचे पहुँचा आ।—हाँ, शरम बेशक लगती होगी! मेरी तरह तुमने अभी दो-तीन शादियाँ तो की नही है? अच्छा, यह कहो, घर में बताकर आए हो?

कुलसुम की तरफ से जवाब अफजल ने ही दिया—हाँ, उन्हें पता है। और यह पता होने की बात ही है!

हुस्ना बोली—लेकिन मामा ने मुझे कुछ और ही लिखा है। खैर। सुनो कुलसुम, यह मैं नहीं जानती कि तुम अब तक कुमारी लड़की हो या नहीं। लेकिन जब तक मामा की दूसरी चिट्ठी नहीं आ जाती, मैं तुम दोनों को एक कमरे में नहीं सोने दे सकती। मेरी बेअदबी को माफ करना। अफजल भैया, तुमने सिर क्यों झुका लिया? खाना खत्म कर चुके, हाथ धो लो।

—हाँ-हाँ।—वह उठ गया।

हुस्ना फिर बोली—तुम्हारा इस तरह आना ठीक नहीं हुआ है कुलसुम। अफजल की करतूतें मुहल्ले के बहुत-से लोग अभी भी जानते है। बंगाली मुसलमान औरतों को आत्मसम्मान का खयाल नहीं होता, यह बीमारी जितनी ही घट सके, अच्छा है। तो मैं चली। तुम्हारा बिस्तर वहाँ लगा है, मैं इंतजार करती हूँ।

अफजल ने कहा—तुमने मुझसे बेअदबी की हुस्ना। यह बात अब्बा के कानों तक पहुँचेगी।

हुस्ना थमक गई। एक बार कुलसुम की तरफ ताका। कहा—मेरे पास रहने से और भी बेअदबी सहनी पड़ेगी भैया!

कुलसुम ने कहा—आप इन पर बहुत अन्याय कर रही है।

—आखिर क्यों करती हूँ—इसके जाने कितने शिगूफ़े मुझे मालूम है, फिर भी यह मुझे शक्ल दिखाने की हिमाकत करता है···ताज्जुब है! क्यों भैया, सुनाऊँ कुछ किस्से कुलसुम को?

गुस्से में अफजल बोला—तुम आस्तीन के साँप हो। अब मुझे यही यकीन हो रहा है कि तुमने हिन्दुओं का भर-पेट घूस खाया है!

हुस्ना सारे कमरे को कँपाती हुई जोरों से हँस पड़ी। फिर झूमती हुई सीढ़ियों से नीचे उतर गई।

इसके बाद बिस्तर लगाकर वह तीन घंटों तक इंतजार करती रही। अंत में आधी रात को यह पता चला कि ऊपर का कमरा खाली पड़ा है। न तो वहाँ अफजल है, न कुलसुम और न ही रहमान! आखिर वे भागकर हुस्ना से इस तरह बचे।

सात

अपने अवसाद से जीवेंद्र छुटकारा न पा सके। निराशा ने उन्हें पंगु बना छोड़ा था, इस बात में कितनी सचाई थी, कहना मुश्किल है। ऐसा समझ में आता था कि आखिरी दिनों उनका मन अपने ऊपर संशय से भर उठा था। जीवन के अन्तिम दिन फिक्र से बोझिल हो उठे, कभी-कभी किसी भयावने अंजाम की सोचकर वे सिहर-सिहर उठने लगे। मैने यह किया, वह किया—इस तरह का आत्मप्रचार उन्होंने कभी नही किया, लेकिन जीवन के आखिरी दिनों यह भी कर गए। सारा इलाका जानता है, हाजीपुर को उन्होने अपने हाथों बनाया। संस्कृत-पाठशाला, मखतब, सहयोग-समिति, हाट, अस्पताल, सार्वजनिक मंदिर— सारा कुछ उन्होंने बनवाया। पंद्रह वर्षो से पौष संक्राति का मेला लगाते थे—हजारों लोग आते थे मेले में। महाजनों की आढ़तो मे खुद जाते, धान और जूट की दर तय कर देते, जिसमें गरीब किसानों को आफियत हो। चैत में अपने खर्च से वे सारी रिआया के घर का छौनी-छप्पर करा देते। रेलवे से मछली बाहर भेजने का इंतजाम करा दिया था, गाँव के मछुओं को इससे खासा लाभ होता था। जिनके पास जमीन न थी, उनसे ये सब्जी की खेती कराते और गुजर-बसर की दिक्कत नही रहने देते। आस-पास के कुछ नहीं तो चालीस गाँवों में उन्होंने नल-कूप का इंतजाम कर दिया था—इससे बाहर के जोतदार उन्हें नासमझ समझकर हँसा करते थे। बरसात के आगे तक भी, कहीं नदी-नहरों में नावों के आवागमन में रुकावट न हो, इसलिए जल-पथ में उन्होंने बाँसबंदी की व्यवस्था की थी; उन्हीं की कृपा से गाँव को कभी महामारी का शिकार नहीं होना पड़ा। उन्हीं की दूरदर्शिता से गाँववालो को सन् पचास के अकाल की आँच भी न लगी। सहयोग-समिति में उन्होंने ऐसा बंदोबस्त कर रखा था कि कभी किसी कर्जदार को महाजन के दरवाजे के कड़े न खटखटाने पड़े। उन्हें अकेले

दोनों संप्रदायों के बहुतों से वैर लेनी पड़ी थी ।

कौन नहीं जानता कि आत्मप्रचार आत्महत्या के समान है। यह भी सभी जानते है कि जो लोग अपनी प्रशंसा अपने हाथों बटोरा करते है, वे बड़े ही गरीब है । उनको यह पता था कि गरीबी से असंतोष आता है, असंतोष से आता है द्वेष। उन्हें मालूम था कि जाती और वर्ग-विद्वेष के मूल कारण क्या-क्या हैं । काम करने की उनमें क्षमता थी, क्योंकि वे जमीदार थे और अपनी क्षमता का वे सदुपयोग करना जानते थे। उनके पास पूँजी थी और सूझ-बूझ भी, लिहाजा रुपयों के सद्व्यय की उन्हें जानकारी थी । जिनके पास पूँजी है, फिर भी जिनमें कुछ करने की चेष्टा नही है, वे समाज के मित्र नहीं हैं, इस बात को उनसे ज्यादा कौन जानता था ? यही कारण था कि उनके जीवन की तान पचम थी । मंत्र के साधन में उन्होने वास्तव में शरीर का पतन ही किया था। उनके जीवन का यह सुर उनका इतना ही निजी था कि उन्होंने राजधानी कलकत्ता से किसी तरह का सरोकार ही नही रखा ।

अंतिम कई दिनों तक उनका दिमाग बिगड़ गया, कम-से-कम हुस्ना का ऐसा ही खयाल है । उसने चाचा को आप अपनी बड़ाई करके मिट्ठू-मियाँ बनते कभी नही देखा था। एक बार गाँववालों ने उनके स्वागत-समारोह का आयोजन किया था। यह खबर पाकर उन्होंने हुस्ना को बुलाकर कहा था—जीवन में यह मैंने पहली बार खुद से घृणा की। अपने ही गाँव में, अपने ही गाँववालों का अभिनंदन स्वीकार करूँ, इससे बढ़कर अकाल मृत्यु और क्या हो सकती है ? हुस्ना ने कहा था—ये लोग तुम्हे प्यार जो करते हैं चाचा। जीवेन्द्र बोले—ये लोग फिर कौन ? ये सब तो मेरे नितांत अपने हैं—एक परिवार के, स्वजन । उनसे मैं जुदा थोड़े हूँ बिटिया ? आज इस हीनता के आगे मै आत्मसमर्पण क्यों करूँ ? ये सबलोग जब मुझे बड़ा कहेंगे तो उनके बीच खड़ा होकर मैं हर्गिज़ बड़ा न हो सकूँगा—यह भी क्या तुम्हें समझाना पड़ेगा ?

आदर्श के ऐसे ही परिवेश में पले हैं हुस्ना, मीरा, हिरण; और

भी दूसरे। अपने छोटे भाई रामेन्द्र तक से मुकद्दमा लड़ने में वे पीछे न हटे। रामेन्द्र कलकत्ते मे रूपजीवियों के साथ विलास में मग्न रहा करते थे। उनके चरित्र को सुधारना मुश्किल था। कभी-कभी चिल्लाकर बड़े चाचा कहा करते थे—गुनाह का अधिकार मैं तुम्हें नही दे सकता रामेन्द्र; तुम मौत के बीज बोते चले जा रहे हो, मैं तुम्हे होशियार किये दे रहा हूँ। तुम सारे मानव-समाज का अपमान कर रहे हो, अपने एक-एक अन्न-दाता के घर आग सुलगाते चले जा रहे हो।—रामेन्द्र गाँव छोड़कर चल देते थे, लेकिन सुधरते नही थे। और, साँझ को चिराग जलाकर सूने कमरे में छोटी चाची रोया करती थी।

बड़े चाचा की मृत्यु-शय्या के चारों ओर रोते-रोते सब बेहाल हो रहे थे। अत्रि, सुमित्रा, मीरा, हिरण—सबके सब। हुस्ना लेकिन शांत थी—अविचल। उसकी आँखों में आँसू का लेश नहीं। किसी का अभि-भावक गया, किसी का गया पिता, किसी का प्रतिपालक। लेकिन हुस्ना का? उसकी आँखों के सामने का आदर्श हट गया, अँधेरे गाँव का आलोक-स्तम्भ मिट गया। हुस्ना कल्पना खो बैठी, उसकी परिकल्पना का प्रधान केंद्र ही जाता रहा। वह सर्वहारा हो गई। आँखो में आँसू भी नहीं।

बड़ी चाची के मरने का दिन याद आ गया। माँ को मरणासन्न देख मीरा पिता की गोद में सन्न हो रही। और हुस्ना? पूछिए मत, जमीन पर लोट-लोटकर रोते-रोते बुरा हाल। बड़ी चाची की गोद में ही वह पली, जैसे मीरा पली। बरसात का मौसम, रह-रहकर मेघों की गरज और आषाढ़ी बारिश के साथ हवा का फूल-फूलकर रोना! और वह रोना ग्राम से ग्रामान्तर को फैल रहा था उधर को, जहाँ यमुना मधुमती से जा मिली है। उस शोक-शय्या से हुस्ना बहुत दिनों के बाद उठी।

और यह बड़े चाचा का मृत्यु-दिन—एक और ही युग। और-और मौतों की तरह यह पारिवारिक वियोग नहीं, यह मौत सामाजिक है, यह

नहीं है ! मैं अपनी और कोई जात नहीं मानती—एक जाति अपनी मानती हूँ कि मैं बंगाली हूँ—शक्ति की साधना मेरी साधना है ! मैं हाथ में तलवार लिए विभीषिका-जैसी दौड़ना चाहती हूँ । दुधारी चलाना चाहती हूँ । मैं भय, जड़ता, जहालत, बुरे संस्कार, कलंक, वैर-फूट, सब पर वार करना चाहती हूँ । मुझे तुम अहिंसा का सबक न सिखाओ, मुंह सीकर मार खाते जाने का पाठ न पढाओ । मुझमें अजय शक्ति दो, प्रचड प्राण दो, प्रबल अहंकार दो···मुझमें जलानेवाली शक्ति भर दो बडे चाचा । चाचा कहते—तलवार से दोनों बातें होती है हुस्ना—लड़ाई मे उससे जीत भी होती है और आत्महत्या भी । दरअसल शक्ति का दुरुपयोग ही अकाल मृत्यु है । शक्ति के साथ संयम न हो तो वह खूँखार हो उठती है—विनाशी बनती है । हुस्ना कहती—यह नीति-रीति मुझे न बताओ चाचा, मैं चाहती हूँ शक्ति, मुझे चाहिए गति । मुझे चाहिए तेज, साहस, वीर्य । मेरी हुँकार से दिशाएँ काँप उठें, मेरी तलवार की चमचम से सबकी आँखें चौधिया जाएँ, मुझे वह मंत्र-बल दो ! जो डराया करते है, दुर्गत बनाते हैं, दूसरों को लूटते है, अपनी कूट-नीति से भले समाज को अभिशप्त बनाते है, कमजोरों को जो सताते है, कपट सत्य से जो अन्याय और अपमान को प्रश्रय देते है—ऐसों को जिसमें मैं कभी माफ न कर सकूँ । ऐसों के बीच मैं अपनी तलवार लिये जिसमें कूद सकूँ और जो गूँगे-बहरे-से है उनके बीच अपनी तलवार की आवाज जगा सकूँ । चाचा, आखिर मैं क्या महज एक मुसल-मान की लड़की हूँ ? बंगली नहीं हूँ मैं ? मेरी नसों में शक, हूण, मुगल, तातार, द्राविड़, मंगोल, आर्य—इनका लहू नहीं बहता है ? तुम क्या कहना चाहते हो कि मुझमें सात सुरों की झनझनाहट नहीं होती ? यह झनझना-हट विद्रोही की है ! इस झंकार में जो शक्ति है, वह साधिका की शक्ति है चाचा !

कब, पता नहीं, चिता की लपटें बुझ आईं । फिर शोक छोड़कर आगे बढ़ो, कलस का पानी उँड़ेलो, चिता को ठण्डी करो। उनकी पुण्यात्मा

अनंत आत्मा से जा मिले। फिर जीवन के भरे घट को फोड़कर फिर से आगे बढ़ चलो। उसके पहले गंगा के पूत पानी में एक बार बुड़की लगा लो। इस डुबकी से जीवन में नई चेतना जागे। मृत्यु का डर मिट जाए, दूर हो श्मशान-वैराग्य—कलंक, ग्लानि, मलिनता—जो भी हो, सब धुल जाएँ। उसके बाद से फिर नये जीवन की ओर मुड़ चलो। घर लौटो।

घर! हुस्ना सबके अजानते थमककर नदी किनारे खड़ी हो गई। घर कहाँ उसे? सब है, लेकिन घर कहाँ! रात के अंतिम पहर में यह गंगा कहाँ तो जा रही है—इसके कोई घर है? रात के ये तारे कहाँ जाकर आखिरी पनाह लेते है? जीवन की सांत्वना का शांतिनिकेतन कहाँ है? हुस्ना के तो घर नहीं है! इस चिता के साथ-साथ उसका घर भी जलकर राख हो गया! चाचा की नाभि-कुंडली के साथ ही आज रात उसका घर भी बह गया! न, घर मेरा नहीं है, घर मेरे लिए नहीं है, घर मुझे नहीं लुभाता···घर का आनंद मुझे इशारे से नहीं बुलाता!

जीवेन्द्र बाबू को गुजरे दो महीने हुए। इसी अरसे में तालतल्लावाले मकान ने एक साफ-सी शक्ल पकड़ी। सुमित्रा अपने ही कमरे में रहतीं। अत्रि को साथ-ही-साथ रखती। साँझ-विहान मास्टर उसे पढ़ा जाता। इसी बीच में वे सबसे दूर-सी हट गई। बहुत बार तो उसे मानों समझा नहीं जा सकता। वसंत काम कर रहा है, उसकी तनख़ाह वही पच्चीस रुपया है। ठाकुर सुबह-शाम रसोई पकाता है, सौदा-पानी करता है। खर्च के रुपये हुस्ना सुमित्रा के हाथों सौंप देती है। बीच में हुस्ना ने चाचा के नाम से अपने मामा को किराये की बाबत पाँच सौ रुपये भेज दिये हैं। मामा खुश हो गए हैं। उन्हें फिर रुपये भेजने का दिलासा दिया गया है। मीरा मौन-सी हो गई है, मगर निश्चेष्ट नहीं। उसने नौकरी पकड़ी है यानी अपने बी० ए० की डिग्री को काम में लायी है। वह दस बजे सुबह निकलती है, लौटती है शाम के बाद। उसकी हर हरकत में एक स्वच्छंदता की झलक मिलती है। कलकत्ते की बहुतेरी राह-बाट और तौर-तरीके की जानकारी उसे हो गई है।

बाकी बचा हिरण। सो चाचा के मरने के बाद से इस घर मे आते-जाते उसके पैरों की आहट नही होती। वह यहाँ नहीं रहता, उसकी गतिविधि रहस्यमय-सी हो उठी है। कभी-कभी अचानक ही आ जाता है। आ जाता है तो या तो रसोई में जाकर खाने बैठ जाता है या बाहर के कमरे में कविता लिखते-लिखते सो जाता है। जीवन की जिल्लतें जितनी भी बढ़ गई हो चाहे, उसकी तंदुरुस्ती दिन-दिन निखरती ही आ रही है। उसे चूँकि कोई जिम्मेदारी नही, इसीलिए अशांति भी नहीं।

मौत का शोक शांत पड गया है, क्योंकि महाकाल का नियम ही यही है। जो अचानक ही सर्वहारा हो जाते हैं, उन्हें भी सब भूलना पड़ता है। उन्हे भी फिर से नया जीवन शुरू करना पड़ता है। शोक की चोट खाकर अकेले बैठे रोया करो, तुम्हीं केवल रोते रहोगे—संसार अपनी राह बढ़ता जायगा। लोग अपने रास्ते चलेगे। रोने से तुम्हें अकेले ही रोना पड़ेगा, लेकिन वहाँ हँसो तो दुनिया तुम्हारे साथ हास-मुखर होगी। जो भी हो, वियोग की वेदना को थामकर बैठा नहीं रहता कोई।

हुस्ना कुछ दिनों के लिए पूर्वी बंगाल गयी थी—हाजीपुर। खेतों में वह शायद वहाँ रोती फिरी थी। शायद वह गाँववालों के घर-घर गयी थी। पुराने मित्र की तरह एक-एक घर उसकी तरफ देख रहा था। जंगल के उस किनारे को वह देख आई थी—जहाँ की आँकी-बाँकी पग-डंडी पकड़कर औरते जलावन के लिए जाया करतीं। शायद नदी के तीर पर जा खड़ी हुई थी—जहाँ बरसात के पानी ने अभी तक चौंर को डुबा नहीं दिया है। जहाँ मछुए अपना जाल सुखाते हैं बाँसों के बेड़े पर। वहाँ की हवा में बड़े चाचा का निःश्वास घुमड़ता है, वहाँ की माटी आज भी उनके नेह से ओदी है। हुस्ना उस मुजीबमुल्ला का घर देख आई, जहाँ अभी उस दिन भी 'सिंधुवध' नाटक खेला गया। श्याम घोष का दवाखाना देख आई, जहाँ आज भी पीड़ित रोगी जुटते है। वह धान के गोलों को भरा देख आई। खेतों में जूट और धान के पौधे लहरा रहे हैं। मौसमी सब्जियों की भरमार। चील चीखकर आँगनों के ऊपर से उड़ जाती हैं,

नदी में मछरंग गोता लगाता है—गाँव के दो-तीन कुत्ते अभी भी उसे पहचानकर पास आये। ठाकुर के पोखरे के आस-पास झाड़ियाँ फैल गई हैं, फूलों के वे नन्हे-नन्हे पौधे सूख गए है और उन्हीं के पास उजड़ा-सा महल खड़ा है। इस दुर्गम गाँव मे इतने बड़े महल पर कब्जा जमाने के लिए आज तक कोई कर्मचारी नही पहुँचा। उस घर की ओर ताकने से रुलाई आती।

कई दिनों तक घूम-घामकर हुस्ना कलकत्ते लौटी। उसे देखकर हिरण ने पूछा—अरे, तुम लौट आई?

हुस्ना बोली—रहने की जगह नहीं मिली।

—जगह नहीं मिली!—हिरण अवाक् हो गया। कहा—दो-दो तो तुम्हारी ससुराल है वहाँ—रहने को जगह नहीं मिली!

हुस्ना हँसी। बहुत दिनों के बाद अपनी हँसी देखकर वह आप ही चौंक उठी। हँसकर बोली—किसी एक ससुराल की तलाश में गयी थी, मिली नही।

हिरण ने कहा—लगातार कोशिश करो, मिल जाएगी।—और वह चला गया।

सुमित्रा निकलीं। बोलीं—कहीं भी तेरा जी नहीं रमता है, क्यों?

हुस्ना बोली—इसकी वजह तो साफ है चाची।

—होनी थी, सो हुई। इस घर में अब इस तरह कितने दिन चलेंगे?

—तुमने कुछ सोचा है?

—सोची तो है मैंने एक बात।—छोटी चाची बोलीं—किंतु वह पसंद नहीं आएगी तुम लोगों को? आखिर तुम लोगों की दया के दान पर मैं इस तरह कब तक रहूँगी?

हुस्ना बोली—दया का दान क्यों कहती हो चाची?

—दान नहीं तो क्या कहूँ? अपने खर्च के लिए तुम्हारा मुँह नहीं जोहना पड़ता मुझे? मेरी जरूरत, मेरा पर्व-त्यौहार—यह-वह, आखिर सब-कुछ के लिए तो तुम्हारा ही आसरा रखना पड़ता है।

मिलाकर लड़की को देख लो। सच ही, आज से चौदह साल पहले उस दिन सुमित्रा सबकी निगाहों में अचरज की चीज थी।

हुस्ना ने कहा—जाने से परिचय तो हो जाएगा, मानती हूँ, मगर तुम्हारे लिए दंगा तो नहीं शुरू हो जाएगा ?

सुमित्रा बोलीं—क्यों ?

—क्यों ? लगता है, ज़माने से आईने के सामने खडी नहीं हुई हो तुम ! इस जुल्मी रूप को लेकर किस भाड़ में चैन मिलेगी भला ?

सुमित्रा हँस उठीं। बोलीं—चुप भी रह मुँहजली, अत्री यही है !

हुस्ना बोली—तो क्या हुआ ? उसका भविष्य भी उज्ज्वल ही दीखता है। अपने जीते-जी लेकिन उसका व्याह न करना।

हँसकर सुमित्रा बोली—क्यों ?

—तुम्हारी इस खूबसूरती के सामने कौन बहू खड़े होने की हिम्मत करेगी ? ऐसा कलेजा है किसे ? इसीलिए तो तुम्हारे साथ मैं और मीरा कहीं नहीं जाती थीं !

सुमित्रा खिखिला उठी। लेकिन हँसते-हँसते उन्होने एक लगने की बात कह दी। कहा—शायद इसीलिए तुम लोगों ने यहाँ मुझे एक कमरे में ठूँस रखा है ? कलकत्ता आये इतने दिन हो गए, एक भी दिन जो मुझे साथ लेकर कहीं गई होती। तुम लोगों के मन में जरूर कोई बात थी।

हुस्ना बोली—यह तुम क्या कह रही हो चाची ?

—क्यों, गलत थोड़े ही कह रही हूँ ? तीस साल की उम्र में मैंने देखा ही क्या और पाया ही क्या ? जिसके साथ मैं जोड़ दी गई थी, वह भी क्या आदमी था कोई ? वह क्या मेरी कोई आरजू रख गया ? —कहते-कहते सुमित्रा के चेहरे पर सुर्खी दौड़ गई।

हुस्ना बोली—तुम्हारी गोदी में चाँद का टुकड़ा जो है।

सुमित्रा उत्तेजित हो उठी। कहा—हाँ, मेरी राह में एक काँटा रख गया है—हर कदम पर चुभा करेगा। यानी मैं कभी जरा भी

स्वाधीनता न पा सकूँगी···है न ?

हुस्ना ने कहा—संतान राह का काँटा होती है चाची ?

—लेकिन सर्बस भी तो नहीं होती संतान। वह तो एक अंश होती है। इससे मैं माँ जरूर हुई, मगर माँ के सिवाय मैं क्या और कुछ नहीं ? और कोई काम नहीं है मेरा ? क्या मुझे और किसी भी रूप में खड़े होने का हक नहीं है ?

हुस्ना ज़रा देर चुप रही ! उसके बाद बोली—मैं ठहरी मुसलमान, तुम लोगों पर टीका-टिप्पणी करने का मुझे कोई हक नहीं। तुम संभ्रांत घर की बहू हो—साँझ-विहान पूजा-पाठ करते तुम्हारे दिन बीतते हैं,—मैं तुम्हारी इन बातों का जवाब दूँ तो कैसे चाची ?

चाची बोलीं—मुझे अगर सारी जिंदगी आँसू बहाकर ही गुजारनी पड़े, रोटी-कपड़ों के लिए औरों का मुँह जोहना पड़े, तो मैं समझूँगी ब्याह अभिशाप हुआ। जो लोग मुझे हाजीपुर के राजभवन में ले आए थे, वे मेरे दुश्मन थे। यह मालूम हो गया होता कि मेरी शादी एक जानवर से हो रही है, तो मेरे मामा यह ब्याह होने देते भला ? गरीब की लड़की थी, इसलिए मेरी क्या कोई कीमत ही नही थी ?

हुस्ना बोली—आदमी की कीमत सदा ज्यादा होती है, इसमें शुबहा की क्या बात ?

सुमित्रा बोलीं—कुछ भी समझने को बाकी नहीं रहा है। मैं अब अपने दावे पर खड़ी होना चाहती हूँ, दया पर नहीं जीना चाहती। मुझे अब तुम लोग छुटकारा दो।

—तुम क्या यहाँ से और कहीं चली जाना चाहती हो ?

—मैं छुटकारा चाहती हूँ हुस्ना, छुटकारा। छुट्टी मिल जाए तो मैं अपनी राह खोज लूँगी। आजाद होकर भूखी रहना भला है, मगर पराधीन रहकर निश्चिंतता से टुकड़े तोड़ना मंजूर नहीं।

हुस्ना ने हँसकर कहा—तुम्हें क्या किसी ने बाँधकर रखा है चाची ?

सुमित्रा बोलीं—बेशक ! हजार बार बाँधकर रखा है। मुझे नेह ने, आँखों की शर्म ने, मोह ने बाँधकर रखा है। मैं आदतों की जंजीर से जकड़ी हूँ, शास्त्रों ने मुझको घेर रखा है, आचार-आचरण का बोझा माथे पर है, डर ने पाँवों में वेड़ियाँ डाल रखी है। जरा हिलती हूँ कि झनझना उठती हैं, खींचती हूँ, पर टूटती नहीं। खोल फेंकना चाहती हूँ कि और जकड़ जाती हूँ। यह अब अच्छा नहीं लगता मुझे।

हुस्ना बोली—ऐसा लगता है चाची कि तुम सामाजिक-सम्मति चाह रही हो। मगर सोच देखो, आखिर मैं, तुम, हिरण, मीरा ही तो वह समाज नहीं है जिससे तुम्हें सम्मति की जरूरत है। समाज अपना था, वह टूट गया। हम सब बिखर गए है। किसी मशीन की जोड़ जाती रहती है तो उसके कल-पुर्जे जैसे बिखर जाते हैं, वैसे ही। हमारा समाज अब नहीं रहा, रह गई है उसकी एक धुँधली चेतना। लाखों-लाख लोग एक केंद्र से छिटक गए है—उनकी भीड़ नजर आती है, उनका कोलाहल, शोर-गुल सुनाई पड़ता है, परन्तु उनमें भाव की एकता नहीं है, एक से दूसरे का कोई सामाजिक बंधन नहीं है। नदी के वहाव में पत्ते जैसे बह आए हैं, बीच-बीच में रुकावट आती है, फिर पीछे से स्रोत का वेग धक्के देकर बहा ले जाता है, आज हम भी स्रोत की वैसी ही प्रबल धारा में बहे जा रहे है, पीछे से वेग का दबाव, अपने बचाव का कोई उपाय ही नहीं। हमें भयानक वेग से बढ़ते चलना है। आज तुम सामाजिक सम्मति चाह रही हो ! लेकिन किससे ? कहाँ है वह समाज ? वह व्यवस्था है कहाँ जो छुटकारा दिए बिना भी तुम्हें अमृत का आस्वाद देगी ? छोटी चाची, मुक्ति वास्तव में एक मानसिक चेतना है ! मुक्ति लेकर तुम जाओगी कहाँ आखिर ? आदमी के सिवाय् पनाह कहाँ ? लिहाजा, ऐसी हालत में जरूरत है विचार की, बुद्धि की ! तुम अनुशासन के सारे बंधन को एक पल में उठा फेंक सकती हो, बशर्ते कि उसके लिए तुम्हारी बुद्धि की हामी हो। तुम्हारी राह रोके कोई नहीं खड़ा है चाची।

हुस्ना आप ही जा रही थी फिर आप ही मुड़कर खड़ी हो गई। बोली—मैं मुसलमान की लड़की हूँ। एक भी कदम बढ़ाओ कि इसलाम की लाल-पीली आँखें। हमारा समाज आज भी जहालत, जड़ता और गंदगी में सराबोर है। आँखों के सामने ही देखा करती हूँ, कुछ इतर संस्कार कितनी ही भली औरतों की जिंदगी को चौपट किये देते है। कही प्रतिकार किया तो चट यही कहेंगे कि आस्तीन का साँप है, राष्ट्र का शत्रु है। लेकिन कहाँ, कोई समाज तो है नही अपना। मेरे तो परदा नही है, मैने शादी दो-तीन मरतबे की, मगर ऐसा कोई चरित्रवान मौलवी तो निगाहों से न गुजरा जो मेरी इज्जत न करे! सो असली बात जो है चाची, वह यह कि मुक्ति मानसिक हुआ करती है। मैं यह देखना चाहती हूँ कि आखिर किसी भय, किसी संस्कार, किसी अभ्यास ने तुम्हें जकड़ा है या नहीं! इनके मोह को तुम काट सकी हो या नही। अगर उसे तोड़ सकी हो, तो फिर नया समाज, नया आदमी, नया मन घड़ डालो। आज के समाज से बेशक तुम्हें निंदा मिलेगी, अपयश मिलेगा, लेकिन आनेवाला समाज तुम्हारे लिए स्वागत-सम्मान की माला लिये खड़ा मिलेगा। चाची, तुम्हारी मुक्ति तुम्हारे अपने ही हाथों है!

हुस्ना वहाँ से चली गई। सुमित्रा चुपचाप वहीं खड़ी रही। उनकी निगाह बरामदे के फर्श पर लगी थी, मानो उसी फर्श पर उनके भविष्यत् की तस्वीरें खिची हो। उस तस्वीर का वे मन-ही-मन विश्लेषण करने लगीं। हुस्ना ने झूठ नहीं कहा, मेरे अपने ही मन में एक भय है, लौकिक अनुशासन की चेतना है। मगर ऐसा कुछ आज भी रह गया है क्या जो सचमुच ही मनुष्य को बाँधकर रखता था? आज की बाधा सचमुच ही क्या पहाड़-जैसी भारी-भरकम है? हाजीपुर के जमीदार-वंश के साथ तो अपना एक दायित्व, एक बंधन था, मगर आज उस परिवार का संभ्रम बच भी रहा है? और यदि रह ही गया हो, तो इस इतने बड़े कलकत्ता शहर में उसका असर ही कितना-सा पड़ता है? आज वह

परिवार खाक में बिखर गया है, उसकी दौलत, उसका ऐश्वर्य, यहाँ तक कि उसका अस्तित्व भी खतरे में है ! कहाँ, उस परिवार ने तो राह में रोड़े नही अटकाये । उस परिवार का एक ही पुरुष बच रहा है—अत्रि । क्या वह सारे कुछ को लौटा लेगा ? नामुमकिन है । उसे भी भविष्य में भीषण संघर्ष करना पड़ेगा । उसे भी अभाव और उपेक्षा की धूल-माटी मे से खड़ा होना पड़ेगा—उसका रास्ता और भी बाधाओं से भरा है ।

जो भी हो, उसी नक्शे मे से लेकिन आज भविष्य के लिए एक संकल्प को बीन लेना पड़ेगा । आखिर मैं कम किस बात में हूँ ? छोटी किस बात में हूँ ? मेरे अधिकार में अब अड़चन तो कोई रही नहीं । जीवेन्द्र बाबू चल बसे, यह मार मीरा पर पड़ी, उनका क्या ? रैयतों ने तो उनके खिलाफ कोई नालिश नहीं की । अगर मै उनके आगे हाथ फैलाऊँ, मेरी खाली हथेली रिआया भर [illegible] ही देगी ? अगर मै उनके दुःख से दुःखी होऊँ, उनके अभावों को मिटाने की कोशिश करूँ, उनके वाजिब हकों को दाँव-पेच न करके कबूल कर लूँ, तो डर क्या है ? रानी भवानी, रानी रासमणि, रानी स्वर्णमयी—इन्होंने तो अपने गुणों से ही [illegible] था ! आज जितनी भी अशान्ति है, सबकी जड़ हैं ये पुरुष । जितना कुछ विवाद और मनमुटाव है, सब पुरुषों से पुरुषों का है । मै अगर दो दलों के बीच में अड़कर खड़ी हो जाऊँ तो सेतु-बंध नहीं होगा ?

हुस्ना सीढ़ियों से ऊपर गयी । दक्खिन तरफ वाले कमरे में उस बार अफजल और कुलसुम आकर ठहरे थे । अफजल के साथ अपनी प्रवृत्ति के प्रवाह में बहने के लिए आयी थी कुलसुम । आत्ममर्यादा-ज्ञान की कमी से अनगिनती लड़कियों का जीवन बरबाद हो जाता है—हुस्ना उसे यह बात समझा सके, उसके पहले ही अफजल उसे लेकर वहाँ से चंपत हो गया । घर की हवा जैसे अभी भी दूषित है ।

कमरे के अंदर हिरण्य एक कोने में बड़े ही महत्त्वपूर्ण कार्य में जुटा हुआ था । ऐसा महत्त्वपूर्ण कार्य जो समाज, देश, दुनिया के किसी काम नहीं लग सकता—यानी कविता लिख रहा था । सामने उसके पड़ा था

फटा हुआ कागज और पेंसिल का एक टुकड़ा। कहते हैं, लिखने के आनंद के लिए ही कविता लिखी जाती है। पाँव दबाये हुस्ना पीछे की तरफ से उसके पास पहुँची।

—कवि !

संबोधन कतई नया था। हिरण ने गर्दन घुमायी। कहा—आओ।

—हो क्या रहा था ? कविता ?

हिरण ने कहा—जिन दिनो ठाकुर के पोखरेवाले बगीचे में पहले-पहल कविता लिखा करता था। तब थोड़ी शरम आती थी, कोई देख लेता था, तो सकपका जाता था। अब लाज नही लगती।

हुस्ना ने पूछा—अब क्यों लाज नहीं लगती ?

—क्योंकि अब मोटामोटी यह यकीन हो गया है कि मैं कवि हूँ, लेकिन अच्छी कविता नही लिख सकता ! दिल की बेताबी और बात है और रचना करने की शक्ति और बात। यह खयाल ही गलत है कि कवि होने से ही कविता लिखी जाएगी।

हुस्ना ने गंभीर होकर बाते सुनी। सुनकर बोली—अच्छा तो है, लिखकर मुझे दिखाना, मैं सुधार दूँगी। मैं तुमसे वहुत बड़ी कवयित्री हूँ, यह याद रखना।

—वाकई सच कहा तुमने ! तीन-तीन बार शादी करने के बावजूद जो कुमारी ही रही, वह तो हर पल अपने को नये सिरे से निर्माण कर रही है। तुम बड़ी कवयित्री हो, इस बात मे सदेह की कहाँ गुंजाइश है !

—मजाक रहने दो घर-जमाई !—हुस्ना बैठ गई।

हिरण बोला—मजाक कैसा, किस्मत से कही मै हाजीपुर के राजभवन का जमाई हो जाता, तो तुम रिश्ते में मेरी साली नहीं होतीं क्या ?

हुस्ना हँसी। बोली—मैं बहुत ही थक गई हूँ हिरण। जी चाहता है, आँख मूँदकर चुपचाप पड़ी रहूँ।

—तुम चुपचाप पड़ी रहने को नहीं आयी हो हुस्ना—तुमने कमल के वन में मत्त-मातंगिनी की तरह प्रवेश किया है। मान गया तुम थक गई हो, मगर यह बोझ मेरे मत्थे क्यों ?

—इस बोझ का कुछ तो तुम बटाओ कवि।

हिरण बोला—वाह, क्या खूब कही है तुमने ! मुझे भी आदमी समझना शुरू कर दिया है ? मै निरा निक्कमा हूँ, औरों की तरह तुम आखिर इसे क्यो नही मानती ?

हुस्ना बोली—तुम निकम्मे हो, यह किसने कहा ?

—सबने कहा ! एक-एक ने कहा है ! जिसके हाथ से भुनी मछली भी भाग जाती है, उसमें काम की बात क्या हो सकती है ?

हुस्ना बैठी थी—थकावट के मारे अब वह फैल गई। धीरे-धीरे कहा—टूटे हुए संसार को मैंने सँवारने की कोशिश की, न हो सका। हम बिल्कुल बिखर गए है। कभी-कभी जी में क्या आता है, जानते हो ? लगता है, मीरा को तुम सही तत्त्व का स्वाद नही दे सके हो—भुनी मछली इसीलिए चलती हो गई !

हिरण बोला—रुको जरा, पहले वस्तु को समझ लूँ, सत्य पर पहुंचने की फिर कोशिश करूँगा। तुमने जिस तत्त्व की कही, उसका संसार में कहीं अस्तित्व नहीं है। और जिसका कोई अस्तित्व नही है, वह वस्तु नहीं, महज एक चेतना है, शास्त्र में जिसे अनुभाव कहते हैं। अब रही सत्य की बात ! सो यह सत्य एक ऐसी चीज है जिसकी संज्ञा सिर्फ दिग्गज पांडित्य में है। लिहाज़ा तुम्हारी महीपसी मीरा चौधरी को मैं कौन-सी चीज का स्वाद देता, तुम्हीं कहो।

हुस्ना बोली—सच-सच बताऊँ ? तुम उसे प्यार नहीं कर सके। तुम लोग काठ के पुतले को भी प्यार कर सकते हो, क्योंकि तुम्हारे प्रेम से वह प्राणवंत हो उठता है, तुम्हारी भक्ति से वह जीवंत हो जाता है।

हिरण ने कहा—माना मैंने। मगर बात क्या है, जानती हो ? काठ का पुतला डोलता नहीं चलता, बात नहीं बोलता, सत्य को झूठा बताकर

शोर नहीं मचाता। शायद इसीलिए उसे पूजा मिलती है। बात करता होता तो हम किसी भी देवता की पूजा नहीं करते—और तो और, शालिग्राम शिला को भी हम उतार फेकते सिहासन से! मगर यह पुतला काठ का नही है, यह है चमड़े का, फिर डोलता फिरता है! इसे प्यार करने का कलेजा क्या अपने पास था ? प्यार करने जाता भी, तो लगता या तो यह मिस्र का पिरामिड है या चीन की दीवार !

हुस्ना बोली—अब शायद उसकी पीठ पीछे निंदा करना चाहते हो ?

—निंदा। हिरण बोला—अभी बुलाओ उसे, तुम्हारे सामने ही उसके चरणों में हृदय का सारा अनुराग, सारा प्यार उँड़ेल देता हूँ—और फिर देखो कि वे इसका क्या प्रतिदान देती है !

अचानक खिलखिलाकर हुस्ना ने पूछा—सब कुछ उँड़ेल देने को गए थे, क्यों ?

—इसके लिए जाने की जरूरत नही पड़ती हुस्ना, यह उपलब्धि की बात है। तुम्हे तो सब पता है, तुमसे छिपाकर हमारी कोई भी घटना नही घटी। एक ही घर मे रहे, एक ही घर में पढ़े, एक ही साथ घूमते-फिरते रहे। अंजाम भी सुन लो—दोनों को अपने अलग अस्तित्व का पता ही न रहा था। एक-दूसरे के लिए नितात ही पुराना, एकांत आत्मीय-सा होकर रहा। दोनों के बीच ऐसी कोई खाली जगह ही न बची, जिसे कि प्यार से भर दिया जाए। जब भी ऐसी चर्चा आई, हम दोनों हँसकर लोटपोट हो गए, उसका मज़ाक बनाया।

हुस्ना का चेहरा गम्भीर हो उठा। बोली—ऐसा भी होता है भला !

—क्यों नहीं !—हिरण ने कहा—एक ही गाँव में अगर अलग-अलग घर में रहे होते, तो न होता शायद। जुदाई की चोट लगा करती, बाल्य-प्रेम का उदय होता। लेकिन ऐक ही घर में होने के कारण आबाल्य आत्मीयता से बाल्यप्रेम पिट गया बेचारा। जवानी की उमंगों

से जिसे नये सिरे से ईजाद नही किया जा सका, उस पर सपनों का ताना-बाना बुनना संभव हो सकता है कहीं ? याद आता है, एक ही कमरे में दोनो साज-सिगार किया करते थे ? याद है, मैं कमरे के अन्दर होता, तो भी तुम दोनों को अपना सिंगार-पटार करने में कोई हिचक नही होती थी ? उस उम्र में कोई आबुरू भी थी हमें ? कोई ओट थी ? नतीजा यह हुआ कि हम बड़े अन्तरंग हो गए । तीनों का शरीर तक हमारी आँखों के लिए नया नही । हमने यह भी देखा किया कि हमारे शरीर का कौन-सा अंग किस गति से बढ़ता रहा है । फलस्वरूप मैं और मीरा अगर एक वर्ष तक स्वामी-स्त्री की तरह भी रहते, तो रिश्ते का नयापन कुछ लगता भी शायद—मन की चीन्ह-पहचान के मामले में जरा भी रोमांच नहीं रहता । चूँकी ऐसा कुछ नहीं रहता जो कि अनाविष्कृत हो, इसलिए अनुराग का भी परिचय नही मिलता ।

हुस्ना चटाई पर ही आड़ी होकर पड़ गई । बोली—घर-जमाई, कोई कविता कहो, जिसे सुनते-सुनते मीठी नींद आ जाए ।

हिरण ने पूछा—कैसी कविता सुनना चाहती हो, कहो ?

आँखें बंद किए हुए ही हुस्ना ने हँसते हुए कहा—कहूँ ? ऐसी कविता सुनाओ जिससे नींद में भी फफककर रो पड़ूँ ।

बाहर पैरों की आहट हुई । वसंत ने अन्दर आकर कहा—जीजी, बड़ी दीदी आ गई, आपको बुला रही है ।

आँखें खोलकर हुस्ना बोली—उसे यहीं बुला ला वसंत । और सुन, तीन प्याला चाय बनाकर ले तो आ ।

वसंत चला गया । कोई दो मिनट में वहाँ मीरा आ गई । हँसकर बोली—बेशक, कविता करने लायक जगह है यह । याद है, इस पर कुलसुम का शाप है ?—और वह उन दोनों के बीच में बैठ गई ।

हिरण ने उधर को मुँह घुमाया । मजाक में कहा—मदन के भस्म का आधुनिक नाम है पाउडर । तुम्हारे सारे बदन में उसी की खुशबू है ।

हुस्ना बोली—मीरा जीजी, जमाई की चिकोटी को समझा ?

—समझा। —मीरा बोली—कभी तुम लोग गाँव में मेरे रूप की तारीफ किया करते थे, उस रूप की आज चूँकि वह दमक नहीं रही, इसलिए पाउडर पोतकर उसे जगाती हूँ। कमाकर अपने पैरों खड़े होने के लिए कुछ सफेद, कुछ रंगीन होना ही पड़ता है।

हुस्ना खूब हँस उठी। हिरण ने कहा—काव्य-चर्चा के समय विजयिनी का आगमन अच्छा ही लगा। मगर आज कलकत्ते के किस हिस्से पर फतह की गई, जान सकता हूँ ?

अपने वेनिटी बैग से ढाई सौ रुपये के नोट निकालकर मीरा ने उनके आगे फेंक दिये। विजय पाने की पहली निशानी—आज पहली बार तनखाह मिली है।

हुस्ना झटपट उठ बैठी। आनंद के अतिरेक से पुराना ही सम्बोधन कर बैठी—सच ? इतनी कीमत है तेरी ?

हिरण ने कहा—लगता है, मेरी कपड़े-रोटी की फिक्र अब जाती रही ?

मीरा बोली—कविता लिखकर जिन्दगी गुजारने से फिक्र रहने क्यों लगी ? कविता अनमोल वस्तु है। बेचो तो ढेरों रुपये ! पीलखाने में हाथी, घुड़साल मे घोड़ा !

हुस्ना ने पूछा—कविता से जमाई यदि धन-कुबेर हो जाए, तो तू इसे खसम मानेगी जीजी ?

मीरा ने कहा—न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी।

हिरण ने कहा—मुझे आपके पिताजी ने पाला, फिर उनकी उत्तराधिकारिणी के नाते आप क्यों न पालेंगी ?

—प्रतिपालन का मतलब ? रुपये कमाकर आपके पैरों पर रख दिया करूँ ?

हिरण ने कहा—मतलब तो यही होता है। लेकिन उसके पहले यदि हुस्ना का निर्देश मान लिया जाए ?

आँखें तरेरकर मीरा बोली—यानी स्वामी मानकर आपके गले

में हार डाल दूं ?

हिरण ने कहा—तात्पर्य तो यही निकलता है। यानी पुराने को चमका लेना !

मीरा ने तीखे स्वर में कहा—उससे कहीं बेहतर है कविता लिखना, इससे हो सकता है कभी रोटी का ठिकाना हो जाए ! यह न भूलें, मेरी माँग में सिंदूर की रेखा रही होती, तो ये ढाई सौ रुपये नसीब नहीं होते ! सरकार पुरुषों की है, सरकार ने यह जताया है कि स्त्रियों का वह समान आदर करने को तैयार है बशर्ते कि उनकी माँग में सिंदूर न हो !

—मैं ही रहूँ तो सिंदूर की जरूरत क्या पड़ती है ! मैं ही तो तुम्हारी माँग का सिंदूर हूँ !

खुशी से सब हँस पड़े। इतने में वसंत चाय दे गया।

चाय की चुसकी लेकर हुस्ना ने कहा—छोटी चाची ने लिया छुटकारा, मीरा ने कर ली नौकरी, बड़े और छोटे चाचा छोड़कर चल दिए —सब तहस-नहस हो गया ! अच्छा जीजी ?

—क्या कहना चाहती हो ?

—जमाई को साथ लेकर कुछ दिन कहीं घूमने निकले तो कैसा रहे ?

मीरा ने हुस्ना के बदन पर हाथ फेरते हुए कहा—हाँ, कहीं घूम-घाम ही आ। तबीयत सुधर जाएगी। बहुत बड़ा तूफान तेरे ऊपर से गुजरा है। कुछ दिनों के लिए हो आ कहीं से।

हँसकर हिरण ने ढाई सौ रुपये के नोटों को उठाकर अपनी जेब में रख लिया। बोला—मेरा कविता लिखना अब इतने दिनों में सार्थक हुआ है। रेल का किराया मिल गया।

आठ

लगा, दरवाजे पर कोई मोटर आकर लगी। जरा देर बाद ही मोटर का दरवाजा बंद करने की आवाज, फिर भारी कदम के जूतों की मसमसाहट और उसके बाद ही घर के सामने एक भलेमानस का आविर्भाव।

हुस्ना ने कागजात से नजर उठाई। मेघ जम आए थे, इससे कुछ-कुछ अँधेरा हो आया था। फिर भी आगन्तुक को गौर करके हुस्ना ने कहा—आप वही बेल्लिक बाबू है न ?

वेणु बाबू को पहले से ही यह खतरा था कि जाते ही कहीं उस मुसलमान लड़की से मुठभेड़ न हो जाए। बेलघट्टावाले मकान में एक ही दिन में उसे पहचान गए थे वे। गेंहुअन है !

कृतार्थ-से होकर उन्होने कहा—जी हाँ।

—आइए।—हुस्ना ने उनका स्वागत किया। कहा—तशरीफ रखिए !—न-न, हर्ज क्या है, मेरे पास ही बैठिए आप···संकोच काहे का।

बेल्लिक बाबू बोले—एक दिन और भी आया था। आप लोग कोई भी न थे और सिर्फ छोटी रानी से ही मुलाकात करके लौट जाना पड़ा था।

—छोटी रानी ? वह कौन ?—हुस्ना ने उनकी तरफ देखा।

—जी, रामेन्द्र बाबू की स्त्री···

हुस्ना बोली—ओ, हाँ···छोटी रानी ही हैं वे !

बेल्लिक बाबू ने देखा कि आज इस लड़की का मिजाज कुछ शांत है, शालीनता है इसमें। अब जरा सँभलकर बैठ गए। बोले—मेरे ही मकान में विधवा हुई न बिचारी—बड़ी-बड़ी मुसीबतें गुजर गई हैं इन पर सें, ठीक आपके आने से पहले !

—जी हाँ। हर मुसीबत में आपने मदद पहुँचाई। मतलब यह कि

आप ही की कृपा की बदौलत ये बिचारी वह नही गई ! रोटी, रुपया, आश्रय, आपने सभी कुछ दिया था। मैं सब सुन चुकी हूँ।

फिर वे कृतार्थ होकर बोले—जी, मै तो एक नाचीज ठहरा।

हुस्ना ने पूछा—आपकी माली हालत क्या है, मैं जान सकती हूँ ?

—जी, बड़ी मामूली-सी है वह भी। कलकत्ते में आठ-दस झोंपड़े है समझिए, उनका किराया आता है ! कुछ बंधकी का काम भी कर लेता हूँ। मोटा खाना, मोटा कपड़ा चल जाता है।

हुस्ना ने आवाज दी—वसंत…?

वसंत आया।—बाबू के लिए चाय ला—हुस्ना बोली।—आपने शादी की है बेल्लिक बाबू ?

—जी की है। बहुत बार स्कूल में पढ़ते समय ही हमारे यहाँ ब्याह हो जाता है। ऐसा ही नियम है मल्लिक परिवार का।

—और बाल-बच्चे ?

दो है—एक लड़का, एक लड़की। दोनों ही छोटे हैं !

हुस्ना बोली—आपकी उमर भी तो कम ही दीखती है। सुनती हूँ, कलकत्ते में अन्न की बड़ी कमी है, मगर आप लोगों की तंदुरुस्ती देखकर तो इस पर यकीन नहीं होता। शायद आप सम्पन्नों में से हैं ?

हुस्ना के मजाक पर वेणु बाबू पुलकित होकर हँसे।

हुस्ना फिर बोली—मैं बिलकुल सच कह रही हूँ। आपका रूप और स्वास्थ्य देखकर लगता ही नहीं कि आपकी उमर हुई है।

एक तरुणी के मुँह से अपने रूप और स्वास्थ्य की बड़ाई सुनकर बेल्लिक बाबू गद्‌गद हो उठे। बोले—आपका क्या खयाल है, कितनी उमर होगी मेरी ?

हुस्ना ने पूछा—पैंतीस पार कर गए हैं क्या ?

—सैंतीस साल। और आपकी क्या हुई ?

—मेरी ?—हुस्ना हँसी। कहा—औरतें भी कभी सही उमर बताती हैं ?

हिम्मत पाकर बेल्लिक बाबू ने कहा—लेकिन आपके कसे हुए स्वास्थ्य से कोई भी स्त्री ईर्ष्या करेगी ! आपने शायद अभी तक शादी नहीं की है ?

हुस्ना अबकी खूब हँसी। कहा—जी एक नहीं, दो बार शादी हो चुकी है, बुरे लोग तो बल्कि तीन बार कहते फिरते हैं !

—क्या कहते हैं ?—वेणु बाबू हुस्ना को ताकने लगे।

हुस्ना बोली—पूछिए मत बेल्लिक बाबू, यह कसा हुआ स्वास्थ्य बरकरार रखने के लिए सबको तलाक देना पड़ा !

वेणु बाबू बोले—आपके समाज के बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं, लिहाजा क्या कहते जानें क्या कह बैठूँ। हमारा समाज होता, तो सतीत्व की बात उठती।

हुस्ना बोली—यह बात अपने समाज में भी आती है। सतीत्व पर पहरा सभी समाज में है !

—आपके बाल-बच्चे ?

हुस्ना बोली—जी नहीं, मैं बेकार हूँ।

—बेकार से मतलब आपका ?

—मतलब कि पालने के लिए बाल-बच्चे खोजती फिरती हूँ।

वेणु बाबू हँस पड़े। ऐसे वक्त वसंत चाय ले आया। चाय की प्याली लेकर वेणु बाबू उत्फुल्ल होकर बोले—मुसलमान समाज में आप-जैसी लड़कियाँ और भी होतीं तो अच्छा था।

हुस्ना बोली—समाज जहन्नुम में जाता ! मुझ-जैसी लड़की की किसी भी समाज में कीमत नहीं वेणु बाबू। खैर, आपसे दो घड़ी बातें करके बड़ी खुशी हुई।

वेणु बाबू ने पूछा—आप सब क्या एक ही जगह के हैं ? इनसे आपकी इतनी घनिष्ठता कैसे हुई ?

—यह तो कह सकना कठिन है। लेकिन हाँ, हम सब एक ही गाँव के हैं। एक ही साथ बढ़े-पले हैं, एक ही चौके का खाना खाया है।

सुनकर बेल्लिक बाबू तो अवाक् रह गए। वे ख्वाब में भी यह नहीं सोच सकते थे कि एक कट्टर हिन्दू के घर मे ऐसी भी घटना घट सकती है। उन्होंने धीरता से कहा—मैं आपका परिचय जान सकता हूँ क्या ?

हुस्ना बो[illegible] - [illegible]। लेकिन जो हजारों-हजार मुसलमान घरों का हाल है, वही हाल अपना भी है। दो-तीन पुश्त तक चर्चा पहुँची नहीं कि हिन्दू निकल आए। और माँ के खानदान की छान-बीन मे लग गए तो कई नानियाँ ब्राह्मण की लड़की और कई बढ़ई-धोबी की विधवा निलती है। पठानो के जमाने में तीन हजार, मुगलो के जमाने मे तीन लाख और अंग्रेजों के समय में तीन करोड़ ! हम लोगों का परिचय इसी तरह से बढ़ा है !—और हुस्ना बड़े कौतुक से हँसने लगी।

बेल्लिक बाबू बोले—तो यों कहिए कि आपके पुरखे हिन्दू थे।

—पुरखो की खींचातानी से दोनों में से किसी का कल्याण नहीं। तब यह कहना कठिन है हमारे आदि मे कोई महिला थी कि पुरुष। मुसलमान यह खूब जानते है कि उनकी तादाद औरतों की चोरी से बढी है और हिन्दू भी यह जानते हैं कि सतीत्व धर्म तथा छुआछूत की कड़ाई से उन्हें लाखों-लाख स्त्रियाँ खोनी पडी हैं ! सो बेल्लिक बाबू, बंगाली हिन्दू या मुसलमान के परिचय की ख्वाहिश न रखना ही अच्छा।

हुस्ना तनिक उत्तेजना से हँसी।

सुमित्रा आकर दरवाजे के पास रुकी। हाथ उठाकर उन्होंने वेणु बाबू को नमस्कार किया। कहा—आप जंगली बिल्ली के पिंजड़े में पिल पड़े हैं—जान की ममता नहीं है ?

वेणु बाबू हँस पड़े। हुस्ना ने कहा—चाची, घर की बिल्ली बनने से ही जंगली बिल्ली होती है। फिर से कर दो एक बार मेरी शादी, देखो कैसा पोस मानती हूँ !

वेणु बाबू बोले—आप हुक्म दीजिए, मैं जुट जाता हूँ इसमें ! लेकिन आज आने का बड़ा लाभ हुआ, मेरी बहुतेरी गलतफहमियाँ दूर हो गई !

हुस्ना बोली—गलतफहमियाँ तो क्या गई होंगी, भली भले ही

लगी हो।

—भली लगने से ही तो भूल दूर होती है।

हुस्ना बोली—लोग भूल इसीलिए कहते हैं कि वे जानने की कोशिश नहीं करते।

हँसते हुए प्याली की चाय खत्म करके वेणु बाबू ठीक से बैठे। सुमित्रा ने पूछा—मेरी चिट्ठी मिल गई थी आपको ?

वेणु बाबू ने कहा—जी।

वसंत आ गया—जीजी जी, पड़ोसवाली आपसे भेंट करने आयी हैं।

उसकी ओर घूमकर हुस्ना ने पूछा—क्यों ?

—आपने दुमंजिले को किराये पर लगाने की कही थी न ?

हुस्ना उठकर चली गई। खाली प्याले को उठाकर वसंत ने पूछा—पान ला दूँ ?

—नहीं, तुम जाओ।—वेणु बाबू ने कहा।

सुमित्रा तशर का एक कपड़ा पहने थी। गले में तुलसी की माला का एक हिस्सा झाँक रहा था। उनकी गजब की खूबसूरती में वह सात्विक परिधान अनूठे लावण्य से मिल गया था। उनकी ओर विस्मयाभिभूत दृष्टि से देखते वेणु बाबू ने हुए कहा—चिट्ठी के जवाब में मैं ही आ गया।

अनुगत पुरष को औरतें पहली ही निगाह में पहचान लेती हैं। सुमित्रा ने कहा—आपसे यह-वह लाने-करने को कहूँ, मुझमें यह हिम्मत नहीं। लेकिन आपने एक दिन यह दिलासा दिया था कि आप मेरा अनुरोध रखेंगे।

बड़े आग्रह से उन्होंने कहा—जो भी आग्रह चाहें, आप कर सकती हैं। मेरी बात का इधर-उधर नहीं हो सकता।

सुमित्रा ने कहा—इसके पहले जब आये थे, आपने मुझे अपने घर लौट जाने की सलाह दी थी। अब मैंने खुद भी यही तय किया है कि मैं अत्रि के साथ वहाँ लौट जाऊँगी—अपनी रिआया के बीच पहुँचूँगी। और

वहाँ अपने हक, अपने दावे पर ही मुस्तैद रहूँगी। यहाँ मुँह के बल पड़ी रहने से मेरा काम नहीं चल सकता।

बेल्लिक बाबू बोले—बहुत खूब। नाबालिग की अभिभाविका होकर सारी जायदाद की बागडोर आप अपने हाथ में लें। अपने भरोसे खड़ी हों।

—लेकिन इसमें आप मेरी मदद करें।

बेल्लिक ने पूछा—आपको कितने रुपयों की जरूरत है?

सुमित्रा बोलीं—रुपये मुझे नहीं चाहिएँ। लेकिन आप-जैसे एक दूरंदेश आदमी का सहारा मिले, तो मेरा बड़ा उपकार होगा। और यह भरोसा मुझे स्वयं आपने दिया है।

—यानी आप यह चाहती हैं कि मैं साथ चलूँ?

—यदि इतनी कृपा कर सकें।

—लेकिन इस पर ये लोग क्यों राजी होने लगे? यों समझो, मैं तो आप लोगों का कोई होता नहीं हूँ। मेरे साथ आपको ये लोग जाने क्यों देंगे?

—क्यों न देंगे?

—मैं ठहरा कलकत्ते का आदमी, यानी इस ओर का—वेणु बाबू ने गर्दन छुड़ाते हुए कहा—फिर मैं पूर्वी बंगाल तक कभी गया नहीं।

—मेरे साथ जाना आपके लिए बड़ा कष्टकर होगा?—सुमित्रा ने उद्विग्न होकर पूछा।

—कष्टकर? जी, वैसी बात नहीं। लेकिन सुना है कि इधर के लोग उधर जाते हैं तो नजरबंद कर लिए जाते है! कोई-कोई यह भी बताते है कि बिना कलमा पढ़े वहाँ रहने नहीं दिया जाता है! जहाँ भी दीखे, वहीं काम तमाम कर दिया। कई लोग कहते हैं, तहमत बाँधकर न चलिए तो रास्ता चलते कत्ल करते हैं!

सुमित्रा बोलीं—ऐसी अफवाहें इधर बहुत उड़कर आती हैं।

वेणु बाबू बोले—लेकिन मैं तो उस इलाके के बारे में कुछ भी नहीं

जानता ? वहाँ सुनते हैं, तमाम नदी ही नदी हैं ? रसोई से कमरे में जाने के लिए नाव से जाना पड़ता है ? वहाँ लोग धन खेतों में मछलियाँ मारते हैं ? सारा इलाका डूब जाता है। इन दिनों लोग वहाँ जूते नहीं पहनते ?

—सब सच है !—सुमित्रा खिलखिला उठी। सुफेद दाँतों के साथ-साथ उनका चेहरा भी झलमला उठा।

—मगर मैं तैरना तो नहीं जानता !

सुमित्रा ने कहा—नहीं जानते तो अत्रि से सीख लीजिएगा !

वेणु बाबू बोले—खैर, तब चलूंगा। लेकिन जाने के पहले काली मैया को पूज लूंगा। क्या पता, तहमत बाँधे, दाढ़ी बढ़ाये लौटने की नौबत आए !

सुमित्रा फिर हँसी। बोली—वह जिम्मेवारी आप मुझ पर रहने दें। तो मैं जाने का दिन तय कर लूं ?

करुण कंठ से वेणु बाबू ने कहा—कर लीजिए। तो इस बात का आप मुझे भरोसा देती हैं कि लौटते समय अपने बाप का नाम बदलकर नहीं लौटना पड़ेगा ?

—हाँ। वालदैन आपका यही रहेगा।

वेणु बाबू ने जरा देर जानें क्या तो सोचा। कहा—एक बात और। जायदाद की देखभाल अब तक यही लोग करते रहे हैं। आज इन सबों को छोड़कर आप वहाँ अकेली जा रही हैं। कहीं उन लोगों ने न माना तो ?

सुमित्रा ने पीछे की ओर उलटकर एक बार देख लिया। फिर आवाज धीमी करके कहा—यही लोग माने मीरा ही न ? वह वहाँ कभी नहीं जायगी। बाकी बातें आपको रास्ते में बता दूंगी। मैं आपको सिर्फ यह बता देना चाहती हूँ कि डरने की कोई बात नहीं।

मोह के फंदे में पड़ जाने के बावजूद वेणु बाबू हिसाब भूलनेवाले आदमी नहीं। बोले—अन्यथा न सोचें तो मैं एक बात और जानना

चाहूँगा।

—कहिए ?

—वहाँ मैं अपना कौन-सा परिचय बताऊँगा ?

अबकी सुमित्रा के स्वर में थोड़ी आँच झलकी। कहा—परिचय चलकर मैं दूंगी ! मेरे पति के रुपयों से यहाँ के बहुतेरे लोगों ने अपनी किस्मत बना ली है। आपके परिचय की कमी न पडेगी।

—खैर, वही सही। मै चलूँगा। वहाँ कोई झोंपड़ा तो मिल जाएगा न ? मैं उसी में ठहरूँगा !

आँखें कपाल पर चढाकर सुमित्रा बोलीं—आप झोंपड़े मे रहेंगे और मैं रहूँगी प्रासाद में ? यह सोचा ही कैसे आपने ?

बेल्लिक बोले—साथ में खान-पान का खर्च कब तक का ले चलूं ?

सुमित्रा बोली—हद कर दी आपने तो। अजी, वहाँ तो खाए कौन, यह समस्या है। आपका सारा भार मेरी रियाया, मेरे कारिंदे लेंगे। आपको फिक्र ही नहीं करनी पड़ेगी कुछ।

—लेकिन वे सब-के-सब ही हुस्ना के समाज के है !

—मगर वे आदमी हैं। मेहमान का आदर-सत्कार करना जानते हैं।

वेणु बाबू ने कुछ क्षण सोचा। फिर कहा—तो अगले बुधवार को हम चल पड़ें। दिन अच्छा है।

सुमित्रा बोलीं—वसंत हमारे साथ जायगा। मैंने कह रखा है। इन चार-पाँच दिनों में मै सारी तैयारियाँ कर लूं ! बीच में आपके यहाँ वसंत को एक बार भेजूंगी। यहाँ अब एक भी दिन रहना मुझे असह्य हो रहा है वेणु बाबू।

वेणु बाबू ने कहा—बेशक। मूर्त्ति के साथ घट न हो, तो लोग उसे पुतला कहेंगे। आपका यथार्थ परिचय आपका गाँव ही है। कहते भी हैं; स्वदेश का ठाकुर विदेश में कुक्कुर।

पीछे से आकर हुस्ना खड़ी हो गई। उसे देखकर बेल्लिक बाबू ने कहा—तो आज अब इजाजत दीजिए। आज मैंने बहुत वक्त जाया किया

आप लोगों का।

कुतूहल-भरे स्वर में हुस्ना ने कहा—आपकी शक्ल से यह लग रहा है कि इसी तरह वक्त जाया करने के लिए आप फिर आयेंगे ?

बेल्लिक और सुमित्रा, दोनों हँसे। बेल्लिक ने एक बार हुस्ना की ओर देखा। उसके हाव-भाव मे कुछ तो है लापरवाही और कुछ जवानी की विह्वलता। खुशी की उमंग में हँस उठती है, तो लगता है, सर्वांग का स्वास्थ्य भी थिरक उठता है। लडकी यह असाधारण है, इसमें संदेह नहीं। पुरुष के सामने आने पर संकोच की जड़ता नही आती, पहनावे की शिथिलता की कोई परवाह नहीं—मानों जीवन की आलोचना में संकोच का खयाल ही नहीं—बेशक यह लड़की एक आश्चर्य है। बेल्लिक को अपनी राय बदलनी पड़ी। मुनाफे के खाते में एक बड़ा-सा अंक जमा हुआ।

उन्होंने कहा—आपका आकर्षण यदाकदा मुझे यहाँ खीच ही लाए तो क्या वह मेरा अपराध है ?

हुस्ना बोली—जरूर आएँ, जरूर। हम सब टूटी नाव हैं, डाँड़ टूट गई है, पाल फट गया है, नीचे सूराख हो गया है—फिर भी विदेश के इस बन्दरगाह पर पनाह के लिए आयी है। बीच-वीच में आ जाया करें, तो खुशी ही होगी। यहाँ है, नही भी रह सकते है। फिर किस वन्दरगाह की ओर कूच करना पड़ेगा, यह भी नही मालूम। हमारा न तो वर्तमान है, न भविष्य। हम ऐसी नाव है, जिसके लंगर नहीं। किसी को रहने का एक घेरा मिल जाता है, किसी को मुट्ठी-भर दाना ; कोई राह-बाट में सोकर दिन काटता है, किसी को भीख भी मयस्सर नही !

सुमित्रा बोलीं—सुनती है हुस्ना, अगले बुधवार को हम घर छोड़कर चले जायँगे—मैं और अत्रि।

—कहाँ ?—हुस्ना ने पूछा।

—हाजीपुर। वेणु बाबू को मैं अपने साथ ले जा रही हूँ। वसंत भी मेरे साथ जायगा।—उसकी वाणी में निश्चयता थी।

—और मुझे साथ न ले चलोगी छोटी चाची ?

—इस बार नहीं ।

—क्यो ?

—मै वहाँ अकेली टिकना चाहती हूँ । जानना चाहती हूँ कि अकेले मेरी कोई कीमत है या नहीं ।

हुस्ना बोली—थाह मिलेगी ?

सुमित्रा बोली—न मिलेगी तो फिर तुझे ले जाऊँगी ।

अचानक डरी-सी हुस्ना बोली—चाची, तुम बड़ी रानी तो हो नहीं ! तुम्हें अकेली हम छोड़ कैसे दें ? आखिर वह सिंहवाहिनी जगद्धात्री तो हो नहीं तुम—तुम्हे देखकर उनमें आदर जगेगा ? यदि तुम्हारी समुचित भेंट-पूजा वहाँ न हो ? चाची, चौधरी परिवार की छोटी रानी जीविका-रक्षा की सूरत लिए खड़ी हो सकेगी ? मुझे माफ करना, तुम्हारी यह जालिम सूरत देखकर मुझे डर लगता है !

सुमित्रा बोली—यह सब कह-सुनकर तू मेरा उत्साह तोड़ना चाहती है ?

हुस्ना बोली—राम कहो, तुम अपने सिंहासन पर बैठोगी, इसमें मेरी राय-सलाह की कीमत भी क्या हो सकती है चाची ? मै सिर्फ यह देखूँगी कि बड़े चाचा की मर्यादा का बचाव तुमसे होता है या नही—यह देखूँगी कि चौधरी परिवार की छोटी बहू को उसके योग्य सम्मान मिला है या नहीं । लेकिन तुम जा तो रही हो, जाने का वह समारोह कहाँ हैं ? समारोह से ही तो श्रद्धा मिलती है—यही तो तुम्हारे समाज का परिचय है ! वहाँ के गरीबों के मन कैसे भुलाओगी ? पगड़ीवाले प्यादे तुम्हारे कहाँ हैं, डोली-पालकी, बाजा-गाजा, वस्त्राभूषण—कहाँ है यह सब ?

सुमित्रा के सर्वांग के रोंगटे खड़े हो आए, उनकी दोनों मुँदी आँखों में हुस्ना के स्वर के जादू ने माया-सी फेर दी । पुलकित कंठ से बोलीं—तेरी अनुमति पाये बिना मैं नहीं जाऊँगी हुस्ना । तू अनुमति दे, मैं फिर से सारा ऐश्वर्य लौटा लाऊँगी !

—तुम यह असाध्य साधन कर सकोगी ?

गर्वित स्वर में सुमित्रा ने कहा—न कर सकूँ तो चौधरी वंश की बहू ही बेकार बनी मैं। अगर न कर सकी तो यह शक्ल तुम लोगों को फिर कभी न दिखाऊँगी।

बेल्लिक बाबू विस्मयाभिभूत होकर अपलक हुस्ना को देख रहे थे।

सुमित्रा की बातें सुनकर हुस्ना जरा रुक गई। फिर जाने क्या सोचकर भयभीत हो बोली—चाची, तुम ऐसी प्रतिज्ञा करके मत जाओ। वादा कर जाओ कि तुम यहाँ वापस आओगी।

सुमित्रा बोलीं—न, अब लौटूँगी नहीं मै।

—हाजीपुर में जगह न हो पाई तो जाओगी कहाँ तुम ?

—मैके चली जाऊँगी।

—वहाँ भी तो कोई नहीं है ? किस भरोसे रहोगी ?

—वहाँ की मिट्टी थामे रहूँगी ! आखिर वह अपना देश है। वहाँ पेड़ में फल है, नदी में जल है !

हुस्ना बोली—यह क़हना बहुत आसान है चाची। जिन्होने घर से बाहर कभी कदम नही बढ़ाया, वे नहीं जानते कि यह दुनिया कितनी टेढ़ी है। तुम्हारी तरह प्रतिज्ञा बहुतों ने की, लेकिन अन्त तक उन्हे उसी मिट्टी में मुँह के बल गिरकर जान गँवानी पड़ी।

सुमित्रा आग-सी हो गई। देखते-देखते मामला पेचीदा हो गया। उन्होंने कहा—अनुमति नही देगी तू ?

हुस्ना की दोनों आँखें लहरने लगीं। बोली—तो सच कहूँ, मेरे कलेजे के भीतर से बड़े चाचा कह रहे हैं, हुस्ना, तू छोटी रानी को जाने मत देना।

सुमित्रा ने जोर से कहा—अगर तुम लोग मुझे रोकती हो, तो मैं यह समझूँगी कि जो संदेह मुझे था, वह सच है। मैं यह मानूँगी कि तुम लोगों ने साज़िश की है, तुम लोग अत्रि को राह का भिखमँगा बनाना चाहती हो। यह भी सोचूँगी मैं कि जेठजी तुम्हें कभी पहचान न सके थे !

उन्होने अब तक जिसे पाला, वह साँप थी। मैं खूब समझ रही हूँ कि सबको अँगूठा दिखाकर किसी दिन तू सारी जायदाद पर कब्जा जमा बैठेगी। तेरा लोभ, तेरी जालसाजी, तेरा फरेब, तेरा रश्क—और कोई जाने न जाने, मैं सब जानती हूँ। आपने देख लिया वेणु बाबू? मुसलमान का एतबार नहीं, यह बात एक मुसलमान ही बता दे रही है।

—चाची!

चाची ने कहा—जरूर कहूँगी, तूने मुझे कहने को मजबूर किया है! जायदाद मेरी है, यह मेरी ससुराल का हक है, रिआया मेरी है—जो कुछ भी है, सब मेरा है—लेकिन चूँकि उसके पीछे तेरा स्वार्थ है, इसीलिए तो तू मुझे जाने नहीं देना चाहती! सदा तूने चौधरी परिवार का नमक खाया और आज नमकहरामी! विश्वासघातकता! तेरे कोई धर्म नहीं?

सिर झुकाये हुस्ना फटकार और अपमान की सारी बातें सुनती गई। अब सर उठाकर वह जरा हँसी। सुमित्रा की ओर एक बार ताका। बोली—वेणु बाबू, तो आप अगले बुधवार को ही छोटी चाची को लेकर रवाना हो जाएँ।—और उसने झुककर चाची के पैरों की धूल ली। कहा—मैं तुम्हारे ही परिवार में पली हूँ चाची—इसलिए तुम्हारा अपमान मै जरूर ढो सकूँगी। लेकिन मुझसे अगर कोई कसूर बन पड़ा है, तो मुझे माफ करती जाना। और मेरी अनुमति क्यों, तुम अपने अधिकार से ही वहाँ जाओ।

हुस्ना रुकी नहीं, चली गई। उसके पाँव थरथरा रहे थे।

ठाकुर रसोई बनाकर चला गया। इधर आसाढ का आसमान मानों फटकर बरसने लगा। पानी के साथ-साथ तीखी हवा के चाबुक-जैसे झोंके—इससे उस घर, दुमंजिले से एक-मंजिले पर, मानों एक कठोर शासन बेंत मारता चल रहा हो। मेघलोक को चीरकर बीच में कहीं वज्रपात हो गया, दूर के किसी गाँव से भीगे शंख की आवाज तब भी आ रही थी। बिजली की उस कड़क ने मानों झोंटा पकड़कर इस घर को झकझोर दिया।

अचानक घर की बिजली की बत्तियाँ बुझ गई। बत्ती सिर्फ आज ही रात के लिए गुल हो गई, सो नहीं, किसी भी आदमी की आवाज नहीं मिल रही थी। अपना काम खत्म करके वसंत अभी ही जाने कहाँ दुबक गया। बीच में दबे पाँव हिरण आता दीखा था, लेकिन फिर वह भी लापता हो गया। सुमित्रा का कमरा बिल्कुल सन्नाटा। मीरा लौटकर आ जरूर गई है, लेकिन अभी इतने बड़े मकान में उसे ढूँढ निकालना मुश्किल है। अत्रि का मास्टर आकर बारिश शुरू होने के पहले ही लौट गया है। अत्रि शायद अपनी माँ के पास सो भी गया। रह गई एक हुस्ना। मगर कहाँ है वह? तिमंजिले की छत पर? उस छत पर का आकाश बहुत बड़ा जो है! सागर के पीड़न से जिस आसमान में लाखों-लाख मेघ दक्खिन से उत्तर को दौड रहे है, जिस महाशून्य में आँधी का जन्म होता है, जन्म होता है बिजली और वज्र का—क्या हुस्ना उसी ओर ताक रही है? हवा के झोंके में उसका दामन उड़ गया है? बह गया है आकाश की इस बाढ़ में उसका हृदय? आसाढ़ का काला आसमान क्या उसके बालों में सिमट आया है?

न, हुस्ना कहीं नहीं। कहीं उसकी जगह नही। न मोह के बंधन में, न बंधुता में, न वेदना में। वह अकेली है, एकबारगी अकेली, सुनसान। पास खीचो तो दूर हट जाती है, और दूर हटती है तो पास आने के लिए रोती है। लोभ से वह भूलती नहीं, स्नेह से गलती नहीं, दुःख में टलती नहीं। न, हुस्ना कहीं नजर नहीं आती। उद्दाम जीवन से परे जो सीमाहीन विरह-लोक है, वह शायद वहीं रहती है। धूल से मैली धरती का कोई शोरलगु वहाँ नहीं पहुँच पाता, हवा वहाँ कोई खबर लेकर नहीं जाती; वहाँ जीवलोक की चेतना नही है—वह शब्द-स्पर्श-गंध से परे अनंत अंध-लोक है—वहीं चेतना-बिंदु के समान हुस्ना की महाबुभुक्षा विचरण करती फिरती है!

दो घण्टे बीत गए, कोई बत्ती न जली। आस-पास के घरों से छनकर, नीचे के कमरों की खिड़की से होकर कही-कहीं रोशनी की झलक-सी

आ पड़ती है, लेकिन उससे इतना ही नजर आता है कि हवा के झोंकों से कमरों में बारिश का पानी भर गया है। आज सब कुछ खुला ही पड़ा रहे, अन्दर-बाहर कही भी बन्द न हो। बारिश में सब बह जाए आज, झोंकों मे सब उलट-पलट हो जाए, सूने कमरों में बिजली उन्मादिनी-सी घूमती फिरे—आज जीवन का कुदन-बंधन सब मिट जाए।

अंधेरे रसोई-घर में जलते हुए चूल्हे की आभा तब भी थी, जैसे श्मशान में जली चिता की अतिम आभा रह जाती हो। वहाँ एक बार हिलती हुई एक छाया-मूर्त्ति दीखी। झटपट उसने कोई काम बनाया और बाहर निकल गई। अंधेरे मे कुछ देखा नही जाता!

अचानक किसी के बदन से किसी को ठेस लगी। गिरते-गिरते रह गया।

—कौन?—हुस्ना ने पुकारा।

—मै हूँ। कौन है, हुस्ना?—हिरण ने जवाब दिया।

—हाँ। तू रसोई में क्या कर रहा था?

—घर-जमाई होती कहीं, तो आधी रात गए रसोई में तू भी घुसती। आज मुझे एक प्याला चाय तक न नसीब हुआ, मालूम नही?—हिरण ने शिकायत की।

—तू नया जमाई होता, तो मालूम रहता। रसोई में खुट्-खुट् की आवाज सुनकर बैठी सोच रही थी—चूहा या छुछून्दर होगा। तुझ पर क्या सुख-दु:ख का कोई असर नहीं पड़ता?

—लगता है, तुझी पर बड़ा असर पड़ता है! आ, मेरे साथ आ।

हिरण के हाथ में गरम चाय का प्याला था। बाएँ हाथ से उसने हुस्ना को पकड़कर खड़ा किया। बोला—चल, आधा प्याला तुझे दूँगा—गरम-गरम पीना।

थकावट से बोझिल शरीर लिये हुस्ना धीरे-धीरे सीढ़ी चढ़ने लगी। बीच में हिरण बोला—तू इतनी ठंडी क्यों है रे? ऐसा लगता है, तू जिंदा ही नहीं। रो रही है? कि रुलाई दबा रही है? अंधेरे में ठीक समझ

नहीं सकता। मेरे साथ चल, थोड़ी-सी चाय पीना।

बड़े स्नेह से हिरण उसे ऊपर ले गया। हुस्ना चूँ भी नहीं कर रही। हिरण ने कहा—अँधेरे मे खड़ी रह। फिर फफककर रोई, तो कान मल दूँगा, कहे देता हूँ। छुटपन में जैसे मलता था। ले, प्याले से तू पी, मैं प्लेट से पी लूँगा। आज खूब पिटी है, छोटी चाची से! खूब लगी है न? इसी से चल, मेरे कमरे में चल, तेरे रोने से मैं अपनी कविता का रोना मिला दूँगा। कविता में चकवा मर गया, तू वही चिरंतन चकवी है। तेरे कलेजे की वेदना से विश्व का आकाश भरा है, आँखों के पानी से भरी है मधुमती नदी, चौचीर पड़े खेतों में तेरा ही हाहाकार सुन पाता हूँ। मेरे कमरे में चल, आज मैं तेरे रोने का दाम दूँगा, तुझे सांत्वना दूँगा कविता से।

अन्दर गयी तो देखा, हिरण ने कोने में जला रखी है छोटी-सी मोमबत्ती। हुस्ना थमक गई। कहा—जमाई, आज मैं रोशनी नहीं बरदाश्त करूँगी, किसी के हाथ की रोशनी में देखना नही चाहती मैं। तू छोड़ दे मुझे, मैं अंधेरे में रहूँ, अंधेरे में देखूँ।

हुस्ना तेजी से फिर नीचे चली गई। मोमबत्ती की झुकझुकाती रोशनी में उसके पीछे खड़ा हिरण सुन्दर, स्वच्छ और शांत हँसी हँसा। उसके बाद झुकी हुई मधुर वाणी में बोला—कविता।

नीचे वर्षणमुखर अंधेरा। हुस्ना धीरे-धीरे नीचे पहुँची। दोनों आँखों में कैसा तो आँसू-सजल तीखापन। वह मायावादवाली नही, विद्रोहिणी है। वह एक से दूसरे कमरे का चक्कर काटती रही अंधेरे में। यदि वह विषधर हो, तो माथे में मणि तो होनी चाहिए। मगर कहाँ है वह मणि? इस पगली को खबर कौन दे इसकी?

किसी कमरे में वह बिछावन के पास जाकर खड़ी हुई। ठंडा बिस्तर, बारिश के पानी से ओदा। टटोलकर उसने यह-वह चीज देखी। एक शीशी हिल उठी, एक बर्तन चीख उठा। और वह ताड़ गई, वह बड़े चाचा की अन्तिम शय्या है। इस कमरे में एक महत् प्राण का, एक कल्याण-

चेतना का निःश्वास घुमड़ रहा है । यहाँ वह अंतिम वचन गूँज रहा है—हुस्ना, अन्याय को माफ न करना । धर्म और बंधुता के नाम पर कदाचार को कभी बरदाश्त न करना । हुस्ना, साजिश के इस जमाने में तू सभी जाति, सभी धर्म, सभी समाज से अलग जाकर खड़ी हो । तेरी उठी हुई तलवार की चमक से सभी अज्ञान दूर भागे ।

हुस्ना बाहर निकल आई । पास ही कही आदमी का आभास मिल रहा था । वह पूरबवाले कमरे में गयी । खाली तखत पर बैठने लगी तो उसका हाथ किसी के पाँव से लग गया । पूछा—कौन ? मीरा जीजी ?

मीरा ने कहा—हूँ ।

—चुपचाप पडी हो ?

—यों ही । आज बत्ती नहीं जलेगी ?

हुस्ना बोली—नहीं ।

मीरा ने और कुछ कहना न चाहा । हुस्ना बाहर चली गई । वीणा के आज सारे ही तार मानों बिखर गए हैं ।

अचानक बीच ही रास्ते में रुक गई । कहीं से रोने की आवाज हो रही है न ? वह सामने के कमरे में गयी । बगल के घर की रोशनी आकर कमरे के अंदर पड़ रही थी । देखा, अत्रि अंधेरे में खड़ा है । पास जाकर हुस्ना ने उस पर अपना हाथ रखा । पूछा—यहाँ क्यों खड़ा है अत्रि ?

अत्रि फिर फफककर रो उठा । बोला—तुम हम लोगों को भगा क्यों दे रही हो जीजी ?

—क्यों न भगाऊँ भला ? मैं मुसलमान हूँ न ! मै विश्वासघातक हूँ, आस्तीन का साँप ! लेकिन तू इतना ही जानकर जा रहा है अत्रि कि मैंने तुम्हें भगा दिया ? और इतने दिनों के प्यार के बदले कुछ देकर जाते न बना ?

अत्रि को अपनी छाती से जकड़कर हुस्ना रोती-रोती वहीं बैठ गई ।

नौ

फुटपाथ पर की दूकान के वगल से अंदर जाकर दुमंजिले की बाईं ओर डॉक्टर विमलाक्ष का दवाखाना है। लकड़ी के तख्ते से कमरे का बँटवारा किया गया है। एक तरफ दवा-दारू, दूसरी तरफ विमलाक्ष का चेम्बर। चेम्बर के बाद ही दुमंजिले पर जाने की सीढ़ियाँ हैं। सीढ़ी पर धुँधलका-सा रहता है।

दो कदम अन्दर दाखिल होते ही मीरा से विमलाक्ष की चार आँखें हुई। शनिवार और रविवार को न लें, तो यह रोजमर्रा हो गया है। चेम्बर में चूँकि और-और लोग रहते हैं, इसलिए मीरा से बातें करने की सुविधा नहीं होती। डॉक्टर दुनियादार है, सबके सामने वह मीरा से डॉक्टर की स्वाभाविक गंभीरता लिये ही बातें करता। और कलकत्ते की खास तहजीब, तौर-तरीके की जानकारी थोड़ी बहुत मीरा को भी हो गई है।

मीरा दुमंजिले के छोटे-से बरामदे से होकर परदा हटाकर एक कमरे में दाखिल हुई। निर्जन कमरा। कमरे के साथ नहान-घर लगा। उतनी ही जगह में लकड़ी के तख्ते से घेरकर रसोई-घर भी बना दिया गया है—बिजली के चूल्हे से वहाँ रसोई बनाई जा सकती है। बटवारे के एक ओर रोगी देखने की व्यवस्था। यों भी डॉक्टर विमलाक्ष का नाम-गाम है, ऊपर से विलायत-फिरता की मुहर। यह कमरा भी उन्हीं के नाम से किराए पर लगा है।

मीरा के हाथ में बरसाती थी। उसे सहेजकर रखने के लिए तुरत कमरे में एक नौकर आ पहुँचा। बरसाती उसके हाथ में देते हुए मीरा थकावट के मारे बिस्तर पर ही बैठ गई। औरतों की शक्ल में चमक हो तो नौकरी तो शायद जल्द ही जुट जाती है, मगर हड्डीतोड़ इस-उस काम में अवसर नहीं जुटता। आज मीरा को काफी मशक्कत करनी

पड़ी थी।

उस लड़के ने मीरा के पैरों के जूते उतार लिए और स्लिपर पाँव के पास रख दिया। कंधे पर के तौलिये से उसने शृंगार के मेज और आईने के काँच को पोंछा! होठों में हँसकर मीरा ने पूछा—कलकत्ते में कितने दिनों से नौकरी कर रहा है?

—जी, माईजी?

—पूछती हूँ, कब से नौकरी कर रहा है?

लगभग बारह साल के उस लड़के ने कहा—तीन बरिस से।

—घर कहाँ है?

—छपरा जिला। चाय बना दिहिं माईजी?

मीरा ने कहा—न, तू जा।

वह निकल तो गया, पर गया नहीं। उसे यह हुक्म था कि वह बरामदे पर ही बैठा रहा करेगा और जब-जब घंटी बजेगी, हाजिर हुआ करेगा।

बिस्तर मीरा का था। लोहे की खाट, नई तोषक, तकिया, धप्-धप् धुली चादर। चादर रोज बदल दी जाती। लिखने-पढ़ने के लिए छोटी-छोटी मेज-कुरसी, एक कोने में रेडियो, एक कोने में तिपाई पर गुलदस्ता। सामने चीनी ग्लास-केस में तरह-तरह की चीजें। एक ओर काँच के, एक ओर चंदननगर के बने माटी के खिलौने। बिछावन के पासवाली दीवार पर विरहिणी राधिका की नाव-यात्रा की तस्वीर और इस दीवार पर एक अंग्रेजी-बंगला कैलेंडर। अभी-अभी कल स्टील की एक आलमारी और आयी है···इसमें खास तौर से मीरा के कपड़े-लत्ते, और और चीजें रहेंगी।

कमरा विमलाक्ष का है, दुमंजिले का प्राइवेट चेम्बर नंबर दो। सरो-सामान दामी हैं, जो रोगी देखने के चेम्बर में शोभा नहीं देते; इनकी शोभा रहने के कमरे में होती है। मीरा ने यह सवाल उठाया था। उत्तर मिला था—इन्हें उपहार समझ लो!

मीरा ने कहा था—समझा कि दफ्तर से लौटकर जरा आराम करने के लिए है। मगर इतने-इतने सामान क्यों ?

विमलाक्ष ने कहा—मनोविज्ञान कहता है सूने घर में आदमी का मन सूना लगता है। असबाबों से थोड़ी निश्चिंतता रहती है। बहुत बार सामान संगी का काम देते है।

—आईना और शृंगार की मेज क्यों ?

—एक ही बात। आईने पर छाया तुम्हारी पड़ेगी, लेकिन देखोगी किसी और को। आईना आत्मालोचना की पीठिका है।

किसी-किसी बात पर मीरा चौंक उठती, मन में दुर्भावना का उदय होता।

इसमें शक नहीं कि उसकी नौकरी विमलाक्ष की बदौलत है। एक आधार मिला है। पिताजी यह नहीं देख जा सके कि मेरी लड़की एक खूंटे के सहारे खड़ी हो गई है। आज भी एक औरत के लिए ढाई सौ रुपये माहवार कुछ कम नहीं है ! सच पूछिये तो ये रुपये उसके खर्च नहीं हो पाते। पैदल ही दफ्तर जाती है। पैदल चलना यह नया-नया है, सो अच्छा ही लगता है। विमलाक्ष उसे नित नई भेंट दिया करता है, क्योंकि उसे बचपन का ऋण चुकाना है। कभी उसने मीरा के पिताजी से बे-हिसाब रुपये लिये हैं, आज उनकी इकलौती बेटी के चरणों अपने उस कर्ज के बोझ को वह उतारना चाहता है।

कहीं से साबुन और प्रसाधन-सामग्री की सुगंध आ रही थी। मीरा ने घूमकर देखा, नहान-घर का दरवाजा खुला था। वह नहान-घर में गयी। अंदर से दरबाजा बंद कर लिया।

बुरा क्या है ! किसका घर-द्वार है यह, वह आज भी यह नहीं जानती। फर्श पर गलीचा, माथे के ऊपर बिजली का पंखा। खाने की तबीयत हो, जो चाहो वही मौजूद। अण्डा, मक्खन, फल, रोटी, चाय, कॉफ़ी—जी चाहे सो। कौन यह सब कुछ देता है ? कहाँ से आता है ? बुरा नहीं। एक घर में उसे बेरोक अधिकार तो है ! कोई खोज नहीं

करता, किसी को कुतूहल नहीं, कोई कैफ़ियत नही पूछता—किसी के मन में कोई उद्वेग नहीं। कमरे का परदा उठाते ही एक अनजाना जगत्, रहस्यमय संसार! इस मकान में कितनी जो जाति, कितने जो वर्ग के लोग है, कितना विचित्र है जीवन उनका, कोई नही जानता। व्यापार का केंद्र है, अर्थनैतिक षड्यंत्र है, चोरी-चोरी माल बेचने का दफ्तर है—भेद-भरा आना-जाना और दबी आवाज में बातचीत। एक कोने में एक फ़िरंगी परिवार, उसके पास सिनेमा कम्पनी का कार्यालय। अचानक कोई नर्स आ जाती है, या आ जाती है कोई स्त्री-प्रचारिका अथवा तस्वीर में उतरने जैसी बाब-बालवाली पाउडर-पुती कोई ढलेल औरत। बुशशर्टवाला कोई जवान सीटी बजाते हुए सीढ़ी से ऊपर चला जाता है, अपने पीछे ब्लैक ऐंड व्हाइट की बू छोड़ जाता है। अचानक कोई गोरा सार्जट आ जाता है, किसी एक कमरे मे बैठकर रंगीन शराब के घूँट लेकर सिगरेट सुलगाकर चल देता है। तौलिए से ढँकी काँच की तश्तरी लिये कोई खानसामा आ पहुंचता। किसी कमरे में ग्रामोफ़ोन में स्त्री के गले से बम्बैया गीत सुन पड़ता। काँच के बर्तनों की टुन-टुन आवाज। बहुत बार जूतों की मसमसाहट पास आती और फिर दूर हट जाती। खो जाती कहीं।

इस आधुनिक संसार में मीरा अकेली। न तो इन लोगों से उसके मन का कोई मेल, न कोई संयोग। वह सबसे अलग है, अकेली है—मन उसका हाहाकार कर उठता। जैसा हाहाकार कर उठती थीं हाजीपुर में मधुमती नदी पर सावनी हवा, ठाकुर के पोखरे पर वनजुही और काठ-मल्लिका की मुँहचोर खुशबू। वहाँ बाँस की झाड़ियों में उनके हृदय की धड़कन लगी होती, शिवालय की आरती की घंटाध्वनि वर्षामुखर मधुमती पर से होती हुई कल्पना के खुले डैनों-सी दूर चली जाती। अपने महल में वे खड़े रहते—हुस्ना और हिरण, सुमित्रा, और अत्रि—दूर—नदी पर नाव जाती होती, तरंगों पर उसका नाच चलता रहता। कपोतों की टोलियाँ उड़कर राजभवन के आँगन में उतरतीं—जहाँ कबूतरखाना था।

सिरिश्ते के बरामदे पर वर्षा से भीगा हुआ गाँव का वह भक्त कुत्ता बैठा रहता। औरतें बाल गूँधकर, टीका लगाये राजभवन के मोरों के पिंजड़ों के पास घूम जातीं। उधर हीरामन, तोता और मैनों की पुकार से राज-भवन गूँजता रहता। वहाँ आनंद के साथ कोई वेदना नहीं थी, यहाँ सुख के साथ बेचैनी है। वहाँ का शांत जीवन संगीत से भरा था, यहाँ तरंगों से मथा हुआ जीवन नित्य कोलाहल से मुखर है।

जूतों की आहट हुई और विमलाक्ष कमरे के अंदर दाखिल हुआ। मीरा बिछौने पर लेट गई थी, विमलाक्ष के आते ही उठ बैठी।

विमलाक्ष बोला—फिर वही बात, तुम किसी भी तरह से सहज नहीं बन पाती हो मीरा। सो रही थी, उठ क्यों बैठी? दिन-भर के काम के बाद थोड़ा आराम तो चाहिए ही। दूध-मिठाई खा चुकी?

मीरा बोली—खाने की याद ही न आई।

व्यस्त होकर विमलाक्ष बोला—यह मैं जानता था! कितनी बार तो मैंने बताया कि तंदुरुस्ती ही मनुष्य की सबसे बड़ी दौलत है! राज-पाट बेहाथ हो जाए तो फिर मिल सकता है, मगर तंदुरुस्ती कहीं एक बार गई तो लौटकर नहीं आने की। मगर तुम्हारा क्या है? नुकसान तो तुम्हारी तंदुरुस्ती बिगड़ने से उन बेचारों का है जो तुम्हारे भले के लिए रात-दिन सोचा करते हैं।

—अच्छा?—मीरा हँसी,—तुम तो फुसलाना खूब जानते हो?

विमलाक्ष बोला—कर लो मजाक, सहूँगा। लेकिन यह कहे देता हूँ, तुम्हें कहीं कुछ हो-हवा गया तो न तो हुस्ना काम आएगी, न काम आएगा हिरण। तब पतवार मुझे ही पकड़नी पड़ेगी।

मीरा बोली—तो मैं चलूँ, साँझ हो गई।

—बेशक जाओगी, बंधन ही क्या है तुम्हें। जी चाहे, जब आओ, जब जाओ। घर तुम्हारा है, लेकिन यह तुम्हारा बंधन नहीं बनेगा कभी। औरतों को सदा बाँधकर हमने उन्हें पिंजड़े की मैना बनाया है। आज राष्ट्र के बुरे दिन हैं, कोई शक नहीं, मगर औरतों की दुर्गत उससे भी

बड़ी है।—एक कुरसी खींचकर विमलाक्ष बैठ गया। घंटी पास ही पड़ी थी। बजाते ही वह छोरा अंदर आया। विमलाक्ष बोला—क्यों रे छट्टू, माँजी के लिए दूध और जलपान रखा था, तूने दिया क्यों नही ?

—मालूम नहीं था बाबूजी।

—अच्छा स्टोव जला। दूध गरम कर दे।—हाँ, तुम्हे यह आलमारी पसंद आई मीरा ?

मीरा बोली—हाजीपुर का महल छोडकर आई; आज मुझे यह मामूली-सी आलमारी पसंद करनी पड़ेगी ?

विमलाक्ष हँसा। बोला—ठीक कहती हो। कुछ उपहार देकर कोई तुम्हें भुलाना चाहे, तो यह उसकी नादानी है। दामी कपड़े, कीमती जड़ाऊ गहने—इन पर भी तुम्हें लोभ नही, क्योंकि तुम इन्हीं सबमें पली हो। उनके आगे ये सामान क्या हैं !

मीरा बोली—यह कमरा दरअसल रोगी देखने का था। मगर एक महीने के अंदर मैंने तो किसी को भी न देखा ? तुम्हें यह बिछौना, मेज-कुरसी—यह सब लाने की क्या पड़ी थी ?

—क्या पड़ी थी, बताता हूँ ?—विमलाक्ष ने आँखें उठाकर कहा। —पहले दूध पी लो। अरे छट्टू, मेरे लिए चाय बना। हाँ, तो बताऊँ ! सुनो, कलकत्ते में औरत और महिला, इन दोनो में एक फर्क है। हर औरत महिला नहीं होती, महिला की जात अलग है। गुण में, विद्या-बुद्धि में, सूरत-शक्ल में, चाल-चलन में जो स्त्रियाँ अव्वल दर्जे की होती हैं, हम उन्ही को भद्र महिला कहते है। फिर भद्र महिला के वर्ग में भी इतर और विशेष है। वहाँ एक बड़े जमींदार की लड़की से एक छोटे हाकिम की लड़की का फर्क है। आज चूँकि तुम नौकरी पर मजबूर हुई हो, इसीलिए तुम दूसरे वर्ग की महिला होगी, यह नहीं हो सकता ! तुम्हारे योग्य सम्मान और मर्यादा कहाँ है ? तुम्हारे लायक सवारी कहाँ है ? तुम्हारे विश्राम के लिए उपयुक्त कमरा कहाँ है ? सो खूब सोच-विचारकर ही मैंनें यह सब मँगवाया है तुम्हारे लिए। शायद हो कि इनमें से बहुत-सी

लिया।

विमलाक्ष एक सस्ती-सी उपमा दे बैठा। बोला—अच्छा मीरा, लुटेरा रत्नाकर क्या बाल्मीकि नहीं बन सकता ?

मीरा ने कहा—बन जाए शायद। लेकिन जगली विषधर विषहीन हो जाए, ऐसा भी सुना है कहीं ? या यह सुना है कि स्यार खरगोश हो गया ? सो उपमा तो तुम मत दो। मैं यह कहती हूँ, तुम बल्कि मेरा अनादर करो, समादर मत करो।

विमलाक्ष कुछ देर तक चुप हो रहा। उसके बाद बोला—तुमने मेरी चिट्ठियाँ तो वापिस नहीं दीं ? कितनी बार मैने माँगी।

मीरा बोली—वे चिट्ठियाँ तुम अभी मत माँगो।

—आख़िर क्यों ?

—तुम बड़े रहस्यमय लग रहे हो, इसीलिए बहरहाल तो चिट्ठियों को मैं अपने ही पास रखूँगी। उनमें तुम्हारा सच्चा परिचय है !

विमलाक्ष ने कहा—कम उमर की उन चिट्ठियों में चूंकि वासना की आग है, इसीलिए वह परिचय मेरा सच्चा हुआ ?

मीरा ने हँसकर कहा—भद्दी और गंदी बातों को वासना की आग कहकर जामा पहनाने की कोशिश क्यों करते हो ? उन चिट्ठियों में उनके सिवाय भी बहुत बातें है !

विमलाक्ष ने चौककर कहा—मुझे याद नही, क्या लिखते क्या लिख गया हूँ। अच्छा, बताओ तो और क्या है उनमें ?

—फिर कभी बताऊँगी, आज चलूँ अब।—मीरा उठ खड़ी हुई।

—मीरा !—विमलाक्ष खड़ा हो गया। जिस हाथ से कभी उसने इस नारी को खत लिखे थे, उसे वह दाँत से काटकर अलग कर सकता तो खुशी होती।—फिर बोला—अच्छा, तो आज एक वचन दो ? यदि मैं कभी तुमसे दुश्मनी न करूँ, तो तुम भी नहीं करोगी—कहो ?

मीरा हँसी। हँसकर कहा—तुम तो बड़ी आसानी से दुश्मनी कर सकते हो भैया, मगर मैं तुमसे शत्रुता कैसे कर सकती हूँ ? तुम्हारी पूँछ

मैं पकड़ कैसे सकती हूँ ? तुम्हारी निंदा फैलाई जाए, तो तुम्हारा यश और फैल जाएगा ! सारे देश के सामने अगर यह साबित कर दिया जाए कि तुमसे बढ़कर चरित्रहीन हो नहीं सकता, फिर देखो कि समाज में तुम्हारी इज्जत कितनी बढ़ जाती है ! लोग तुम्हें वीरों में श्रेष्ठ बताएँगे। सो ऐसी नादान तो मैं नहीं हूँ कि तुम्हारी निंदा करती फिरूँ—उसमें अपनी ही निंदा होगी !

विमलाक्ष बोला—वे चिट्ठियाँ तुमने कही मेरी स्त्री को दिखा दीं ?

—दिखा भी दूँ तो डरने की बात नही। दो-एक दिन मनमुटाव, दो-चार दिन अलग-अलग बिस्तर, थोड़ा-बहुत रोना-धोना। फिर वे लगातार इतने दिनों तक खुद बगल में करवट बदलकर सोया करेंगी कि तुम उन्हें हाथ बढ़ाकर अपनी ओर खींच ले सको !

वैसी उत्तेजना के बावजूद विमलाक्ष जरा हँसा। अचरज से पूछा—तुमने इतना सब कैसे जाना मीरा ?

मीरा ने कहा—किताबों से नहीं सीखा, सिनेमा देखकर भी नहीं। हमारी आँखों के सामने ही तो थे छोटे चाचा और चाची ! दोष चाची का नहीं था, लेकिन चाचा के कलंक से इलाका घिना गया था। खैर, अब चलती हूँ।

विमलाक्ष बोला—अभी से घर जाकर क्या करोगी ? हिरण के लिए जी छटपटाता है, क्यों ?

मीरा थमक गई। कहा—उसका नाम तुम्हारी जबान से न ही सुनूँ तो क्या हर्ज है ?

विमलाक्ष हँसा। बोला—खैर, नहीं करूँगा उसकी चर्चा। लेकिन मान लो, उसे एक अच्छी-सी नौकरी मिल जाए, तो तुम मुझसे खुश रह सकोगी ?

—उसकी नौकरी हो कैसे सकती है ?

—मान लो, मैं ही लगा दूँ कहीं ?

मीरा बोली—तुम तो औरतों की नौकरी ठीक करके उन्हें पालतू

बनाया करते हो। मर्द के लिए कुछ करने से कौन-सी सहूलियत होगी तुम्हें ?

कुछ मुरझाया-सा विमलाक्ष बोला—बड़ी बेपीर हो तुम मीरा !

मीरा अब हँसी। बोली—मैं बेपीर होती तो तुम्हारी दया की मुंतज़िर होती या कि कभी इस घर में कदम बढ़ाती ?

—फिर मुझ पर चाबुक का ऐसा प्रहार क्यों करती हो ?

—औरतों को लुभाना चाहते हो तो उनकी मार से क्यों डरते हो ?

—यह तुम कैसे कहती हो कि मैं औरतों को लुभाना चाहता हूँ ?

मीरा ने हँसकर कहा—एक ही नुस्खे से अनुभवी डॉक्टर की पहचान हो जाती है विमल भैया। तुम सबसे नीचे की गंदगी मना करते हो, इसीलिए सबसे ज्यादा गंदगी से तुम्हे डर लगता है, नहीं लगता है ? मेरे पिताजी का कर्ज चुकाना है, इसीलिए तुमने मेरे विश्राम के लिए घर सजाया है, यह एक अजीब अदायगी है ! तंदुरुस्ती के लिए मुझे यहाँ बैठकर दूध पीना पड़ेगा और चेहरे की रौनक के लिए रंग-पाउडर लगाना पड़ेगा, नहीं तो कर्ज नहीं चुकेगा, यह भी एक अजीब बात है ! मेरे पिताजी के कर्ज की वसूली के लिए मुझे लेकर उछल-कूद करना, यह कौन-से शास्त्र में लिखा है भला ? देखते ही पता चलता है, बड़ी सूझ है तुम्हें और केवल देशी सूझ नहीं, विलायती भी।

—तुम्हारे लिए थोड़ा-बहुत फर्ज अदा कर सकने से अगर मुझे खुशी होती हो, तो ?

—इस खुशी की बात अगर तुम्हारी स्त्री के कानों तक पहुँचे, तो तुम्हें खुशी होगी ?

—उन्हें कहने कौन जा रहा है ?

मीरा हँसी। कहा—छुटपन से ही मेरे आगे मेरे चाचा का उदाहरण रहा, इसीलिए मैं यह सब समझ सकती हूँ। तुम अपनी स्त्री की आँख बचाकर मुझसे मिलना-जुलना चाहते हो, यही इरादा है न ?

विमलाक्ष बोला—वही समझो।

मीरा ने फिर कहा—और भविष्य को सुरक्षित रखने की ग़रज़ से फुसलाकर मुझसे पुरानी चिट्ठियाँ झटक लेना चाहते हो ?

—फुसलाकर क्यों कह रही हो मीरा, मैं तो माँगे लेता हूँ। मगर तुमने इतना सारा जाना कैसे ?

—सब अपने चाचा की कृपा से। कोई पाँच साल पहले कलकत्ते की एक मेम ने चाचा पर मुकदमा कर दिया कि आर्य समाज की मदद से उन्होंने उससे शादी की और भत्ता नहीं देना चाहते।

—उसके बाद ?—विमलाक्ष फिर बैठ गया।

मीरा ने कहा—पूरे दस हजार रुपये खर्च करके चाचा को यह साबित करना पड़ा था कि वह औरत पतिता है।

—मीरा !

मीरा फिर हँस उठी ! विमलाक्ष बोला—लेकिन इतना बड़ा झूठा इलजाम तुम मुझ पर मत लगाना।

मीरा बोली—तुम कुछ जुदे से हो। चाचाजी एक ही कौर में निगला करते थे, तुम शिकार को मुट्ठी में लाकर धीरे-धीरे निगलना चाहते हो !

—यानी ?

—यानी इसका बड़ा सहज है ! स्त्री के सामने साधु बनकर रहोगे, इस मुहल्ले में नाम का आबरू बचाओगे, समाज में अपने विलायत-फिरता की इज्जत बनाये रहोगे और मुझ पर जाहिर करोगे आग्रह की एकांत अधिकता ! मतलब बहुत साफ है ! घर में साधु, बाहर चरित्र-वान। चाचाजी मेरे नादान थे, इसी से समय-समय पर उन्हें बड़ी बे-इज्जती का सामना करना पड़ता था, कभी-कभी लाख-दो लाख रुपये गँवा-कर रिहाई मिलती थी—मगर तुम्हें कोई डर नहीं। तुम डॉक्टर ठहरे, तुम्हारी मुट्ठी में आज का विज्ञान है। तुम शुरू से ही हाथ छुड़ाये रखना चाहते हो, है न ? मैं एक रिफ़ुजी लड़की हूँ, बाहर नौकरी करती हूँ, शहर में अकेली रहती हूँ, शायद कि मैं पति द्वारा त्यक्त हूँ, हो सकता है,

रोग-दुख में दवाखाना आना-जाना पड़ता है, कलकत्ते में अपना कोई निश्चित स्थान नहीं—यानी मुझे बुहार लेने को हर हथियार आपके पास मौजूद—क्यों ?—अब मीरा जोरो से हँस उठी। कहा—मेरे कब्जे से अपने पुराने खत निकालकर ही तुम बेफिक्र हो जाओगे, क्यों ?

विमलाक्ष ने चुपचाप उसकी बातें सुनी। उसके बाद गरदन घुमाकर बोला—यही मेरा पुरस्कार है, यह मैं जानता था। चलो चलें।

मीरा फिर से बिछावन पर बैठ गई। कहा—नहीं जाती। पहले मेरी बातों का जवाब दो।

विमलाक्ष ने कहा—मेरे बारे मे तुमने पहले से ही एक खयाल बना रखा है। मै जवाब क्या दूँ ?

—तुम्ही बताओ, मेरे पिताजी का कर्ज चुकाने का क्या यही तरीका है ?

—तुम उनकी इकलौती बेटी हो। मदद देकर तुम्हें अपने पैरों खड़ा करना क्या मेरा फर्ज नही है ? इससे उनकी मृतात्मा को शांति नहीं मिलेगी ?

मीरा हँसी। बोली—लेकिन मेरे लिए यह पलंग-बिछावन, आलमारी, रसोई के सामान, वह आईना, मेज-कुरसी, मोटर में मुझे लेकर घूमना, अच्छे होटलों में ले जाना, मेमों के नाच में शामिल होना, साहबों की दूकान में ले जाकर कीमती उपहार खरीदकर देना,—इससे उनकी परलोकगत आत्मा को पीड़ा भी पहुँच सकती है !

—मैं क्या तुम्हें सिर्फ लोभ ही दिखाता हूँ !

मीरा बोली—नहीं, केवल लोभ ही क्या, राह भी दिखाते हो ! खड़े होने की राह, जीने की राह, भोग की राह—मैं इनकार कब करती हूँ ? लेकिन तुम दो छोरों को मिलाना चाहते हो। लोभ केवल दिखाते ही नहीं, छेड़कर मेरे लोभ को भी जगा देना चाहते हो। तुम मेरे मन में महीन काम किये जा रहे हो। मेरे मन की रास को दिन-दिन ढीली किये दे रहे हो। नदी के कगारे के नीचे-नीचे पानी घुस रहा है—अचानक एक दिन टूट

गिरेगा।

विमलाक्ष बोला—लेकिन तुम आप ठीक हो तो खतरा क्या है मीरा ?

मीरा बोली—तुमने औरतों के साथ खेला ही है, उन्हें पहचाना नही है। वे स्वभाव से कृतज्ञ होती हैं। तुम मुझे ठीक रहने दोगे ? ठीक रहना किसे कहते है ? तुमने जो कुछ भी किया है, यही क्या मेरा पावना है ? तुमने यह सब निःस्वार्थ-भाव से भी किया हो, तो भी मेरा कृतज्ञता-बोध कहाँ जाएगा ? दान के बदले प्रतिदान—संपर्क और क्या होता है ? तुम सयाने हो, इसलिए कुछ के लिए हाथ नहीं फैलाते ! तुम आत्मप्रिय हो, औरों की ग़रज़ देखना चाहते हो, औरतों से पूजा पाना चाहते हो ! तुम्हारी आँखों में, चेहरे पर वैराग्य की मणिता है, तुम्हारी आसक्ति समझी नहीं जा सकती। तुम्हें यह जानने की जरूरत है कि तुम्हारा स्नेह पाने के लिए मेरा मन जलकर खाक हो रहा है ! तुम्हारी सबसे बडी शक्ति क्या है, जानते हो ? अपने अपार लोभ और असंयम को तो तुम आखिरी दम तक कठिन बंधन में बाँधकर रख सकते हो ! तुमने बहुतेरी उपमाएँ दी है, अब एक उपमा मैं दूँ। तालाब में एक बहुत बड़ी रोहू मछली है। तुम बंसी डाले बैठे हो। उसने चारे में मुँह मारा—खिचाव आया—मगर तुम तमाम दिन धागे को खींचते और छोड़ते रहे। आखिर मछली जाती कहाँ है—चारों ओर ऊँचे बाँध है। भागने की जगह ही नहीं। अन्त में साँझ तक वह बेचारी जीव थक-थकाकर तुम्हारे पैरों के पास थोड़े पानी में आ रही। तुम चाहो भी तो उसमें और खेलने का दम नहीं—उसका थका-हारा मन अपने को तुम्हारे हाथ सौंप देता है।

विमलाक्ष ने कहा—मीरा, मैं तुम्हें एक निहायत देहाती लड़की समझता रहा हूँ। प्राइवेट से तुमने बी० ए० पास ही किया तो क्या। किंतु सच हो या झूठ, पुरुष चरित्र के बारे में तुम्हारी जानकारी अद्भुत है, अद्भुत !

—जानकारी हो भी क्यों नहीं—सामने रहे चाचा। पास रहीं

हुस्ना। हुस्ना मेरी हम-उम्र है, किंतु इसी बीच उसने तीन बार पति बदला है !

विमलाक्ष ने कहा—हाँ, तीन बार तो सुना है। लेकिन यही क्या नारी-चरित्र का आदर्श है मीरा ? जो पति बदलती फिरती है, आम भाषा में उसे क्या कहते हैं, जानती हो ?

मीरा हँसी। कहा—मैं जानती हूँ कि हुस्ना पर तुम्हें आक्रोश है। मगर होशियार, छींटे तुम्हें भी पड़ सकते है।

—मैं कभी भी हुस्ना को बरदाश्त न कर सका।

—लेकिन फँसाना तो तुमने उसे भी चाहा था। वे सारी चिट्ठियाँ मेरे पास है। मुसलमान होते हुए भी उससे तुम्हें अरुचि थी, इसका कोई सबूत तो उन चिट्ठियों में नहीं मिलता ? अच्छा एक वात कहूँ ?

—कहने को तुमने बाकी ही कौन-सी बात रखी ?

मीरा बोली—हुस्ना को कोई नौकरी दिलाकर उसके लिए ऐसा ही नैवेद्य जुटा सकते थे तुम ?

—हुस्ना के लिए ?—विमलाक्ष चौक उठा—आखिर मुझे अपनी जान की ममता है या नहीं ? उसके चाबुक की आवाज से घर काँप उठता है ? उसे कोई भी मर्द नहीं ढो सकता। इसीलिए उसे तीन बार शादी करनी पड़ी। क्या खयाल है तुम्हारा, किसी भी भद्र समाज में उसे जगह मिल सकती है ? उससे मुसलमान घृणा करेंगे, उससे हिंदू घृणा करेंगे ! नारी-समाज में उसका स्थान न होगा—वह शिक्षितों की अश्रद्धा चुनती फिरेगी।

मीरा ने कहा—जरा और सोचकर कहो।

—सोचकर ही कह रहा हूँ—कहने से नहीं डरता। तुम्हारी हुस्ना जिस डाल पर बैठती है, उसे ही काटती है ! जिस घर में उसे पनाह मिलती है, वह उसी को फूँकती है। जो मित्र उसे खीचकर गढ़े से बाहर निकालता है, वह उसी को डुबाती है। मैं खूब जानता हूँ मीरा, उसी ने बड़े चाचा का अच्छा इलाज न होने दिया।

—झूठी तोहमत न लगाओ। यह किसने कहा तुमसे ?

—कहने भी दो मीरा ! मुझे यह भी मालूम है कि उसने यह चालाकी भी कर रखी है कि तुम लोग हाजीपुर जिसमें वापिस न जा सको। बड़े चाचा किस पर ज्यादा यकीन करते थे—तुम पर या हुस्ना पर ?

—हुस्ना पर !

—उसका बड़ा अच्छा नतीजा निकला है ! मैं जानता हूँ कि खजाने की कुंजी का जिक्र करते ही तुम जल-भुन उठोगी। किंतु मैं जानता हूँ कि हुस्ना तुम लोगों का अंत देखना चाहती है, देखना चाहती है तुम्हारा अंजाम ! वह देखना चाहती है कि पश्चिम बंगाल की मरुभूमि में चलते हुए मरीचिका के पीछे भागते-भागते वालू में तुम लापता हो गए—गुम गए !

मीरा की निगाह में सख्ती थी, फिर भी उसकी घिनौनी उक्ति का प्रतिवाद करने की उसे इच्छा न हुई। शांत रहकर बोली—विमल भैया, तुम्हारी एक भी बात श्रद्धा के लायक नही। मैंने सिर्फ इतना ही समझा कि एक दिन जिसके पैरो पड़ने के बावजूद तुम्हें दया के कण न मिल सके, आज लोगों में उसकी निंदा फैलाकर तुम अपनी उस हार का बदला चुका रहे हो !

चोटें बहुत बरदाश्त की। अब की विमलाक्ष उत्तेजित हो उठा। तपाक् से कह गया—खबर है तुम्हें, उसी की साजिश के चलते हिरण से तुम्हारी शादी होते-होते रह गई ? उसीने हिरण को तुमसे दूर-दूर रखा है, उसी ने तुम दोनों को एक न होने दिया, जानती हो ?

—यह सरासर झूठ है, झूठ। लेकिन रहने भी दो यह जिक्र। मैं समझती हूँ, यही तुम्हारा शायद आखिरी हथियार है !—मीरा होठ दबाकर हँसी।

—खबर है, हिरण आजकल हुस्ना को साथ लेकर घूमा करता है ?

—उसी ढंग से, जैसा कि तुम मुझे लेकर घूमा करते हो ?

विमलाक्ष ने पूछा—तुम्हारे मन मे जलन क्या हुई नही मीरा ?

तुम्हारी दौलत कोई लूटा-खसोटा करे और तुम्हारे जी में कुछ नहीं होता ?

मीरा बोली—हिरण को मैं अपनी सपत्ति नही मानती ।

—तुमने क्या उसे ज़रा भी प्यार नहीं किया ? कभी भी उसे नितात अपना नहीं समझा ?

सहसा मीरा की दोनों आँखे दमक उठीं, लेकिन लहमे-भर के लिए। उसके बाद बोली—अब मन की सुना चाहते हो ? तुम मन की बात की कीमत दे सकते हो ? खैर, रहने दो । चलो, अब चले ।

विमलाक्ष की कलाई की घड़ी में रात के नौ बजे थे । वह भी खड़ा हो गया । बोला—चलो । लेकिन क्या कह रही थी तुम ?

मीरा ने कहा—हाँ, कह रही थी एक बात । पहले नीचे उतरे ।

विमलाक्ष ने घंटी बजाई । पलक मारते छट्टू आ पहुँचा । विमलाक्ष बोला—दरवाजा बंद करके कुंजी माँजी को दे दे ।—यह कहकर वह मीरा के साथ बाहर आकर खड़ा हुआ ।

छट्टू ने दरवाजा-खिडकी बंद की, पखा बंद किया, बिजली बुझाई और अन्त मे दरवाजा लगाकर कुजी मीरा के सुपुर्द की । कुंजी वेनिटी बैग मे रखी गई । विमलाक्ष ने कनखियों से यह देखा और मन-ही-मन खुश हुआ । छट्टू को उस रोज के लिए छुट्टी मिल गई ।

नीचे उतरकर दवाखाना पार करने के पहले मीरा अचानक रुक गई । कहा—लो, मैं तो स्लिपर पहने ही उतर आई। रास्ते में कीचड़-पानी है !

विमलाक्ष ने हँसकर कहा—आज तुमने वो गत बनाई है मेरी कि मोटर में पहुंचा देने का प्रस्ताव करने की हिम्मत नहीं पड़ती !

मीरा ने कहा—तुम्हारी बेवकूफी मिटाकर अगर गाड़ी पर चढ लूँ, तो बेजा क्या है । मगर पैरों मे तो स्लिपर है !

—अगर इजाजत दो, तो मेरी जेब में रूमाल है । कीचड़ लगे भी तो हर्ज नही !

—ठहरो,—मीरा ने कहा,—क्या एक दवा है तुम्हारे दवाखाने में ?

अभी जो बताया, खाते ही आँखें नींद से बुझ आती है ?

विमलाक्ष ने कहा—हाँ, है तो। नाम उसका मैने रखा है, ऐटम बम ! लेकिन क्यों भला ?

मीरा ने कहा—जिस रोज से तुम्हारी कृपा कबूल की है, उसी रोज से सो नही सकी हूँ। एक ऐटम बम दो मुझे।

—लेकिन चीज वह खतरनाक है—तुम्हारे लिए…

—दलील मत दो—ले आओ…

लाचार विमलाक्ष दवाखाने मे गया। आलमारी खोलकर गुप्त जगह से कुछ निकाल लाया। दवाखाने का नौकर हाथ में एक ग्लास पानी लिये आकर खड़ा हुआ।

उस नन्हे-से ऐटम बम में रंग की खासी बहार थी। चिकनी-चिकनी-सी चीज। मुँह में उसे डालकर मीरा ने पानी पिया। कहा—हाँ चलो।

सच ही फुटपाथ पर कीचड थी। स्लिपर पहनकर उस पर उतरते ही पाँव भीग गए, कीचड़ भी लगी। टैक्सी पर नजर पड़ते ही विमलाक्ष ने आवाज दी। दोनों उस पर बैठ गए। विमलाक्ष ने पूछा—तुम्हें घर तक छोड़ आऊँ मैं ?

मीरा बोली—नही।

—फिर ?

—जहाँ तक मुझे बगल मे बिठाकर घूमने से तुम्हारा खर्च बढे, वहाँ तक घुमाकर मुझे रास्ते पर उतार देना।

—तुम्हें रास्ते में उतार दूँगा ?—विमलाक्ष रो-सा पडा।—मुझ पर और कितना जुल्म ढाओगी मीरा ? अच्छा, मैं वादा करता हूँ हिरण का नाम अब मैं कभी भी न लूँगा।

देखते-ही-देखते मीरा की पलकों पर नशे का रंग चढ़ आया। पुतलियाँ काँपने तो नही लगेगी ? मीरा पीछे की तरफ सिर टेककर आराम से बैठी।

—दवा के असर से कही गाडी पर ही नीद आ जाए ?

—वह तो आएगी।

—यह ऐटम बम तुम खुद भी खाते हो ?

विमलाक्ष बोला—खाता हूँ। जिस दिन तुम्हारी भाभी मेरे चरित्र पर रोना-धोना शुरू करती है, उस दिन एकाध गोली खा लेता हूँ! बीच-बीच मे उन्हे खुदकशी की धमकी भी तो देनी पडती है!

टैक्सी मैदान की ओर चली। कलकत्ते के टैक्सी ड्राइवर सवारी पहचाना करते है। मीरा बोली—अब लौट चलो।

—क्यों, खूब नींद आ रही है ?—विमलाक्ष ने जानना चाहा।

मीरा बोली—नींद नहीं आई, नींद का डर लगा है। कही बेखबर हो पडूँ।

विमलाक्ष बोला—यह तो ऐटम बम का गुण ही ठहरा—बेहोशी की तरफ ले जाना! आइंदे इसे मत खाना। यह किनके लिए है, जानती हो ? जो सिनेमा-थियेटर में अभिनय करते है। दिन-रात अनाचार के बाद भी जो रात के शेष पहर मे जरा सो नहीं सकते। उन्निद्र रोग के चलते जो लोग सर के बालों के बदले नाखून से अपना शरीर नोचा करते है—ऐसों के लिए है यह। भले घर की औरतें इसे नहीं छूती।

टैक्सी घर की तरफ घूमी। मैदान से पलटकर उन्होंने पूरब की तरफ के चौड़े रास्ते को पकड़ा। बीच-बीच मे गाड़ी पर रोशनी पड़ने लगी।

मीरा को पता था उसके पाँवों में स्लिपर हैं। एक बार स्लिपर की तरफ देखकर मीरा ने पूछा—अच्छा विमल भैया, तुमने कभी औरत का पाँव पकड़ा है ?

हँसकर विमलाक्ष बोला—बराबर! स्वदेश और विदेश में वही पकड़े तो हूँ। और वही पकड़कर तो एक दिन वैतरणी पार होना है!

—मेरे पाँवों की शक्ल कैसी है, कहो तो ?

—बिदाने जैसी! सफेद और लाल रंग से टसटस।—विमलाक्ष ने उसी दम उसे उत्तर दिया।

मीरा ने जड़ित कंठ से कहा—तुमने तो कहा, मेरे पाँवों में कीचड़ लगेगी तो तुम रूमाल से पोंछ दोगे ?

—मैं कभी झूठ नही कहता।—और झट उसने जेब से रूमाल निकाला और झुककर उस सुगंधित रूमाल से उसने मीरा के पैर पोंछ दिए।

गाड़ी तालतल्ले की गली में घुसी। अचानक विमलाक्ष ने गाडी के अन्दर ही मीरा के दाहने हाथ की एक उँगली छूकर कहा—मीरा…?

निद्राए स्वर में मीरा बोली—क्या है ? मुँह अलग रखकर बात करो।

रुँधे कंठ से वह बोला—मुझपर जुल्म न करो मीरा।

मुँदती पलकों मीरा बोली—नहीं करूँगी। मगर आज इतना ही रहे। कबूल करती हूँ, तुम्हें नफरत करने की शक्ति घट गई है।

गाड़ी दरवाजे पर आ लगी। मीरा के पाँव काँप रहे थे।

दस

कोई चार दिन हुए, सुमित्रा चली गई। हाजीपुर मानों उन्हे हाथ के इशारे से बुला रहा था। वहाँ का सिंहासन उन्हीं के लिए था, वहाँ की छोटी रानी है वह ! वह साफ-साफ यह जानकर ही गई है कि मीरा अब कभी भी वहाँ नहीं लौटने की। बपौती जायदाद पर उसे रत्ती-भर भी मोह नहीं और सरकारी लगान के मामले में वह जरा भी दिमाग नहीं लगाना चाहती। अगर उसकी जायदाद नीलाम पर भी चढ़ जाए, तो भी उसे फिक्र नही। सो सुमित्रा यह जानकर गई है कि हाजीपुर मे उनका एकछत्र साम्राज्य रहेगा। और अब तो वहाँ अमन-चैन भी कायम हो गया है, डर की कोई बात नहीं।

हिरण ने एक बार कहना चाहा था कि गाँव में लगातार सात दिनों तक आग जलती रही थी, सो वह गाँव बड़ा चाहे जितना ही क्यो न हो, उसका कुछ बच भी रहा होगा चाची ?

सुमित्रा ने कहा था—आग लगते ही तुम भी हम लोगों के साथ-साथ हा भाग खड़े हुए थे, इसलिए तुम सुनी-सुनाई ही कह रहे हो।

हुस्ना सब कुछ आँखों देख आयी है चाची ?

सुमित्रा ने रुखाई से कहा था—उस पर तुम लोग अभी भी विश्वास करते हो, मैं नहीं कर सकती। वह अपनी आँखों ऐसी बहुत बातें देखती है जो वास्तव मे सच नहीं हैं। एक और बात याद रखना हिरण, जो लड़की मुसलमान होकर भी मुसलमानों की निंदा करती फिरती है, उसके लिए न तो इस पार जगह है, न उस पार। अपनी जाति को जो हर बात में नीचा दिखाती है, वह जाति की दुश्मन नहीं तो क्या है ! सो हुस्ना की बात तो मुझे मत ही कहो—खासा सबक मिल चुका है मुझे।

—लेकिन इसमें हुस्ना का अपना स्वार्थ ही क्या हो सकता है ?

—किसका कहाँ स्वार्थ है, यह हर समय आँखों नही दिखाई देता। आखिर तुम क्या समझते हो, चाहती तो हुस्ना जेठजी को लौटाकर ले नही जा सकती थी ? और क्या खयाल है तुम्हारा, हुस्ना खुद कभी हाजीपुर नहीं लौटेगी ! जरूर जायगी वह, न जाय तो मैं ब्राह्मण की लड़की ही नहीं, कहे देती हूँ। वह वहाँ जायगी, इसीलिए मेरा वहाँ जाना उसे नहीं सुहाता। मुझे मालूम है, रैयत उसकी मुट्ठी में हैं, दफ्तर के कर्मचारी-कारिंदे उसके हुक्म पर उठते-बैठते हैं, यहाँ तक कि कागजात की उसको पूरी जानकारी है, खजाने की वही मालकिन है—तालुका के नायब उसके नाम से ही होश गँवा बैठते हैं। तुम्हीं बताओ, इसका अन्दरूनी राज क्या है ? जेठजी का दिल तो दरिया था, मगर उन्हें दिमाग नहीं था।

बगल के कमरे में बैठी हुई हुस्ना ने छोटी चाची की सारी बातें

हँसते हुए सुनी थीं। अन्त में जीवेन्द्रनारायण पर पड़नेवाले छीटे से वह गरम भी हो उठी थी, किंतु विदा होते वक्त चाची से उलझने का उसका मन न था। आज सहज ही सिंहासन पाने के लिए अगर उनके मन में मुसलमानों के प्रति प्रीति जगी हो, तो कहने की क्या है। हुस्ना चुप ही बैठी रही।

हिरण ने कहा—आपका क्या खयाल है चाची, हुस्ना यहाँ से मौके पर जाकर हाजीपुर की सारी जायदाद पर दखल जमा लेती ?

—जब तक मैं जिंदा हूँ, यह नहीं होने का—मैं यहीं से हुस्ना को बताये जा रही हूँ। उससे कहना—मुसलमान कभी अपना स्वार्थ नहीं भूलते। उन्हें यह मालूम है कि मुझसे उनका काम बनेगा। मेरे बदन पर जमींदार की मुहर पड़ी है, यह मुहर दिखाकर वे लगान जरूर वसूल करेंगे। उनके लिए आज भी जमीदार और अंग्रेज़ व्यापारी प्रिय हैं—यह उनका अपना स्वार्थ ही है। वे तुम-जैसे मामूली लोगों की पूछ नहीं रखते—अपनी हुस्ना से कहना।

इसके बाद सामने आ गई थी मीरा। हँसकर कहा—तुम्हें साहस खूब है चाची, मुझे लेकिन नहीं है। वहाँ तुम्हारी देखभाल कौन करेगा, सुनूँ जरा ? आखिर मुझसे बड़ी भी कितनी हो तुम ? खौफ-खतरा नहीं है तुम्हे ?

सुमित्रा ने कहा—जी की जलन से जो लोग पूर्वी बंगाल की शिकायतें करते हैं, मै उनकी जमात मे नही हूँ मीरा। वह बाघ-भालू का मुल्क नहीं है ! मैं अपने घर जा रही हूँ, आप अपने को देखूँगी। आप भला तो जग भला।

और कोई मुसीबत आन पडे ? याद रखो, वह गाँव है शहर नहीं।

—मरने से बड़ी दूसरी गाली नही होती मीरा ! जब तक तुम्हारे चाचा जिंदा रहे, तब तक यह डर रहता था कि कही उनकी करतूतों से मुझे अत्रि को लेकर दर-दर की ठोकर न खानी पड़े। आज जब राह की भिखारिन बन ही गई हूँ तो डर क्या रहा ? यह तो राह से घर ही जा

रही हूँ। कलकत्ते के इस नरक में कितने दिनों तक बिलबिलाती रहूँ ?

मीरा ने पूछा—तुम बर्तन-बासन, कपड़े-बिस्तर, खर्च के रुपये—यह सब क्यों नहीं ले जा रही हो ?

सुमित्रा बोली—तुम लोग हठ कर सकती हो, मैं नही कर सकती ? मैं कुछ भी साथ न लूँगी—पूजा के बर्तन दो-चार जरूर ले जा रही हूँ। खाली हाथों जाऊँगी—देखती हूँ, हाथ भरता है या नही ! सात दिनों तक वहाँ आग जलती रही तो क्या हुआ—सात साल तक तो नहीं जलती रही ? आग लोगो ने जमीदार के घर मे लगाई थी, जमीदारी तो नहीं जली है ? चीजें स्वाहा हो गई है, खेत साबित है ! मै और कुछ नही सुनना चाहती मीरा !

मीरा बोली—तुम्हारे साथ जा रहे है बेल्लिक बाबू। इन्हें तुम कितने दिनों तक रख सकोगी ?

—वे हमें वहाँ पहुँचा देंगे और फिर लौट आएंगे। रहूँगी मैं और रहेगा अत्रि। दफ्तर के लोग है, ठाकुरबाड़ी है—और लोग है। तुम सब कुछ भूलकर यहाँ रह सकती हो, मैं नहीं रह सकती।

—मैं भूलकर इसीलिए रह सकती हूँ चाची कि मुझे कुछ नहीं चाहिए।

सुमित्रा बोलीं—मुझे सब चाहिए ! आज तक मुझे कुछ मिला नहीं है, इसीलिए मैं सब कुछ चाहती हूँ। सब कुछ तो मुझे पाना ही चाहिए था, खोने की बात तो नहीं थी। स्वामी से मुझे भला व्यवहार मिला होता तो जायदाद गँवाने का गम नही होता। लेकिन अब मैं उसी क्षति की पूर्ति चाहती हूँ ! बल्कि सारी संपत्ति अपने हाथों उड़ा दूँगी, वह भी ठीक है, पर उसे औरों के हाथ छोड़ खुद मुँह छिपाती फिरूँ, यह मुझसे न होगा।

मीरा बोली—ठीक है, तुम जाओ। अत्रि को मेरे पास रख जाओ।

—क्यों ?

—उस पर खतरा भी तो हो सकता है। चौधरी परिवार का

आखिरी चिराग तो वही है !

सुमित्रा ने कहा—मै यहाँ हुस्ना की बुरी सोहबत में तो उसे नहीं छोड़ सकती मीरा ! लड़का अगर आदमी के बजाय जानवर बन जाए तो उसका कोई मूल्य नही रह जाता। फिर अपने घर, अपनी मिट्टी में जाकर वह पलेगा, यह तो अच्छा ही है ! इसी में गौरव है !

स्टेशन जाने का वक्त हो आया था। वसंत एक गाड़ी ले आया। गाड़ी पर बैठने से पहले अत्रि कुरते से अपनी आँखें पोंछ रहा था, यह हुस्ना ने खिड़की में से देखा। खुद गाड़ी पर बैठने से पहले सुमित्रा ने कहा—हुस्ना को लेकिन यह याद रहे कि मैं जा तो रही हूँ मुसलमानों के राज्य में, लेकिन वह मिट्टी मेरी अपनी है। जमीदारी छीनी जा सकती है, माटी नहीं। संसार की हर चीज जल सकती है, माटी नहीं जलती कभी। मै अपनी ससुराल की उसी मिट्टी को वापस जा रही हूँ। वसंत, बैठ गाडी पर।

कुँजियों का एक घना-सा गुच्छा चाची को देती हुई मीरा ने कहा—यह रही खजाने की कुँजी। अब तक हुस्ना के पास थी। हम लोग यहाँ से यही कामना करेंगे कि तुम सब कुछ फिर से पाओ।

कुँजियाँ सँभालकर चाची गाड़ी पर बैठी। गाडी चल दी। हिरण और मीरा रास्ते की ओर देखते रहे। कल रात बातों-बातों में सुमित्रा ने कहा था—अहंकार छोड़ने से ही हमारे दु:ख दूर होंगे, मीरा! यह भूलना पड़ेगा हमें कि हम उन पर मेहरबानी करते हैं; अगर हमें इसकी याद होती कि उन्हीं लोगों ने सदा हमारा रसद जुगाया है, तो वैर-विवाद की नौबत ही न आती !

मीरा ने कहा था—फिर तुम हुस्ना से झगड़कर क्यों जा रही हो चाची ? वह भी तो शुरू से यही कहती आ रही है !

—हुस्ना का अब मैं जिक्र ही नहीं करना चाहती ! मैने उसे पहचान लिया है।—इतना कहकर सुमित्रा अंदर चली गई थी। पिछली रात अत्रि ने आकर हुस्ना के साथ सोना चाहा था, मगर सुमित्रा ने गरजकर

उसे पुकारा और वह सुमित्रा के ही कमरे में लौट गया। सुमित्रा का यह रवैया देखकर हुस्ना रात-भर आँख मूँदे बिस्तर पर पड़ी रही। खैर, आज से अब कोई झमेला ही नही रहा।

हिरण पास ही खड़ा था। मीरा ने कहा—और तो कुछ नही, कहीं अत्रि का भविष्य अँधेरा न हो जाए !

हिरण कुछ न बोल सका। अब पीछे से हँसती हुई हुस्ना सामने आयी। गौर करने से ही मालूम हो रहा था कि वह देर से अपनी आँखें आँचल से मलती रही है।

मीरा बोली—हुस्ना, तेरा अहंकार धूल में मिल गया। आज तक तू चौधरी परिवार को कान पकड़कर मनमाना घुमाती रही है, आज से तेरा वह घरनीपना जाता रहा। मैं बेहद खुश हूँ !

हिरण बोला—मैं भी खुश हूँ !

हुस्ना ने पूछा—तू क्यों खुश हुआ जमाई ?

—तेरे पास खजाने की कुँजी रहती थी, इसलिए तेरी परवाह करता था। अब तुझे पूछता कौन है ?

अचानक हुस्ना उत्तप्त कंठ से बोली—आज तक तुम लोग एक गरीब मुसलमान की लड़की के मातहत रहे, तुम्हें अपमान का खयाल न हुआ ?

मीरा के स्वर में उत्तेजना आई। कहा—पिताजी की लाड़ली ज्यादा तू थी कि मैं ? अपमान का खयाल हो तो कैसे ? पिताजी कभी उठा भी सकते थे तेरी कोई बात ? मरते दम तक तेरी ही बात पर हामी भरते गए ! जब उन्होंने ही तेरी वश्यता मान ली, तो हम किस खेत की मूली होते हैं ?

शांत-सी होकर हुस्ना ने कहा—मेरा घरनीपना गया, इसकी सबसे ज्यादा खुशी मुझे है मीरा जीजी। अब से अपने को भी छुट्टी मिल गई ! मैं तुम लोगों से छुटकारा लूँगी अब।

हिरण बोला—आज से अपनी भी मुक्ति हो गई, छुट्टी मिल गई।

कटाक्ष करते हुए मीरा बोली—आपको बंधन ही क्या था ?

—था। कुँजियों का वह गुच्छा जब तक हुस्ना के पल्ले था, तब तक बंधन था। लोभ की कुँजी वही था।

मीरा बोली—लोभ काहे का ?

हिरण हँसा। कहीं आपका पाणि-पीड़न कर पाता तो वही गुच्छा अपने पल्ले पड़ता ! राजत्व वही तो है।

—तू भी सुन ले हुस्ना,—मीरा हँसकर बोली,—आज सुबह तक क्या तो उसे राजत्व का लोभ था। कौआ कान ले गया—दौड़िए अब उसके पीछे।

हिरण बोला—न दौड़ूँगा पीछे। भाड़ में जाए राज, अब राजकुमारी का मन पा जाऊँ तो खुश हो जाऊँगा।

हुस्ना बोली—भली तरह सोच ले जमाई, कुँजियों के गुच्छे के साथ ही राजकन्या हो गई हवा—अब बच रही एक बुढ़िया कुमारी। अब उसका मन मिले भी तो क्या लेना ! तेरे जमा के खाने में तो शुरू से आखीर तक शून्य ही रहा।

हिरण ने कहा—जभी तो अब छुट्टी माँग रहा हूँ ?

मीरा बोली—छुट्टी लेकर जायँगे कहाँ आप ?

—विक्रमादित्य के देश में !

हँसते हुए मीरा ने एक बार उसकी ओर ताका। बोली—आशय समझ गई मैं। लेकिन विरही पक्ष से मिलती-जुलती शक्ल भी हो तो उसकी भूमिका में अभिनय करने जैसा कुछ है क्या ?

हिरण बोला—क्यों, है क्यो नहीं ?

—जिसके साथ-साथ बढ़ना-पलना होता है, उस पर कविता करना उतना सहज नही होता।

—मन में विरह-लोक तैयार कर लूँगा—हिरण ने कहा।

—उसके बीच में खड़ा हो जाता कुँजियों का झब्बा। और मंदाक्रांता छद देश की सरहद छोड़कर भाग खड़ा होता। और, जिसे आप मेघदूत मुकर्रर करते, वह दूसरे किसी मेघ से गलबाँही करके आपके माथे

पर बिजली गिराकर चल देता !—हँसकर मीरा वहाँ से चली गई ।

अत्रि के जुदाई के खयाल से कल से ही उनके मन भारी हो रहे थे, आज सब चले गए तो हलका-हलका लगने लगा । सारा घर सूना—सब कुछ बेतरतीब । उनके जीवन की अब कोई जिम्मेदारी न रही, पारिवारिक जड़ नही रही, सांसारिक बुनियाद नहीं रही । उन तीनों में निकटता है, पारस्परिक सहयोग है, किंतु वास्तव में कोई बंधन नहीं । हिरण निश्चित बैठा है, क्योंकि उसके जीवन का निश्चित कोई सिद्धान्त नहीं मालूम ; मीरा अपनी नौकरी मे लगकर चुप है, लेकिन उसका भविष्य उसी के आगे स्पष्ट नही हो सका है ; यह जैसे बहुत हद तक विमलाक्ष का मुँह जोहना है—जिसकी याद से ही डर हो आता है । हुस्ना चुप है—पर उसका मन विविध विषयों के आस-पास चक्कर काट रहा है । समुद्र दिख नहीं रहा है, लेकिन उसकी उत्ताल तरंगों का दीर्घ निःश्वास कानों तक पहुँच रहा है । बारम्बार उसका मन यही कह रहा है कि विक्षुब्ध समुद्र में कूदना ही पड़ेगा—बिना कूदे मुक्ति नही ।

आज मीरा की छुट्टी है । कल भी । काफी अवकाश । मीरा के मन में किसी तरह की क्लांति नहीं, क्योंकि नये जीवन का नया-नया स्वाद है । इस उम्र में बहुतेरी लड़कियों के जी में उदासी घिर आती है, बहुतेरी लड़कियाँ किसी खूँटे के सहारे खड़ी होना चाहती हैं, बहुतों के मन में बिना कारण के ही असंतोष । भविष्य पूरी तरह स्पष्ट नहीं भी है तो क्या ! वर्तमान बेजा क्या है ! हाजीपुर के सुख का वह निर्जन अड्डा टूट जरूर गया है—पर यहाँ के कोलाहल में रसों का जो एक आलोड़न है, उसी से चित्र क्यों खिंचे ? नगर के राज-पथ की कैसी शोभाएँ, कैसे-कैसे जीवन का विचित्र प्रवाह, कितने अनोखे रंगों की बहार—इन सबका एक नशा आखिर है न ।

मीरा लेटी थी, अचानक उठ बैठी । गरदन बढ़ाकर पुकारा—ठाकुर !

ठाकुर रसोई कर रहा था । जरा देर में सामने आकर खड़ा हुआ ।

मीरा ने पूछा—तुम्हें घूमने-फिरने का शौक नहीं है।

सकपकाकर ठाकुर ने कहा—जा, दीदीजी—

—शौक है या नहीं, सो कहो ?

—जी, तमाम दिन तो काम के कोल्हू में जुता हूँ—घूमूँ-फिरूँ कब ?

—अभी !—कहकर मीरा बाहर निकल पड़ी। उसके मन में ज्वार उमड़ आया है, आज घर में थिर रहा नही जा सकता।

बगल के कमरे में एक मोटी-सी किताब लेकर हुस्ना लेटी थी और दूसरे कमरे में खुर्राटे भरता हुआ सो रहा था हिरण। मीरा ने पास जाकर कहा—तुम लोग अधमरे-से हो गए हो। चलो तुम्हें घुमा लाऊँ !

जो आदमी अभी-अभी बेखबर सो रहा था, वह बोल उठा—मैं अकेले घर की रखवाली नहीं करूँगा लेकिन।

मीरा ने कहा—औरतों के कमरे में आप तो जनाब नींद का बहाना किये खूब पड़े रहते हैं ! वह तो भाग्य कहिए कि कोई ऐसी-वैसी बात नहीं हुई !

हुस्ना ने कहा—हिरण चलकर हमें कविता सुनाये तो बुरा क्या !

मीरा बोली—पिकनिक का मजा किरकिरा हो जाएगा। खैर, यही हजरत चलें; ठाकुर के बदले खाने की चीजें यही ले चलेंगे। वहाँ परोस-कर हमें खिलाएँगे—बर्तन साफ कर लेंगे—मुझे कोई एतराज नहीं।

हिरण उठकर बैठ गया। हँसकर बोला—खिदमत करा लेना चाहती हैं—यही तो ? बहुत-सी औरतें होती हैं जो पुरुषों से मशक्कत करा-कर खुश होती हैं, पाँव पड़ाकर उन्हें आनंद आता है। बहुतेरी औरतें ऐसी हैं, जो रसोइया-नौकर के सामने शारीरिक शरम नहीं करतीं। कई भाभियाँ हैं, जो देवरों से हुक्म की तामीली कराकर संतुष्ट होती है। बहुत औरतें है जो गला दबाकर पुरुषों को नीचा दिखा सकें तो आनंदित होती है। मनोविज्ञान के हिसाब से देखा जाए तो यह सब एक प्रकार का संभोग है। खैर, विरही पक्ष की भूमिका में ठीक चाहे न लगे, दास की भूमिका में तो सोहेगा ? वही स्वीकार है।

हुस्ना बोली—ऐसे वेहया मे तू जीत न सकेगी जीजी। मैं बताऊँ, उससे वेहतर है कि हम झटपट निकल ही पड़े।

होंठ दबाकर हँसती हुई मीरा बोली—वल्कि एक काम करे, भोजन से हम लोग फ़ारिग ही हो ले, फिर दोनों जने चल दे। इन्हे भी खाना-वाना ढोना न पड़े और हम भी अकेले घूमकर बदन मे जरा खुली हवा लगा सकें।

हिरण ने कहा—ऐसे मे औरतों का भार कौन ढोएगा? दो-दो रसवती तरुणियाँ अचानक ग्रुटा तोड़कर टैक्सी पर मनमाना दौड़ चलें तो यह पुरुप जाति के लिए कितनी बड़ी शरमनाक बात है? कुछ हो-हुआ जाए तो देखेगा कौन?

हुस्ना बोली—और कहीं तू ही हम लोगों की नाव डुबाने पर आमादा हो जाए तो हमे कौन बचाएगा?

—नाव डुबाना कैसा?

मीरा ने कहा—अखवारों मे जिसे बुरी नीयत कहते है।

—हिरण ने कहा—लेकिन यह बात अब तक क्यों नहीं उठी थी आपकि मन मे? किस अनुभव के वल पर आज आपने यह बात छेड़ी है?

मीरा मन में कुछ चौकी। बोली—मर्दो का एतबार नहीं।

—आपकी बात से खुशी हुई। आज पहली वार आपने खाकसार को पुरुष कबूल किया है। और धीरे-धीरे शायद यह भी कबूल करेंगी कि पुरुष भी सुपुरुप हूँ।

हुस्ना बोली—तू ठहर भी हिरण! पुरुषों को रूपवान कहें तो हमारी कद्र नहीं रह जाती, जानते हो?

—लेकिन सच ही अगर वह खूबसूरत हो?

—तो यह बात उसके कानों मे स्वीकार की जा सकती है, यानी दूसरे मर्द जिसमें न सुने।

हिरण खुशी-खुशी खड़ा हो गया। बोला—लो, आज की पिकनिक का खर्च मेरा रहा। वह नहीं तो टैक्सी का किराया ही!—मीरा की

ओर देखकर हाथ बढ़ाते हुए कहा—पचास-एक रुपये मुझे उधार दीजिए तो !

मीरा ने पूछा—चुकाएँगे कैसे ?

—ब्याह का दहेज मिलेगा, तो चुका दूँगा ।

—ब्याह ? किससे ?

—भारत की अठारह करोड़ लड़कियों में से किसी भी एक से। हिंदू हो, मुसलमान हो—जो हो, कोई विचार नहीं !

मीरा बोली—फिर हुस्ना को क्यों नहीं ब्याह लेते ?

हुस्ना हँसती हुई ताकती रही। हिरण ने कहा—खजाने की कुंजी इसने सौंप न दी होती तो इस प्रस्ताव पर सोच देखता।

हुस्ना ने कहा—लेकिन तू तो यह कहता है कि लछमी से ब्याह करते हैं मारवाड़ी और सरस्वती से बंगाली !

हिरण बोला—सरस्वती को सुरक्षित रखकर ही लछमी की बात सोच रहा था !

हुस्ना और मीरा हँसते-हँसते कमरे से बाहर हो गई।

चूँकि कोई जिम्मेदारी नहीं, इसलिए दुःख भी नहीं है उन्हें। कुछ संशय ने उनके जीवन में बसेरा बाँधा था, जिसका प्रकाश कि इस एक वर्ष में हो रहा है। उन्होंने संपत्ति के मामले में मार खाई है, व्यावहारिक जीवन में उन्हें असुविधाएँ हुई हैं, मगर यह क्या उनके अंतरतम को छू सका हैं ? उनके विलास का केन्द्र टूट गया है, लोभ का घोंसला उजड़ गया है, सुरक्षित स्वार्थ की जो एक स्थायी संस्था थी, वह धूल में मिल गई है। उसके लिए विक्षोभ चाहे जो रहा हो, कोई दुःख है क्या उसका ?

उनके मन में लेकिन एक और बात का उदय हुआ है, जोकि चलते संस्कार का विरोधी है ; उनका घर सदा के लिए उजड़ गया है, लेकिन उसके साथ-साथ और जो-जो चीजें लुटी हैं, उनकी ओर भी नजर है ? इसके लिए किसी को तकलीफ है ? स्थिति और स्थापकता का मतलब

क्या है ? पारिवारिक जीवन खडा किस आधार पर है ? उसकी नींव स्नेह है या स्वार्थ ? उसकी बुनियाद लहू का सबंध है अथवा अर्थ-नीति की मूल बात ? मनुष्य के हृदय में आज जो अशांति है, उसका असली कारण क्या है ? दुःख की पैदाइश लोभ से होती है कि नाकामयाबी से ? जिन्हें कुछ भी नही है, उनके शोरोगुल से आज कान रखना मुहाल है, लिहाजा जिसे है, वह भी तो शाति से नही है !

मैदान के किनारे-किनारे टहलते हुए हुस्ना ने कहा—बात बस इतनी है कि हम यह विश्वास नहीं करते कि मनुष्य बुरा है, मनुष्य नीच है। मनुष्य के भीतर शैतान का अड्डा है---यह बात कही किसने है ? अब तक इस बात का ढिंढोरा कौन पीटते आए है कि हिसा केवल बर्बर का धर्म है ? क्या मेरे तुम्हारे लहू मे हिसा नही है ? लेकिन सच ही क्या हम सब बर्बर है ?

आसाढ़ के अंतिम दिनों आज आसमान निर्मल हुआ था। मैदान में धूप थी—काफी तीखी धूप। वे आम के पेड़ों के नीचे-नीचे जा रहे थे। शाम होने को अभी काफी देर थी। ऐसे समय केवल ऐसे ही लोग घूमने निकल सकते हैं जिन्होंने सारी व्यवस्था को ही तोड़-मरोड़कर बरबाद कर डाला हो।

हिरण ने कहा—तो बात यह रही कि हम लोग वर्बर हैं या नहीं। हुस्ना को इस बात का अभिमान है कि वह संस्कृत हुई है, उसका खयाल है वह बर्बर नही है। उसकी राय में वे लोग, जिन्होंने हाजीपुर के मकान में आग लगाई थी, नादान है, वर्बर नहीं हैं। देख रहा हूँ कि चाची जो कह गई हैं, उसका एक-एक हरुफ सच निकल रहा है !

सुमित्रा का जिक्र आते ही आलोचना का रुख बदल गया। यहाँ दूसरी ही बात आई। चाची कह गई हैं, हुस्ना और हिरण विदेश जाना चाहते हैं, इसे मैं अच्छा नही समझती मीरा। ऐसा काम नहीं, जो वह लड़की नहीं कर सकती। तूने जवाब क्या दिया मीरा जीजी ?

मैंने कहा—चाची, तुम्हारा क्या यह खयाल है कि इससे मेरा

नसीब डूबेगा ?

चाची बोलीं—मानती हूँ कि हिरण अभी दामाद नहीं हुआ है, पर उसके सिवाय होगा ही कौन ? हिरण को मैं चौदह वर्षो से देखती रही हूँ, इस डाईन के फंदे में फँसेगा, ऐसा तो नही लगता !

—फिर तूने क्या कहा ?

मैने कहा—वह फंदे में फँस भी जाए तो मुझे दुःख नहीं होगा चाची । शादी मैं नही करूँगी ।

चाची ने कहा—शादी नही करेगी ? दो-दो जीवन धूल में मिलेंगे ?

मैने कहा—शादी नही करने से धूल में मिलेंगे और कहीं शादी करके कीचड़ मे लतपत हो जाएँ ?

हिरण चुपचाप सुन रहा था । अब बोल उठा—कीचड़ काहे की ? मैं लिखा करता कविता और आप बजाती रहती नौकरी—कीचड़ में लिपटाने से क्या वास्ता ?

मीरा बोली—मै क्या आजीवन आपको ला-लाकर खिलाती ?

—कुछ दिनो तक खिलाती ही तो क्या ? उसके बाद कविता में मेरा नाम-गाम होता और धड़ल्ले से रुपए आने लगते । हम मोटे हो उठते—आपके नाम कविता-पुस्तकों की वसीयत कर देता ! और अगर सभी दिन खिलातीं, तो कौन-सा गुनाह होता ? कोई खाता है, कोई खिलाता है ।

हुस्ना बोली—तो तुम दोनों में यही तय रहे । हिरण की हालत सुधर जाएगी तो तुम्हें नौकरी की नौबत नहीं आएगी जीजी ! शादी की बात न हो तो तब उठाई जाएगी ।

तीनो जने खुशी से भरपेट हँसे । मीरा ने कहा—चलो भी, मुझसे अब चला नही जाता ।

—कहीं पर बैठेगी ?

—नहीं । बड़े रास्ते की तरफ चल ।

चलते-चलते हिरण बोला—अब अपने जाने का दिन तय कर लिया जाए हुस्ना—अब अच्छा नहीं लगता।

हुस्ना बोली—चाची का संदेह देखकर अब अपने को भरोसा नहीं हो रहा! कहीं मेरे साथ तुम्हारे जाने से मीरा जीजी का नसीब जले?

मीरा ने हँसकर कहा—अरी नसीब-जली, याद रखना, नौकरी अपनी कायम रही तो जले नसीब का दाग मिटा दूँगी।

हिरण ने कहा—सुनकर ढाढस हुआ। भरोसा रहा कि बड़े पेड़ से जुड़ी रहने पर नाव डूबेगी नहीं।

मीरा ने कहा—हुँ। पेड़ की बात तो समझ में आई, मगर यह बड़ा पेड़ क्या?

हिरण ने झट से कह दिया—मसलन विमलाक्ष डॉक्टर! जिसने आपकी नौकरी जुटा दी है! सबको मालूम है कि कभी उस पर आपको बेतरह नफरत थी!

देखते-ही-देखते मीरा का चेहरा तमतमा उठा। बोली—विमलाक्ष ने मेरी नौकरी लगा दी है, आपसे यह किसने कहा?

हिरण ने जवाब दिया—आपके उस बड़े सरकारी दफ्तर में एक आदमी है, जो विमलाक्ष का जात-भाई है और मेरा सहपाठी है। अचानक उस दिन अपने उस मित्र से आप लोगों का किस्सा सुना। सुनते-सुनते मैं ऐसा बना रहा, मानों मैं आपको जानता ही नहीं। आजकल के सिनेमा देखनेवाले छोकरे किस भाषा में औरत-मर्द की कहानी कहते हैं, मालूम है आपको?

—तू बंद भी कर हिरण—हुस्ना ने डाँट बताई—तिल को ताड़ न बना। जब तक माँस का लोथड़ा मिल नहीं जाता, कुत्ते भौंका करते हैं और उसके बाद जब दुम हिलाने लगते हैं, तो यह नहीं कहा जा सकता कि वे कुत्ते सभ्य हैं। औरतें जब अपने पैरों खड़ा होना चाहती हैं, तो खूँखार दाँत कौन पीसा करते हैं? बेशक औरतें नहीं। विद्वेष से ही

आती है निंदा और व्यंग, जोकि मनुष्य करते हैं और विद्वेष से ही आती है हिंसकता, जोकि कुत्ता करता है। अपने दोस्त से तू बताना यह।

शांत स्वर में हिरण बोला—माफी चाहता हूँ मैं। एक साथ, एक ही घर में रहकर हम बढ़े हैं, इसीलिए बहुत बार अधिकार से बाहर की भी बात कह बैठता हूँ। जिस बात को आज तक आपने कहना नहीं चाहा, उसका मेरे मुँह से निकल पड़ना असभ्यता ही है।

चलते-चलते बीच में मीरा रुक गई। कहा—यह मैं कबूल करती हूँ कि अपनी नौकरी की बात कहने में मुझे लज्जा लगी। लेकिन आपके उन दोस्त महोदय ने जो कहा, वह किस्सा क्या है? उसका आदि-अंत तो जरूर है! जरा कहे, तो सुनूँ।

हुस्ना बोली—जीजी, तू क्यों नादान बनती है? किस्सा भला क्यों न घड़े? जैसी जालिम खूबसूरती है तेरी! ताज्जुब है, हमारी तंदुरुस्ती टूटेगी कब? कब हम सूखकर सोंठ होंगी? कब हम बिखर पड़ेंगे। इतने-इतने रिफ़ुजी तो रोग भोगकर मर रहे है और दिन-दिन अपने स्वास्थ्य की उन्नति देख लो! भले समाज में सीधी खड़े होने में संकोच होता है। देखकर कोई यकीन नहीं करना चाहता कि हम सर्वहारा हैं!

हिरण हँसा। हँसकर मीरा की ओर देखते हुए कहा—मुझसे और कुछ सुनना न चाहें। किस्सा अगर कुछ है तो आपमें ही है। मेरी आलोचना की जरूरत नहीं!

मीरा ने कहा—जिसने मेरी नौकरी लगा दी है, उससे आपको रश्क होता है, क्यों?

आप जिससे घृणा करती हैं, मेरे लिए वह घृण्य हो सकता है, उस पर मुझे रश्क क्यों हो?

मीरा फिर बोला—जो मेरी नौकरी लगा देता है, वह क्या मेरा सच्चा बंधु नहीं? उससे बे-मतलब नफरत ही क्यों करूँ मैं?

हिरण बोला—और मैं ही उससे रश्क क्यों करूँ ? उसने मेरा तो कुछ नहीं बिगाड़ा ? फिर उस पर आपकी घृणा अब कम हो आई है, यही समझने मे मुझे क्यों देर होगी ?

—ओ, आपने यह भी समझ लिया ? धन्य बुद्धिमान हे आप ! आप आदमी तो खैर नही बन सके, लेकिन पक्का जासूस बन गए है, देख रही हूँ।

अचानक हिरण का गला उत्तप्त हो उठा। बोला—अपनी खबर तो आप खुद ही बताती है, मेरे जासूस बनने की जरूरत नही। जूता पहन-कर दफ्तर जाती है और स्लिपट पहने घर लौटती है। उस रोज उतनी रात गए विमलाक्ष आपको यहाँ पहुँचा गया, आप दीवार का सहारा लेकर डगमगाती हुई जाकर विस्तर पर सो रहीं। उतनी रात को आपके लिए बत्ती किसने जला दी थी ? बाहरी दरवाजे से आपका एक स्लिपर लाकर किसने सहेज पर रख दिया था ? शरम के साथ एक बात और भी कबूल करनी पड़ती है, तू कुछ खयाल मत करना हुस्ना, रसोई मे खाना लाकर इन्हे खिला भी देना पड़ा था ! रात के बारह बजे थे। चाची का कमरा बंद था और तेरी नाक बज रही थी।

मीरा का चेहरा फक् हो गया। वह बुत बनी खड़ी रही।

हुस्ना बोली—खिलाया किसने ? तूने या ठाकुर ने ?

हिरण बोला—महाराज तो शाम के बाद ही चला जाता है !

—खैर, जान में जान आई।—हुस्ना ने चैन की साँस ली। बोली —जीजी, हिरण को अब विरही पक्ष की भूमिका खूब फब गई ! तुझे लौटने में देर होने से वह रात के बारह-बारह बजे तक खिड़की पर राह ताकता हुआ खड़ा रहता है, इसका किसे पता था ?

मीरा धीरे-धीरे चलने लगी। किसी बात का जवाब नहीं दिया। हँसी की ओट में केवल हुस्ना का हृदय विमलाक्ष के प्रति घृणा से झन-झनाने लगा।

साँझ के बाद वे घर लौटे। इतने दिनों के बाद आज पहली बार

उनका आपसी सम्बन्ध मानों ग्लानि से भर उठा है। कहीं कोई भूल रही जा रही है। इसे मीरा नहीं समझ पा रही है, हिरण नही पकड़ पा रहा है। और दोनों के बीच सामंजस्य नहीं कर पा रही है। उनके बंधन ढीले पड़े है, सम्बन्ध ढीले-ढीले, मन शिथिल। यही उनकी तात्कालिक प्रतिक्रिया है। वे बड़ी तेजी से नीचे उतरते जा रहे हैं, सबसे नीचे, जहाँ आज सर्वहारा की जमात जा खड़ी हुई है। विषय-संपत्ति ही मनुष्य की सर्वस्व नहीं है, कुछ और भी है, जो देखा नहीं जा सकता। चरित्र की दृढ़ता, मानवता का आदर्श, स्वभाव का सौंदर्य, ज्ञान की पवित्रता, ये चीजें सिर्फ एक बात-भर ही नहीं हैं—सर्वहारा की टोली क्या इन चीजों को भी खोकर आई है ? हुस्ना को रोना आ गया। इस सदी में कहीं रोशनी नही जलने की—दुःख की यह खबर वह आज किसे दे ? इस सदी में सताई हुई, दुखाई हुई मनुष्यता की आँखों से आँसू बहेगा—उसकी दिव्य दृष्टि में यही दीखता है। ज्ञानी रोयेंगे, गुणी रोयेंगे—रोया करेंगे नादान और अज्ञानी—जो सभ्यता की बागडोर हाथों में लिये है, जो हिंसा के अवतार है, वे भी रोयेंगे। किसी तपोवन मे कहीं अगर सत्यद्रष्टा ऋषि हों, किसी खून से सीचे युद्धक्षेत्र में अगर ज्ञानयोगी सेनापति हों, तो वे भी रोयेंगे। युगांत के इस घनघोर अँधेरे में यह क्या पता चलता है कि कहीं एक देवशिशु ने जन्म लिया है, जो एक दिन विराट् पुरुष होकर शताब्दी के किनारे आकर खड़ा होगा ? जिसके एक हाथ मे होगी संहति, दूसरे में समन्वय ! भय, संशय, दुःस्वप्न, निराशा, अज्ञान से वह सर्वशक्तिमान पुरुष इस शताब्दी को निकाल बाहर करेगा ! कहीं जन्म लिया है क्या उसने ? आदर्शों के विरोध के पागलपन और धर्म-विरोध की यह अँधी उन्मादना—युग के इस अँधकार-भरे गर्भ से यह ज्योतिर्मय देवशिशु कहीं पैदा हो चुका क्या ? हुसना को रुलाई छूटने लगी।

आँखें पोंछती हुई वह दूसरे कमरे में चली आई। अंदर बत्ती नहीं जल रही थी। किंतु अँधेरे में खिड़की पर चुप खड़ा था हिरण और टूटी तख़त पर औंधी पड़ी थी मीरा।

हुस्ना ने पूछा—अँधेरे में क्यों खड़े हो ? हुआ क्या है ?

हिरण ने कहा—शायद वे आँसू बहा रही है।

—अच्छा। तू औरत की लट से उसकी आँखें पोंछ देना नही जानता ?

—तेरे पतियों से यह सीख लेता तो अच्छा था !—हिरण ने जवाब दिया।

हँसती हुई हुस्ना तख़्त पर बैठ गई और मीरा के बदन पर हाथ फेरने लगी। कहा—तुम लोगों से कैसे निबटूं, बता तो ? मुझे क्या कहीं जाने नहीं दोगे ? तुम लोगों के चलते कुछ कर नहीं सकूँगी मैं ?

मीरा ने कहा—तू इस घर को छोड़ दे हुस्ना !

—छोड़कर जाऊँ किस भाड़ में ?

—तू गाँव लौट जा अपने। अपनी मैं निबेड़ लूँगी।

हुसना बोली—और हिरण ?

हिरण ने खुद ही जवाब दिया—मैं रिफ़ुजी का टिकट लेकर कैम्प में चला जाऊँगा। या सरकार से कर्ज लेकर किसी बस्ती के मोड़ पर पान-बीड़ी की दूकान करूँगा।

हुस्ना बोली—खैर, वही करो। तो मुझे अब छुट्टी दे दो जीजी। मैं जाऊँ, क्योंकि मेरी राह जुदा है। मैं अपने पैरों खड़ा होना नही चाहती, चाहती हूँ प्रवाह में बह जाना। मेरे कानों में बड़े चाचा का दिया हुआ मंत्र है। या तो मंत्र सधेगा या शरीर का पतन होगा। मुझे स्वामी नहीं चाहिए, रुपये-पैसे की बला मैं नहीं चाहती, घर मेरे काम नहीं आने का। खैर, तुम लोगों का गठबंध जब किसी भी उपाय से सम्भव न हुआ, तो इस घर को छोड़ ही दो। तुम लोगों से अब पार नहीं पा सकती मैं। तुम लोगों के लिए मैं कुछ रुपये ले आई थी। सोचा था, तुम लोगों की ग़िरस्ती बसा दूंगी और चाचा को लेकर गाँव लौट जाऊँगी। सो चाचा तो चल बसे, छोटी चाची बिगड़कर चली गईं और तुम लोगों का यह रवैया है। बी० ए० पास करके तू बन गई जिद्दी नंबर एक और एम०

ए० पास करके वह चला पान-बीड़ी की दूकान करने ! यही नसीब में लिखा था तुम्हारे !

हिरण बोला—तू पान लगाना और मैं बीड़ी बनाऊँगा। आधा-आधा हिस्सा रहा ! मुझसे तुझे छुटकारा नहीं ।

हुस्ना बोली—रात के बारह बजे दूकान बंद करके दोनों जने जायँगे कहाँ ?

हिरण बोला—जिस माँद में जगह मिलेगी, उसी में घुस पड़ेंगे। तूने तीनेक बार तो शादी की है, लिहाजा तेरे सतीत्व की बात नहीं आती और मुझमें जब स्वामी बनने की कोई योग्यता ही नहीं, तो मेरे चरित्र की बात भी नहीं उठेगी !

हुस्ना बोली—लेकिन मै तो गाँव को लौट रही हूँ !

—तो क्या तेरा दामन थामकर मैं नही जा सकता ?

हुस्ना ने मीरा के बदन को ठेलकर पूछा—क्यों जीजी, राजी हो इस प्रस्ताव पर ?

मीरा उठ बैठी । बोली—तहे दिल से !

ग्यारह

सुबह की एक कोई गाड़ी—मेल होगी शायद—सारे स्टेशन को कँपाती हुई एक साँस में दौडकर निकल गई। वेटिंग रूम के बीच में बड़ा-सा आईना था। उसके सामने खड़ी होकर दोनों हाथ पीछे की ओर उठा हुस्ना ने कहा—मुसलमानी बाल बाँधना देखा है कभी ? लजा मत, मेरी तरफ पलटकर खड़ा हो जा। बाल की पट्टियाँ दोनों भँवों के ऊपर तक आ रहेंगी, तेल चुपड़ी, चिकनी—जैसे मोजेइक का सुथरा फर्श हो। गौर से

देख, मुसलमान औरत को कभी स्नेह की नजर से नहीं देखा है तुम लोगों ने, आज आँख भरकर देख ले। बाल बाँधने पर कपाल नहीं दीखता—सिर्फ माँग ऊपर को चली गई है—ढालवे जंगल में जैसे कोई झरना बहता हो।

हजारी बाग जिले के किसी छोटे-से स्टेशन के वेटिंग रूम मे उनका सवेरा हुआ। रात के अंतिम पहरों में कब वे यहाँ उतर पड़े और इस कमरे के अंदर जाकर निद्रायी-आँखों बिस्तर डालकर कैसे सो गए, कुछ भी याद नहीं उन्हें। सुबह खानसामा ने खुट-खुट जो किया, तो पहले हुस्ना की आँख खुली। शरम के साथ उन्हें यह कबूल करना ही पड़ेगा कि बिछौना नहीं-सा है, किसी तरह से एक का काम चल सकता है। उस संकटी हालत में भी रात हुस्ना ने मजाक किया था—इतनी-सी जगह में मैं मर्द को जगह कहाँ दूँ? पैताने रख नहीं सकती, न बगल में सुला सकती हूँ और न सिरहाने ही दे सकती हूँ जगह। मुसीबत है!

हिरण ने कहा—तेरा मजाक समझ गया मैं। लेकिन अचानक वेश-भूषा बना ली तूने मुसलमान की—इरादा क्या है? बता।

हुस्ना ने कहा—मुसलमानिन का कोई अलग शृंगार नहीं होता, खासकर बंगाल में। इसलिए वे हिंदू लड़कियों के पहनावे की नकल करती हैं। तूने आँख उठाकर देखा भी है कभी? उत्सुक लोभ के लिए कभी मुसलमान लड़की की तरफ ताका है?

हिरण बोला—नहीं। इसमें हमारी रुचि को ठेस लगती है। मुसलमान औरत देखकर सौ गज दूर से ही हम त्राहि मधुसूदन कह उठते हैं!

—क्यों?

—सच बात न ही सुनी तो क्या हो?

—समझ गई। लेकिन अच्छा न लगने के कारण को अच्छी तरह से सोच देखा है? मैं क्यों अच्छी लगती हूँ तुझे?

—तुझमें तो सैकड़े पचहत्तर भाग हिन्दू है।

—तू एक एम० ए० पढ़ा बेवकूफ है ! पहले पोशाक से ही शुरू कर। कसी बोडिस पर अँगिया—कमर से ऊपर की ओर कोई इंच दो बेआबरू मांस ! साड़ी नहीं, ईरानी घागरा भी नहीं, मानों लाज बचाने-भर का एक तकिए का ढक्कन ! बगल की तरफ बटन, पाँवों की तरफ जरा-सा कटा। और नीचे की तरफ निगाह डाल, पतले किनारे का स्लिपर। कल गाड़ी पर चढ़ते वक्त हाथ-पाँव में मेंहदी रची है। हाथ-पाँव के नाखूनों में काला रंग लगाया है, जैसे उँगलियों की फुनगी पर रँगे भौरे बैठे हों ! आँखें उठाकर देख, आँखों में सुरमे की लकीरें हैं, नाक में बेसर, कानों में कँगना—कैसा लग रहा है ?

हिरण ने कहा—अजीबोग़रीब। आज ही पहली बार मैंने पहचाना, तू मुसलमानिन है। आज पहली बार तुझसे अरुचि हुई। तू पैरों पड़कर रोये भी तो मैं तुझे आशीर्वाद नही दे सकता !

हुस्ना बोली—जरा देख तो सही, मैं नवाबजादी हूँ। यदि जरा-सी नफ़ीस उर्दू बोल सकूँ, तो कोई खानदान का परिचय पूछने की हिम्मत भी करेगा ? कुल की छानबीन करेगा ? खैर, मैं तुम्हारे पैरों नहीं पड़ने जाती, मेरे पैरों आकर पडेंगे कितने मुसलमान और बादशाहज़ादे। क्यों, जानते हो ? नारीरत्नम् दुष्कुलादपि।

हिरण हँसने लगा। हुस्ना बोली—लेकिन अपने बंगाल की ओर नजर दौड़ा। मुसलमान औरतें जानवर की तरह छिपकर रहती हैं। वे असल में जायदाद है, भोग की चीज। गाय, बकरी, बतख़, मुर्गी के साथ ही उनका भी लालन-पालन होता है। मुसलमानों की तादाद बढ़ाने की मशीन के सिवाय बंगाल में उनका और कोई मूल्य नहीं। वे जीव हैं, जीवन नहीं। वे प्राणी हैं, मनुष्य नहीं। वे जन्तु का खाद्य खाते है, उससे भी ज्यादा मार खाते हैं।

हिरण बोला—मैं फिर पूछूँ, आखिर तेरा मतलब क्या है ?

हुस्ना ने हँसकर कहा—इरादा कुछ अच्छा नही है।

—खैर, इरादे का आभास तो कुछ दे।

—क्यों, डर लग रहा है ?

हिरण ने कहा—डर से फिक्र ज्यादा हो रही है। अपनी यह जुल्मी शक्ल तो तूने पहले कभी नहीं दिखाई ?

हुस्ना बोली—दिखाने की शुरूआत आज से हुई। याद रखना, शादी मेरी दो बार हुई है, तीसरी बार हुआ निकाह। मैं मर्द की हड्डी-चमड़ी, मेद-मज्जा, सब जानती हूँ।

हिरण बोला—जानती है तो अपने शरीर पर फिर से क्यों लोभ का मेला लगाया ?

—तुझे दिखाने के लिए। दरवाजे से बाहर रहे अपना वह विराट् देश, बन-जंगल, नदी-पहाड़,—आज इस स्टेशन में कहीं कोई नहीं है। आज सारी पृथ्वी को ओट में करके तेरे सामने मै खड़ी हूँगी हिरण, मेरा मान-सम्मान, संभ्रम-संकोच, सब कुछ को दूर करके तू मेरी तरफ देख। देख, मैं बंगाल की एक मुसलमान लड़की हूँ। कवि, मै तेरा मन नहीं पा सकती ? कवि, जो आजन्म अँधेरे में ही रह गए है, तू ढूँढ़कर निकालेगा नहीं उन्हें ?

हिरण सीधा होकर बैठा। बोला—हुस्ना ?

हुस्ना ने अपना विह्वल मुखड़ा उसकी तरफ फेरा।

हिरण ने कहा—क्या तू यह कहना चाहती है कि मैं तेरा सही परिचय नहीं जानता ?

हुस्ना का गला भर आया। बोली—नहीं, तू नहीं जानता। तूने सब किसी को पहचाना है, तेरे ज्ञान की किरण हर कहीं पड़ी है, लेकिन मेरा सच्चा परिचय तुझे मालूम नहीं।—हुस्ना कहती गई—तू सदा यही जानता आया कि मैं मुसलमान की लड़की हूँ...लेकिन मैं उससे बहुत बड़ी हूँ—मैं हूँ बंगाली लड़की ! कवि, मैं तेरी उपेक्षा, घृणा, उदासीनता को युग-युगांतर, जन्म-जन्मातर से माथे पर ढोती फिर रही हूँ—लेकिन कहाँ, तेरा मन तो नहीं पा सकी ? कहाँ, तूने मुझे अपने समीप तो नहीं खींचा ? पास तो नहीं बैठाया ?—आँसू से उसका गला जैसे रुँध गया।

हिरण ने इधर-उधर ताककर कहा—हुस्ना, चुप हो जा! मैंने क्या तुझ पर कभी अन्याय किया है?

हुस्ना टूटे और भर्राए स्वर में बोली—किया है। ऐसा गहरा अन्याय किया है जो आँखों नही देखा जा सकता। तू इतना ऊँचा है कि सबसे नीचे तेरी निगाह ही न जा सकी? कभी तूने मुझे आदमी नहीं समझा, पास नहीं फटकने दिया, कभी एक मीठी बात न की। लेकिन मैं सदा तुम लोगों की ओर देखती रही—श्रद्धा, प्यार और उपासना से मेरी आँखें भरी रहीं। कवि, कभी देखा भी मुसलमान लड़की को? तुम लोगों की नफ़रत को सिर पर लिए मैं कूड़ों के ढेर के पास खड़ी रही, तुम्हारे जीवन-समारोह का जलूस मेरी आँखों के सामने से गुजर गया, मैंने मुग्ध आँखों देखा। लेकिन एक टुकड़ा जूठन भी तुमने हमारी तरफ न फेंका कि उसी को सोना समझकर माथे पर उठाये रो सकूँ! तू आखिर कवि है न जमाई, तेरी दृष्टि उदार है न, सर्वव्यापी है न तेरा हृदय?

हिरण होंठ से होंठ दबाये रहा। बोला—हुँ। समझ रहा हूँ कि अपना श्राद्ध कैसा होगा। कवि से पागल का साथ—यह यात्रा-वर्णन क्या होगा, सोचते ही डर लगता है।—तेरे साथ आखिर मरने क्यों आया मैं?

हुस्ना ने अपने को जब्त करके कहा—डर मत; चल। तू खो भी जाएगा तो कोई खोजनेवाला नही, मर भी जाए तो कोई रोनेवाला नहीं! चल, बाहर चलें।

—इस साज-पोशाक में बाहर जा सकेगी?

—यही तो बाहर जाने की साज-पोशाक है! लोगों के लोभ को उकसाऊँगी, कलाकारों की आँखों में नशा लाऊँगी, भक्तों की नजरों में भरूँगी तन्मयता—और, तू तो कवि है, तेरे कलेजे के लहू की लहरों पर तेरा दिल टलमट करता रहेगा—मेरी साज-पोशाक तो यही है। तुझे पता है हिरण, बंगाली मुसलमान अपने घर की लड़की को किस

कदर दिलो-जान से नापसंद करते है ?

—यह क्या कह रही है ?—हिरण ने प्रतिवाद किया ।

—सिर्फ नापसद ही नही, घर की औरतो पर नजर पड़ते ही उनका जी असंतोष से भर जाता है । जिंदगी-भर एक बहुत बड़ी अतृप्ति उनके मन में टीसती रहती है । और बंगाली मुसलमान औरतें बिना जबान हिलाये इस अपमान को ढोती रहती है । घर से मिलती है उन्हें घृणा, बाहर से मिलती है उपेक्षा । चल चलें ।

हिरण का हाथ पकड़कर हुस्ना उसे बाहर ले गई । पच्छिम की तरफ पहाड़ पर बादल घिर आये थे, इधर का आसमान साफ था । धूप निकली थी, लेकिन खुलकर नही ।

धोती-कुरतावाले एक खूबसूरत बंगाली जवान के साथ अजीबो-ग़रीब पोशाकवाली किसी नितांत अंतरंग युवती पर गौर फरमाने वाले लोग बेशक थे वहां । कुलियो की काना-फूसी से स्टेशन मास्टर भी बाहर निकल आए—उनके साथ-साथ आया रेलवे का सिपाही । हुस्ना ने कन-खियों से एक बार उधर देखा, फिर जाने क्या तो सोचकर खिलखिल हँसी और हिरण के हाथ को अपने हाथ मे लेकर जकड़ लिया । मानों सब कुछ सोचा-सोचाया हो ।

देखकर लोग तो दंग । कमरबद से नीचे तक बैगनी रग का रेशमी घाघरा, जर के काम की बारीक रेशमी ओढ़नी बदन से लिपटकर सर तक पहुँच गई है—रंग है बसंती । आज के जमाने मे नकबेसर ! कानों में कँगना—गले में हँसली-नुमा हार । पैरों में महावर के बदले मेंहदी रची । ओढ़नी इतनी महीन कि वह नंदवासिनी उर्वशी की आँखों की शर्म बचाने के काम आती । ऊपर से आज सबेरे से ही बहने लगी है हवा । उस हवा में हुस्ना आज उड़ा देना चाहती है अपने मन को—अपने आभ-रण को, अपने आवरण को । कितनी फब रही है वह ! पच्छिम के पहाड़ के उस पार पारसनाथ के नीचे के जंगल से मोरों की ध्वनि उड़-कर आ रही है—हुस्ना जाकर वहाँ डैने फैला दे तो एक-सा रंग हो जाए !

वे लोग मोटर स्टैंड पर पहुँचे । पीछे-पीछे खानसामा उनका सूटकेस और बिस्तरा लेकर गया । आस-पास की हक्की-बक्की जनता में एक चेतना तब तक जाग पड़ी थी, जैसे चाँद के खिंचाव से तरंगों का ज्वार उठता है ।

कभी बड़े चाचा ने हुस्ना को अच्छी तरह उर्दू सिखाने के लिए एक मौलवी को रखा था।

उसने अरबी लिपी में तालीम पाई, जतन से उर्दू पढ़ी और उसमें योग्यता भी अच्छी हासिल की । सो प्लैटफार्म पर पहुँचकर उसने हिरण को अंग्रेजी में कहा—देख तू सिर्फ अंग्रेजी में बोलना और मै शुरू से आखीर तक उर्दू में बातें करूँगी ।

हिरण ने पूछा--क्यों ?

हुस्ना बोली—लोगों को चौंकाएँगे ।

—हुँ । फिर पुलिस के शिकंजे मे पड़ने से बचे आप !

—इतना डर क्यों कॉमरेड ?

हिरण ने कहा—औरतें जब लाज-भय को छोड़ देती है, तो पुरुषों का बेहद बुरा दिन समझो !

हुस्ना के हाव-भाव भी अजीब से । खिलखिल हँसती हुई बोली—पुरुषो के बुरे दिन में क्या शुबहा ! आस-पास का हाल देखकर ही तो समझ पड़ रहा है । आँखों के इशारे से तप जाते है, गहनों के ताल पर बौरा उठते है ।

वेला कुछ कम नही हुई थी । स्टेशन के मुहल्ले की दो-चार दूकानें खुल गई थीं । कोई हँस रहा था, कोई हिरण को धिक्कार रहा था, तो कोई उसकी रसिकता की तारीफ कर रहा था ।

यानी इस कोटि के औरत-मर्द इधर अक्सर ही घूमने आया करते हैं और छोड़ जाते है अपनी कलंक-कथा ।

बस पर वे पहले दर्जे में सामने की तरफ बैठे । सट-सटकर बैठे, मदा-

लसा माधुर्य से लगकर बैठी। गर्दन बढ़ाकर हुस्ना ने बीच में खानसामा से नफ़ीस उर्दू में कहा—क्यो मियाँ, कहीं से खाने की कोई चीज ला दोगे ?

—फ़र्नाइग हुज़ूर !

हुस्ना ने दस रुपये का नोट निकालकर खानसामा के हाथ में दिया। खानसामा बेतहाशा भागा—गिरे कि पड़े। पाँच ही मिनट में वह गरम-गरम पूरी और जलेबी ले आया। खर्च एक रुपया और इनाम नौ रुपये ! खानसामा अवाक् ताकता रह गया। हुस्ना ने समझा दिया, हाजीपुर की नवाबजादी की तरफ से तुम्हें बख़्शीश ! पीने का पानी ला दो।

सिर्फ पानी ! भोगवती नदी से अमृत की बूँद ला पाता, तो खान-सामा को संतोष होता ! वह दौडकर पानी ले आया।

बस खुल गई। पिछली सीटें मुसाफिरों से भर चुकी थीं। राह लंबी थी और उन्हें निरुद्देश्य जाना था। आसमान पर बादल गाढ़े होते आ रहे थे। कहीं पर बारिश होगी। बात आई, उन्हें कहाँ तक जाना है। हुस्ना ने कंडक्टर से कहा—वहाँ तक, जहाँ लोक-निंदा नहीं पहुँच सकती !

ऐसी खासी उर्दू इधर के शायद ही कोई बोलते हों। सो हिरण ने टूटी-फूटी हिंदी मे बताया—हा करके देखने क्या लगे ? आखीर तक जाएँगे।

दस-दस के दो नोट उसे दिये गए। टिकट के साथ जो पैसे लौटे, हुस्ना ने लिए नहीं। कंडक्टर तो अवाक्।

छोटी बस्ती पार करके बस दौड़ चली। रास्ते के दोनों ओर जंगल—सुदूर मेघ-लोक में मंद्र ध्वनि।

बीच में हुस्ना ने पुकारा—कवि कॉमरेड ?

—क्यों ?—हिरण ने जवाब दिया।

—अच्छा नहीं लग रहा है तुझे ?

—नहीं,—तकलीफ हो रही है।

चौंककर हुस्ना बोली—तकलीफ ?

—जिस देश में तेरे लिए अपने लोभ की मैं सीमा ढूँढ़े न पाऊँगा, जिस देश में मेरे लिए तेरी जलती हुई वासना का न आदि होगा, न अंत !

हुस्ना बोली—बात फिर भी साफ नहीं हुई कॉमरेड !

हिरण ने कहा—पूरब की ओर देख, उस देश के आकाश में बयार उठी है, वेणु वन की वह रुलाई सुन ।

—न, उसमें वह छवि नही मिलती कवि !

—वहाँ, जहाँ की मिट्टी तेरे-मेरे लहू से सरस है, जो मिट्टी हमारे आँसुओं से स्नेह-सजल है !—अब समझ रही हो !

—न, नहीं समझती ।

हिरण के स्वर मे विह्वल कँपन भर गया । बोला—साँझ की रंगीन चिड़िया जिस देश में रगीन आसमान से उतर आती है, जिस देश के सूने प्रांतर में चाँदनी की उमड़ती लहरों मे शून्य-लोक से परियाँ उतरती है—गोधूलि की मटियाली मल्लाहों के कंठ से सुनकर जिस देश की वधुएँ कमर पर भरा घट लिए थमक-थमक जाती हैं ! मुझे तू उस देश में लौटा ले चलेगी हुस्ना ?

हुस्ना चुप हो गई । हिरण ने कहा—जहाँ की मुलायम मिट्टी पर पाँव दबाने से आँसू निकल आते हैं, जहाँ की वियोगिनी माता लापता संतति की आशा में करुण दीप जलाकर मधुमती के किनारे बैठ आँसू बहाया करती है—तू मुझे वहाँ ले चल सकेगी हुस्ना ?

हुस्ना कुछ न बोली । हिरण ने फिर कहा—आँकी-बाँकी राह नदी के घाट से महाजनी हाट तक चली गई है । आम के बगीचे से होकर सीधे तड़बन्ने के किनारे-किनारे चले जाओ । बाएँ बाज़ू पास-पास खिले हैं भेंट और कमल के फूल । मल्लिका और मधुमालती पर से अब वसंती बयार बहने लगी होगी । मंडप के आगे भट्ठी पार करके दाएँ घूम जाओ बख्शी बगान के किनारे से । सामने पड़ती है जुल्लियों की चौखंडी और उसी के पास लोटा-बाबा की मठिया । पच्छिम को चल पड़ो । शशी ग्वालिन की

गोशाला के बाद ही कत्र्ताखान की झील। झील के किनारे की कच्ची सड़क पर बांदीबंदर की पाठशाला, जहाँ रोज रात को गिरीश चौकीदार पड़ा-पड़ा भजन गाया करता है। आड़े-टेढ़े चलते चलो, राह खत्म नहीं होने की, हरे धान की गंध से नजर उठाकर देखोगी, पानी के किनारे काँच के पर फैलाए फतिंगे बैठे हैं—पानी के दर्पण में अपनी शक्ल देखकर नाच-नाच उठते है वे। बाएँ मुड़कर कामिनी-वन के किनारे चल—वहाँ मधुमक्खियाँ आती है, साँप आते है। कामिनी की खुशबू से वे यहाँ सो जाते है!

हिरण रुका। मोटर पहाड़ की ऊँची-नीची सड़क पर जा रही थी। बैहारे में कही-कही पलाश की बहार अभी भी दीख रही थी। कहीं-कहीं सखुए के जंगल में गाँव की राह गुम गई थी। वसंत जैसी हवा, उसमें तरलता का आभास। उस ओर अनुराग-विधुर दृष्टि डालकर हुस्ना ने कहा—उसके बाद कवि?

हिरण ने पूछा—अब छवि मिल रही है तुझे?

—मिल रही है। यह अपने हाजीपुर की छवि है—अपने बंगाल की छवि! सच ही तू वहाँ लौटेगा?

अचानक पीछे की रेलिंग की फाँक में से एक आदमी बोल उठा। गरदन बढाकर बोला—बाबूजी···

हिरण ने उलटकर देखा। उस आदमी ने पूछा—जी, आपका देश कौन-सा है?

हिरण ने जवाब दिया—बंगाल!

हुस्ना की तरफ देखकर उसने फिर जानना चाहा—और इनका?

जवाब हुस्ना ने दिया। कहा—कहना कठिन है।

सकपकाकर उसने कहा—जाति?

हुस्ना ने फिर जवाब दिया—यह भी बताना कठिन है।

वह आदमी शायद बड़ी देर से उनकी हरकतों पर गौर कर रहा था। कौतूहल उसको बड़ी देर से हो रहा था। सो नाछोड़-बंदा की तरह

वह फिर पूछ बैठा—यह आपकी स्त्री है ? सहधर्मिणी ?

हिरण खिलकर हँस पड़ा। जवाब दिया हुस्ना ने। कहा—सेठजी, मैं इनकी सहधर्मिणी हूँ या दुःसहधर्मिणी, आप अगर यह जानना चाहते हैं तो आपको दरजा एक में आ जाना चाहिए, मतलब कि आप आकर हम दोनों के बीचोंबीच बैठें।

उस आदमी ने पूछा—बीबीजी, आप मुसलमान है ?

—मेरे बाप बेशक मुसलमान है !

—लेकिन वह तो हिंदू होगे ?

—जी हाँ—सोलहो आने—सनातनी।

—आप लोग करते क्या है ?

हिरण ने कहा—आपका सवाल बडा ही साफ है। जवाब मोटामोटी यह है कि हम रिफ्यूजी हैं ; फिलहाल दिमाग के इलाज के लिए इधर आये हैं।

—रहते कहाँ है ?

—अस्पताल में।

उसने आग्रह के साथ पूछा—किस अस्पताल में ?

हुस्ना हँसकर बोली—राँची के अस्पताल मे !

राँची के बस-पड़ाव पर जब वे उतरे, लगभग बारह बज रहे थे। वे सेठजी उनके पीछे पडे थे। उनसे हुस्ना की घनिष्ठता भी हो आई कुछ। जब वे बाजार से होकर चलने लगे तो उनके पास एक भीड़-सी बटुर आई। धोती-कुरते में एक हिंदू युवक के साथ एक स्वस्थ-सुन्दर सजी-गुजी मुसलमान ललना को देख किसी को यकीन ही नही आ रहा था कि दोनों मियाँ-बीवी हैं और विश्वास करने का कोई कारण भी न था। यदि यह बताया जाता कि उनमें से एक कवि है, दूसरी समाजसेविका, तो भीड़ से उन्हें बचाना कठिन होता। हुस्ना की अँगिया-ओढनी के ढंग से और चाहे जो समझा जाए, दोनों स्वामी-स्त्री हैं, यह समझ सकना जरा मुश्किल था। और समाजसेविका समझना तो और भी कठिन था !

असली जरवाला स्लिपर पहने हिरण का हाथ पकड़कर जरा दूर जाते ही हुस्ना की नजर पड़ी—कई टैक्सियाँ खड़ी है। एक से पूछा—ये गाड़ियाँ कहाँ जाती हैं ?

ड्राइवर ने कहा—हुंड्रू, जोना, रजरप्पा, रामगढ़—जी चाहे जहाँ जाइए । चाहे तो दिन-भर के लिए ठीक कर लीजिए।

हुस्ना ने पूछा—रात को भी जाती है ?

—जी। रात-भर चलती हैं।

—इस गाड़ी से हम कहीं जंगल में जाना चाहें, किसी झरने के किनारे, तो ? अगर हम यह चाहें कि आपकी गाडी में हम कुछ देर रहें, आप तब तक किसी कॉफीखाने बैठकर गीत गाइये, तो ? मंजूर होगा आपको ?

ड्राइवर नम्रता की हँसी हँसा—मतलब कि उसे इसमें कोई एतराज नही। वाजिब किराया मिले तो उज्र नही है।

बसवाला आदमी उनके साथ ही था। हिरण ने पूछा—आपका नाम क्या है ?

उसने कहा—मेरा नाम ठाकुरप्रसाद है।

हुस्ना बोली—ठाकुरप्रसादजी, जवानी के तेज में पूड़ी-जलेबी तो हजम हो गई ! आप यह बता सकेंगे किस होटल में हमें खाना मिल जाएगा ?

—यह रहा, चलिए…वह सफेद-सा मकान, वह जो लंबा-सा बरामदा है, नीचे कई दूकानें हैं। अच्छा होटल है । जो चाहिए वही मिलेगा। —और ठाकुरप्रसाद उनका बिस्तर और सूटकेस सँभालकर चल पड़ा।

हुस्ना बोली—लेकिन मुसलमान के जिस जीव के खाने से आप लोग जल-भुनकर खाक हो जाते है, वहाँ मिलेगा वह ?

ठाकुरप्रसाद भौंचक्का होकर बोला—क्या कहा बीबीजी आपने ?

जवाब हिरण ने दिया—मतलब यो समझिए कि हम लोगो ने थामा सींग और उन्होंने पकड़ी पूँछ—सारा झगड़ा तो इसी का है !

—झगड़ा किससे—किस बात का ?

हुस्ना ने तुरत हँसकर कहा—बधना और लोटे से? पूरब और पच्छिम, धोती और लुंगी, चुटिया और दाढ़ी ! गाय पर दो के झगड़े से ही तो भारत का बँटवारा हो गया। यह झगड़ा आदमी-आदमी का तो है नहीं—मंदिर-मस्जिद का है !

इस बीच भीड़ के सागर में तूफान-सा उठ आया। किसी ने कहा—घेर लो; कोई बोला—खबर करो थाने मे; कोई कहने लगा—यहाँ भी अब दंगा होकर रहेगा।

ठाकुरप्रसाद ने कहा—बंगाल मे जो दगा हुआ आपके, उसी से तो देश की यह दुर्गति हुई।

हुस्ना ने कहा—यह क्या कह रहे है आप, देखिए न, पूर्वी बंगाल के लोग पच्छिम-बंगाल की तरफ सिर झुकाकर नमाज पढ़ रहे हैं !

हिरण ने बात पूरी की—और जाकर देखिए, पूरब बंगाल की तरफ मुँह किये पूजा मे बैठा है पच्छिम बंगाल। प्यार मे चूँकि लड़ाई होती ही है, इसीलिए प्यार एकांगी नही होता। सब्जी में नमक होता है, इसीलिए वह प्यारी लगती है।

ठाकुरप्रसाद ने उमगकर कहा—तो क्या आप लोग फिर जल्द ही मिलनेवाले है ?

हुस्ना बोली—हम मिलें तो कैसे मिलें ठाकुरप्रसाद जी, हम दोनों के बीच गाय जो खड़ी है ! जब तक यह गाय नही हट जाती बीच से, हम लोग मिल नही सकते।

अंत-अत तक ठाकुरप्रसाद के चलते वे लोग होटल में पहुँचे। जनता ने दंगा करना चाहा था। लेकिन हुस्ना ने अपनी प्रेरक अदाओं और सरस हँसी के जादू से जनता को रस में बोर दिया, ऐसा बोर दिया कि लोगों के मन से कम-से-कम द्वितीय रिपु तो तब तक के लिए गायब हो गया। होटल के ऊपर उन्होंने कोने के एक कमरे में जगह ली। ठाकुरप्रसाद ने बिछावन और सूटकेस एक तरफ को रख दिया। साथ में कोई खूबसूरत औरत हो तो बेदाम के चाकर भी जुट जाते हैं, यानी ठाकुरप्रसाद साथ

लगा रहा। बेचारे की ख्वाहिश हुई कि इस निरे परदेश में उसके जैसा स्वार्थहीन परोपकारी आदमी उन लोगों के कुछ काम आ जाए। दरवाजे के पास पहुँचते ही हुस्ना ने कहा—बस वहीं तक—समझ गए ठाकुरप्रसाद-जी ? अन्दर हरम है !

ठाकुरप्रसाद तो बात-बात में काठ का मारा-सा। हुस्ना बोली—आप बड़े ही भोले हैं, हर बात देर से समझते हैं। आपने वृन्दावन की बात सुनी है ?

—जी हाँ।

यह कमरा वही गुप्त वृन्दावन है ! रात बीत चले, तो आइएगा, आपको सुबल सखा बना दूँगी। समझ गए ?

ठाकुरप्रसाद फिर विमूढ़ बन गया। मुसीबत हो गई उसको लेकर। गरमी और राह के कष्ट से हुस्ना और हिरण दोनों थक गए थे। ओढ़नी उतारकर एक तरफ रखते हुए हुस्ना बोली—ठाकुरप्रसादजी, आपको बहुत-बहुत धन्यवाद। उससे भी ज्यादा धन्यवाद दूँ अगर आपसे हमारा पिंड छूट जाए !

हुस्ना की तरफ देखकर लगभग रोते हुए से ठाकुरप्रसाद ने कहा—मैं फिर आऊँगा ?

—बेशक ! ये तो कल सबेरे चले जाएँगे, इस परदेस में मैं अकेली रहूँगी ? कल से मेरी देखभाल को कोई न होगा।

—अच्छा, कल से दोनों शाम मैं आपका हाल पूछ जाया करूँगा।

हुस्ना रोनी-सी होकर बोली—लेकिन अकेले घर में मेरी रात कैसे कटेगी, खुदा जाने। अल्ला-हो-अकबर !

हुस्ना ने करुण निःश्वास छोड़ा। बेचारा ठाकुरप्रसाद तो यह करुण दृश्य देखने को पैदा ही नहीं हुआ। उसने जैसे तड़पकर कहा—आप कहे, तो रात को आकर मैं आपकी रखवाली करूँ ?

हुस्ना ने आवाज को धीमी करके कनखियों से ताककर कहा—हृदय की सारी कृतज्ञता आपके चरणों में उँड़ेल देने को जी चाहता है।

खैर, आप रहेंगे तो मुझे कोई डर नहीं रहेगा। लेकिन एक बात कहूँ, ये हमारे खसम देवता जो हैं न, आदमी अच्छे नहीं हैं। आप कल सुबह आकर सड़क पर घूमते रहिएगा, ये जैसे ही चले जाएँगे, इशारे से मैं आपको अंदर बुला लूँगी। देखिए, विनती भूल मत जाइएगा। अभागिन को अपने मन के कोने में थोड़ी-सी जगह दीजिए।

स्त्री की आँखों में आँसू ! लेकिन हाय, कोई उपाय न था। यह आँसू तो अभी पोंछ दिया जा सकता था, किंतु नहीं···ठाकुरप्रसाद वहाँ से चला गया।

वह सीढ़ी तक ही जा पाया होगा कि कमरे में हुस्ना और हिरण की हँसी बाँध तोड़कर फूट पड़ी। हँसते-हँसते हिरण ने कहा—तू जिस समय टैक्सीवाले से मजाक कर रही थी, उस समय यही आदमी मेरे कानों में कह रहा था, आपने इस मुसलमानिन से शादी की, धर्म से नहीं डरते ?

—फिर क्या कहा तूने ?

मैंने कहा—डर तो बेहद है, लेकिन धर्म है कि नहीं, नहीं जानता।

हुस्ना फिर हँस उठी।

दोनों ने स्नान किया। खाने बैठे। रसोई बनी वैसी नहीं थी, मगर प्रकार बहुत था। खर्च सब हुस्ना का। कोई मौका मिल जाए, तो खर्च करना वह जानती है। होटल का नौकर मेज पर खाने का सामान सजाकर बाहर जाकर खड़ा हो गया। हिरण और मीरा के साथ हुस्ना सदा जैसे खाती आई है, आज भी उसका व्यतिक्रम नहीं। राजा राममोहन राय में दूरदर्शिता थी, उन्होंने मुसलमानिन से शादी की थी। और नसीब ही कहिए कि हुस्ना को एक स्वस्थ और सुन्दर हिंदू युवक मिल गया है। फर्क यह था कि राजा राममोहन की वह पत्नी कई पतिवाली न थी। लिहाज़ा हुस्ना को हिरण के पास कॉमरेड की भूमिका में आना पड़ा है। कॉमरेड शब्द बड़ा व्यापक, चाहे जिसमें लगाइए, फ़िट

बैठ जाएगा । दोनों कॉमरेड खाने बैठे, जैसे सदा बैठते रहे है । कभी-कभी उनके खाने के समय सुमित्रा मौजूद रहती थी । कभी नहीं भी रहतीं, क्योकि वह छोटी रानी ठहरीं, उनका सम्मान ही कुछ और था। इस घर में समाज को बड़े चाचा ने अपने हाथों बनाया था, फिर इलाके में उनकी धर्मभावना की कद्र थी । वह धर्मभावना सारे समाज से जुड़ी रहती थी, जैसे इसलाम । वह मिलाता है, एका लाता है, शक्ति और साहस का संचार करता है—इसीलिए राजभवन में वह बड़ा प्रिय था। धर्मविश्वास चूँकि बदन पर लिखा नहीं होता है, इसलिए आज भी उसकी कुछ कीमत है । जो उसका तमगा कमर में बाँधे चलते है, वैसे लोग एक खास मनोवृत्ति की गुलामी करते हैं । सिंधु शब्द इतिहास के आरंभ मे मिलता है, किंतु भारतीय शास्त्र में हिंदू शब्द का जिक्र नही पाया जाता । क्योकि यह शब्द बेमानी है । जैसा बेमानी कि हिंदू धर्म है—हिंदू धर्म नाम की कोई चीज ही नही। है सिर्फ भारतीय दर्शन । राजा पृथ्वीराज के पहले हिंदू शब्द का चलन शायद रहा हो, लेकिन हिंदू धर्म कहने से कुछ समझ में आता था ? भारतीय दर्शन, शास्त्र, वेद, उपनिषद—इन सबने हिंदू धर्म का मुखड़ा तो तब पहना जब मुहम्मद बिन कासिम का आगमन हुआ । मुसलमान को देखते ही दर्शन धर्म बन गया।

चावल के प्लेट पर फाउलकटी का प्लेट उँड़ेलते हुए हिरण ने कहा—हिंदू पर ताना कसते ही तू बिगड़ खड़ी होती है, लेकिन मैं तब की बात कह कहा हूँ जब इस्लाम धर्म की उम्र सिर्फ ढाई या तीन सौ साल थी ।

हुस्ना बोली—यानी उसने तब तक चलना नही सीखा था !

—न, चलता था । मध्य पूर्व की ओर जा रहा था, निकट पूर्व की ओर बढ़ रहा था—उत्तर और दक्खिन की ओर दौड़ रहा था !

—कह सकते हो, इतना फैला क्यो यह ?

हिरण ने कहा—क्योंकि उसमें पीड़ितों की मुक्ति का संदेश था ! ईसाई धर्मयाजकों के मारे भले आदमियों का कही टिकना मुहाल था,

लेकिन भारतीय दर्शन की ओर आम लोगों के झुकाव की गुंजाइश न हो सकी, क्योंकि उसके लिए विद्या-बुद्धि की जरूरत थी, जरूरत थी संस्कार की, गहरी उपलब्धि की। इसलाम रेगिस्तान से साम्यवाद का मंत्र लेकर जगा। सबका समान मूल्य, समान अधिकार। न कोई छोटा, न कोई बड़ा, अमीर और गरीब में कोई भेद नहीं। अन्न-पान, संपत्ति—बाँट-बूट-कर खाओ। न कोई किसी चीज से महरूम रहे, न बेकार। आज जिसे राशन कहते हैं, कंट्रोल कहते हैं, सबसे पहले उसकी पैदाइश हुई मुसलमान के मुल्क में। जहाँ खाने की चीजें कम मिलती थीं, वहाँ सबको आपस में बराबर बाँटकर खाना पड़ता था। इसलाम सबसे पहले साधारण तंत्र को लाया, जिसे आज पोशाक पहनाकर हम समाजवाद कह रहे हैं, जिसका अंतिम नाम कम्युनिज़्म है। यह व्याख्या मेरी अपनी है, पोथियों से संग्रह की हुई नहीं। इसलाम की बुनियाद पड़ी साम्यवाद पर। वे गरीब थे, सर्वहारा थे, मगर विश्वास के बल पर खड़े हुए। अन्न की कमी के कारण वे सदा लूट-खसोट पर जीते रहे हैं, परंतु ईश्वर को कभी नहीं भुलाया। अपनी सामाजिक और राजनीतिक प्रतिष्ठा के लिए यानी खा-पहनकर दुनिया में टिके रहने के लिए सदा अपनी जमात को उन्होंने बढ़ाया है। वे धर्म के ज्ञान पर नहीं खड़े हैं, बल्कि धर्मविश्वास ने उन्हें एकता का एक ऐसा मंत्र दिया है कि उनमें शक्ति आई है, संगठन आया है। मोरक्को से मलाया तक उनका एक ही इतिहास है। समता, मिताई और स्वतंत्रता का नारा सभ्य जातियों ने तो महज़ कल लगाया है, किंतु ये असभ्य मुसलमान इन तीनों चीजों को अपनी नसों के रक्त-प्रवाह में डेढ़ हजार साल से ढोते आ रहे हैं। और इधर भारत के इतिहास में हम क्या देखते हैं? हिंदू धर्म के नाम पर युग-युग से अनाचार होता आ रहा है। आचार-विचार, छुआछूत, अत्याचार, पीड़न के साथ वर्ग-विद्वेष, वर्ण-विद्वेष, आपस की छीना-झपटी, जाति-जाति का झगड़ा—इन विषमताओं के बीच आ खड़ा हुआ मुस्लिम साम्यवाद। पीड़ितों की ओर अपनी बाँहें पसारकर उन्होंने पुकार-पुकारकर कहा—इधर आओ,

हम तुम्हें आश्रय देंगे। हम तुम्हें समान अधिकार देंगे, आसान जिंदगी देंगे, सहज आनंद देंगे। इसका नतीजा क्या हुआ, जानती हो? नौ सौ साल से हिंदू और बौद्ध समाज टूटता रहा और उनसे नौ करोड़ मुसलमान तैयार हो गए!

हुस्ना ने पूछा—और उनकी ऐतिहासिक बर्बरता?

—वह है!—हिरण ने कहा—लेकिन जीने के लिए है! मरुभूमि में होने के कारण उनके स्वभाव में कड़ापन है। जहाँ तक इस्लाम गया है, तमाम रोड़ा-पत्थर और बालू है। उसी में से उन्होंने अपना भोजन निकाला। दूर-दूर से चमड़े में भरकर लाते रहे हैं वे पीने का पानी। लहू, पसीना और आँसू मे लतपत हो-होकर उन्होंने अपने को कायम रखा है। उन्होंने उनको लूटा किया है, जो सदा से दूसरों को लूट-लूट-कर पूँजी बटोरते रहे हैं। भारत का बर्बर लुटेरा बहुत हुआ तो रत्नाकर से बालमीक बना, लेकिन उन लुटेरों ने तख़्तों पर दख़ल जमाया। प्यार के लिए औरतों के दरबार में वे रोते हैं, कंगाल भिखमंगे-सा भीख माँगते है, लेकिन चूँकि उनके घर में सुख नही, इसलिए औरतें उन्हें निकालकर बाहर करती हैं!

हुस्ना ने कहा—क्या इसीलिए वे प्यार को जबरदस्ती छीना करते हैं?

हिरण बोला—हाँ। वे औरत को खींचकर कहीं आड़-ओट में ले जाते हैं—और वहाँ उनके पैरों पड़कर रोते है। उनके यहाँ औरतों को असती कहकर अनादर नहीं किया जाता, छोटी जात की बताकर नफरत नहीं की जाती, गैर जात की होने से उपेक्षा नहीं की जाती। बलपूर्वक औरतों को निचोड़कर वे प्रेम का निर्यास निकालते हैं! वे चूँकि बड़े कठिन होते हैं, इसीलिए कोमलता के ऐसे भक्त होते है।

इतने मे नीचे कुछ शोरगुल शुरू हो गया। उन दोनों ने थमककर कान लगाकर सुना। बात कुछ समझ में न आई और फिर वे बातों में लग गए कि कुछ लोग सीढ़ी से ऊपर आये और उनके कमरे के द्वार पर चीखने लगे। बात क्या है?

एक ने ताव में आकर कहा—आपके तल्ले नीचे दगा शुरू हो गया है, खबर है ?

हिरण ने कहा—अच्छा ! हताहत की तादाद ?

उन्होंने बताया—आप लोगों के लिए होटल के मैनेजर और नौकर पर मार पड़ी है—लहूलुहान है, पता है ?

आगे बढ़कर हुस्ना ने पुछा—ज्यादा किस जमात के लोग पिटे ? हिंदू या मुसलमान ? खयाल रहे, तादाद ही राजनीति है ! एक तरफ एक सौ और दूसरी तरफ निन्नानवे हुआ नहीं कि दंगा सारे देश में फैला ! जल्दी से गिन डालिए, जाइए ।

एक ने कहा—मुसलमान एक भी नही है !

एक जरूर है !—हुस्ना बोली—आप पता लगाइए।

—उहूँ, नही है ।

—सच कह रहे हैं ? मै फिर किस जात की हूँ ?

वे चिल्ला उठे—यह खून-खराबी तो आप ही के लिए हुई । यहाँ कभी कोई गोलमाल नही हुआ ।

हिरण बढ आया । बोला—सही कह रहे हैं आप ! अस्सी साल की, दादी जैसी कोई कुरूपा मुसलमानिन मेरे साथ जाती तो मार-पीट की नौबत न आती । लेकिन चूँकि जवानी है, चूँकि साथ हेलेन है, इसीलिए यह मार-पीट, इसीलिए ट्रॉय का नजारा !

—जानते हैं, यह होटल मुसलमानों के ठहरने का नहीं है ?

—आप क्या होटल के मालिक है ?

—हम देश के मालिक है ।

हुस्ना आगे बढ़ आई—ओ, आप देश के सपूत है—समाज के कर्णधार ! घर कहाँ है आपका ? आप लोगों के पिता का क्या-क्या नाम है ? —आप क्या सूर्यवंशी है ?

उन लोगों ने कहा—आप लोगों को यह होटल छोड़ देना पड़ेगा । यह हिंदुओं के लिए है ।

—बहुत अच्छा, अभी छोड़ देंगे। लेकिन आप लोगों में से कोई हमें अपने घर ले चलिए। खर्च आपके जिम्मे। फिर यह भी है कि मैं तो ब्राह्मण कॉमरेड से अलग रह नही सकती। मैं अकेली हूँ। है कोई तैयार?

एक ने कहा—मैं तैयार हूँ। आप दोनों चले।

हिरण ने कहा—यह नही होगा। वह हिंदू घर में जायँगी, मै जाऊँगा किसी मुसलमान के घर। आपमें से मुसलमान हैं कोई?

—नहीं।

—फिर कैसे चलें? मैं तो मुसलमानिन के बिना रह नहीं सकता। इससे बेहतर यही हो कि आप लोग फिर एक बार लड़ पड़ें और मैं पुलिस को बुलाऊँ। खबर दूँ कि हम लोगों पर कुछ हिंदुओं ने हमला कर दिया है। ठहरिए, भागिए मत। अरे, ये तो हजरत ठाकुरप्रसाद खड़े है। इस मार-पीट में शायद तुम्हारी कारस्तानी है। तुम्हीं ने इन लोगों को उभाडा है?

हुस्ना खिलखिलाकर हँस पड़ी। ठाकुरप्रसाद सीढ़ी पर से ही चुप-चाप खिसक गया।

हिरण ने अपनी कविता की कापी निकाली और फाउंटेन पेन लेकर बैठ गया—हाँ, एक-एक कर बताते जाइए नाम—घबराकर बाप का नाम बताना भूल न जाएँ कहीं! अरे, भागने क्यों लगे? पुलिस, नीचे पुलिस आयी है। किसने मारा है? सबको पकड़ेगी! ठहरिए, भागिए मत। पुलिस···पुलिस···

राँची के पागलखाने के पागलों की तरह सबने दौड़ लगाई और पीछे से जीवेन्द्रनारायण की पाली हुई वह लड़की हुस्ना हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई!

तीसरे पहर जोरों की बारिश शुरू हो गई। हुस्ना ने सोच रखा था कि शाम को वह शहर में फिर एक बार रस का तूफान लाएगी, सो न हो सका। हिरण कविता लिखने बैठ गया। नीचे से चाय-नाश्ता आ

गया। पाचन-शक्ति उनकी तेज थी, सो अंदाज से तीन दिनों की लागत के रुपये उन्होने मैनेजर को दे रखे थे। नाश्ता करके हुस्ना तो सो गई। रात के लगभग दस बजे, जब हिरण का लिखना खतम हो गया, सोलहो प्रकार का व्यंजन फिर आ पहुँचा। सुस्वादु भोजन की खुशबू से हुस्ना की नीद खुली। निदा करनेवाले यह भी सोच सकते है कि कविता की गुन-गुनाहट से उसकी आँखों में नीद थी कहाँ?

भोजन के बाद अचानक हुस्ना बोल उठी—चल, अब चल दे।

हिरण बोला—इस बारिश में? अँधेरे में?

—भागने का यही समय है! चल···

हुस्ना ने मुसलमानी वेश-भूषा बदली। लाल कोट की साड़ी पहनी, हाथों मे डाल ली काँच और सोने की चूड़ियाँ। सिंदूर की जगह माँग में लिपस्टिक की लकीर खींच ली। पैरों में सैंडल डाले। मनुष्य की पहचान उसकी पोशाक से होती है। देखते-ही-देखते वह एक सती-साध्वी हिंदू ललना बन गई। हिरण तो हैरान रह गया!

लेकिन हैरान रहने का समय कहाँ? हिरण को पहनना पड़ा पाय-जामा, आँखों में लगाना पड़ा सुरमा, माथे पर मुसलमानी टोपी। बूटेदार कुरता, गले में काली डोरी से झूलता हुआ एक ताबीज़। एड़ी-चोटी मुसलमान!

हिरण ने पूछा—अब नाचेगी कि नचाएगी?

हुस्ना बोली—मैं मणिपुरी नाचूँ, तू नाच तुर्की नाच। तू बिस्तर सँभाल ले, मैं सूटकेस थामती हूँ। चल।

रात के बारह बजे के बाद वे चुपचाप निकल पड़े। बत्तियाँ गुल थीं। पीछे का दरवाजा खुला था। पानी पड़ ही रहा था, विराम नहीं। उसी बारिश में सूनी सड़क पर वे चल पड़े। गये सीधे मोटर-पड़ाव की ओर।

एक मुसलमान जवान के पीछे-पीछे रंगीन साड़ी में एक हिंदू नारी! कैसी करुणा-भरी चाल, कैसी शांत, असहाय, घूँघटवाली नारी। एक

टैक्सी के पास जाकर हिरण ने साफ उर्दू में पूछा—भई, सवारी लोगे ?

—कहाँ जाना है ?

—राँची रोड स्टेशन। किराया क्या लोगे भला !

—जी, पच्चीस रुपये। रात को यही लगता है।

हिरण गाड़ी में बैठ गया। हुस्ना रो उठी। घूँघट की ओट में उसके रोने की पूछिए मत। हिरण ने हाथ पकड़कर उसे अंदर खींच लिया।

पास ही शोरगुल-सा होने लगा। मोटर स्टार्ट हुई। पीछे हल्ला होने लगा। गाड़ी चल पड़ी। शोर मचने लगा—हिंदू नारी भगाई जा रही है ! —मोटर तेजी से चलने लगी। रोते-रोते हुस्ना ने कहा—ड्राइवर को सौ रुपये देने की बात कहें—कहें कि सौ मील की रफ्तार से गाड़ी ले चले।

उनके पीछे राँची शहर दौड पड़ा। आधी रात को इस बारिश में सड़क शोरगुल से गूँज उठी। रुपये के लिए बरसात की धारा को चीरते हुए ड्राइवर गाड़ी को बेतहाशा उड़ा ले चला। अंदर दोनों हँसने-हँसते लोटपोट।

ड्राइवर भी हँसने लगा !

बारह

कलकत्ता छोड़ते समय क्षोभ और उत्तेजना मे सुमित्रा को इस बात की याद ही न रही कि बरसात के मौसम में पूर्वी बंगाल में नदी, नाले, खेत, बस्ती, पानी से सब एकाकार हो जाते है। उनके साथ था अत्रि और राह के साथी वेल्लिक बाबू। तीन दिनों से बेचारे वेल्लिक बाबू की जहाँ तक नजर जाती थी, पानी-ही-पानी दीख रहा था। रास्ते में भीगते रहे, कीचड़ से लतपत होते रहे, पंप जूते को उतारकर उन्होंने गठरी

के हवाले किया, लेकिन अथाह पानी की यह भयावनी शक्ल देखकर उनका कंठ, तालु, जीभ—सब जैसे सूखकर लकड़ी हो गए। उनकी शक्ल और दुर्गत देखकर सुमित्रा सच ही शर्मिंदा हो गई। सीधी राह से जा सकना संभव न हुआ, पानी के कारण उन्हें घूम-घूम कर जाना पड़ा। रेल से आए सौ मील की दूरी, फिर स्टीमर में कुछ घंटे—उसके बाद ही यह पानी, और पानी का जो आरंभ हुआ है, अंत नहीं मिलता। पहली रात स्टेशन पर कटी, दूसरी जहाज-घाट पर, तीसरी नाव में, और वही नाव पानी के थपेड़ों से बेहाल। सुबह वेल्लिक बाबू ने आँखें फैलाकर जब कोई कूल-किनारा न देखा, तो उन्हें भरोसा देना भी बेकार था। उनकी सूरत देखकर सुमित्रा कुछ डर-सी गई, लगा, भले आदमी जैसे तीन रात मसाल जगाकर लौटे हैं। संकोच के साथ बोली—आपको बड़ी तकलीफ हो रही है बेणु बाबू,—खैर, घर पहुँचकर मैं आपके आराम की सारी व्यवस्था कर दूँगी।

नाव पर कई बार तो वेल्लिक बाबू के सिर को ठोकर लगी, कुरता फटा, कपड़ा फटा। सबसे गत तो यह हुई कि लगातार भीगते-भीगते उन्हें जो कँपकँपी छूटी है, सो छूट नहीं सकी। सुमित्रा की बात सुनकर केवल इतना ही कहा उन्होंने—तकलीफ क्या सिर्फ मुझे ही हो रही है! मुझे इस बच्चे की फिक्र है, बीमार न पड़ जाए कहीं!—कहकर वे जरा हँसे। फिर बोले—आराम की कही आपने! हाजीपुर की छोटी रानी को उनके सिंहासन पर सभासीन करके लौट सकूँ, तो वही मेरा सबसे बड़ा आराम होगा, सबसे बड़ा लाभ।

इतनी मुसीबतों में होते हुए भी सुमित्रा की कनपटी लाल हो उठी थी। लेकिन इन कुछ दिनों में जो आत्मीयता उनमें आई थी, उसे याद करते हुए बोली—कलकत्ता तो आखिर आपको लौटना ही है, लेकिन अत्रि की सुध आपको रखनी ही पड़ेगी।

—बेशक! वेल्लिक बाबू ने कहा, इन चार दिनों में आपसे जितनी भी बातें की हों चाहे, एक बात मैं हर घड़ी सोचता रहा हूँ···सोचा था,

इतनी जल्दी वह बात न बताऊँगा···

सुमित्रा बोलीं—कहिए तो कौन-सी बात ?

जैसे कोई बहुत बड़ी योजना छिपा रखी हो, इस तरह से बेल्लिक बोले—कहूँगा। पहले पहुँच लें, फिर धीरे-धीरे वह बात कहूँगा।

—आप फिर मुझे जिद दिला रहे है ?—अपने तशार के कपड़े के घूँघट की ओट से सुमित्रा ने कटाक्ष किया।

वेणु बाबू हँसे। बोले—तो सुनिए, यहाँ राज-पाट आपको जितना ही क्यों न हो, कलकत्ता लेकिन सारे बंगाल की नाभि है। वहाँ आपका कुछ-न-कुछ पक्का इन्तजाम रहना ही चाहिए। अत्रि यहाँ रहकर बड़ा बन सके, बने, लेकिन उसे आदमी बनना पड़ेगा वहाँ। वही उसे अपने भावी जीवन का निर्माण करना पड़ेगा।

—इसका खयाल मुझे भी है। लेकिन मैं ठहरी संयुक्त परिवार की बहू, शायद हो कि जायदाद के लिए मीरा से मुकदमे की नौबत आ पड़े, इसीलिए अभी कुछ तय नही किया है।

—उपाय है !—वेणु बाबू ने हाथ उठाकर कहा—उसका भी उपाय है। कलकत्ते में अगर आपका वैसा कोई विश्वासी आदमी हो तो आप उसके नाम सब बेनामी कर सकती है। किसे खबर होगी ? और रोकने को ही कौन आता है !

हल्का-हल्का पानी पड़ ही रहा था, फिर भी अत्रि और वसंत दोनों नाव की छत पर बैठे थे। अत्रि के माथे पर बेल्लिक बाबू की बरसाती थी। अंदर सुमित्रा और बेल्लिक बाबू बैठे थे। यह नौका-निवास कल साँझ से ही चल रहा है। कल साँझ मल्लाहों की मदद से किसी तरह थोड़ा-सा चावल उबालकर सुमित्रा ने उन दोनों को खिलाया था। भोजन की ऐसी तकलीफ, फिर ऐसी सँकरी जगह में रहने की असुविधा—इन बातों पर गौर करके सुमित्रा ने पूछा था—वेणु बाबू, आपको इतनी तकलीफ उठानी पड़ेगी, अगर यह जानती होती तो आपकी पत्नी आपको हमारे साथ आने की इजाजत देतीं क्या ?

संकोच से जरा देर सुमित्रा की ओर ताककर उन्होंने कहा था—मेरी पत्नी ? उन्हें खाक खबर भी है कि इस एक साल के अरसे में आप लोगों से मेरी इतनी घनिष्ठता हो गई है ?

—यह क्या कहते है आप ? आपने उनसे बताया नही ?—सुमित्रा अचरज से उनकी ओर ताकने लगीं।

—बताने से खैरियत थी ?

—फिर उनसे आने की फुर्सत कैसे मिल गई ?

—उन झूठी बातों को सुनकर भी क्या करेंगी आप ?

सुमित्रा ने हँसकर पूछा—आप पत्नी से क्या झूठी बातें कहते हैं ?

—आपके पति क्या आपसे कभी सच बोलते थे ?

—लेकिन आप तो वैसे पति नहीं है !

बेल्लिक लाबू हँस पड़े। बोले—पति सभी समान ही होते है । हर स्त्री अपने पति की नस-नस पहचानती है ! स्वामी का सही परिचय स्त्री के सिवाय क्या कोई जानता है ?

सुमित्रा ने कहा—किंतु कभी उन्हें पता चल गया तो ? मेरी ही वजह से आपकी गत बनेगी !

—गत अगर आपकी वजह से बने, तो मजे में सह सकूँगा।

—मेरे लिए आपकी गत बने, यह शर्म है मेरे लिए। लेकिन अपने इस दुर्दिन में जिनके पति से मुझे इतनी मदद मिली, मैं उनकी भी ऋणी रहूँगी। अगर फिर कभी कलकत्ते जा सकी, तो उनसे जरूर परिचय करूँगी।

बेल्लिक बाबू ने भयभीत आँखों से सुमित्रा को देखा। कहा—उनसे कभी मिलने जायँ, तो उनके लिए रस्सी और घड़ा और मेरे लिए तोला-भर अफीम लेती जाएँगी !

सुमित्रा के हँसी उमड़ती आ रही थी। सिर्फ इतना ही पूछा—क्यों? ऐसी बात क्यों कह रहे हैं ?

बेल्लिक बाबू बोले—यों सच कहने की अपनी आदत नहीं, फिर

भी कहता हूँ। आपका क्या खयाल है, संसार की कोई भी स्त्री अपने पति के साथ आप जैसी सुदरी को देखकर खुश होगी ?

इतनी बातें सुमित्रा ने उकसा-उकसाकर ही पूछी और फिर खुद शरमिंदा-सी होकर रोक दी। कहा—वेणु बाबू, नाव घाट पर आ पहुँची है। आपका बिस्तर मैं फैला दूँ।

वेणु बाबू ने फिर कुछ न कहा। सिरहाने की तरफ अत्रि और सुमित्रा के लिए जगह छोड़कर आप रात-भर के लिए चुपचाप पड़ दिये। वसत मल्लाहों के पास सोया।

नाव आज सुबह हाजीपुर पहुँचेगी। दिशा के हिसाब से नाव आत्रेयी नदी से मधुमती में जा पहुँची थी। सावन का आसमान मेघों से धुँधला हो रहा था। नदी के इस-उस किनारे छोटी-छोटी बस्तियाँ दिखाई पड़ रही थी। कही-कही गाँव के बच्चे-बच्चियाँ अपने घर के द्वार पर से ही नदी मे कूदकर कुलेल कर रहे। थे नाव की छत पर से यह देख-देखकर अत्रि उमगकर ताली पीटने लगता था। और बीच में अचानक ही वह चीख उठा—माँ, अपना घाट आ गया—आ गया।

—जान बची !—वेल्लिक बाबू बोले।

सुमित्रा ने पूछा—घाट पर कोई नजर आ रहा है ?

—नहीं माँ।

वेल्लिक बाबू बोले—आजकल क्या तो कुल छत्तीस ही घंटे में विलायत जाया जा सकता है ! हम छियानवे घंटे में आये सिर्फ तीन सौ मील। खैर, सामान अब सँभाल लिया जाए।

—आप तकलीफ न उठाएँ, मल्लाह सब ठीक कर लेंगे। आप यह लीजिए मालखाने की कुँजी और रुपयों की थैली। अपने पास रखिए।

—मैं रखूँ ? यहाँ आपके अपने...

सुमित्रा ने कहा—आप क्या अपने नहीं हैं ? लीजिए, रखिए। आपसे धोखा भी होगा, तो बरदाश्त है।

नाव घाट पर लगी, लेकिन आस-पास कोई दिखाई न पड़ा।

पक्के का घाट, ऊपर तक सीढ़ियाँ, सीढ़ियाँ जहाँ खत्म होती है, वहीं पर औरतों के प्रसाधन का कमरा। इसे जीवेन्द्रनारायण ने बनवाया था। घाट में काफी ऊँचाई तक पत्थर का बाँध बना है।

किसी पर नजर नहीं पड़ी, सुमित्रा इससे कुछ क्षुण्ण हुई। यहाँ की छोटी रानी ठहरीं, उनके सम्मान को मानो ठेस लगी। उन्होंने पूछा—नायब की चिट्ठी आपने समय पर डाक में डाल दी थी?

बेल्लिक बाबू बोले—जी।

सुमित्रा की आवाज में कुछ गरमी-सी झलकी। उन्होने कहा—कचहरी के सारे ही लोग हुस्ना के हुक्म से उठते-बैठते है—उनके लिए हम कोई नही। समझ गए वेणु बाबू, इसके पीछे किसी की कारसाजी है। ये लोग शुरू से ही बेरुखी दिखाना चाहते है!

टिप्-टिप् पानी पड़ रहा था। बादल-ढँके आकाश की ओर ताककर वेणु बाबू कुछ खीजे। लेकिन यह बात पहले ही उनके मन में आई कि यहाँ हवा उल्टी है। वे चुप हो रहे। वसंत भी मूढ-सा खड़ा रहा।

सुमित्रा बोलीं—वसंत, सामान उतार ला। साज़िश करके किसी को यहाँ आने नहीं दिया गया है। मैं क्या समझ रही हूँ, जानते है वेणु बाबू? हम लोगों के आने से पहले हुस्ना ने ही खत डालकर कल उमेठ दी है!

वेणु बाबू को न विश्वास था, न अविश्वास। मगर इतना उन्होंने समझ लिया है कि इस जमाने में पूर्वी बंगाल में गरदन ऊँची करके कुछ न कहना ही ठीक है। इधर-उधर निगाह दौड़ाने से उन्हें जो शुबहा हुआ था, वही हुआ। यानी इलाके में कही एक भी हिंदू की निशानी न दीखी। मोटामोटी वे यह जानते थे कि छोटी रानी के कदम जैसे ही गाँव में पड़ेंगे, रोशन-चौकी बज उठेगी, मोरपंखी पालकी उन्हें लिवा जाने को पहुँचेगी, भेंट ले-लेकर लोग दौड़े आयेंगे—कचहरी में हलचल हो उठेगी। लेकिन एक अनाथ मुसलमान लड़की के सिर्फ एक पत्र से ही अगर वह सब कुछ चौपट हो गया, तो यह मानना पड़ेगा कि यहाँ उसकी गजब की धाक है।

गाँव की दो-चार बहुएँ दूर से खड़ी-खड़ी उन्हें देख रही थीं और जो दो-एक आदमी उनके पास आये, वे थे मल्लाह और पैठ जानेवाले! हिम्मत बटोरकर वेणु बाबू ने उनसे पूछा—तुम लोग शायद यहाँ के हो। तुम लोग यानी आप लोग—?

वे कुछ बोले नहीं। सुमित्रा बोली—ये मुसलमान हैं। अपनी प्रजा। आइए, हम चलें—

एक ने अत्रि को पहचाना। पूछा—भैया, कहाँ रहे आज तक? सुना, राजा बाबू लोग चल बसे?

अत्रि ने कहा—हाँ, वे चल बसे।

दूसरे ने पूछा—हुस्नबानू नहीं आयी?

—आयेगी!—कहकर अत्रि माँ के साथ आगे बढ़ा।

बाईं तरफ कुछ ही दूर पर हाट थी। लोगों ने खरीद-बिक्री शुरू कर दी थी। कई लोगों ने मुड़कर इन लोगों की तरफ देखा। बेल्लिक बाबू कातर होकर मन-ही-मन ईश्वर का नाम लेने लगे। आज तक पूर्वी बंगाल के बारे में अखबारों में वे जो कुछ पढ़ते रहे थे, मानों वही घटनाएँ चारों ओर से उन पर टूट पड़ने लगीं।

दूर से ही राजभवन दीख पड़ने लगा। एक बहुत ही बड़ा तालाब पच्छिमी छोर तक पहुँचकर फिर राजभवन की तरफ ही मुड़ गया था। महल से सटा हुआ एक बड़ा-सा मंदिर। बेल्लिक बाबू समझ गए, यही ठाकुर का पोखरा और यही शिवालय है। उन्होंने यह कल्पना कर रक्खी थी कि दूर से ही काकातुआ की रूखी आवाज और मोरों की बोली सुनाई पड़ेगी। लेकिन इसके बदले राजभवन सुनसान दिखाई पड़ रहा था। सारा महल मानों शोक की मूर्त्ति हो, खुशनुमा कामवाले सारे खंभे गोया किसी अजानी आशंका और सोच से सन्न पड़े हों।

सामने ही कमल-पोखरा। पानी और कमल तो थे, पर फुहारे से धारें नहीं छूटतीं। रास्ते के दोनों तरफ मौसमी बेलें और फूलों की सजावट थी कभी, अब उनकी जगह झाड़ियाँ भर गई थीं। उसी ओर

सुमित्रा, अत्रि और वेणु बाबू, तीनों जने चले। सुमित्रा के मन में आँधी उठ रही थी। अत्रि भूख से परेशान था और वेणु बाबू सोच रहे थे, चारों ओर की इस आशंका, अविश्वास और षड्यंत्र के बीच सिर छिपाने को जगह मिल जाए, तो जान में जान आए। गाँव के लोगों को उनके आने की तब तक खबर हो गई थी।

मगर किस्मत की विडबना कहिए कि राजभवन खाली नहीं पड़ा था। डेवढ़ी पर पहुँचते ही एक हथियारबन्द सिपाही मिला। लंबा, दुबला, सख्त-सा आदमी। जाने किस अजाने मुल्क का। उस पर नजर पड़ते ही सुमित्रा सकपका गई। वह पठान था शायद। ग्रे-हाउंड जैसी शक्ल। लेकिन उसे जितना कठोर समझा गया था, उतना वह था नहीं! सुमित्रा को देखते ही उसके चेहरे पर कहाँ तो जानें अचरज-मिली हँसी खेल गई, फिर दाएँ कंधे पर बंदूक सँभालकर बाएँ हाथ से मूँछ को उमेठ जाने कैसी भाषा में उसने कुछ पूछा। एक भी अक्षर किसी की समझ मे न आया।

भीत कंठ से अत्री बोला—लौट चलो माँ।

—अत्रि, चुप हो जा, इतना नही डरती मैं।—कहकर सुमित्रा ने हाथों के इशारे से पठान को यह समझाना चाहा कि अंदर जो हों, उन्हें खबर करो।

इसी बीच एक औरत अंदर से बाहर आयी। उस पर नजर पड़ते ही सुमित्रा चिल्ला उठीं—फकीरा की माँ ?

फकीरा की माँ जरा देर के लिए बुत-सी बन गई। फिर वह बोल उठी—अरे रे, छोटी बहू! कब आयीं? थीं कहाँ? घर-गिरस्ती जो चौपट हो गई! चलो अंदर चलो। ये अपने ही हैं भई, आने दो। साथ में ये कौन है बहू? अत्रि आओ, चाँद मेरे, आओ।

जानी-चीन्ही एक शक्ल जो सामने आई, तो सुमित्रा की जान में जान आई। देखते-ही-देखते उनका चेहरा, उनकी आँखें गर्व-गौरव से दमक उठी। बोलीं—ये मेरे एक रिश्तेमंद हैं।

अचानक फकीरा की माँ रो उठी—अपने छोटे-बड़े दोनों ही राजा चल बसे। कुल का एक ही चिराग रह गया यह। आह, शक्ल क्या हो गई है बेचारे की!

वसंत के साथ मल्लाह लोग उनके सरो-सामान लेकर आये थे। सामान रखकर सब अलग खड़े हो गए। फकीरा की माँ ने कहा—तू अभी जा, ये सामान राजभवन के है,—जा अभी!

वे गये नहीं। एक ने कहा—सामान राजभवन के है तो क्या हुआ, हमने मिहनत की है, मजूरी मिलनी चाहिए कि नहीं?

फकीरा की माँ वेल्लिक बाबू की तरफ देखकर बोली—देख लो बाबू, राजभवन की अब कोई कद्र नहीं रह गई! जो कभी नीचे रहे थे, वही ऊपर उठ आये हैं, वरना इस डेवढ़ी पर खड़े रहकर पैसा माँगने की मजाल थी उनकी? इतना बड़ा कलेजा! आखिर मैं भी तो मुसलमानिन हूँ—लेकिन बाँस-फाँस और मिसरी का एक ही मोल होता है? दे भी दो भैया, मजूरी लिये बिना ये नहीं मानने के।

जेब से पाँच रुपये निकालकर वेणु बाबू ने उन्हें दे दिये।

सबको साथ लेकर उत्साह और आनंद से फकीरा की माँ अंदर गईं। कमरों की कमी नही। एक में सामान रखा गया।

सुमित्रा अचानक ठिठककर खड़ी हो गई। पूछा—अंदर से आवाज किन लोगों की आ रही है फकीरा की माँ?

फकीरा की माँ ने एक बार सुमित्रा की तरफ ताका, उसके बाद मुँह फेरकर कहा—नसीब! ख़ैर, बाद में सब बताऊँगी, पहले अपने भैया को कुछ खिला लाऊँ बहू। इतना कहकर अत्रि का हाथ पकड़े अंदर जाते हुए उसने कहा—वसंत, घर की लछमी घर लौटी है! देखा न! तू सब सामान सहेज दे, मैं उधर का इंतजाम करती हूँ। होशियार, विधवा स्त्री हैं, अपने मुँह की लाज रह सके जिसमें!

जाते-जाते अत्रि ने पूछा—दीदी, और ये लोग कौन हैं?

—नहीं बता सकती भैया!—फकीरा की माँ बोली—ये सब

सरकारी आदमी है। जाने कहाँ-कहाँ से आ जुटे है। गिटपिट-गिटपिट करके क्या जो बोला करते हैं, खाक नहीं समझती। ऊपर कोई बड़े साहब हैं—उन्हें वे लोग हमीद साहब कहा करते हैं। लोक-लश्कर, सिपाही-संतरी—बस यही हाल है। चलो भैया।

—ये लोग क्या हमारे ही घर मे रहेगे ?

—तुम्हारे घर मे ? हाँ घर तो तुम्हारा ही है। यहाँ जो कुछ भी है, सब तुम्हारा है। अब तक तुम लोग थे नहीं, ये लोग घुस आए।

वेणु बाबू चुपचाप एक जगह बैठे रहे। चीजें सहेजकर सुमित्रा लौटी। कहा—ऊपर के सारे कमरो पर इन लोगो ने कब्जा जमा रखा है। मगर इतना आप समझ लें वेणु बाबू, बयार आज चाहे कितनी ही उलटी क्यों न बह रही हो, मेरे हुक्म के बिना यहाँ संतरी-प्यादा बिठाकर घर पर दखल जमाने का इन्हें कोई हक नहीं है। देश का बँटवारा ही हुआ है, लेकिन मेरे घर पर कब्जा करने का कानूनन किसी को कोई हक नही।

वेणु बाबू ने आहिस्ते से कहा—आप लोग छोडकर चले गए, यही गलती हुई। एक भी आदमी आपमें से यहाँ रहा होता, तो कब्जे की बात ही न आती। भाग खड़ी हुई, जभी तो सोने के कमरे पर हाथ पड़ा ! खैर। कोई सुन न ले कही ! पता नहीं भाग्य में बदा क्या है।

सुमित्रा बोलीं—बदा क्या होगा, डरने की कोई बात नहीं। देख लीजिएगा आप, मेरी रिआया यह जुल्म नहीं बरदाश्त करेगी। मैं बताऊं, यह जितना कुछ हुआ है, सबके जिम्मेदार कुल दो ही जने हैं—एक मेरे जेठजी और दूसरी वह नागिन हुस्ना। शैतान पेड़ में थोड़े ही फलते हैं वेणु बाबू !

हुस्ना के चेहरे की याद आने पर वेणु बाबू को उस पर रंज नहीं आता। उन्होंने सिर्फ इतना कहा—इतने दिनों तक साथ रहने से क्या होता है ! हिन्दू, मुसलमान—कोई भी किसी को नहीं पहचानता। बात दरअसल यह है छोटी रानी साहिबा, बातें कानों में होती रही हैं, मन-

मन की जान पहचान नहीं हुई !

— वह अब होगी वेणु बाबू !—सुमित्रा ने कहा—यह प्रतिकार मेरे ही हाथों होगा। मैं उन सब के बीच जाऊँगी, उनके सारे भार मैं स्वयं उठा लूँगी। मीरा को मैं जानती हूँ—वह कुछ भी नहीं करेगी, लेकिन वह चुड़ैल जो है, मुट्ठी-भर अन्न पाने के सिवाय इस घर पर जिसका कोई भी हक नहीं, वही हुस्ना हो सकता है कलकत्ते से ही कोई कल-कब्जा उमेठे !

बेल्लिक बाबू ने कहा—जब से यहाँ की जमीन पर पाँव रखा है, तभी से चारों तरफ हुस्ना का ही नाम सुन रहा हूँ—उसकी यहाँ इतनी ज्यादा कद्र थी ?

—कद्र होती क्यों नहीं ?—सुमित्रा जैसे लहकता अंगारा बन गई—ठाकुरबाड़ी से रसोई-घर तक, सब जगह उसकी बेरोक पहुँच थी। अपनी कीमत क्या है, वह क्या जाने ? जेठजी ने दो-दो बार उसकी शादी कराई, मगर इस जायदद के लोभ में दोनों ही बार अपने पति को छोड़कर वह चली आई। एक ने निकाह किया, उसे भी लात मारकर भाग आई। अपनी कौम को ऐसी नफरत करते भी मैंने किसी को नहीं देखा !

बेल्लिक बाबू चुप रह गए।

रसोई-पानी का इंतजाम हो-हवा गया। फकीरा की माँ ने कहा—मुझे तो सब मालूम है, वैसा कुछ होने ही न दूँगी मैं। विधवा की रसोई सबसे अलग—मैंने वसंत से सारा कुछ कराया है। मैं बता दूँ बहू, टगर को बुलवा लिया है, राखो चकरवरती आ गया है, नीलू ले आया वासमती चावल, शशी ग्वाले के यहाँ से दूध-दही मँगवाया, अनाज और साग-सब्जी घर की। तुम छोटी रानी ठहरी। तुम्हें कैसी फिक्र ?

सुमित्रा ने पूछा—और इनके लिए ?

—भला इनके लिए न करूँ ? मैं हूँ हब्बू मियाँ की बेटी, मुसलमान की बच्ची, इन बातों में मुझसे चूक नहीं हो सकती। बड़े तालाब की

मछली, बतख के अंडे, माँस, दूध, मलाई—घर का घी। तेल यहाँ नहीं मिलता—सब-कुछ घी में पकाया है।—फकीरा की माँ ने कहा—तो मैं चलती हूँ। तुम लोग नहा लो···भात पका लेना। मै उनसे कह आऊँ।

महल के इस हिस्से में पहले भी लोगों का वैसा रहना नहीं होता था। बीच के दरवाजे को बंद कर देने से यह हिस्सा एकबारगी अलग-सा लगता है। जहाँ तक खयाल आता है, सुमित्रा मुश्किल से दो-एक बार इधर का चक्कर काट गई थी—इससे ज्यादा परिचय उन्हें इस हिस्से का नहीं था। आम तौर पर इसमें या तो किसी नायब का परिवार रहता था, या कोई साधारण मेहमान टिकाए जाते थे, या कोई सरकारी कर्मचारी कभी कभी यहाँ रात्रिवास करता था। महल की औरतों को इधर आने की जरूरत ही नहीं पड़ती।

फकीरा की माँ कहे-करे चाहे जितना, मगर यह सारा कुछ जैसे मेहमानदारी हो। वेणु बाबू की तेज आँखें सब कुछ को तौलती जा जा रही थीं। सारा ऊपरी हिस्सा दूसरे के जिम्मे रहा, सुमित्रा को नीचे के दो अच्छे कमरे, रसोई, नहान-घर—छोड़ दिया गया। ऊपर थे केन्द्रीय सरकार के एक बड़े अधिकारी—बिहार के रहनेवाले, नाम था अब्दुलहमीद। दरवाजे पर हथियारबंद सिपाही का पहरा देखकर बेल्लिक बाबू को उनके रौब-दाब पर कोई शुबहा न रहा। पूर्वी बंगाल में आने से पहले उनके मन में जो आशंकाएँ थीं, यहाँ आने के बाद वे उतनी तो नहीं रह गईं, लेकिन खतरे का डर जरा भी न गया। हमीद साहब के मातहत आदमी भी कम न थे! इस बीच ऊपर से स्त्री-कंठ की आवाज भी सुनाई पड़ चुकी है। साफ समझ में आया कि वे यहाँ परिवार सहित रह रहे है। आखिर यह मकान है किसका, यहाँ रहने की शर्तें क्या है, रहने की इजाजत लेने की जरूरत है या नहीं, घर के सरो-सामान कैसे रखे गये हैं, है भी या नहीं—इन बातों को जानने का दुःसाहस सुमित्रा में नहीं है, वेणु बाबू का कम-से-कम ऐसा ही खयाल है। और इन कुछ घंटों में उन्हें यह भी विश्वास करने को

मजबूर होना पड़ा है कि बीते गौरव को फिर से लौटानेवाला व्यक्तित्व कम-से-कम इस वंश के किसी आदमी में नहीं।

खान-पान के बाद सुमित्रा ने वसंत के मारफत फकीरा की माँ को बुलवाया। वह दौड़ी-दौड़ी आयी। बोली—हूँ तो मैं मुसलमान की लड़की मगर बाह्मण-सुद्दर मैं मानती हूँ। मैं भला बाह्मन की रसोई के पास रह कैसे सकती हूँ?—हाँ, बड़े साहब से मैंने कहा है।

—क्या कहा है फकीरा की माँ?

—सच ही बताऊँ। मैंने कहा—साहब, इस घर की मालकिन आ गई है। अब आप अपनी राह देखिए। पराये दाल-भात में मूसरचन्द! होते कहीं बड़े राजा तो बताते मजा! अब भले-भले आप खिसक पड़िए।

—फिर कहा क्या हाकिम ने?

फुसफुसाकर फकीरा की माँ ने कहा—बिहारी है न, दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए हँसता है। उसके मन की ताड़ सके, किसके बाप की मजाल।

सुमित्रा ने कहा—लेकिन मैं उनसे एक बार बात जो करना चाहती हूँ। उनसे कहो कि मुझसे जरा मिल लें।

—अभी कहती हूँ मैं, अभी।—फकीरा की माँ तुरत चली गई। बेल्लिक बाबू कुछ व्यस्त-से हुए। पूछा—आखिर आप उनसे मिलना क्यों चाहती है?

सुमित्रा बोलीं—आपको डर लगता है?

—डर! हाँ, डर लगता है। यानी अगर…?

—अगर क्या, कहिए?—सुमित्रा हँसीं। घूँघट के भीतर उनके सूखे बाल की लटें छाती पर लोट रही थीं। कान तक फैली हुई आँखों में कौतूहल।

बेल्लिक बाबू बोले—समझाकर कहने की जरूरत है!

सुमित्रा ने एक क्षण के लिए सिर झुका लिया। बाद में कहा—खुद उनके सामने खड़ी न होऊँ तो क्या कोई रास्ता निकलेगा?

दबी ग्रावाज में बेल्लिक बोले—मैं बाहर का ग्रादमी हूँ। ग्राप यहाँ ग्रकेली हैं। जो लोग यहाँ है, वे ग्रापके कोई नही होते। कुछ हो-हवा जाए ?

इतने में सुमित्रा मन को स्थिर कर चुकी थीं। बोलीं—ग्रापके मन की बात मैं खूब समझती हूँ। यह भी जानती हूँ कि ग्रौरतों का हो-हवा क्या सकता है!···

बाधा देकर बेल्लिक बोले—सिर्फ ग्रौरतों की बात नही, इस घर की छोटी रानी की इज्जत-ग्राबरू, उनकी···

—वेणु बाबू !—सुमित्रा बोली—हक को फिर से पाने के लिए कांच का बर्तन ग्रगर टूटता है, तो टूटे। लेकिन ग्रापना हक खोकर छोटी रानी को कही लड़के का हाथ थामे राह में भटकना पड़े, तो खाऊँ पेट के लिए दाने कहाँ से जुटेंगे ?

वेणु बाबू बोले—मेरे मुँह पर यह बात कहने से मैं तो सुनने का नहीं सुमित्रा देवी। ग्रापके साथ जिस दिन मैंने कलकत्ते से बाहर कदम रखा है, ग्राप क्या सोचती हैं, मैंने उसी दिन इस बात का लेखा नहीं लगाया कि ग्रागे मुझे क्या करना है ?

—ग्रागे ग्रापको क्या करना है, सुन सकती हूँ मै ?

—ग्राज ग्राप न भी सुनें तो हर्ज नहीं !

—ग्रापने कोई ग्रौर रास्ता सोचा है क्या ?

सुमित्रा के इस उत्सुक प्रश्न के उत्तर के लिए बेल्लिक सिर झुकाए ग्रपने को तैयार कर रहे थे कि बाहर पाँवों की ग्राहट हुई। तुरत वेणु बाबू ने कहा—ग्राप जरा ग्रोट में चली जायँ।

—नहीं। नहीं जाती मैं।—सुमित्रा फिर खड़ी रहीं। जो ऐसी जगह शुरू से रहते ग्राए हैं, जहाँ मुसलमानों की तादाद ज्यादा रही है, उन्हें मुसलमानों से डर नही लगता।—उन्हें ग्राने दीजिए।

ग्राहट ग्रौर नजदीक ग्राई। बातें करते-करते फकीरा की माँ हमीद के साथ ग्रा रही थी। भय से बदरंग हुग्रा चेहरा लिए बेल्लिक बाबू उठ

खड़े हुए। और दूसरे ही क्षण दरवाजे के सामने हमीद साहब का आविर्भाव हुआ।

पुरुष की जैसी होनी चाहिए, वैसी ही तंदुरुस्ती ; गोरा रंग, हँसमुख चेहरा। हमीद साहब ने बाहर ही अपने जूते उतार दिये। उसके बाद दूर से ही कहा—अदाब-अर्ज़ रानी साहिबा।

—बंदगी जनाब।—दो शब्द कहकर सुमित्रा ने अपने हाथों कालीन बिछाई। कहा—आइए!

बेल्लिक खड़े काँप रहे थे। हमीद साहब घुटने पीछे की ओर मोड़कर बैठ गए। बोले—आपकी मिहरबानी से हमें यहाँ जगह मिल गई है। अब हम भी आपकी प्रजा है।

दोनों हाथ उठाकर सुमित्रा बोली—आप फिर से मेरा नमस्कार स्वीकार करें।

टूटी-फूटी बंगला हमीद साहब के मुँह से वैसी बेजा नहीं लग रही थी, क्योंकि वे बंगाली मुसलमान नही थे। उनकी शक्ल मानों मुगल जमाने की रही-सही निशानी हो। चूड़ीदार पाजामा, मलमल का बेलवाला कुरता, हाथ में हीरे की चमकती अँगूठी, क्यारी-सी कटी घनी दाढ़ी रंगीन थी! आँखों में सुरमा। दाँत खूब साफ। पूर्वी बंगाल के मुसलमानों में वे चाहे न खप सकें, पर मुगल दरबार में वे बेशक फबते।

बेल्लिक की तरफ ताककर हमीद साहब बोले—मिहरबानी करके आप भी तशरीफ रखिए? हाँ, रानी साहिबा, मैं एक निहायत मामूली आदमी हूँ। अगर यह जानता होता कि आप आ रही हैं, तो मैं इस मकान में नहीं आता। मुसीबत यह है कि हमें और सब कुछ तो है, घर-द्वार नहीं है! जिनके हाथों पाकिस्तान का शासन है, भला उनके बाल-बच्चे रास्ते में खड़े रहें! आप यहाँ होतीं तो आप से ही कोई कमरा माँग लेता। मुझे माफ करें, मैं कल ही सबेरे यह घर छोड़कर चला जाऊँगा। आपका जमींदारी-अख्तियार आपका ही रहेगा!

उल्लास, उत्तेजना और उत्साह से सुमित्रा का गला रुँध आया।

उन्होंने कहा—आपका सरकारी काम कहाँ से होगा फिर ?

—मैं कहीं तंबू खड़ा कर लूँगा ।

—तंबू ?

शांत हँसकर हमीद ने कहा—हाँ, तबू । पाकीस्तान का राज्य तंबू से शुरू हुआ है । कराची में तंबू, ढाका में तंबू । हिंदुस्तानियों को दिल्ली का तख्त मिला है, उसी के साथ करोड़ों-करोड़ रुपया भी मिला है । उन्हें सोने का हिंदुस्तान मिला है, हमे मिला है चाँदी का पाकिस्तान । लेकिन भारत को तो अपना घर सँभालने का शऊर नही है—हर रोज हुज्जत लगी ही रहती है । हमारा पाकिस्तान शांति की जगह है । आप-सी भली रानी हमारे यहाँ रहे, तो सुख-शाति रहेगी !

—इस बरसात में आप तंबू में कैसे रहेंगे भला !

सुमित्रा की उत्तेजना देखकर बेल्लिक मन-ही-मन क्षुब्ध हुए थे । अब हँसकर बोले—क्यों न रह सकेंगे, आदत है उन्हें !

हमीद ने बेल्लिक की तरफ एक वार अच्छी तरह से देखा । कहा—जी हाँ, हमीद को आदत है । हमें दुःख पाने की आदत है, दुःख देने की नहीं । पाकिस्तान की बुनियाद ही दुःख और भीख पर है । छुटपन में दुःख-कष्ट झेलकर जो बढते है, वे चरित्रवान होते है, आदमी बनते हैं । रानीजी, ये बाबू साहब कौन है ?

सुमित्रा बोलीं—ये हमारे परिवार के एक बड़े हितू हैं ।

—पाकिस्तान के हैं ?

सकपकाकर बेल्लिक बोले—नहीं···

—डरें मत । आप पाकिस्तान के मेहमान हैं ! बंदा का सलाम लीजिए।

दोनों में स्नेह और नमस्कार का आदान-प्रदान हुआ । उसके बाद हमीद ने कहा—बेअदबी माफ करें । कल हम चले जायँगे । बंदगी रानीसाहिबा ।

उनके उठ खड़े होने से पहले ही सुमित्रा ने गला साफ करके कहा—हमारा अपना आजाद मुल्क ही हमारे लिए बड़ा है । आज इसका नाम पाकिस्तान पड़ा तो क्या हुआ ? इतिहास में बहुत-से देशों का नाम बहुत

बार बदलता है। उससे कुछ आता-जाता नहीं। इंडिया नाम सुनने में खटकता है, यह किसे मालूम नहीं। लेकिन अब तक यही चलता रहा है! कभी गाधार भारत मे था, आज उसका नाम कंदहार है। यह पाकिस्तान हो तो हो, लेकिन यहाँ आदमियों का वास रहे। पाकिस्तान बड़ा होगा तो हम भी बड़े होंगे, क्योंकि यही अपनी मिट्टी है। माटी का नाम बदल सकता है, माटी नही बदलती। म्याँ साहब, हिंदू की मिट्टी और मुसलमान की मिट्टी, आप इस सत्यानाशी बात को बिसरादें। उसे मनुष्य की मिट्टी कहें। इस मिट्टी पर मनुष्य का अधिकार है, यहाँ इस देश के लोग रहेंगे! आपको और कही जाने की जरूरत नही—मकान बहुत बड़ा है, अपना दफ्तर आप यही रखें, आप भी यही रहें। मुझे कोई एतराज नही!

हाथ जोडकर उस रूपसी की तरफ देखते हुए हमीद ने कहा—तो आप हमीद को रहने का हुक्म देती है?

सुमित्रा ने भी हाथ बाँधकर कहा—इस गरीबखाने में आपको जगह की कमी न होगी म्याँ साहब!

हमीद ने झुककर सलाम बजाया। उसके बाद खडे होकर कहा—मुझे जगह बहुत ही कम चाहिए। अकेला ही तो हूँ। गुलजार बाग से मेरी बहन आयी है, कल वह चली जायँगी। बंदगी। कसूर माफ करेंगी।

हमीद साहब चले गए। वेल्लिक हक्का-बक्का होकर सुमित्रा की ओर ताकते रहा। जो सोचा था, ठीक उसका उल्टा निकला।

इतनी देर के बाद फकीरा की माँ बोली। धीरे-धीरे बोली—अच्छा बहू, नहर बनाकर कहीं मगर तो नहीं ले आई तुम? आदमी को कैसा पाया?

हँसकर सुमित्रा बोलीं—अच्छे आदमी को मिनट-भर में पहचाना जा सकता है फकीरा की माँ!—आपका क्या ख्याल है वेणु बाबू?

इधर-उधर देखकर वेणु बाबू ने कहा—फकीरा की माँ तो नितांत अपनी है, उसकी बात जाने दीजिए, मगर है वह काँइयाँ,—डर से ही संदेह आता है!

हुस्ना की चलती बात ही सुमित्रा की जबान पर आ रही। उन्होने कहा—संदेह से अश्रद्धा होती है, और अश्रद्धा से ही घृणा आती है वेणु बाबू।

वेणु बाबू बोले—हिंदू और मुसलमान—एक ही घर में। फिर आप ठहरी विधवा—पूजा-पाठ है, व्रत-उत्सव है…नियम-आचरण है !

फकीरा की माँ ने कहा—बस, जो कहा आपने। तेल और पानी भी घुलते-मिलते हैं कही ?

सुमित्रा बोली—क्यों नही घुलते-मिलते। आखिर हम-तुम क्या हैं ? अगर सबको यहाँ जगह न मिल सके, तो छोटी रानी सदा को छोटी रह जायँगी !

दूसरे दिन अत्रि और बेल्लिक बाबू के साथ सुमित्रा चली गई दुमंजिले पर और पूरा कुनबा लिए हमीद साहब आ गए नीचे। पहले भी दुतल्ले से नीचे का कोई सम्बन्ध नही-सा था, अब भी न रहा। हमीद की बहन अपने सगी-साथियों के साथ नाव से अपने घर को रवाना हो गई। एक नवजवान बावर्ची और खानसामे के सिवाय हमीद के साथ और कोई न रहा। हमीद ने शायद अभी तक शादी नही की। नीचे जाते समय दुमंजिले को वे भली तरह धो-पोंछ गए थे।

पीछे प्रासाद की पृष्ठभूमि रही। छोटी रानी को पहचानने में देर न होगी अब। उन्होंने अपने बीते गौरव और सिंहासन, दोनों का उद्धार किया। कभी हुस्ना यहाँ आये तो सुमित्रा की शक्ति और अध्यवसाय का नमूना देखेगी। आये भी वह, घुटने टेककर आये—आज भी उसे अन्न और आश्रय मिलेगा। अपनी आँखों वह देख जाए आकर कि उसका यह झूठा अहंकार टूक-टूक हो गया है कि चौधरी परिवार की कोई हस्ती नहीं रही, राज-भवन का कोई रौब न रहा।

खुशी से हँसती हुई सुमित्रा ने कहा—आइए वेणु बाबू, आपकी घुमा

फिराकर सब दिखाएँ। बाहर के महल में संगमरमर की वह जो दालान देख रहे है, उसी में रहते थे जेठजी और उनकी लाड़ली हुस्ना। इसमें रहती थी मैं और मीरा, सामने वहाँ हिरण। हिरण के एक पुस्तकालय था। यह देखिए, इसी हाल मे मीरा की शादी हो रही थी और उसी समय डकैतों ने आकर घर में आग लगा दी थी। यह रहा मेरा कमरा। कही कुछ दीखता भी है आपको ? सब लूट ले गए। रहा-सहा आग की भेंट चढ़ गया।

—ऐसा किया किन लोगों ने ?—बेल्लिक ने पूछा।

—किन लोगों ने ? फिर कभी अगर हुस्ना से आपकी भेंट हो, तो उससे पूछ देखिए। जेठजी कहा करते थे, इस घर में सामान ही कोई तीन लाख रुपये के थे। लेकिन आज एक बिछावन भी बाकी नहीं बचा है कि अत्रि को मैं सुला सकूँ। मुझे हर कुछ नये सिरे से करना पड़ेगा।

बेल्लिक बोले—जिन लोगों ने इस घर में नाश का नजारा पेश किया, आप तो फिर उन्ही के बीच आ पहुँची।

सुमित्रा ने कहा—डरने की कोई बात नही वेणु बाबू। प्रजा की उत्तेजना फूस की आग है। एक बार जोरों से लहक उठती है, फिर ठंडी। मैं घर छोड़कर भागना नहीं चाहती थी, मगर मेरी यह जालिम सूरत देखकर ही डर से लोग मुझे खीच ले गए थे। आज मेरे अफसोस का इंतहा नही। संपत्ति मुझे वापस मिल गई, लेकिन संपद न मिला। मुझे फिर से सब बनाना पडेगा, सजाना पड़ेगा। मेरे पति गुनाह कर गए और जेठ कर गए अन्याय। जमींदारी का लुत्फ लूट गए वे, मेरे लिए छोड़ गए ज़िल्लत, रख गए सिर्फ मिट्टी।

बेल्लिक बाबू देर तक घूम-घूमकर देखते रहे!

तीन ही दिन के बाद समस्या सामने आई। सुमित्रा ने कुछ चीजों के लिए गाँव में इधर-उधर कहलाया था, मगर उसका कोई नतीजा न निकला। गिरस्ती के सामान महँगे ही न थे, दुष्प्राप्य जान पड़े। इस घर में तो सात दिनों तक आग जलती रही थी, लिहाज़ा बचने में से

एकाध बची थी अधजली लकड़ी की चीजे और दो-एक चीनी मिट्टी के फूलदान। खाट-पलंग, ग्लासकेस, बक्स-पिटारा—कहीं कुछ न था। चारों तरफ देखकर सुमित्रा को रोना आता।

फकीरा की माँ आकर खड़ी हुई। बोली—बहूजी, कुछ न मिल सका। बैरंग वापस आ गई। लोग बोले—दूध आकर लेजा सकती हो, पहुँचाना मुमकिन नही। ऐसा ही चाहो, तो घर गाय पालो।

सुमित्रा ने पूछा—और चीजे?

—कोई नही मिली। चावल-दाल दे कौन? किसी के पास नहीं। नमक-तेल की कीमत तो पूछिए मत!

—तुमने कचहरी में पूछ देखा था कि हम लोगों के खर्च का प्रबंध कैसे होगा?

फकीरा की माँ ने कहा—भला पूछा नहीं, मगर सुनता कौन है? सब केवल ताकते और हँसते है।

सुमित्रा कुछ क्षण चुप रही। फिर पूछा—और म्याँ मुनिरुद्दीन ने क्या कहा?

—उन्होंने कहा, दो किश्तों से सरकारी मालगुजारी नही चुकाई जा सकती है—मैं कर क्या सकता हूँ!

तीखे स्वर में सुमित्रा ने कहा—और धान और सन् की फसल का क्या हुआ? उसका लेखा? रुपयों का इंतजाम आखिर क्या किया गया?

फकीरा की माँ इसके बाद कुछ न बोली। सुमित्रा फिर कुछ कहने जा रही थीं कि वसंत आया। पूछा—क्यों वसंत, हमीद साहब क्या बोले?

सर खुजाते हुए उसने कहा—जी, वे ठहरे सरकारी मुलाजिम, उन्हें मालगुजारी मिल जाए, बस। यही बताया उन्होंने।

सुमित्रा ने पूछा—और रुपया?

—आप कर्ज लेना चाहें तो वे दे सकते हैं।—वसंत ने कहा।

सुमित्रा कुँजियों का झब्बा निकाल लाई। बोली—आइए वेणु बाबू। देख लिया न आपने। मैं बताऊँ, मालखाने से कुछ लेने का अपना

इरादा न था, मगर मजबूर हूँ। लेना पड़ गया। सात पुरखों की पूँजी छूने मे अपना भी हाथ काँपता है! लेकिन दूसरा कोई चारा नही।

मोटी दीवार की सुरंग से होकर सुमित्रा मालखाने पहुँचीं और उसे खोला। लेकिन जो देखा, उससे सर्वांग मानों बर्फ-सा जम गया। छः पुश्तों की छः संदूकें—सब-की-सब खुली पड़ी थी, खाली पड़ी थी। कुछ क्षण बुत-सी रहकर सुमित्रा बोली—यह सारी कारिस्तानी हुस्ना की है! ऐक बदचलन मुस्लिम लड़की ने चौधरी परिवार को राह क. भिखारी बना छोड़ा।

तेरह

मोटर तालतल्ले के मकान के दरवाजे पर आकर रुक गई। विमलाक्ष ने गाड़ी को बंद किया और अदर जाकर आवाज़ दी—ठाकुर!

नौ नहीं बजे थे। ठाकुर शायद बाजार गया होगा। दाई काम-काज करके लौटी जा रही थी, विमलाक्ष को देखकर कहा—जीजी तो अभी सो ही रही हैं, जगा दूँ क्या डॉक्टर साहब?

—नही-नंही, छोड़ दो—मैं बाहर इतजार करता हूँ।

घूँघट को जरा खीचकर दाई हँसती हुई चली गई।

विमलाक्ष ने कनखियों से एक बार सड़क की ओर ताका, फिर टोपी को सर से हाथ में लेकर सोने के कमरे की तरफ चला। लेकिन कमरे के अंदर कदम रखने के पहले अंदर की ओर झाँककर ही वह दो कदम पीछे हट आया। कलेजे के लहू में कँपन पैदा हो गया अचानक, वह, क्या तो कहते हैं उसे, गले तक उठ आया। सर में मानों झनझनाहट हो आई। इधर-उधर ताकने के बाद जी में आया, बाहर का दरवाजा बंद

कर आया जाए ? नहीं, नहीं, खुला ही रहे। भविष्य में कभी मामले-मुकदमे की नौबत आए, तो किवाड़ बद रहने की गवाही उसके खिलाफ पड़ेगी। लेकिन कहीं कंबख्त ठाकुर आकर यहाँ दाखिल हो जाए ?

डर किस बात का ! अपने को ढकेलकर विमलाक्ष कमरे के अदर पहुँचा। जूते की आवाज से भी मीरा की नीद न खुली। आप अपने लिए एक कैफ़ियत रखने की नीयत से उसने मीरा को एक बार इस ढग से पुकारा कि सोई नारी के कान तक वह आवाज ही नही पहुँचे। उसके दोनों पाँव थरथर काँप रहे थे, लेकिन बहुत कुछ लापरवाह-सा, कमजोर-सा वह खिड़की की छड़ पकड़े खड़ा रहा। बगल के घर से कोई मीरा को न देखे और उसकी मौजूदगी का किसी को पता न हो, इस खयाल से उसने खिडकी के एक पल्ले को सावधानी से लगा दिया। यह करनी लफंगे की है, वह जानता है; नीच कर्म है--उससे ज्यादा हमें और कौन जानता है ! लेकिन यह तन-वल्लटी हाजीपुर की उस नवाब-नंदिनी की है, जिसके गर्वीले चरणों की चोट से वेणु-वीथिका के दोनों किनारे के मौसमी फूल सिर हिला-हिलाकर हँसा करते थे और पुरुष की रस-कल्पना आकाश में रंग-भरी तूलिका फेरती। एक समय था, जब राज-प्रासाद की छत पर बिजली की इस लता को देख मधुमती की छाती पर चलनेवाली नावें राह भूल बैठती थीं। आग की इसी भट्टी में से कभी विमलाक्ष की तरफ हिकारत की चिनगारियाँ छिटका करती थी। उस लुटी-पड़ी-सी मदालसा को आज देख लो, प्राण भरकर देख लो।

नीद में मीरा हिल उठी। विमलाक्ष ने भाग निकलने की कोशिश की, मगर हिलने-डुलने की शक्ति उसकी जाती रही थी। वह मानों अगाध गहराई में गुमता जा रहा था। धीमी आवाज में एक बार उसने पुकारा—मीरा !

मीरा ने जवाब दिया—ऊँ।

—मैं आया हूँ मीरा।

तकिये में मुँह रगड़कर मीरा ने कहा—आप नहीं आये होते तो

क्या होता ?

मीरा में चंचलता जरा भी न दीखी। शायद वह आज भी विमलाक्ष को मर्द नही समझती। विमलाक्ष ने कहा—क्या खूब, तीन दिनों से तुम्हारी कोई खबर नहीं मिली, फिक्र तो होती है आखिर ! काफी देर हो चुकी है, जगोगी नही ?

मीरा जग गई। लेकिन लेटी रही। बोली—अरे, तुम हो ! अचानक आज सबेरे आ धमके ? वक्त क्या हुआ ?

विमलाक्ष बोला—नौ बज रहे हैं। तुम तो बहुत सबेरे जग जाया करती थी। आज इतनी देर ? दफ्तर नहीं जाना है ?

मीरा बोली—जाऊँगी। मगर तुम जरा अपना मुँह खिड़की से बाहर की तरफ फेर लो तो ?

शर्मिंदा होकर विमलाक्ष ने मुँह फेर लिया। मीरा उठ बैठी। बोली—चेहरे के रंग और पाउडर से तकिये की क्या शक्ल हो गई—राम-राम। अच्छा, यह तो कहो, नौकरी मुझे और कितने दिनों तक करनी पड़ेगी ?—और कहते हुए वह कमरे से निकल गई।

जरा देर बाद वह अपने को सँभालकर फिर आ बैठी। बोली—कल रात तुम नहीं थे ? कौन था मेरे साथ ?

अचरज से विमलाक्ष ने पूछा—यानी ? कह क्या रही हो तुम ?

—नहीं, कुछ नहीं। सपना सच नहीं हुआ !—मीरा ने कहा।

विमलाक्ष ने शिकायत की—तीन दिनों से तुम्हारे दर्शन नहीं हुए। वहाँ तुम्हारा कमरा खोला तक नहीं गया। कल मैंने तुम्हारे दफ्तर में फोन किया। पता चला, तुमने फ्रेंच लीव ले रखी है। आखिर ये कई दिन तुम रही कहाँ ?

मीरा हँसी। कहा—भैया, आज भी आफ़िस न जाऊँ तो कैसा रहे ? फिर सोने की इच्छा हो रही है।

—नहीं-नहीं, यह नहीं होने का। कुछ भी हो, नौकरी आखिर पराए की है। फिर काम न करोगी तो और भी आलस घेरे रहेगा।

मीरा ने जोर से आवाज दी—ठाकुर ?

ठाकुर लौट आया था। उसने आवाज दी। मीरा ने कहा—चाय दे जाओ।—अच्छा विमल भैया, यह तो बताओ, पहले मैं तुमसे इतनी नफरत क्यों करती थी ?

विमलाक्ष हँसा। बोला—तो यह कबूल करो कि तुम्हारी वह बीमारी मैंने दूर भगा दी है। मेरी डॉक्टरी में सिफ़त है !

—तुम्हारी डॉक्टरी कैसी है, यह तो मैं आज भी नहीं जानती, मगर तुम्हारी लगन की तारीफ बेशक करनी पड़ती है।

—तुम्हें मैंने बड़ी-बड़ी मुश्किल से जीता है मीरा।

—जीता है !—मीरा ने विमलाक्ष की तरफ ताका। फिर बोली—मै जानती हूँ कि तुम आँधी के आगे-आगे दौड़ सकते हो, मगर इसे जीतना नहीं कहते।

विमलाक्ष ने पूछा—फिर क्या कहते है इसे ?

मीरा बोली—कलकत्ते के जीवन के लिए तुम अनिवार्य हो। यह शहर दरअसल तुम्हीं लोगों का है। मुझे लोभ था, तुमने मेरे उम लोभ को बढ़ाया है। मैं तुम्हारी कृतज्ञ हूँ।

—मीरा तुम्हारे मुँह से तुम्हारे मन का मेल नहीं। एक बात याद रखना, मैं जबरदस्ती, गले पड़कर तुम्हारा उपकार नहीं करने आया हूँ !

मीरा ने कहा—यानी तुम इस बात को रोज ही एक बार सुनना चाहते हो कि मैं ही तुम्हारे दरवाजे पर पहले गई थी ? क्यों ?

विमलाक्ष हँसकर बोल उठा—सुबह-सुबह ही लड़ाई लड़ने लगो, तो फिर दफ्तर जाना हुआ।

ठाकुर चाय-बिस्कुट रख गया। मीरा ने कहा—बात यों है, हम पहले ही एक खास दायरे में हैं, सो लेखा तो शुरू से आखिर तक ठीक-ठीक मिल जाना चाहिए था। लेकिन मेल बैठा नहीं—एक भूकंप हो गया। छिटककर आ पड़े हम एक आदिम जीवन में। अब इससे निकल बाहर हो सकें तो कैसे ? वह मन कहाँ है ? वह घर कहाँ है ? कहाँ है भावना का

स्रोत ? घर टूटे तो बन जाता है। नदी बाँध तोड़ती है तो एक ही कूल बहता है ! लेकिन आदमी का मन टूटता है तो दोनों ही कूल जाते हैं !

विमलाक्ष ने कहा—मीरा, मना किया है न मैंने कि तुम हर बात के लिए माथापच्ची न किया करो।

मीरा बोली—आखिर माथापच्ची और किस बात पर करूँ ? क्या इसके लिए तराजू-बटखरा थामूँ कि मेरी घृणा के बदले तुम्हारी मुहब्बत मिली या नहीं ? विवाहित आदमी प्यार का कंगला होकर जब दर-दर की ठोकरें खाता फिरता है, तो उसकी शक्ल क्या हो जाती है, कभी आईने के आगे खड़े होकर देखा है ? अपनी इस बनी-ठनी सूरत के अंदर जो दरिद्री है, कभी देखा है उसे ?

विमलाक्ष बोला—मीरा, मै क्या तुम्हारे पास सिर्फ उसी के लिए आता हूँ ?

आखिर चाहते क्या हो तुम ? बिना किसी ग़र्ज़ के ही बिल्ली चक्कर काटती है ?

—मैं, मैं तुम्हारा भला चाहता हूँ, कल्याण चाहता हूँ, तरक्की चाहता हूँ।

मीरा हँसी। कहा—तुमसे भेंट होने के बाद से मेरी काफी तरक्की हुई है, इसमें कोई शुबहा नहीं। लेकिन इस तरक्की का आखिर अंत कहाँ है, यह पता है ? कह सकते हो, किस-किस दिशा में उन्नति बाकी रह गई है ?

विमलाक्ष ने बल देकर कहा—बेशक बता सकता हूँ। तुम अपने पैरों खड़ी होगी, नौकरी में तरक्की पाओगी, काफी रुपये होंगे, बहुतों का तुम्हारे दाना-पानी से गुजर-बसर होगा, देश की सेवा करोगी तुम—यही सब तो उन्नति है।

—और अगर मुझे इस पर विश्वास न हो ?

—फिर तो समझूँगा तुम पागल हो। समझूँगा कि तुम अपने-आपको बरबाद करना चाहती हो, अपने जीने की राह में काँटे बोना चाहती हो।

मीरा ने व्यंग-भरा कटाक्ष किया—ओ, मैं कहीं बरबाद हो जाऊँ, इसीलिए तुमने दवाखाने की छत पर मेरे लिए किराए का कमरा लिया है, उसे सजा-सँवारकर रखा है ? शायद इसीलिए बीवी की आँख बचाकर मेरे लिए साड़ियाँ खरीदा करते हो ! हीरे का कँगना शायद मेरी उन्नति के ही खयाल से खरीद लाये हो ? मैं बेखबर सोई रहती हूँ तो चोर की तरह आकर लोभ-भरी आँखों से टुकुर-टुकुर ताका करते हो, शायद मेरी उन्नति ही के लिए ?

—मीरा ! क्या कह रही हो तुम ?—हतबुद्धि-सा बोल उठा विमलाक्ष।

मीरा खिलखिलाकर लोट गई।

—तुम क्या उस समय सो नहीं रही थी ?

मीरा ने कहा—मोटर की आवाज से नीद मेरी टूटी नहीं ? मै क्या तुम्हारी आँखों से अपने को देख नहीं रही थी ?

अधीर हो विमलाक्ष ने कहा—तो यह कहो कि मेरे सामने तुम्हें अब कोई शरम न रही ?

—ऐसा लगता है, मैं यह कबूल कर लूँ तो तुम खुश हो जाओ ?

—मीरा,—विमलक्ष का गला काँप उठा—तुम्हारे मन की मुझे आज भी थाह क्यों नहीं मिल पाती ? कह सकती हो ?

मीरा ने कहा—असल में तुम हो डॉक्टर। तुम्हारा कारोबार शरीर का है, मन का नहीं। डॉक्टर, मन की चर्चा तुम करो ही मत ! जो घृणा को बरदाश्त नहीं कर सकते, सुख उन्हीं को घृणा करता है ! मैंने तुम्हारे आगे इसीलिए हार मान ली है कि तुम घृणा का बोझ ढो सको। खैर। बैठो। मैं नहा लूँ।

मीरा के उठ खड़े होते ही विमलाक्ष ने उसका एक हाथ पकड़ लिया। कहा—सच-सच बताओ, जो दुनिया में हिरण होकर नहीं पैदा हो सका, वह अभागा क्या सदा तुम्हारी लांछना ही ढोता रहेगा ?

भँवें सिकोड़कर मीरा वोली—किसकी बात कह रहे हो ?

विमलाक्ष ने तुरत अपने को सँभाल लिया। कहा—तपा-तपाकर मुझे इस्पात क्यों बना रही हो तुम ? किस काम में मुझे लगाओगी आखिर ?

हिरण का नाम आते ही मीरा थम गई थी। अब वह हँसी। बोली—किस काम में ? तुम्हारी बीवी से पूछ आऊँगी कि तुम काबिल किस काम के हो !

चाय के प्याले से आखिरी घूँट लेकर मीरा बाहर निकल गई। स्नान-भोजन करके आधे ही घण्टे के अन्दर वह लौट आई। तौलिये से सर को अच्छी तरह पोंछा नहीं था। बालों की नोक से पानी की बूँदें चू रही थीं। पास जाकर कहा—अपनी गाड़ी से मुझे दफ्तर पहुँचा दो तो क्या किराया लोगे ?

मुँह फेरकर विमलाक्ष बोला—अपनी इच्छा से हाथ उठाकर जो भी दे दोगी तुम, वही अपना इनाम होगा।

—तो फिर बैठो मोटर पर। मैं अभी आयी।

साढ़े दस बज रहे थे। विमलाक्ष बाहर चला गया।

दो-एक मिनट बाद दरवाजे के पास आकर ठाकुर ने पूछा—शाम—को भोजन क्या बनेगा दीदीजी ?

मीरा ने कहा—जो तुम्हारे दिमाग में आए, वही पका लेना।

हाथ से हाथ को मलते हुए ठाकुर ने कहा—हमें इस महीने की तनखाह भी अभी तक नही मिली है।

कपड़ा लपेटती हुई मीरा थमककर खड़ी हो गई। ठीक तो। कुछ हो चाहे न हो, अपने पीछे एक गिरस्ती तो है। उसे याद ही नही रहा था कि कठोर वास्तविकता का उस पर दावा है। यहाँ वह अकेली है, निरी अकेली और अकेले के लिए ही यह गिरस्ती। हुस्ना ने खत भेजा था। लेकिन कोई ठिकाना नहीं कि वे लौटेंगे कब तक। इसी तरह चल जाएगा शायद !

वेनिटी बैग से चालीस-एक रुपये निकालकर उसने ठाकुर के हाथ पर रख दिया। कहा—दाई को भी चुका देना।

ठाकुर ने और जरूरत बताई—राशन लाना है दीदीजी।

—ओ, राशन ! दस रुपये और रख लो !—आईने के सामने खड़ी होकर जल्दी-जल्दी उसने सिंगार का काम खत्म किया।

ठाकुर रुपये लेकर चला गया। किसी तरह से ऊँची एडी के जूते को पाँवों में डालकर मीरा बाहर आई। कलाई में घड़ी देखकर विमलाक्ष ने कहा—दस बजकर सत्ताईस !

—दीदीजी !—ठाकुर ने पीछे से फिर कहा—लकड़ी-कोयला, कुछ भी नहीं बचा है।

मीरा ने मुँह घुमाकर देखा।—आह, चुप भी रहो ठाकुर !

—सच दीदीजी, ग्वाला रोज आ-आकर लौटता है। धोबी के रुपये···

वेनिटी बैग में नोट, रुपये-पैसे जो भी थे, सब निकालकर मीरा ने ठाकुर के चेहरे पर फेंक दिये और गाड़ी पर जा बैठी। विमलाक्ष ने गाड़ी को स्टार्ट किया। बड़ी खीज के साथ मीरा बोली—यह अभागी हुस्ना मुझे इस जाल में जकड़कर चली गई। जाने कब लौटेगी ?

गाड़ी चल पड़ी। विमलाक्ष ने पूछा—यह सब कुछ हुस्ना ही करती थी न ?

—और नहीं तो क्या ? पक्की गिरस्तिन है, पक्की। हमें इन बातों की कभी खबर भी नहीं रहती थी। वह न रहे तो सब अँधेरा।

विमलाक्ष बोला—बेजा क्या है, घूमने गई है। लगाम है नहीं। मौज में है।

मीरा ने कहा—लगता है। तुम व्यंग करना चाहते हो ?

—व्यंग मैं क्यों करने लगा ? जो उसे जानते हैं, व्यंग वही करेंगे। जो लोभ लेकर वह कलकत्ते आई थी, उसकी खूराक जुट गई है !

—यानी ? तुम फिर हिरण की चर्चा लाना चाह रहे हो ?

विमलाक्ष ने कहा—मीरा, तुमने छः साल पहले बी० ए० पास किया है और मैं हूँ विलायत से पास करनेवाला डॉक्टर। हम और जो भी हों चाहे, बच्चा तो कम-से-कम नहीं हैं। लेकिन मैं तुम्हारे दिल को चोट पहुँचाना नहीं चाहता।

मीरा हँसी। बोली—विमल भैया, हिरण के साथ तुमने गिरस्ती नही की है, मैने की है। मैं उसे जानती हूँ। उसी को जानने में मेरी इतनी उम्र बीत गई। हुस्ना को जानती हूँ, एक जन्म पूरा और लगाऊँ तो भी हुस्ना को जानना पूरा न होगा।

—लेकिन इतना तो जानती हो, आग और घी पास-पास हैं?

—उपमा आपकी गलत हो जाएगी। तुम आग और घी देख रहे हो, मैं फूल और चंदन देखती हूँ। यह अपना-अपना देखना है, अपनी-अपनी नजर।

विमलाक्ष ने कहा—बाबूजी ने एक दिन अपने हाथों हम तीनों के जीवन का निर्माण किया था। हममें वह नहीं है।

—यह शायद तुम लोगों की अंदरूनी शर्म है।

—वही समझो।

विमलाक्ष एक भद्दा-सा व्यंग कर बैठा।—तो क्या यह समझूँ कि तुम तीनों में साझेदारी की व्यवस्था है?

मीरा ने पूछा—कैसा साझा?

—बारी-बारी का।

मीरा हँस उठी। बोली— कोशिश कर देखो न एक बार, यही लोभ दिखाकर अगर हिरण के मन को गला सको। मुसीबत तो यह है कि उस आदमी में लोभ नाम की चीज ही नहीं, असंयम की बात तो दूर रही। हुस्ना अगर उस पत्थर को तोड़ सके, तो मुझे खुशी ही होगी। तुम मर्द को तो पहचानते हो, साधु को पहचानते हो? लोभी को चीन्हते हो, लेकिन उसे जानते हो जिसे देखकर लोभ लजाता है?

मोटर एक मोड़ से घूमी। स्टीयरिंग घुमाकर विमलाक्ष ने कहा—हिरण के बारे में इतनी बड़ी बात कहते हिचक नहीं होती तुम्हें?

—मैंने जीवन निछावर करके जानकारी की यह पूँजी पाई है। लो, रोको गाड़ी। आ गया दफ्तर!

—तो शाम को आ रही हो न?

गाड़ी से उतरकर मीरा ने कहा—विमलाक्ष के बदले शाम कोई

कमलाक्ष मिल जाए, तो कौन तो आता है तुम्हारे यहाँ। जाओ—भागो।

होंठों पर हँसी की रेखा लिए कुछ क्षण तक विमलाक्ष मीरा की नजाकत-भरी चाल देखता रहा—अपलक। उसके बाद निःश्वास छोड़-कर गाड़ी को स्टार्ट किया। स्टीयरिंग सँभाला।

गाँव का कोई भी आदमी उँगुली के इशारे पर हिरण को बता देता। कहता, यही है अपने राजा का जमाई। जायदाद सब बिटिया को मिलेगी और जमाई उसका दायाँ हाथ रहेगा। गर्ज कि जमींदारी ही दहेज होगी। इस बात पर मीरा को सपनों का जाल बुनने की जरूरत नहीं थी। क्योंकि यह तो स्वतःसिद्ध सत्य था। सो न तो अन्दर-ही-अन्दर किसी प्रेम-कहानी की सृष्टि हुई, न सामाजिक चेतना ही किसी दिन गाढ़ी हो पाई, क्योंकि इस सत्य का अंजाम सबको मालूम था। उनके जीवन को भी मिलाना था। जवानी में एक-दूसरे के मन को जानने-चीन्हने का सवाल न आया, न मन के लेने-देने की बात आई। कहीं मन का मेल न होता तो क्या होता? बंद हो जाता विवाह? हर्गिज नहीं।

हकीकत में तोड़ा उसे मीरा ने ही। उसकी कल्पना ब्याह की सीमा पारकर उड़ाने भरने लगी थी। उसे पता था कि ऐश्वर्य आत्म-प्रकाश का एक साधन है। खाली हाथों प्रणाम किया जा सकता है, पूजा नहीं की जा सकती। पूजा के लिए चाहिए अर्घ्य, नैवेद्य, आनुशंगिक उपचार। बड़प्पन के लिए सुमित्रा ने संपद चाहा था, लेकिन मीरा ने पारिपार्श्विक को बड़ा करने के लिए ऐश्वर्य की कामना की थी। और यहीं वह बुरी तरह नाकामयाब हुई। इससे उसके भावी जीवन की महत् योजना ही ठप नहीं हुई, बल्कि उसके अपने अस्तित्व की जड़ तक सूख गई। उसे खड़े रहने की भी जगह नहीं रही। उसने विलास नहीं चाहा, वैभव चाहा था। इन चीजों के सिवाए जीवन में जो कुछ रह जाता है, उसकी कीमत कम ही होती है।

आत्म-प्रकाश का एक दूसरा जरिया था हिरण,—लेकिन वैभव को बाद देकर उसका अस्तित्व ही नहीं। सिंहासन को छोड़ दिया जाए तो राजा का दाम मामूली हो जाता है, प्रतिमा की वेदी हटा दी जाए तो वह महज़ पुतला रह जाता है। हाजीपुर के महल में रहनेवाले जीवेन्द्र-नारारण और बेलघटिया के गंदे मुहल्ले में बेल्लिक के घर रहनेवाले जीवेन्द्रनारायण—एक आदमी न थे। मीरा के लिए यही वहुत बड़ा सबक था, यही उसके पथ-निर्देश का मानों साफ़ इशारा था उँगली का। ऐश्वर्य की कृपा से एक छोटा-सा जीवन विराट् बन सकता है, लेकिन कोई विराट् संभावना किसी संकरे परिवेश में जा सिमटे, तो घुट-घुट-कर दम तोड़ देती है। यह सवाल उठ सकता है कि होना था सो हुआ, फिर नये सिरे से निर्माण में लगो। अपने चरित्रबल का परिचय दो, अपनी आत्मशक्ति को जगाओ। सिर पर हाथ धरकर रोना क्या, हर दरवाजे पर हाथ फैलाते क्या चलना ? ये बातें कही जा सकती है।

दफ्तर की मेज पर बैठी-बैठी मीरा हँसी। यह मानों एक बैंक के फ़ेल हो जाने पर नये सिरे से दूसरा खोलनेका मनसूबा हो। दुनियादारी यही कहती है, पूँजी-पगहा, घर-बार सब गया, जाने दो, फिर से कमाओ-कोड़ो, फिर से बनाओ। कभी हिटलर ने लंदन शहर को चकनाचूर कर दिया था, लेकिन वहाँ की मिट्टी से लोगों को नहीं उखाड़ सका था। और लोगों की अटूट लगन से पुराने मकान नये बन गए। लेकिन यहाॅ की बात ही और है। यहाँ दौलत का नाश नहीं हुआ है, यहाँ ध्वंस हुआ है अंतर का ऐश्वर्य। शरीर ज्यों-का-त्यों है, जीवन स्वाहा हो गया है। प्राणियों की मौत नहीं हुई, प्राण मर गए हैं। पिटा मनुष्य नही है, मनुष्य का प्रेम मार खा गया है। मीरा हँसी। आज उसके कंठ से मानों हुस्न-बानू की वाणी प्रविध्वनित हो रही है। वह आज रही होती तो ठीक यही कहती कि ऐश्वर्यहीन जीवन का सबसे बड़ा भार संपत्ति की ढेरी है। मीरा किसी तरकीब से आज दौलत चाहे बटोर ले, मगर हाजीपुर का वह ऐश्वर्य नहीं लौटने का। आज वह स्वामी-स्त्री के समान हिरण के

साथ रहने लगे, तो यह कैसा दीखेगा ? सुख की गिरस्ती ? प्रेम का शांति-निकेतन ? आनंद का मधु-भंडार ? होंठ उलटकर वह फिर हँसी। आखिर वह प्रेम-बावरी तो है नही। घड़ी-भर के सुख से उन्मत्त होनेवाली कपोती की सुख-आकांक्षा उसे नही ! हिरण महज उसकी यौन-चेतना का सहारा नही ; आम औरतों की तरह उसे केन्द्र बनाकर उसने शिशु-पालन की परिकल्पना तो की नहीं। नून-तेल-लकड़ी की गिरस्ती, आहार-निद्रा-मैथुन की दुनियादारी—जहाँ अभावों में तुच्छ संतोष रहता है ; गरीबी मे क्षुद्र तृप्ति रहती है—रोग-शोक-दुःख में दीन स्त्री की फीकी हँसी, अधनंगे दुबले बच्चों की जमात, आनेवाले बुढ़ापे के डर से मामूली संचय और उसके बाद एक दिन थके-हारे जीवन का आखिरी देना चुका-कर चुपचाप चल देना...हिरण महज़ उसी डरावने अपचय का अवलंबन तो नहीं है। इससे तो मृत्यु भली है, अपमृत्यु भली है, इससे कहीं बेहतर है एकांकी जीवन का घिनौना अंजाम ! लेकिन फिर भी हिरण को बुला-कर यह नहीं कहा जा सकता कि हमारे सम्मिलित जीवन की सारी उच्चा-भिलाषाएँ अनास्वादित ही रह जाएँ, हमारे छुटपन के सँजोए सारे सपने काफ़ूर हो जाएँ, धुल जाएं कल्पनाओं की सारी तस्वीरें—तुम आओ, तुम्हारे साथ संकीर्ण की अँधी सुरंग में हम खो जाएँ ! इससे तो हिरण की मौत हो सो भली और उसी के साथ हो अपना सहमरण !

कागजात समेटकर मीरा उठ खड़ी हुई। पाँच बजकर दस हो गए। बहुत-से लोग जा भी चुके। अपना वेनिटी बैग सँभाला, दर्राज़ में कुँजी लगाई। और निकल पड़ी। जो सवाल उसके मन में उठे, उनका कोई हल तो होना ही चाहिए। हिरण को लेकर उसके बारे में जो बातें उठती हैं, सचमुच ही उनका निबटारा हुए विना नही चलने का। सूने मैदान में जलाशय के किनारे खड़ी होकर अपनी शक्ल की परछाई देखे बिना अपने से बातचीत नहीं हो सकती। वह दफ्तर से निकलकर सड़क पर आई।

अचानक पास ही मोटर का भोंपू बजा। चौंककर देखा, गाड़ी पर बैठा विमलाक्ष उसका इंतजार कर रहा है। मीरा सिहर उठी। हँस पड़ी

उसके साथ। मुस्कराकर बोली—कोई कुछ नहीं, मेरी नियति तुम्हीं हो !

बाएँ हाथ से गाड़ी का दरवाजा खोलते हुए विमलाक्ष ने कहा—क्या कहा ?

मीरा उसके पास बैठ गई। बोली—यह कह रही थी कि अपना सर्वनाश तुम्ही हो ! सोच रहे होगे, कहीं बेहाथ न हो जाऊँ मै। मगर डर क्या है, जिसे बाघ दबोच बैठता है, उसके पास और कोई जानवर नहीं फटकता !

गाड़ी चलाते हुए विमलाक्ष ने पूछा—तुमने कैसे जाना कि मेरे मन मे डर हो रहा था ?

—हर शिकारी जानवर डरपोक होता है—शिकार निकल जाने का डर !

विमलाक्ष ने कहा—लेकिन मुझे खरी-खोटी सुनाने के पहले यह भी सोच देखो कि मेरे यहाँ तक पहुँच सकने तक का किराया तुम्हारे पल्ले नही है !

मीरा ने कहा—यह कैसे जाना तुमने ?

अपना वेनिटी बैग टटोल देखो। याद नहीं है, आते वक्त सारा कुछ टाकुर को दे आई थी ?

मीरा जरा देर हत् सी रही। फिर कहा—इतना विचार है तुममें ? इतने क्या भले हो तुम ?

विमलाक्ष अब की स्वभाव-विरोधी बात बोल बैठा—मीरा, मैं यह बात भूल नहीं सकता कि मेरी विधवा माँ ने मुझे तुम्हारे पिताजी के अन्न से पाला-पोसा था। आज मैं अपनी गाड़ी पर चलता हूँ मगर इसकी पूँजी तुम्ही लोगों की है !

मीरा ने कहा—मुझे मोटर चलाना सिखा दे सकते हो ?

—क्यों नहीं !

—मोटर खरीद दे सकते हो ?

स्टीयरिंग थामकर विमलाक्ष ने उसकी तरफ गौर किया। कहा—

अगर मैं यह जवाब दूँ कि वैसा कर सकना मैं अपना सौभाग्य समझूँगा ?

—आ:, फिर वही बात,—मीरा ने डाँट बताई,—तुम भले हो, मैं यह नहीं सुनना चाहती। तुम सामर्थ्यशाली हो, इतना ही जानने से मेरा काम चल जाएगा !

—सामर्थ्यशाली लोग भले हो सकते है, क्या इस पर तुम यकीन नहीं करती ?

मीरा ने कहा—करती हूँ, मगर यह चर्चा तुम नही करो तो क्या !

विमलाक्ष चुप रह गया। बड़ी देर बाद रुँधा निःश्वास छोड़कर बोला—मै अगर गाड़ी लेकर आ नहीं गया होता, तो तुम्हें मेरे यहाँ तक पैदल ही जाना पड़ता, क्यों ?

हँसकर मीरा बोली—तो सुन लो, इसके लिए मैं तुम्हारी असीम कृतज्ञ हूँ। मगर यह तुमसे किसने कहा कि मैं तुम्हारे ही पास जा रही थी ?

—फिर जा कहाँ रही थी ?

—कमलाक्ष के यहाँ, फिर ?

—कमलाक्ष कौन ?

—यह विमलाक्ष और विशालाक्ष की जाति का है !—मीरा खूब हँस उठी। बोली—तुम्हें ठीक-ठीक पहचान लेने पर कलकत्ता को पहचाना जा सकता है। तुम बहुतेरे एक-से हो, नाम का ही जो फर्क है।

विमलाक्ष को जरा चोट लगी। कहा—तुम्हारी निगाह में सारे मर्द अगर हीन ही हैं, तो हिरण कैसे अच्छा हो सकता है ?

—फिर हिरण की बात !—शांत कंठ से मीरा बोली—हिरण मर्द से बहुत बड़ा जो है ! बार-बार उसका जिक्र ही क्यों ले आते हो ?

दवाखाने के सामने गाड़ी आ पहुँची। पास ही गली में पोर्टिको। विमलाक्ष ने कहा—गाड़ी यहीं छोड़ दूँ। तुम ऊपर के कमरे में चलो, मैं अभी आया।

मीरा बोली—यह कमरे में क्यों फिर ? कमरे पर निगाह पड़ते ही उसकी चीजों को तोड़-फोड़ देने की इच्छा होती है मेरी। न, कमरे में

नहीं, बाहर चलो, मैदान में, गंगा किनारे—जहाँ चाहे। कमरे में नहीं।

—फिर तो गाड़ी ही में जरा देर रुको, मै आता हूँ।

—न, गाड़ी में नहीं, चलो, कमरे में ही चलें!—वह गाड़ी से उतर पड़ी और दवाखाने के बगल से होकर सीढ़ियों से उपर चढ़ गई।

ज्यादा काम विमलाक्ष पहले ही निबटा चुका था। दो-एक रोगी इंत-जार में बैठे थे। कमरे में आते ही उसने मरीजों की नब्ज देखनी शुरू कर दी। एक के बाद दूसरा। चारेक आदमी। उसका सहकारी, डॉक्टरी का एक छात्र, सामने आ खड़ा हुआ। विमलाक्ष ने उसे नुसखे लिखा दिए। मरीजों को खान-पान और परहेज बताकर उसने दो-तीन आल्मारियाँ खोली, फिर मेज की दराज खोली। बहुत-कुछ निकाला, बहुत-कुछ रखा। फिर जल्दी-जल्दी दवाखाने से निकलकर ऊपर चला गया।

ऊपर के कमरे का परदा हटाते ही विमलाक्ष काठ का मारा-सा रह गया। इतनी ही देर में मीरा का नहाना-धोना, साज-सिंगार, सब-कुछ हो चुका। विमलाक्ष की भेंट दी हुई जार्जेटवाली कीमती साड़ी पहनी थी उसने, पहली बार; कंधे तक खुली भुजा—नीले रंग की ब्लाउज़, पीठ की तरफ बादामी रंग का छेद, जिसमें से पीठ का थोड़ा-सा लावण्य झाँक रहा था। यही ब्लाउज़ पहने ग्रैंड होटल की कयामत ढानेवाली नारियाँ कालीन से ढँकी सीढ़ियों पर छंदों में कदम बढ़ाती हुई ऊपर को जाया करती हैं। गुलाब की पंखुरियों-से होंठों में पुरुषों के कलेजे से लहू लेकर लगाया गया है। दोनों आँखों में वन-हिरणी का माया-काजल, शंख-जैसे कंठ में मूँगे की माला। फिर जहाँ तक भी नीचे उतरते चले जाओ, पैरों तक मदन और वसंत का माया-कानन। सब-कुछ को मिलाकर पुष्पस्तवकावनम्रा! साज-शृंगार की यह छटा विमलाक्ष की निगाहों में और कभी न पड़ी थी।

—अभी तो तुमने कहा, यहीं कमरे में रहोगी?

हँसकर मीरा बोली—बारूद की इस ढेरी को कमरे में आखिर रखोगे किस भरोसे? बेहतर है कि यह कहीं बाहर ही भड़के! चलो।

—कहाँ चलोगी, मीरा ?

—उसी नरककुड मे चलो, जहाँ एक दिन ले गये थे तुम। चलो न ?

विमलाक्ष ने कहा—बीच-बीच में तुममें ऐसी आत्मनाशी प्रवृत्ति की झलक क्यों मिलती है ?

मीरा मुड़कर खड़ी हो गई। कहा—विमल भैया, हमारे-तुम्हारे बीच यह आवा-जाई, यह देखना-सुनना, क्या है आखिर ? अगर सचमुच ही मुझमें वैसी कोई मनोवृत्ति है, तो क्या तुम उसका लालन-पालन नहीं कर रहे हो ? तुमने मेरे चारों ओर व्यजन पसारकर रख दिये है और क्या यह चाहते हो कि उनके बीच बैठकर मैं उपवास का व्रत लूँ ?

चर्चा कही टेढ़ा मोड़ न ले, यह सोचकर विमलाक्ष ने कहा—आज तुम्हारा जी अच्छा नहीं है, चलो, निकलें।

मीरा बोली—पहले मेरी बात का जवाब दो ?

—तुम्हारे मन की थाह मुझे नहीं मिली है मीरा !

मीरा ने फिर पूछा—साफ-साफ कहो, तुम चाहते क्या हो ?

विमलाक्ष बोला—मुझे देवता का सौभाग्य नहीं है। रहता तो बताता। मैं नैवेद्य चाहता हूँ। मगर देवता मैं नही हूँ।

—और मैं अगर यह कहूँ कि तुम आदमी भी नहीं हो ?

—शायद यही हो कि मैं पशु हूँ। आदमी होता तो कहीं अचानक प्यार की माँग कर बैठता !

—लेकिन यह तो नही बताया कि पशु क्या चाहते हैं ?

—मीरा !—विमलाक्ष ने अधीर होकर उसे चेताया।

मीरा खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली—हाँ-हाँ, विमलाक्ष भैया, वही तुम हो ! तेईस साल की उमर की लिखी तुम्हारी वे चिट्ठियाँ ! तुम उसी भद्दी भाषा के राजा हो ! तुमने डिग्री हासिल की, विलायत से हो आए, शादी की, भलों के समाज में जगह बनाई—यानी बहुत पालिश लग चुकी ! फिर भी तुम वही हो ! तुम्हारे नकाब के नीचे से वही लोभी झाँक

रहा है। जरा भी फर्क नही आया है तुममें।

एक कुर्सी खींचकर विमलाक्ष बैठ गया। बोला—लो बैठ गया मैं। अब कहीं भी नही जाऊँगा।

मीरा ने कहा—क्यों ?

—आखिर तुम्हारी बातों के कोड़े कितना सहूँ ?

मीरा फिर हँस उठी। बोली—अच्छा विमल बाबू, तुम पर मेरे पिताजी का कितना कर्ज है ? अंदाज से बताओ तो जरा।

विमलाक्ष ने कहा—सच-सच बताऊँ या झूठ ?

—जैसी तुम्हारी आदत है, वैसी ही कहो।

विमलाक्ष बोला—कोई लाख रुपया !

मीरा ने कहा—लाख रुपया ! अच्छा ! तो कुछ कर्ज आज चुकाओगे ?

विमलाक्ष उठ खड़ा हुआ। कहा—यह अपनी खुशकिस्मती होगी !

—आः, दुम मत हिलाओ ! ठीक-ठीक कहो, मेरे लिए आज कितना खर्च कर सकते हो ?

उत्साह से विमलाक्ष ने कहा—जितना तुम कहो। एक रात में तुम्हारे साथ जितना खर्च किया जा सकता हो। जरूरत होगी तो दवाखाना भी बेच दूँगा !

हँसती हुई मीरा ने कहा—तुम्हें जुआ खेलना आता है ?

—विलायत में खेला करता था।

—मुझे बाजी पर रख सकोग ?

विमलाक्ष बोला—तुम्हें ? किसके साथ ?

मीरा ने कहा—किसी दुःशासन के !

विमलाक्ष ने कहा—छि। चलो, चलें। आज सचमुच ही तुम्हारा जी अच्छा नहीं है !

मुँह फेरकर मीरा खिड़की के मामने जा खड़ी हुई। फिर कैसी तो एक अजीव-सी आवाज मे वोली—बुरा नही होता ! कम-से-कम द्रौपदी के मित्र को हृदय से पुकार पाती रो-रोकर !

विमलाक्ष ने कान लगाकर उसकी बात सुनी। उस आवाज में केवल आवेग नहीं था, करुणा का भी आभास था। फिर मानों तीर खाती हुई चिड़िया जैसी तड़पन। विमलाक्ष अवश-सा हो उठा। मानो मीरा बड़ी दूर रहती है, उसका मन आज भी अज्ञात है, उसे जानने की कोशिश करना अंधेरे में टटोलने के सिवाय और कुछ नहीं।

—मीरा ?

मीरा मुँह घुमाकर देखने लगी।

—चलो, बाहर चलें। अरे, तुम्हारी आँखों में यह आँसू क्यों ?

मीरा हँसी। हँसकर कहा—तुम्हारा वह सुवासित रूमाल कहाँ है जिससे तुमने मेरा पाँव पोंछा था ?

ऊपर की जेब से रूमाल निकालकर विमलाक्ष ने कहा—तब से वह रूमाल सदा मेरे साथ ही रहता है !

हँसकर मीरा बोली—आँखों का काजल और चेहरे का पाउडर बचाकर मेरे आँसू पोंछ दो तो ?

—मुझसे न होगा !—विमलाक्ष ने रूमाल हटा लिया।

—अच्छा, तुम्हारा क्या खयाल है विमल भैया, मेरी यह वेश-भूषा देखकर हिरण को रुलाई आती ?

खीझकर विमलाक्ष बोला—जाने क्या कहते क्या कह बैठूँ···आज का जैसा दिन ही चौपट हो जाएगा !

खिलखिलाकर हँसती हुई मीरा कमरे से निकलकर सीढ़ियों पर पहुँच गई। वहीं से आवाज दी—चलो डॉक्टर !

औरतों के मन को देवता भी नहीं जानते, विमलाक्ष किस खेत की मूली है ! यही पुरुषों पर आफ़त ढाती हैं, क्योंकि इन पर कभी भरोसा नहीं किया जा सकता। ये तुनकमिज़ाजी, ढुलमुल यकीन होती हैं, एतबार करके इनके साथ तैरा नहीं जा सकता। ये हँसती हुई आप भी डूबती हैं, औरों को भी ले डूबती हैं। ये अँधेरे में रहनेवाली निशाचर चिड़ियाँ नहीं, ये अपनी प्राण-शक्ति से आस-पास को निनादित किए देती हैं। इनके

खयालों के मुताबिक इनके साथ-साथ डोलते फिरने में हर कदम पर सामाजिक असुविधा है।

मन में दुर्भावनाएँ लिए विमलाक्ष कमरे से बाहर निकला। मीरा अपना वेनिटी बैग कमरे में भूल गई थी। छट्ठू ने ले-जाकर विमलाक्ष को दिया। तब तक मीरा नीचे पहुँचकर गाडी में बैठ चुकी थी।

दवाखाने में घुसकर विमलाक्ष ने मैनेजर से पूछा—फटिक बाबू, कल की खरीदारी के लिए कितने रुपये मौजूद हैं?

फटिक बाबू ने पूछा—आपको रुपये चाहिएँ? कितने रुपये?

—जितने दे सकें, दीजिए। कल चेक दे दूँगा।

नोटों का बंडल विमलाक्ष को देकर उन्होने वहीं पर उससे सही बनवा ली। रुपयों को जेब के हवाले करके विमलाक्ष सीधे गाड़ी पर जा बैठा। गाड़ी का रंग काला था। रास्ते की तेज रोशनी में कभी-कभी झकमका उठती। विमलाक्ष का कलेजा चाहे काँपता हो, स्टीयरिंग-वाला हाथ लेकिन नहीं हिलता।

चाँदनी से धुली उस साँझ का इतिहास अपना पन्ना उलटने लगा। लेकिन भूल से भी यह नहीं कहा जा सकता कि मीरा के यौवन के आँगन में आज वसंतोत्सव की धूम मची है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उसने पतवार छोड़कर नाव को बह जाने दिया है। मन उसका ठीक ही जाग रहा है, इसी से सुख में भी उसे वेदना होती है, खयालों में भी कचोट! दु:ख इतना ही है कि उसकी ठोस तंदुरुस्ती किसी भी तरह टूटना नहीं चाहती। इस देह को मनमाना सताने में सुख है, क्योंकि उससे शरीर, मन को सुलाया जा सकता है। विमलाक्ष चला तो रहा था मोटर, मगर मीरा उसे बेहद तंग कर रही थी घुमा-घुमाकर।

अँधेरे से रोशनी में, फिर रोशनी से अँधेरे में—यही था उनके चलने का घेरा। गाड़ी रोककर किसी होटल में आध घंटा, तो कहीं डेढ़ घंटा। दोनों ही मानों जिज्ञासा हों, एक बार अंधेरे के अतल में खो जाते, फिर ऊपर निकल आते जोत और कलख में। उनका आना-जाना बहुत हद

तक अगोचर ही था।

रात के बारह बज गए। विमलाक्ष ने पूछा—मीरा, लौटना नहीं है ?

—नहीं !

—अब कहाँ जाना है ?

खुली आँखों ताकती हुई हलका हँसकर मीरा ने कहा—हुस्ना होती तो कहती जहन्नुम में ! अच्छा, अपनी ऐटम बम की शीशी दो तो जरा। पानी मँगाओ थोडा-सा।

बॉय से विमलाक्ष ने पानी मँगवाया। एक गोली निकालकर मीरा पानी के सहारे खा गई ! हँसकर कहा—किसी रिफुजी लड़की के लिए इससे बढकर सांत्वना की चीज दूसरी है ही नहीं !

सामने खाने की बेशुमार चीजें फैली थीं। लेकिन कोई-सी चीज़ मुँह में डालकर मीरा ने कहा—चलो, और कहीं चलें।

फिर दोनों मोटर में आ बैठे ! बीच-बीच में मीरा ऊँघ पडती थी, लेकिन मानों फुंकार से बारंवार अपने को झुलसा रही थी वह। आज सोने से काम नहीं चलने का। आज सावन के झूले की पूनो है। अभी मधुमती के वक्षस्थल पर चाँदनी की बाढ आई होगी। इस समय महल के सभी की आँखों में धूल झोंककर वह हुस्ना और हिरण के साथ पोखरे में कूद गई होती ! सारा हाजीपुर सो रहा होता और ये तीनों पानी के ऊपर-ऊपर बहते होते—चित्त होकर। भाल पर ज्योत्स्ना का तिलक और छाती पर सोया पड़ा होता निंद्राया आकाश ! उस पार चाँदनी में वेणुवन काँपता होता और इस पार पोखरे की तरंग-मालाओं पर तैरती होती मंदिर की शयन-आरती की घंटा-ध्वनि। काले पानी में दोनों के बिखरे केश खो जाते !

—मीरा ?

मीरा सो गई थी। अचानक चौंक पड़ी। विमलाक्ष ने पूछा—यहाँ उतरने को कह रही थी ?

—हाँ, उतरूँगी।—और अपने को जैसे पीटकर वह उतर पड़ी।

नये होटल में जाकर उन्होंने नये सिरे से फ़रमाइश की।

मुखरता उनकी शांत हो आई थी। अवसाद घिरता आ रहा था। मगर अवसाद इतनी जल्दी क्यों? अभी तो सारा ही जीवन पड़ा है। जवानी के अंत की जरूरी थकावट तो अभी बाकी ही है, अभी ही नींद आने से कैसे चल सकता है? कोई जैसे रोता है? पास से कोई जैसे फफक उठता हो? मीरा ने एक बार इस ओर, फिर पीछे की तरफ देखा! न, कोई तो नहीं। यह उसी के गले की टूटी-सी आवाज है, एक तरह की आवाज है नाक की। बाईं तरफ की दीवार पर एक बड़ा-सा आईना टँगा था। उसमें मीरा की परछाईं पड़ी थी। मगर यह शक्ल कैसी है उसकी? आईने में जो परछाई थी, उसमें वह लड़की शिव के मंदिर की सीढ़ी पर खड़ी थी, अभी-अभी नहाई, बिखरे भीगे केश, कपाल पर सिंदूर का टीका, पहनावे में लालकोर की साड़ी, जो अक्षय तृतीया के दिन कुमारी व्रत रखनेवाली लड़कियाँ पहनती है; हाथ में नैवेद की थाली, निर्मल मुखड़े पर नये सबेरे जैसी खिली हँसी! वह आखिर कौन-सी मीरा है? कौन-सी मीरा?

आईने से आँखें हटाकर मीरा विमलाक्ष की ओर तक उठी। जरा देर ताकती ही रही। अचानक कैसी तो एक उत्तेजना जाग उठी। एक चम्मच में प्लेट से कस्टर्ड उठाकर उसने बयतमीज की तरह विमलाक्ष के चेहरे पर डाल दिया। विमलाक्ष चौंक उठा।

—सोने लगे? लौटना नहीं है?

विमलाक्ष ठीक स्वर्गीय हँसी हँसा। रस से भरी आँखें फैलाकर कहा—ये छींटे तुम्हारे स्नेह के ही दान है! चलो, चलें!

होटल का बिल चुकाकर दोनों निकल पड़े। अबकी दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़कर निकले। अकेले चल सकने का अब भरोसा न था। लोगों की निगाह में मखौल के लायक बनने का डर था। दोनों गाड़ी में बैठ गए।

दूरी ज्यादा न थी। किंतु आज तालतल्ला मुहल्ले मे जाने से चले

कैसे ? विमलाक्ष ने गाड़ी को धरमतल्ले की तरफ मोड़ा। गाड़ी जब दवाखाने के पास पोर्टिको में रुकी तो मीरा पिछली सीट पर सो रही थी।

पुरुष पर सामाजिक जिम्मेदारी है, इसीलिए वह कठोर होता है। उसका हाथ या पाँव, कुछ भी काँपे तो काम नही चल सकता। विमलाक्ष मीरा को गाड़ी से उठा लाया। सीढ़ियों से ऊपर के कमरे में ले गया। ताला खोला और उसे अंदर बिछावन पर सुलाया। मीरा क्या तो बुदबुदा रही थी—लगा, अंग्रेजी में कह रही हो : 'Oh, the longing—longing for one so intolerably dear !'

गद्गद होकर विमलाक्ष ने पूछा—यह मुझे कह रही हो मीरा ?

—तुम्हें ?—उठने की कोशिश करती हुई वह बोली—इतनी कीमती बात तुम्हें कहूँगी ? तुम तो मोटर ड्राइवर हो ! जाओ, छट्टू वाली उस बेंच पर सो रहो। सुबह घंटी बजाकर मुझे जगा देना।

बत्ती जलाने का स्विच अँधेरे में न पाकर शोर के डर से विमलाक्ष कमरे से बाहर निकल आया।...

चौदह

उस रोज झड़ी-बदरी की रात में जब हिरण को लेकर भाग रही थी, तो हुस्ना ने कहा था—देख लेना, कल राँची में दंगा निश्चित है...

हिरण ने कहा था, छोटी चाची होतीं तो तुरत यही कहतीं कि तू पाकिस्तानी जासूस है, इधर आकर दंगे फैलाया करती है—दुल्हे के घर की बूआ और दुलहिन के घर की फुआ !

हँसकर हुस्ना ने कहा था—कहीं थाने तक बात पहुँच जाती कि कोई हिंदू नौजवान एक मुसलमान युवती के साथ हिंदू-होटल में ठहर

है, तब शायद दंगे की नौबत न आती, क्यों ?

—पुलिस की मदद से हम पहले ही निकल भागते।

—मुसलमान की लड़की को भगाने में पुलिस मदद देती ?

हिरण बोला—क्यों, हम सब कुछ सही-सही बता देते।

हुस्ना बोली—सही-सही कह ही क्या सकते, मै तुम्हारे साथ भागती फिरती हूँ, यही तो ? आखिर होटल को घेर किन लोगों ने लिया था ? धमकी किन लोगो ने दी थी कि ऐसी आजादी हम बरदाश्त नहीं कर सकते ? सच तो यह है कि गुंडों का पेशा ही ठहरा दंगा करना। तुम लोग जितना ही डरा करोगे, उनका हौसला उतना ही बढा करेगा। अगर ठाकुरप्रसाद के उकसाए उन लोगों ने धावा बोल दिया होता तो क्या गत होती तुम्हारी ? कहीं सौ-एक गुंडे मुझे घसीटकर ले जाते तो अपनी अस्मत मैं बचा पाती ?

हिरण के होंठों पर कौतुक की दबी हँसी थिरक गई। कोई जवाब न पाकर हुस्ना जल-भुन उठी। बोली—तेरी चुप्पी का मतलब मैं समझती हूँ। यानी तेरा मतलब यह है कि मुस्लिम समाज में सतीत्व के लिए कोई सिर नहीं खपाता ?

—कबूल न भी किया जाए तो बात अपनी जगह पर है। मुस्लिम समाज में सतीत्व की चेतना तो है, लेकिन 'असतीत्व' की वहाँ वैसी समस्या नहीं। तेरे समाज की ऐसी औरतों को घूरे पर जगह मिलती है, हमारे समाज की असतियाँ नये सिरे से घर बसाती हैं। तेरे यहाँ असतियाँ समाज से वंचित होती है, कुछ तो जाहरा अस्मत का रोजगार करती हैं, या साजिश के शिकंजे में पडकर छिपे तौर पर पेशा करती है।

हिरण ने पूछा—मुसलनान समाज में पतिता नही है ?

हुस्ना बोली—है क्यों नही, बहुतेरी है, जैसी कि दूसरे समाजों में पाई जाती हैं। लेकिन वे तुम्हारे समाज की तरह एक समस्या नही हैं। हमारी असतियाँ आफ़त की शिकर होकर कभी हिदू नहीं होती, तुम्हारे यहाँ की तो मुसलमान बन जाती है। तुमने कभी यह सुना है कि

मुसलमानों ने कभी किसी असती के माथे कलंक का टीका लगाकर उसे अपने समाज से निकाल बाहर किया है ? यह भी सुना है कि बाप को अपने ब्याह के भार से बचाने के लिए किसी लड़की ने गले में फंदा लगाकर जान दी है या आग मे जल मरी या डूब मरी है ? कभी ऐसा भी सुनने में आया है कि कोई बदचलन मुस्लिम औरत रेल के नीचे कट मरी है ? तेरे यहाँ के मर्द एक औरत की किस्मत मे आग लगाकर दूसरी को अपने घर ला बिठाते है। अजाम यह होता है कि बेचारी पहली स्त्री का जीवन मिट्टी हो जाता है। मगर मुस्लिम समाज मे ऐसी पहली औरत की जिंदगी बरबाद नहीं होती। वह अपने लिए दूसरा पुरुष चुन लेती है, नई गिरस्ती बसाती है। खुद मैंने दो बार तो शादी की, एक बार किया निकाह, फिर भी मिट्टी न हुई। हाजीपुर के आस-पास अभी भी मधु-लोभी ऐसे दो-चार मौलवी है, जो मुझे अपनाकर अपनी किस्मत को सराहें। मौलाने भी ऐसे बहुत है !

हिरण सुनकर हँस उठा था।

राँची से तो वे भाग निकले थे, लेकिन पुलिस के हाथों से इतनी आसानी से छुटकारा न पा सके। हिरण समझता था, हुस्ना जैसी लापर-वाह लड़की के साथ बाहर निकलना ही आफ़तों को न्यौता देना है। वह चलती लीक पर चलनेवाली लड़की ही नहीं, वह चलती है जीवन के मेले की राह पर। अपने को बिखेर देना, अपना बिस्तर करना वह जानती है। उसके डर से किसी स्टेशन के विश्रामालय में हिरण को फिर हिंदू बनना पड़ा है। और यह चीज पुलिस की निगाहों से बच नहीं सकती। लिहाज़ा हिरण की हैरानी की पूछिए मत ! उसे ऐसे इम्तिहान और ऐसे-ऐसे सवालों की झडी में पड़ना पड़ा है कि वह कहानी सुनने-लायक नहीं। लेकिन हुस्ना से पूछताछ करने में पुलिस को ही परेशान होना पड़ा था।

—आप किस जात की है ?

—हिंदू-मुसलमान जात की !

—यानी ?

—यानी अरबी मुसलमान नहीं हूँ, पारसी-मुसलमान नहीं हूँ, अफ-गानी मुसलमान नही हूँ, तुर्की-ईराकी भी नहीं, मैं हिंदू-मुसलमान हूँ।

—आप क्या पाकिस्तानी मुसलमान है ?

—मैं हिंदू-पाकिस्तानी मुसलमान हूँ।

जाने क्या तो पूछकर पुलिस ने फिर सवाल किया—आपके पिता का नाम ?

हुस्ना बोली—मेरे बाप-जान का नाम इमदादअली चौधरी, दादा का नाम अश्विनिचरण हाती, माँ का नाम फूलरानी, मामा का नाम सैयदअली, चाची का नाम फ़रीदाबानू है।

—ये सभी क्या जीवित है ?

—खुदा का शुक्र है ये सब-के-सब गुजर चुके हैं।

—आप शादीशुदा हैं ?

हुस्ना बोली—जी, बहुतों को यही मालूम है !

—आपके पति का नाम ?

—किस नंबर के पति का नाम ?

सिपाही उसके चेहरे की तरफ ताकने लगा। हुस्ना बोली—जी हाँ, आप यह कहें, कौन-सा नाम बताऊँ ? दोपाया, तिपाया, चौपाया—कौन-सा का ?

सिपाही बोला—खैर, एक-एक कर बताएँ।

हुस्ना बोली—जनाब नं० १ तो गुरिल्ला है, दो पैरो पर चलते है; नंबर दो हैं एक चौपाया, समझ ही सकते हैं; और नंबर तीन है, सो बेहद बूढ़े हैं, एक जरद्गव जोतदार, लाठी टेककर चलते है। रुपये के लोभ से उनसे निकाह किया था।

अब तक बातें अंग्रेजी मे ही चल रही थी। अब सिपाही ने उससे पूछा—आप किस प्रांत की है ?

हुस्ना बोली—उस प्रांत की जहाँ भलेमानसों की तादाद ज्यादा है।

—क्या कहा ?

—कहा, जिस प्रांत के लोग सचमुच में पढ़े-लिखे होते है।

—ऐसा कौन-सा प्रांत है ?

—वही प्रांत, जहाँ के लोग संस्कृति और रसबोध के सही माने समझते हैं, जिनके आगे विद्या-बुद्धि और न्यायशास्त्र में अंग्रेजी विद्वान नन्हे-नादान से है।

—आपका मतलब बंगाल से है ?

हुस्ना बोली—मामूली जानकरी से ही बात समझ में आ सकती है।

सिपाही ने जाने क्या तो लिखा। फिर पूछा—जिन्हें मैंने बाहर बिठा रखा है, वह कौन हैं ?

—वह एक हिंदू हैं। एक ब्राह्मण पुरोहित के लड़के।

—उनसे आपका क्या सम्बन्ध ?

हुस्ना ने कहा—हम दोनों कॉमरेड है, जिसका भारतीय कोई प्रति-शब्द अभी तक नहीं निकला है !

सिपाही का सवाल खत्म हुआ। कहा—आप किस कोटि की औरत हैं, हम समझ गए। आपको किसी भी कानून से रोककर रखना मुम-किन नहीं। मगर सब छोड़कर आपने एक हिन्दू कॉमरेड का पल्ला क्यों पकड़ा ?

हुस्ना ने कहा—सुना है, आप लोग तो हिन्दू-मुस्लिम एका के हिमा-यती हैं, मगर जहाँ कहीं वैसा मिलन होता है तो आप डर क्यों जाते हैं ?

हुस्ना थाने से बाहर आयी। बाहर किंकर्त्तव्यविमूढ़-सा खड़ा था हिरण।

वह दौड़ी-दौड़ी आई। उसकी कमर में अपना एक हाथ डालकर रोनी-सी होकर बोली—कॉमरेड, आखिर ये तुमसे कोई कैफ़ियत क्यों नहीं माँगते ?

हिरण ने कहा—मैं पाकिस्तान का अल्पसंख्यक जो ठहरा—हिन्दू।

सात खून माफ समझो !

थाने के लोग पीछे से इस सांप्रदायिक गलबाँही को अवाक् होकर देखते रहे।

हिरण ने धीमे-से कहा—तू इतनी करामात जानती है !

—चुप !—दबी जबान से हुस्ना ने हिरण को होशियार कर दिया। कहा—चल, पहले इस साँप के गढ़े से निकल भागे।

और दोनों स्टेशन की ओर चल पड़े थे।

इसके बाद रास्ते के बहुतेरे किस्से हैं। जिन दिनों पच्छिमी प्रदेशों में घूमने के मुआफ़िक दिन थे, उन्ही दिनों वे जगह-जगह घूमते रहे। उन्हे यह जानना था कि यह देश है उनका, जो आकार में विशाल है; यही है सारे देश का जीवन, जो विशालतर है। उन्हे यह अनुभूति असह्य थी कि किस्मत की मार खाकर वे जीवन के सँकरे गढ़े में गिर पड़े हैं और यह पारिपार्श्विक उनकी मनुष्यता के विकास के अनुकूल नही है। राजनीतिक विभाजन की उन्हें परवाह नहीं, नेताओं की विचार-बुद्धि पर उन्हें आस्था नही। वे समझते हैं कि जिन्दगी जहाँ सताई हुई और पीड़ित है, आजादी वहाँ कोई मानी नहीं रखती। ऐसे किसी भी समाज को वे माफी देने को तैयार नहीं जहाँ व्यक्ति पर हर कदम पर अन्याय होता है, जहाँ मूढ़ता का ही पर्याय राजनीति हो !

डेढ़ महीने तक वे इसी तरह चक्कर काटते फिरे। उनकी तंदुरुस्ती खासी हो गई। हुस्ना के दोनों गालों पर लाली निखर आई। बंगाल की चौहद्दी से निकलकर उनके बदन में भारत की हवा का स्पर्श लगा, उनके मन में सम्पन्न जीवन का सुर जागा। उनके जीवन में मीरा जैसी कोई निराशा नहीं, सुमित्रा जैसी महत्त्वाकांक्षा नहीं—नाकामयाबी का खयाल ही उन्हें कम है। वे चाहते हैं सिर्फ देखना, क्योंकि देखना ही दर्शन है; वे चाहते हैं सिर्फ जानना, क्योंकि जानना ही ज्ञान है। छुटपन से ही हुस्ना में बड़ी होने की कामना थी—बड़ी कुछ धन-दौलत, ऐश्वर्य में नहीं, वह बड़प्पन नहीं जोकि लौकिक विचार से समझा जाता है—

उसके बड़प्पन की व्याख्या वह थी जिसकी कल्पना जीवेन्द्रनारायण ने की थी—जिनके हाथों हुस्ना का जीवन-निर्माण हुआ था।

डेढ़ महीने के बाद किसी धर्मशालावाले के बरामदे मे सोये-सोये रात को हिरण ने कहा—हुस्ना, चल, अब लौट चलें।

हुस्ना जग ही रही थी। आँखें बन्द किए पड़ी थी। बोली—तुझे नींद नहीं आई अभी ?

हिरण बोला—सोना चाहता हूँ कि आँखों में उतर आती है छवि।

मजाक से हुस्ना ने पूछा—मीरा की ?

—नहीं।

—फिर ?

हिरण की तरफ से कोई जवाब न पाकर हुस्ना ने फिर सवाल किया—कहाँ लौटना चाहता है तू ?

हिरण बोला—तू बता, कहाँ लौटना चाहता हूँ ?

क्षण-भर रुककर हुस्ना बोली—तू जीवन की पुरानी व्यवस्था में लौटना चाहता है। तेरा मन राजमहल के लिए रो रहा है ! तेरा मन मीरा के लिए रो रहा है !

हिरण ने कहा—मीरा के लिए ?

—हाँ, वही ऐश्वर्यवाली मीरा ! ठाकुर के पोखरे के फूले कमलों का मेला तेरी आँखों में नाच रहा है, नाच रही है चाँदनी रातवाली मधुमती नदी, महल का वह आनंद-कलख, वह जीवन-धारा जो प्राचुर्य से भरा-पूरा है। उसके पास ही खड़ी है मीरा, हँसती हुई—महीपसी-सी। और तेरे एक बगल में है जन्मविद्रोहिनी हुस्ना—तलवार की चमकती धार-जैसी। और बड़े चाचा—प्रदीप्त यज्ञकुंड एक ! तू उसी अनाहत सुख को चाहता है, वही मधुर स्वप्न, वही जीवन, जिसमें कहीं विरोध नहीं, आनंद के वैभव से भरपूर जीवन-यात्रा चाहता है तू।

बरामदे के एक कोने में कालिख-लगी लालटेन टिमटिमा रही थी। अँधेरे में बह रही थी मंद और स्निग्ध बयार; आसमान में शरत्-काल

का आभास। पच्छिम का वह बड़ा-सा तारा उत्तर की तरफ खिसक आया था।

हिरण ने कहा—हुस्ना, बता नही सकी तू।

हुस्ना बोली—अच्छा बोल, रो नही रहा है तेरा मन?

हिरण ने कहा—खैर, मान ली तेरी बात। लेकिन मन जब मन-ही-मन रोता है, तो कोई कारण भी जानता है उसका? खुद मैं ही क्या जानता हूँ?

हुस्ना कुछ देर तक चुप रही। फिर कहा—यहाँ न तो आदमी है कोई, न आदमजाद, सिर्फ तू है और मैं हूँ। अच्छा, सच-सच बता, तू मीरा को प्यार नहीं करता है?

हिरण बोला—प्यार का जिक्र भी आया किसी दिन? वहाँ क्या ब्याह की ही बात बड़ी न थी?

—क्या खयाल है तेरा, मीरा ने तुझे प्यार नही किया?

—मेरे मन में ऐसा कोई सवाल ही नही है हुस्ना।

हुस्ना फिर चुप हो गई। बीच में अँधेरे मे ही वह हँसी। चुपचाप फिर पूछ बैठी—और मुझे तू किन निगाहों देखता है?

हिरण ने कहा—पता है न, मुश्किल सवाल का जवाब भी मुश्किल ही होता है!

हुस्ना बोली—उँहुँ, जवाब बहुत ही सरल है, बहुत ही सहज!

कुछ क्षण सोचकर हिरण ने कहा—सच-सच बताऊँ या ठकुर-सुहाती?

—जो तेरा जी चाहे!

हिरण ने पूछा—आज तेरे मुँह से लोभ की बात क्यो सुन रहा हूँ मैं?

हुस्ना बोली—औरतें होती ही लोभी है, फिर मुसलमान औरत का लोभ तो और होता है।

—लेकिन लोभ कभी रहा भी था तुझे?

हुस्ना अपने मन में डूब गई। कम-से-कम वहाँ अनंत तमिस्रालोक है, रहस्यो से आच्छन्न। उसकी चेतना-बिंदु उसी मे से तैर चली। अपलक दोनो आँखे, मानो मीनाक्षी हो। उसे वहाँ आच्छन्नता ही मिली। बहुतेरा ढूँढती रही मगर रहस्यलोक से कोई उत्तर न मिला।

अचानक वह उस लोक से बाहर निकल आई। कहा—हिरण ?

—क्यों, क्या बात है ?

—तू मुझसे शादी करेगा ?

—नहीं।

—चूँकि मुसलमान हूँ मै, इसलिए एतराज़ है ?

हिरण ने कहा—तुझे तो किसी भी जात के घेरे में बाँधकर नहीं रखा जा सकता ?

हुस्ना कुछ चंचल-सी हुई। उठकर उसके पास बैठी। बोली—क्या कहना चाहता है तू ?

हिरण स्थिर पड़ा रहा। शांत भाव से कहा—अंनत विश्व में जो विधाशक्ति बिखरी होती है, हमारी पकड़ से वह बाहर होती है। इसीलिए किसी प्रतिमा में उसे मानकर हम कह उठते है, तुम महाश्वेता हो। दरअसल तू तो प्रतिमा नही है, तू है उस विश्वविधा की धारण। तुझे प्रतिमा में सीमित कर दूँ तो तू छोटो हो जाएगी।

हुस्ना ने पूछा—और मीरा ?

हिरण बोला—मीरा तो मर चुकी है, हुस्ना।

—मतलब ?

—पहाड़ी नदी डाबर बन गई है। ऐसा न होता तो उसकी अपनी ही शक्ति से उसका वेग बढ़ता। उम्मीद थी वह जनपद को प्लावित करेगी, ऊसरों को हरा-भरा करेगी, मनुष्यों की प्यास मिटाएगी और फिर उधर को वेग से बहेगी जिधर महासागर है।

हुस्ना बोली—लेकिन तू क्या उसे उठा नहीं सकता ?

हिरण ने कहा—वह काम तो मेरा नहीं !

—लेकिन सारी दुनिया जानती है, तू मीरा का स्वामी है !

हिरण हँसकर बोला—केवल हम दो जने ही नहीं जानते !

हुस्ना फिर लेट गई। उसकी मानों कोई बड़ी-सी उम्मीद टूट गई। रात काफी हो चुकी थी। उसने बदन पर चादर खींच ली। दोनों आँखें भर आई उसकी।

बड़ी देर के बाद हुस्ना ने फिर आवाज दी—कॉमरेड…?

हिरण बोला—क्या ?

—जिंदगी में तूने क्या कभी अपने को जाहिर नहीं किया ?

—झूठ बोलने से क्या अपने को जाहिर करना होता ?

हुस्ना ने पूछा—तेरा-मेरा यह सम्बन्ध क्यों ? लोगों की निगाहो में क्या यह निंदनीय नही है ?

हिरण ने कहा—परवाह करती है तू निंदा की ?

—नही। लेकिन लोग अगर कहें, दो मिलकर एक ?—हुस्ना ने आँखें फाड़कर उसे ताका।

—लोग कहें तो कहें, पर यह सवाल तेरी जबान पर क्यों ? अगर यह मिलन है, तो यही क्या कम है ? हम दोनों समानांतर रेखाएँ है—अंग्रेजी में जिसे कहते है पेरेलल् ! बहुत करीब हैं, पास-पास है, मिलते नहीं ! बीच में विच्छेद हो चाहे, लक्ष्य हमारा एक है। मिलन इसी को कहते है, हुस्ना !

हुस्ना की दोनों आँखों में मधुर आनंद की तंद्रा छाती जा रही थी। आँखें तरेरकर उसने कहा—एक बात तू मुझे बता हिरण, मीरा से तुझे कोई क्षोभ है क्या ?

हिरण बोला—बिल्कुल नहीं।

—उसमें कही कोई खामी दीखे, तो उसे माफ कर सकेगा तू ?

—मैंने उसमें काई खामी नही देखी।

हुस्ना बोली—एक बात का और वचन दे तू मुझे ?

—किस बात का ?

—वचन दे तू कि मैं चाहे जहाँ भी रहूँ, पर तू मीरा के पास रहेगा ?

हिरण ने कहा—दिया वचन !

अँधेरे में हिरण का हाथ खींचकर हुस्ना बोली—तू पास में रहता है तो मुझे अँधेरे में डर नहीं लगता। अच्छा, सो जा। सुबह तेरे साथ फिर बह चलूँगी !

अबकी उनकी यात्रा पूरब की हुई। पूर्वी बंगाल। बीच में सात सौ मील की सीमा। मगर वे सीधी राह नहीं जाते—आड़े-टेढ़े। कलकत्ते होकर भी जाया जा सकता, गाड़ी से चलते, मगर यह तो भ्रमण नहीं। भ्रमण तो वह है जिसमें राह न चुके। उत्तर बिहार में वे इक्के से चले, पैदल चले, नाव से चले, पहाड़-पहाड़ियाँ पार कीं, उन आँकी-बाँकी नदियों को पार किया जो हिमालय से बहकर आई हैं। वे वहाँ रास्ते की खोज में गए जहाँ मनुष्यों के कदम नहीं पड़े। जहाँ सवारियाँ नहीं मिलतीं, वहाँ पहुँचकर वे निरुपाय हुए। जहाँ दाने नहीं मिलते, वहाँ वे भूखे भटकते फिरे।

सात सौ मील की सरहद में वे किसी सुरंग की तलाश करते रहे। दक्खिन की तरफ से सुंदरबन की राह जाया जा सकता था—जंगल की रहस्य-सघनता से। गंगा से पद्मा में, ब्रह्मपुत्र से यमुना में जाया जा सकता था। लेकिन उन्होंने सीमा-रेखा को जानना चाहा, जोकि है नहीं। विभाजन का घेरा देखना चाहा, जोकि है नहीं ! पानी पर विभाजक रेखा नहीं, क्योंकि उस पर लकीर नहीं पड़ती ! मिट्टी पर निशान नहीं पड़ता, उड़ जाता है, धुल जाता है। और वे सीमा को खोजते फिरे।

हुस्ना बोली—उँहूँ, शहर में नहीं। शहर में मनुष्य तो हैं, मनुष्यता कम है। शहर में दान है, दया नहीं। शासन है, स्नेह नहीं। शहर की तरफ नहीं जाती मैं, गाँवों की ओर चलो !

—किस गाँव को चलूँ ?

हुस्ना बोली—हाजीपुर की राह में पड़नेवाला जो भी गाँव हो।

हिरण बोला—गाँव की परिक्रमा करेगी ? वहाँ की जीवन-धारा देखेगी ?

—ठीक ही कहा। चल, वही करें।

—लेकिन वहाँ चलेगी तू कौन-सा परिचय लेकर ? किस अधिकार पर वहाँ के दानों में हिस्सा लेगी ?

हुस्ना बोली—हाजीपुर का अन्न किस अधिकार पर खाती थी ?

हिरण ने जवाब दिया—स्वाभाविक अधिकार से। वह तो तेरी सदा की लीलाभूमि है। तूने वहाँ खिदमत बहुत की है। लेकिन यहाँ तुझे दान लेना पड़ेगा, सम्मान का अनाज नसीब न होगा !

हुस्ना हँसी। कहा—ठीक है। खिदमत के बदले ही अन्न लूँगी।

खिदमत वे चाहेंगे भी ?—हिरण रुक सा गया।

अजानों को इस बात की जानकारी नहीं होती कि उनकी खिदमत है क्या। वे अस्पताल बनाना जानते हैं, पर मनुष्य की सेवा-टहल नहीं जानते ; उन्हें स्कूल बनाना आता है, शिक्षा नही आती ; शासन करना उनको आता है, मनुष्य की उन्नति करना नही आता ; अनाज उपजाना वे जानते हैं, अन्न बाँटने का क्षेत्र नहीं जानते ; नदी बाँधना जानते हैं, यह नहीं जानते कि मनुष्य की प्यास कैसे मिटती है। तू चल मेरे साथ, सेवा ही करूँगी मैं।—आगे बढी वह।

धान पके न थे, लेकिन बालियाँ काफी ऊँचे उठ गई थीं। असमय में दोनों खेतों की ओर चल पड़े। हुस्ना वही राँचीवाली पोशाक पहने थी। लालकोर की साड़ी, माँग में सिंदूर की मोटी रेखा, हाथों में शंख की चूड़ियाँ, घूँघट, सोने-जैसे पैरों में महावर। ससुराल जा रही है। रोते-रोते सूज गई हैं दोनों आँखें।

खेतों को पार करके चौडा रास्ता पडता था। रंग के फूल-बेल बने टिन का सूटकेस और दरिद्री बिछौने की गाँठ हाथ में लिए हिरण एक जगह खड़ा हो गया। वड़ी देर के बाद बस आयी। वे लोग उस पर सवार हो गए। उन्हें जगह मिल गई गोकि भीड़ थी। पूर्वी बंगाल

की सरहद अभी नहीं आई थी।

कंडक्टर ने पूछा—कहाँ जाना है ?

सवाल बड़ा वैसा। सकुचाकर हिरण ने पूछा—आजकल यह गाड़ी जाती कहाँ तक है ? उधर पानी कितना है ?

—पानी बहुत है। यह बस वजीरपुर तक जायगी। आप लोग क्या पाकिस्तान जायँगे ?

—हाँ।

—फिर तो आपको नदी पार करनी होगी।

—मालूम है। तो वजीरपुर का ही टिकट दो।

सूनी राह। किसी-किसी गाँव में बनिये की एकाध दुकान के सिवाए जीवन की और कोई भी निशानी कही नहीं थी। साँझ होने को देर थी। बस तेजी से दौड़ रही थी। बातों-बातों में पता चला, वजीरपुर की पैठ उठने से पहले ही बस वहाँ पहुँच जाएगी। रास्ता ज्यादा नहीं रह गया था। कई मुसाफिरों की हुस्ना पर टकटकी लगी हुई थी। कितनी खूबसूरत है ! बंगाली लड़की की इतनी अच्छी तंदुरुस्ती। देखने में आँखें जुड़ा जाती हैं। लछमी हो जैसे। घूँघट के अंदर से पतिप्राणा इस स्त्री की निगाह और किसी तरफ को नहीं उठती। आह, ऐसी स्त्री पाकिस्तान जा रही है !

वजीरपुर पहुँचकर वे पैठ के पास उतरे। नदी से सटकर ही पैठ लगती थी। एक तरफ पहाड़-सी लगी जूट की गाँठों का ढेर। इधर जुलाहे बैठे, अँगोछे और कपड़े लिए। दूसरी तरफ चावल और तंबाकू की आढ़त। सब्जी-बाजार। मनिहारी और खिलौने की दूकानें। लोहे और अलमूनियम के सामान। एक ओर मिट्टी के बर्तन। बत्तख और मुर्गे। कहीं मोदी की दूकान।

घूँघट काढ़े हुस्ना हिरण के पीछे-पीछे हाट के बगल से चली। लजीली बहू। मुसलमान उसे बार-बार ताकने लगे। वजीरपुर के मौलवियों ने कुरान की दुहाई देकर निदेश दे रखा था कि हिंदू औरतों की तरफ

बुरी निगाह से हरगिज मत ताको। उन सबने एक-एक बार लेकिन देखा। देखकर जाने क्या मंतर पढ़कर आँख की पपनी नोची।

एक जगह एक आदमी मंजीरावाली खँजड़ी लिए गा रहा था। पैरों में घुँघरू। उस पर नजर क्या पड़ी, बालिका वधू जिद ले बैठी, मुझे खँजड़ी खरीद दो! अपने छोटे देवरों और जेठ के बच्चों के लिए ले जाऊँगी। टीन की मालगाड़ी खरीदो, ले दो पेड़ की डालवाला वह बंदर। कचकड़े के खिलौने खरीद दोगे? प्लास्टिक के कंघे और वेनिटी बैग? प्लास्टिक की माला जूड़े में पहनूँगी। अन्नाकली के लिए जरी के फीते। दीदी के लिए नकली मोती की माला। अहा-हा, कितना बढ़िया है साबुन का डिब्बा, पफ़-पाउडर! लोगे? मेरी गाँठ में रुपया है।

उन्हे घेरकर भीड़ जमा हो गई है। कान लगाकर सब सुन रहे हैं। हिरण ने कहा—बाकी चीजों की बात तो समझ में आई, मगर इस खँजड़ी का क्या करोगी तुम। किसे नचाओगी?

—जरा बात सुनो इनकी। शौक की चीज, उसे भी तुम नहीं ले देना चाहते। शायद इसीलिए मुझे समुराल लेजा रहे हो कि मेरा मान न रहे। देखो न, भीख माँग रहा है वह। एक अँगोछा खरीदकर दे दो उसे।—हुस्ना रो उठी। मुझसे किसी की तकलीफ नहीं देखी जाती, यह नहीं समझते तुम?

हुस्ना गर्दन हिलाकर उठी। पैठ में एक लहर-सी दौड़ गई। एक तो खूबसूरत औरत, फिर खासी अच्छी तंदुरुस्ती, सो सबने कहा—बाबू, माँजी कुछ चीजें लेना चाहती हैं, ले दीजिए। पैसा तो हाथ का मैल है।

और हिरण को कोई पचास रुपये की चीजें खरीदनी पड़ीं। उन्होंने कुछ खाने के सामान खरीदे और घाट की तरफ चले। उस पार पाकिस्तान। उस पार से माल आता, दोनों पार के चौकीदारों को काफी रकम मिलती। दोनों चौकीदारों में पटती भी खूब थी। एक ही गाँव के थे दोनों। नाव से मोताहर मियाँ शिरीश चौकीदार के पास तंबाकू पीने आया करता। और रोज साँझ के बाद शिरीश उस पार जाता अपनी

ससुराल। अबुल के हाथों उसकी बहू उसे मछली और भात भेजा करती। मुसलमान की छुई चीजें, सो शिरीश भात की वह पोटली सोधे रसोई में छिपा आता।

—नाव पर सवार होने से पहले शिरीश ने हिरण के आगे बहुत दुखड़ा रोया। शिरीश ही के कहे जमीरुद्दीन सस्ते में नाव खरीद लाया था। नाव में और कोई मुसाफिर न होगा, मुझे आठ आने दीजिए। सेर-भर चावल लेकर घर चलूँ।

—वही सही। —वे दोनों नाव पर बैठे।

जो चीजें खरीदी थी, हुस्ना ने उन्हें अपने ही पास रखा। खँजड़ी उसने हिरण को दी। घुँघरू अपने पास रखे। हिरण ने कहा—हुं, मुझे इतना नचाकर भी जी नही भरता तुम्हारा, क्यों ?

हुस्ना ने घूँघट को और खींच लिया। लेकिन उसी के अंदर से उसने कटमटाकर हिरण की तरफ ताका।

कोई दस मिनट में नाव उस पार जा लगी। उधर गाँव की औरतें घाट से जाने लगी थी। जाने आपस में उन्होंने क्या कुछ कहा-सुनी की। घाट पर उतरकर हिरण ने मल्लाह को एक रुपया दिया और पूछा—म्याँ, मनसाखाली की राह बता दोगे मुझे ?

मल्लाह बोला—बाबू, मैं नही बता सकता। आप जाएँगे कहाँ ?

—हम बड़ी नदी पार करके गंज की तरफ जाएँगे।

—सोनागंज ?

हिरण बोल—हाँ-हाँ। अच्छा, यह तो बताओ, यहाँ कोई स्कूल है ?

मल्लाह बोला—मेरा घर इस गाँव में नहीं पड़ता, मगर इतना मालूम है कि यहाँ एक मख़तब है। आप वहाँ जाएँ।

सामान लेकर दोनों चल पड़े। साँझ होने को देर न थी। कच्चा रास्ता, कहीं पानी जमा था, कहीं कीचड़। सूना-सा गाँव। कहीं-कहीं फूस के घर खाली पड़े थे, कहीं बसी-बसाई गिरस्ती अचानक उजड़

गई थी। समझने में देर नहीं लगती कि वहाँ के बहुत-से लोग चल दिए हैं। पक्के के घर, कोटेगेटेड की छौनी। वह भी खाली। आधा घण्टा चलकर उन्हीं में से एक दालान में दोनों गए। कहना फिजूल है, ये दोनों निहायत भले आदमी-से दीखते थे। उनकी साज-पोशाक इस गाँव से मिलती-जुलती न थी। लिहाजा बड़ी देर से उन पर चौकीदार की चौकस निगाह थी। उन्हें उस दालान में जाते देख चौकीदार दौड़ा-दौड़ा आया।

हिरण के साथ हुस्ना अंदर जा रही थी। जल्दी-जल्दी टीन के बक्से और गाँठ को खोलकर हुस्ना ने हिरण का पहनावा बदल दिया। हिरण ने पायजामा पहना, बेलबूटेदार मलमल का कुर्ता, आँखों में लगाया सुरमा, पाँवों में प्लास्टिक का पंप। गले में काले धागे में कवच।

बाहर से चौकीदार ने आवाज दी—बाबू ?

अंदर से जवाब मिला—कौन ?

हिरण ने बाहर आकर पूछा—तुम ?

—मेरा नाम मोताहर है। सलाम।

हिरण बोला—वजीरपुर में तुम्हारी बड़ी तारीफ सुन आया। नदी के उस पार और इस पार, तुम्हारा नाम लेते ही लोगों के होश फ़ाख़ता। सभी तुम्हें जानते हैं।

—हें-हें, आप तो मुसलमान हैं, मैने समझा—हें-हें !

—म्याँ कुछ कहना है। बाद में बताऊँगा, चुपचाप।

—आप जाएँगे कहाँ ?

—हम सोनागंज से आगे, गोलकपुर जाएँगे। .

—गोलकपुर ? ऐसा नाम तो नहीं सुना मैंने। गोपालपुर तो नहीं कह रहे हैं ?

हिरण ने कहा—लो, ठीक याद ही नहीं रहता। वहाँ मेरा ननिहाल है !

मोताहर ने कहा—किनके यहाँ ?

—अरे वही, गोपालपुर से निकलते ही जिनका बड़ा-सा तालुका है।

—रहमान साहब की कह रहे हैं ?

हिरण ने हँसकर कहा—वाह, तुम तो सभी को पहचानते हो म्याँ।

मोताहर बोला—रहमान साहब बहुत बड़े तालुकेदार हैं। उन्हें कौन नहीं जानता। रुकिए जरा, मै आप लोगों का इंतजाम किए देता हूँ। मगर हाँ, रात ही भर तो रहना है। आप अगर मिहरबानी करके मेरे घर रहें—तकलीफ तो होगी…

हिरण बोला—तुम्हें भी तकलीफ होगी मियाँ।

—जी नहीं, बिल्कुल नहीं। सब व्यवस्था मेरी। इस घर में साँप आता है। चारों तरफ पानी है न। यह लालटेन रख लें, मैं अभी आता हूँ। जाते-जाते मोताहर रुक गया। पूछा—अच्छा ! आप लोग तो यहाँ के नहीं हैं। आपका मकान ?

धीमे-से हिरण बोला—घर मेरा बर्दवान है। जान लेकर वहाँ से भाग आया हूँ। अब से मामा के यहाँ रहूँगा।

—भाग क्यों आए ? —आँखें फाड़कर मियाँ ने उसे ताका।

हिरण घर की तरफ मुड़ा। कहा—वह एक लम्बी दास्तान है। फिर बताऊँगा सब।

मोताहर ने कहा—समझ गया। एक हिंदूआनी को साथ लिए आ रहे है, इसी से। है न ?

हिरण ने कहा—तुमने ठीक ही समझा है।

मोताहर ने विज्ञ की तरह कहा—लेकिन अच्छा नहीं किया है।

हिरण ने झट से दस रुपये निकाले। कहा—मियाँ, रात तुम्हारे यहाँ रहना है। खर्च तो चाहिए। लो, इसी से इंतजाम करना।

मोताहर को रुपये थमाकर हिरण ने कहा—खबरदार, कहीं चूँ न

करना।

मोताहर के होंठों पर हँसी दौड़ गई। बोला—किसी से नहीं कहूँगा। मगर काम आपने अच्छा नहीं किया। भगा लाए हैं कि शादी की है?

—दो साल पहले शादी की है। आज की बात थोड़े ही है।

—फिर तो कोई डर नहीं। मैं अभी आ रहा हूँ।

मोताहर भागता हुआ चला गया।

आधे घंटे में सब कर-कराकर मोताहर उन्हें अपने घर ले गया। अँधेरा हो चुका था।

एक रात का बसेरा। हुस्ना चारों तरफ देखने लगी। एक कोने में किराशन की ढिबरी धुआँ उगल रही थी। कमरे में एक चौकी पड़ी थी, उसके नीचे कालिख लगे दो-चार बर्तन-भाँड़े। एक तरफ की दीवाल की मिट्टी खिसक गई थी, बाँस झाँक रहे थे। छप्पर एक तरफ को उजड़ा। पिछले चैत में छौनी शायद नहीं हुई। अँधेरे आसमान का एक टुकड़ा अंदर से ही दीख रहा था। हुस्ना का तो मानों दम घुटने लगा। रुलाई आने लगी।

उसने पुकारा—अब्दुल?

हिरण की कोई आवाज न मिली। अब्दुल के बदले वहाँ मोताहर की बीवी और एक लड़की आई। हुस्ना चौकी से उठी और हँसती हुई दोनों को हाथ पकड़कर लाकर बिठाया। माँ-बेटी तो गड़-सी गई। ऐसी औरत तो उन्होंने कभी देखी ही नहीं—ऐसा रूप, ऐसा लावण्य! दोनों की बोलती बंद हो गई।

हुस्ना ने पूछा—आप कभी कहीं बाहर नहीं निकली हैं शायद!

जवान लड़की की नाक में चाँदी का बुलाक और कान में पीतल का कँगना। उसने गला साफ करके कहा—बचपन में वजीरपुर गई थी।

—बस, वजीरपुर। वह तो पास ही है। डेढ़-एक मील! तुम्हारा नाम क्या है बहन?

—नूरी।

मकान-मालकिन ने पूछा—और तुम्हें किस नाम से पुकारूँ बिटिया।

हुस्ना ने हँसकर कहा—रात-भर की तो बात ठहरी। सुबह ही नदी पार करनी है। कहूँ भी तो नाम याद रहेगा? मेरा नाम सुहासिनी है!

मोताहर की बीवी बोली—हिंदू की बिटिया, मेरे माथे का मणि। तुम्हारे यहाँ खूबसूरती खूब है!

हुस्ना बोली—मगर तुम्हारे यहाँ उससे भी बड़ी चीज है। वह है तुम्हारी सहन-शक्ति।

नूरी ने कहा—हम गरीब जो ठहरे। हमें सब सहना पड़ता है। कोई मारे भी तो हम चूँ नहीं करते।

सहसा मानों उस लड़की की आवाज में गरमी-सी छिटक आई। हुस्ना ने यह अनुभव किया और उसकी माँ की तरफ मुखातिब होकर बोली—आपके बाल-बच्चे?

—पहले घर से एक लड़का है। वह रंगपुर में रहता है। और इस घर से दो लड़कियाँ हैं—नूरी और हूरी।

—इनकी शादी हो चुकी है?

—हाँ। हूरी का निकाह कराया था। और इसे इसके खसम ने छोड़ दिया है। बैल की पूँछ की चोट से हूरी की आँख खराब हो गई है। दोनों लड़कियाँ घर ही सूख रही है। खसम इसका आदमी नहीं है। कभी-कभी तम्बाखू पीने आता है। बोलचाल नहीं, चला जाता है। और बच्चियाँ रोती रहती हैं।

नूरी ने जोर से कहा—झूठ बात, रोती कोई नहीं। वह गुजर जाएँ, तो कलेजा ठंडा हो। उस दिन डंडे से पीटा है, याद नहीं है?

माँ ने कहा—चुप भी रह बेटी, समझ-बूझकर बोल।

—समझ-बूझकर क्या बोलूँ, क्यों बोलूँ? पीटा नहीं है क्या? काला निशान पड़ गया।

नूरी की पीठ सहलाते हुए हुस्ना ने कहा—इस देश की सभी औरतों का एक ही हाल है बहन।

नूरी ने पूछा—आपकी तरफ लड़के-लड़कियों की कै बार शादियाँ होती है?

हुस्ना ने कहा—लड़कियों की शादी तो एक ही बार होती है। पहले लड़के शायद दो बार करते थे। लेकिन अब ऐसा है कि बीवी के जीते-जी कोई दूसरी स्त्री को घर नहीं लाता! पहले कुलीनों को हया-शरम नहीं होती थी। वे एक साथ कई-कई शादियाँ करते थे और बेचारी लड़कियों की जिंदगी बरबाद करते थे।

शुद्ध भाषा में बातें करना उनके लिए दुर्बोध होता। फिर भी प्रशंसा-भरी निगाह से वे हुस्ना को देखती हुई मुग्ध हो रहीं। कुछ ही क्षण बाद उठकर माँ एक पंखा ले आई। और ज्यों ही हुस्ना को हवा करने की उसने चेष्टा की कि हुस्ना ने उसका हाथ थाम लिया। कहा—यह क्या कर रही हैं? लड़की होकर माँ की खिदमत कैसे कबूल करूँ। दीजिए, मुझे दीजिए।

हुस्ना के कपाल से झर-झर चू रहा था पसीना। वह खुद ही पंखा झलने लगी। वे अभिभूत-सी रहीं। आनंद, उत्तेजना, दुराशा से नूरी की आँखे दप-दप कर रही थी। उन आँखों की मानों भाषा नहीं—इतने दिनों बाद उसका जीवन, उसका सपना सार्थक हुआ। उसका सर्वांग थर-थर काँप रहा था।

दरवाजे के पास पास-पड़ोस की कई बहू-बेटियाँ खड़ी-खड़ी अवाक् हो हुस्ना को देख रही थीं। मिट्टी के तेल के दीये की मंद जोत में भी हुस्ना की माँग का सिंदूर साफ झलक रहा था। पंखा झलते हुए उसका हाथ अँधेरे कमरे में बिजली-सा कौंध जाता था। ऐसी साज-पोशाक उन्होंने

कभी नहीं देखी थी।

बगल के दरवाजे के पास मोताहर मियाँ और अब्दुल के गले की आवाज सुनाई पड़ी। नूरी ने खड़े होने की कोशिश की मगर हुस्ना ने उसे रोक रखा। कहा—शरम की क्या बात है बहन, उन्हें आने दो, मैं हूँ तो हर्ज क्या है ?

मोताहर को पकड़कर अब्दुल कमरे में ले आया। उसने कुछ कहा नही। वही सील-भरी जमीन पर बैठ गया। ऐसा लगा, अपना असर डालकर हिरण मोताहर को लौटा लाया है। उसके मन का विक्षोभ जाता रहा है। उत्फुल्ल आनंद से उसकी आँखें चमकने लगी हैं।

हँसते हुए चेहरे से मोताहर ने कहा—हिंदू और मुसलमानों में आपस में इतनी अनबन है, लेकिन कोई हिंदू लड़की अपने घर आती है तो घर जैसे हँस उठता है! आती नहीं है, इसीलिए तो मियाँ भाइयों का मिज़ाज ऐसा बिगड़ा-बिगड़ा रहता है। कहना है, तो सच ही कहूँगा।

सबने सिर हिलाकर सहमती जताई। मोताहर है तो एक मामूली चौकीदार, हुआ चौकीदार तो क्या, चूँकि लिखना-पढ़ना जानता है इसलिए उसकी तनखाह अब बत्तीस रुपये हो गई है। उसके मातहत दो दफादार हैं। उसकी बात पर उठते-बैठते हैं।

महज़ एक रात के मेहमान तो वे जरूर थे, मगर इन तीन ही घंटों के अंदर अब्दुल गाँव का ही दामाद-सा बन बैठा है। चाँद के टुकड़े-सी सूरत। बंगाली मुसलमानों के यहाँ इतने खूबसूरत आदमी मिलते कितने हैं ? औरतें शरमाई नहीं बल्कि निःसंकोच और भी पास आ पहुँचीं उसके। उनका आज मानों उत्सव हो—कोहवर की रात। आज वे हिल नहीं सकतीं।

इतने में एक औरत ने आकर दूध-भरा मटका रखा और हुस्ना की ओर ताकती हुई बेझिझक बोली—यह बीबी के लिए है, नूरी की माँ।

गाँव का एक आदमी दो ताजी मछलियाँ लाकर बोला—नूरी की

माँ, ये बेटी-मेहमान के लिए लाया हूँ।

स्वागत की होड़-सी चल पड़ी हो मानों। अब्दुल हक्का-वक्का-सा ताकता रहा, हुस्ना हाथ बाँधे मौन हो रही। किसी ने मुरमुरे लाकर दिये, किसी ने केला, तो कोई अंडा दे गया, कोई साग-भाजी, कोई कटोरे में तेल ही दे गया! गाँव में बेटी-दामाद का पदार्पण। शोर मच गया। देखते-ही-देखते मोताहर का घर लोगो से भर गया। गर्व, गौरव और आनंद से मोताहर की स्त्री सबकी आवभगत करने लगी। उसके बाद उठकर वह रसोई में गयी।

अब्दुल का भी सम्मान का कुछ पावना था। जिस साल इस गाँव में राजा का आगमन हुआ था, उसकी खुशी में मोताहर की तनखाह एक रुपया बढ़ा दी गई थी और उसे उपहार में लाल मखमल की एक टोपी और कान के दो कुँडल उपहार में दिए गए थे। आज मोताहर ने वे चीजें निकालकर खुशी-खुशी अबदुल के माथे और कानों में पहना दीं। सुमुखि ने कनखी से अब्दुल को देखा। हिरण के माथे टोपी, कानों में कुँडल। अनोखा ही नजारा!

कलीमुद्दीन दफ़ादार नये हुक्के पर चिलम चढ़ाकर ले आया। हुक्का लेकर बाएँ हाथ को दाएँ से भिड़ाकर मोताहर ने अब्दुल की तरफ बढ़ाया। अबदुल ने तुरत कहा—जी, मैं तो नहीं पीता।

—तंबाखू नहीं पीता? क्यों पिएँ भला। शेर का बच्चा। खैर, मैं खासी चीज मँगाता हूँ। कलीमुद्दीन, ले आ तो।

कलीमुद्दीन अँधेरे में हँसता हुआ निकल गया।

बहुत-सी औरते जमा हुई थीं। उन्होने आपस में जाने क्या तो बातें कीं। उनके इशारे पर हिंम्मत बाँधकर नूरी हुस्ना के पास गयी। बोली —भाभी, आप जरा उधर चलें। वे लोग बुला रही हैं।

हुस्ना गरमी और घुटने से तकलीफ महसूस कर रही थी। बोली—अच्छा तो है, चलो, तुम लोगों से बातें करूँ।—इतना कहकर वह उठी और उन सारी चीजों को उठाया जिन्हें पैठ से खरीद लाई थी, फिर

बाहर निकल गई। मोताहर ने हँसकर अब्दुल की ओर देखा—सच्चरित्र और सुरूपा पत्नी के गौरव-गर्व से उसकी आँखें दमक रही थी।

कलीमुद्दीन लौटा। उसके हाथ में एक मटका था और कलई किया हुआ एक गिलास। बड़े उत्साह से दोनों चीजें मोताहर ने उसके हाथ से ले लीं। बोला—कलीमुद्दीन, रसोई-घर से कुछ चना-चबैना तो ले आ। निखालिस माल है, इसमें बूँद-भर भी पानी नहीं।

अब्दुल ने कहा—यह क्या ले आए म्याँ ?

मोताहर खिलखिलाकर हँस पड़ा। कहा—कलीमुद्दीन, बैठ जा, तुझे भी देता हूँ। उसके बाद अब्दुल की तरफ मुख़ातिब होकर बोला—यह खांटी देशी माल, नवाब-सूबेदार के सिवाए नसीब किस आदमी को होता है ? यह भात का हँड़िया नही है, ताड़ के रस का बना है। पीने पर मजाल क्या कि भूल सको।

पंद्रह

हुस्ना को अपने साथ लेकर वे कच्चे आंगन को पार करके पूरबवाले कमरे में गयीं। हुस्ना का सुहासिनी नाम बड़ा अनुकूल हुआ है। हँसकर ही बात करती है। लालटेन की रोशनी में भी उसके सफेद दाँत चमक रहे थे, उन पर पान का कभी स्पर्श नहीं हुआ। धूल-माटी के आँगन को छूते हुए महावर लगे चरण चल रहे थे, उस स्पर्श से आँगन मानों धन्य हो गया। कमरे में उन सबने हुस्ना को बीच में बिठाया।

यह मोताहर मियाँ के सोने का कमरा था। यह अनुमान करना कठिन नहीं कि एक चौकीदार किसान के घर के सरो-सामान क्या हो सकते हैं, कैसे हो सकते हैं। गरीब के घर की सजावट से आनंद पाने में आत्ममर्याद

के अभाव का भाव प्रच्छन्न रहता है। हुस्ना को हर पल संकोच हो रहा था, क्योंकि वह इस आब-हवा के अनुकूल नहीं पड़ती थी। अपनी साड़ी, अपना ब्लाउज, कान, गला और हाथ के गहने, सब-कुछ के लिए ही वह संकुचित हो रही थी। मगर आज रात की सारी आवभगत उसे कबूल करनी ही पड़ेगी, इसलिए कि यह उस गाँव का दावा है। हुस्ना उनकी आँखों में एक अजीब अचरज-सी लग रही थी—उनके जीवन-भर की कामना जैसी। सब दिन वे हिन्दू औरतों को श्रद्धा करती आई हैं, जमाने से उनकी सेवा करती आई हैं, चावल कूटकर, काम-काज करके दाने जुटाती आई हैं, हिन्दू महिलाओं के घर सँभालती आई हैं। उसके बदले उन्हें श्रद्धा नहीं, कृपा मिलती रही है, स्नेह नहीं, दया के छींटे मिलते रहे हैं। और हिन्दू महिलाएँ कभी इनका घर सँभाल देने को नहीं पहुँचीं, लिखना-पढ़ना नहीं सिखाया, न ही उन्हें कर्म के किसी बृहत्तर क्षेत्र में खींचकर ले गई। उनके चेहरे देख, उनकी गरीबी, उनके कुतूहल और कानाफूसी के लहजे से हुस्ना का सिर मानों नीचे झुकता जा रहा था।

बिछौने की गरीबी देख शरीर के रोंगटे खड़े हो रहे थे, मगर वह भी बिछाया बड़े ढंग से गया था। अधमैली-सी एक डोरिया साड़ी तह की हुई लटकी थी। पीतल के दो-तीन बर्त्तन सामने करीने से रखे गए थे कि शोभा बढ़े। दीवार की एक तरफ, जहाँ बाँस की टट्टी झाँक रही थी, मक्का की तसवीर टँगी थी। उस पर आँखें टँग जाती थीं।

दरवाजे को पार करके एक लड़की अंदर आयी। उसकी एक आँख पर पट्टी बँधी थी। हाथ में कलई की हुई एक थाली, थाली में लावे के लड्डू। दाहने हाथ में दूध का कटोरा। यही थी हूरी, जिसे उसके पति ने छोड़ दिया था। चेहरे पर कोई शोभा नहीं, स्वास्थ्य नहीं। नूरी ने बताया—भाभी, ये सब खेतों में काम किया करती थीं। जब हिन्दू लोग थे तो खेतों में मजूरी मिल जाती थी, कपड़े मिलते थे—अब खासी तकलीफ हो गई है। इन औरतों का जला नसीब, पाकिस्तान होने

से कुछ सुधरा नहीं।

बात एक सिर्फ वही कर रही थी, बाकी सब मानों गूंगी हों। आज ही ऐसा है, सो नहीं, उनकी जुबान पर कभी किसी ने भाषा नहीं दी। मर्द खेती करते हैं, फसल काटते है, तंबाखू-ताड़ी पीते हैं और औरतों की खबर लिया करते है। फसल घर आ जाने पर या तो निकाह करते हैं या हटिया में जाकर दंगा। एक पति के बच्चों का लालन-पालन दूसरा खसम करता है, एक स्त्री के बच्चों की देखभाल दूसरी स्त्री आकर करती है। साल-भर औरतें मलेरिया की शिकार रहती है, गरमियों मे हैज़े से जान गॅवाती हैं।

हुस्ना ने एक लड्डू और दूध उसके हाथ से लिया और उसके बाद सबके सामने गाँठ से उन चीजों को खोला जो वजीरपुर से खरीद लाई थी। उसे पता था गॉव के समाज में खाली हाथ नहीं जाया जाता। बाँटने के लिए कुछ चीजें तो लेनी ही पड़ती है।

कोई तीसेक लड़कियाँ थीं—ज्यादा ही होंगी। हुस्ना की गाँठ भी छोटी न थी। खँजड़ी वह अब्दुल के पास रख आई थी—गाँठ में लगभग पचास रुपये की चीजें थीं। लेकिन उनकी आँखों के कौतूहल की कोई सीमा नहीं थी—हाथ जड़ हो रहे थे। उन्होने सदा दिया ही है, लेना उन्हें नहीं आया। हँसती हुई हुस्ना बोली—ये चीजें मैं तुम लोगों के लिए ही लायी हूँ बहन, आपस में सब बाँट लो।

डर से किसी को हाथ लगाने की हिम्मत नही पड़ी। बाहर नंगे-अधनंगे बच्चों की भीड़ बटुर आई थी, सब शोर मचा रहे थे। दूर-दूर तक खबर इसी बीच में फैल गई थी कि इस गाँव में आज बेटी-दामाद के आगमन का उत्सव है। अपने हाथ से एक-एक चीज निकालकर हुस्ना ने उन लोगों के बीच बाँटी। आईना, कंघी, कुंकम, फीता, कांटा, पाउडर, तेल, साबुन, स्नो—क्या नहीं था ? किस्म-किस्म के खिलौने और ऐसी चीजें भी बहुत-सी थीं जो गिरस्ती के काम आ सकें। बिस्कुट थे, लजें-जेस थे, प्लास्टिक का बहुत-सा सामान।

बीच में एक तहलका-सा हुआ जैसे। इनके आने की खबर पाकर बगल के गाँव से आयी थीं बेगम खातून। पाकिस्तान होने के बाद उस गाँव में शकावत स्कूल खुला था, बेगम खातून उसकी प्रधानाध्यापिका थी। उन्होने सुहासिनी के आने की खबर जो सुनी, सो उनसे रहा नहीं गया। रोशन नौकर को लालटेन थमाकर वह रात ही को आ धमकी।

लड़कियों की भीड़ को हटाकर वह अंदर गई और हुस्ना को सलाम किया। हँसकर बोलीं—बड़ी खुशी हुई। एकाध दिन रुकेंगी तो अभी ?

हुस्ना ने उन्हें सादर अपने पास बिठाया। जब कभी भी बाहर से कोई जाने-माने आदमी आते, तो बेगम खातून को ही लोग आगे कर देते। वही हलके की मुखपात्री हैं। परिचय आदि के बाद बेगम ने कहा—बड़ी कठिनाइयों से चल रहा है स्कूल। पढ़ने-लिखने की इन्हें आदत तो कभी रही नहीं, सब काम-काज में ही लगे रहते हैं। और किसानों के घर पढ़ाई-लखाई हुई भी तो, एक दिन तो आखिर खेत में उतरना ही ठहरा।

कोई तीन घंटे के बाद अब हुसना ने जबान खोली। पूछा—क्या सीखते हैं वे ?

बेगम बोली—सीखें भी क्या ! कागज-किताब तो है नही और जो है, वह निहायत फिजूल और बेकार। खुद ही शरम लगती है। बच्चों की उपयोगी पुस्तकें मिलती नहीं। चूंकि पढ़-लिखकर आगे का कोई भरोसा नहीं, इसलिए माँ-बाप पढ़ाई पर खास ध्यान नहीं देते। इसके सिवाए और भी एक बात है, पाकिस्तान होने के पहले लोग क्या-कुछ नहीं सोचा करते थे, लेकिन जब पाकिस्तान होकर रहा, तो अब किसी में कोई लगन नहीं रह गई। जो था, जैसा था, वही रहा, सिर्फ ढाका में कभी-कभी हलचल हो जाती है। दरअसल पाकिस्तान होने से हमें जरा भी आफ़ियत नहीं हुई बहन।

बेगम की उम्र तीस साल की होगी। सादा बाना। कानों में बाली, हाथों में काँच की चूड़ियाँ। ख़ासी लम्बी नाक, शायद नाक पर स्कूल की लड़कियाँ उनका मखौल भी करती। हुस्ना ने सोचा था, गाँव में आयी है, तो चुपचाप उनकी बात सुनेगी और चली जाएगी। लेकिन किसी-किसी बात का जवाब न दे तो हो सकता है, लोग उसे गलत समझे। सो जवाब उसने दिया। पूछा—आपने किन सुविधाओं की उम्मीद की थी दीदी ?

कितनी मीठी आवाज। कौओं के झुंड में मानों वसंत की कोयलिया कूक ऊठी। सबने मुग्ध होकर उसे देखा। बेशक यह वात सही है कि भली लड़की, भला रूप और अच्छी तन्दुरुस्ती अगर कहीं है, तो हिंदू-समाज में ही।

बेगम ने कहा—यों समझें, भारत आजाद हुआ तो वहाँ की औरतों में जागरण की लहर दौड़ गई। लिखने-पढ़ने की लगन, नौकरी की धुन, सामाजिक उन्नति, अच्छी तरह जीने के उपाय...

हुस्ना बोली—लेकिन औरतों की सुविधा के लिए तो पाकिस्तान हुआ नहीं। पाकिस्तान तो हकीकत में मर्दों के एक वर्ग-विशेष का है। आप लोगों के लिए माथापच्ची करने का उन्हें समय नही है।

बेगम ने हँसकर हुस्ना की तरफ देखा। शुबहा नहीं कि वह निगाह स्नेह की थी। शांत स्वर में बोलीं—आप तो एक हिंदू महिला का मन लेकर बात कर रही हैं। लोग तो यह कहेंगे कि पाकिस्तान पर आपको गुस्सा है।

सुहासिनी हुस्ना भी हँसी। बोली—बजा फरमाती हैं आप ! बड़ा गुस्सा है। मगर गुस्से की बुनियाद पर ही तो पाकिस्तान खड़ा है। वह खड़ा है हिंसा और घृणा के ऊपर, लहू और मौत के ऊपर, माँ-बेटी और बहनों के अपमान के ऊपर। पाकिस्तान मे औरतों ने इज्जत ही कितनी पाई है दीदी ? मुसलमानों में जो बड़े-बड़े ज्ञानी-गुणी और विद्वान थे, उन्होंने हिंदुस्तान में पनाह ली है, पाकिस्तान में नही।

—यह क्या कह रही है आप ?

—हाँ, शायद हिंदू होने के नाते मैं गुस्से में यह सब कह रही हूँ। आप निगाहें फैलाकर देखें, हिंदू औरतें यहाँ अपमान सह रही है और मुस्लिम औरतें सह रही है उपेक्षा। एक उनके लोभ की सामग्री है, दूसरी है घृणा की पात्री। हिंदू औरतें तो यहाँ से निकलकर इस आफत से छूट जाएँगी, लेकिन आप लोगों का सिर कभी ऊँचा हो सकेगा ?

जो बाहर जमा थे, वे भी अवाक् हो गए थे और जो अंदर थीं, उनकी तो मानों साँस रुक गई। जिसके हाथों से अभी-अभी सबने कुछ-न-कुछ भेंट पाई है, जो अब तक लजीली, विनम्र, कम बोलनेवाली समझी गई थी, एकाएक वह मुखरा हो उठी ! घूँघट के अंदर से मानों एक क्रांतिकारी, विद्रोहिणी नारी लहक उठी, जिसे थोड़ी देर पहले तक समझा नहीं जा सका था। जिसे मुसलमान लड़की के रूप में कोई जान नहीं सका।

हुस्ना ने उत्तेजना को सँभाहला। उसे याद आ गया, यहाँ खरी-खोटी नहीं सुनानी चाहिए। ये सरल है, कोमल हैं, मूढ़ हैं। अबकी वह शांत स्वर में बोली—मेरे पति मुसलमान है, इसलिए मैं अपने को भी मुसलमान ही समझती हूँ। दीदी, मुझे मन, वचन और कर्म से मुसलमान होना पड़ा है। और ये बातें मैं उसी अधिकार से कह रही हूँ। कभी आपने इस पर ध्यान दिया है कि तमाम दुनिया आपको क्या सोच रही है ? दुनिया सोचती है कि औरत होते हुए भी औरतों पर होते हुए जुल्मों को आप लोग जुबान हिलाए बिना सहती है, आप लोगो की रीढ़ ही नहीं है ! मर्दों की लपटता से आप विचलित नही होतीं, छिछोरों की जहरीली लालसा में आपकी मनुष्यता जल ही क्यों न जाए, आपके कानों जूँ नही रेंगती !

बेगम बोली—लेकिन ऐसे मर्द तो हिंदू-समाज में भी है बहन।

हुस्ना बोली—है, लेकिन ऐसी औरते वहाँ नही है। वहाँ लोगों में लालसा की गुडई के लिए नफरत है, बहुत-सी औरतों से सम्बन्ध रखने-

वाले पुरुष के प्रति घृणा है, बर्बरों के लिए वहाँ सजा की व्यवस्था है। इसीलिए तकलीफ चाहे हजारों हों, मगर वहाँ की औरतें जीती हैं, खड़ी हो सकती हैं, जिम्मेदारी का बोझा ढो सकती है, पुरुषों से अपना काम करा लेती है। मगर यहाँ?

घुटी हुई उत्तेजना से नूरी की आँखें बगल में दपदपा रही थीं। उन निगाहों की भाषा समझना तो कठिन है, मगर उसकी व्यंजना सहज थी। उन आँखों में प्रशंसा का कैसा उच्छ्वास था, हुस्ना समझ रही थी।

बेगम बोलीं—मुस्लिम समाज में कितनी बड़ी-बड़ी महिलाओं ने जन्म लिया है, आपने क्या उनका नाम नहीं सुना?

हुस्ना ने कहा—आप चाँद सुलताना, रजिया, बेगम समरू, जहान आरा का ही तो नाम लेंगी न? वे प्रणम्य हैं, उनकी बात रहने दें; वे पाठ्य-पुस्तकों की तस्वीरों में रहें। वे अपवाद हैं। और हिंदू भी कह सकते है, उनके यहाँ भी अहल्याबाई, रानी भवानी इत्यादि हुईं। लेकिन आप उस ऊँचाई से हम लोगों के स्तर पर उतरें। गौर करके देखें आप, शुरू से मुसलमान लड़कियाँ चुराते रहे हैं और मुसलमान महिलाएँ उस अपमान को बरदाश्त करती रही है। सैकड़ों साल से बंगाल में मुसलमानों की यह हरकत होती रही है, मगर एक भी मुस्लिम महिला ने कभी इस नीचता और छिछोरेपन के खिलाफ आवाज उठाई है? औरतों की भाषा में कभी किसी मुसलमानिन ने आत्मगौरव का दिया है परिचय? कभी किसी की जुबान से यह बात निकली कि नारी-हरण पाप है? कहा कभी किसी ने कि मुस्लिम-माता के घर यह जुल्मो-सितम न होने दिया जाएगा?

बेगम हँस पड़ीं। पूछा—आपकी शादी कैसे हुई?

—मेरी?—हँसकर हुस्ना बोली—मुझे ज्यादा शर्मिंदा न करें। मैं सिर्फ दो बातें कह सकती हूँ। मैके से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रह गया है और दूसरे कि मुझे अपने किए का कोई अफसोस नहीं।

—फिर तो यह कहें कि आपके पति बहुत भले है ?

—बुरे होने का कोई उपाय नही था, दीदी।

—क्यों ?

—क्योंकि हिंदू लड़कियाँ ठगाना नहीं जानतीं—ठोंक-बजाकर अपनाना उन्हें आता है। स्वयंवर का रिवाज हिंदुओं में ही था। औरतों के लिए इतना बड़ा सम्मान कहीं भी कभी न था। मुसलमान औरतों की बदनसीबी है कि वे पति तो पाती हैं, उनकी मौखिक प्रशंसा पाती हैं, नही पाती हैं सिर्फ उनका प्रेम।

बेगम ने पूछा—आप क्या पूर्वी बंगाल के सिवाए किसी दूसरी जगह की बात कह रही हैं ?

हुस्ना बोली—जी नही, मैं सिर्फ बंगाल की ही कह रही हूँ। आप बता सकती हैं, बंगाल की महिलाएँ कब अपने वाजिब हक के लिए आवाज बुलंद कर सकेंगी ? ये कब मुल्ला-तंत्र के खिलाफ खड़ी होंगी ? ऐसे दिन का भरोसा दे सकती हैं आप ?

बेगम बोली—अपनी सामर्थ्य भी कितनी है बहन ?

—आपमें सिर्फ बाँदी बनकर रहने की सामर्थ्य है ? इसलाम की समाज-नीति की मुझे जानकारी नहीं है, शायद हो कि बहुतेरे मुल्ले-मौलाना भी ठीक-ठीक नहीं जानते। लेकिन इसलाम में यह बात कहीं है क्या कि बाँदी और नौकरानी बनकर रहने के सिवाए औरतों का और कोई रूप नहीं ? वे केवल बिछौने की सहचरी है, खयाल के खिलौने है ? जब चाहो तोड़ दो और जब चाहो नये ले आओ। क्या इसलाम मे ऐसा है कि हाट-बाट में नारी के शरीर से खिलवाड़ करना ही पौरुष है ? है कहीं इसलाम में ऐसा लिखा कि पारिवारिक परिधि और पवित्रता में से, अपने-सगों के प्रेम के बीच से किसी भद्र महिला को ले भागना ही पुरुष का धर्म है ? इसलाम में क्या बर्बरता को प्रश्रय दिया गया है, लोभ और लालसा को उकसाया गया है ? दीदी, यही मेरे सवाल है और ये सवाल सदा ही मेरे सामने झूलते रहेंगे।

बेगम खातून ने अबकी कुछ सकपकाकर कहा—डर हमें दो बातों का है, धर्म का और पुरुषों का। इसलाम की जानकारी मुझे भी नही। मगर इतना जानती हूँ कि वह पुरुषों का है, उसमे स्त्रियो का स्थान नहीं। आप गौर करके देखें, कोई भी स्त्री इसलाम के लिए सर-दर्द मोल नहीं लेती। और यह भी देखेंगी आप कि कोई भी मुल्ला कभी औरतों को बुलाकर इसलाम की वाणी नही सुनाता।

हुस्ना ने शांत भाव से कहा—मेरी विनती है कि अपने घरों में आप पवित्रता लाएँ—आपका घर पवित्र हो, सुंदर हो। यह मेरा उपदेश नहीं, कामना है। घर से सारी खुराफ़ातें आप दूर भगा दें और पुरुषों को आदमी बनाएँ। आप तो स्कूल चला रही हैं, लेकिन नैतिक बुनियाद मजबूत न कर सकें तो पढ़ा-लिखाकर क्या होगा? किताबों के हरूफ़ में शिक्षा नहीं है, शिक्षा है हृदय में। शिक्षा है स्नेह में, वात्सल्य में, प्यार में। पाकिस्तान महान् हो, उससे भी महान हों पूर्वी बंगाल के लोग। यह बात सरासर भूल है कि मनुष्य से धर्म बड़ा है। मनुष्य धर्म से कही बड़ा है। मनुष्यों ने बहुत कुछ बनाया है, उसी बहुत कुछ में धर्म भी एक है। धर्म की व्याख्या बराबर बदलती रहती है, क्योंकि मनुष्य बदलता रहता है। आप यही तो कहेंगी कि मैं एक हिंदू लड़की हूँ, हिंदुआनी लहू मेरी रगों में बहता है। मगर यकीन मानें आप, मुझे चलाने की मजाल किसी धर्म में नहीं। मैं धर्म से बड़ी हूँ, मेरा अब्दुल मुझसे भी बड़ा है, क्योंकि उसका धर्म है मनुष्यता। धर्म के आचरण, उसके अनुष्ठान, उसके अँध-संस्कार, उसके नारे—इनमें से किसी में हमें रस नहीं मिलता, आनंद नहीं आता। ईसाइयों के देश में ईसाई-धर्म की मृत्यु के बाद सभ्यता पनपी, क्योंकि गिरजा और पादरियों के शासन पर चलने को कोई राजी न थे। पाकिस्तान पर यदि मस्जिद का शासन हो, तो वह मस्जिद के अंदर जाएगा, लोग रह जाएँगे बाहर। राष्ट्र की नींव यदि धर्म पर खड़ी हो तो समझना होगा कि आकाश में महल बनाया जा रहा है। क्या हिंदू, क्या मुसलमान, क्या ईसाई, सभी ऊपर की ओर आसमान में परम पिता को ढूँढ़ते है, जो आसमान कि शून्य है।

जिन्हें शून्य से बल और भरोसा मिलता है, उनके भी पाँव मिट्टी पर ही टिके होते हैं, क्योंकि मिट्टी ही राष्ट्र है, धर्म राष्ट्र नहीं है। ईश्वर को मनुष्यों के अंदर ही ढूँढ़ना चाहिए—आकाश सदा सूना ही रहता है।

रात काफी जा चुकी थी। जो बातें हो रही थी, उनकी भाषा और उनके प्रवाह को बहुतों ने नही समझा, किंतु अपने घर लौटते हुए सब इस कमरे के प्रति श्रद्धा और स्नेह निवेदन करते गए। इस बीच मोताहर की बीवी दो-तीन बार खाने की ताकीद कर गई। कम उम्र की कई लड़कियों के सिवाए बाकी सब उल्लसित आनंद लिए लौट गई। बेगम खातून भी उठ खड़ी हुई। कहा—आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई। छोड़कर जाने को जी नहीं चाहता।

—मत जाइए,—कहकर हुस्ना ने हाथ पकड़कर उन्हें फिर बिठाल लिया। कहा—आप आज यही रहें, सुबह जायें।

—लेकिन वहाँ बताकर नहीं आई हूँ ?

नूरी ने कहा—मैं कलीमुद्दीन से तुरत कहला भेजती हूँ। आप ठहर जाएँ दीदीजी !

बेगम बोलीं—तुम्हारे खसम तो खैर नहीं हैं यहाँ। मगर इन्हें ? इन्हें भी सजा दोगी क्या ?

हुस्ना बोली—खोने का डर नहीं है। एक दिन नहीं ही उनका साथ रहा, तो क्या ? आप रह जाएँ, हम दोनों आज साथ सोएँगी।

नूरी उठ खड़ी हुई। कहा—तो मैं दोनों के खाने का इंतजाम करूँ। —वह बाहर चली गई।

हुस्ना धीमे से बोली—मुसलमान औरते अब अगर सभी डर छोड़कर खड़ी नहीं होती, तो हमारे लिए कोई उपाय नही। घर-घर चिराग जलाएँ, तो ये मुस्लिम मर्द फूँककर उन्हें बुझा देगे। इसलिए रोशनी के बजाए आग चाहिए। आग से गंदगी भी जलकर राख होगी और उसकी दमक में राह भी दीखेगी। एक-एक घर को उनके लिए असह्य बनाना पड़ेगा, तभी मुस्लिम पुरुष घर को बचाने की फिक्र करेंगे, तभी उनकी

नज़र बाहर से घर की ओर मुड़ेगी।

बेगम ने कहा—हम पर जो जुल्म होते है, उनकी शक्ल आपको मालूम है ?

—मालूम है। अपमृत्यु ! वही हो। अपमान से तो छुटकारा मिलेगा ! जीते हुए मृत रहने से मरकर जी जाना क्या अच्छा नहीं है ? भारत और पाकिस्तान, ये दो नाम नाम के है। हिंदू लड़कियाँ लड़ना जानती है, स्वामी पर शासन करना जानती हैं, इसलिए वे जी सकती हैं। लेकिन इस तरह जुबान पर ताला लगाए रहने से मुस्लिम महिलाएँ तो नहीं बच सकेंगी दीदी ! तुच्छ होकर जिन्दा रहने से बड़े होने की कोशिश करते हुए मरना कहीं बेहतर है ! लाखों-लाख भले मुसलमान परिवारों को मुसलमानी प्रवृत्ति ने कलंकित कर रखा है। आप लोगों के गर्भ से एक नई जाति का जन्म हो, जो पाकिस्तान के सम्मान को लौटाए, जो उसकी सच्ची आजादी लाये।

नूरी आयी। कहा—आइए भाभीजी; दीदीजी, चलिए। भोजन तैयार है।

बेगम खातून तड़के ही उठकर अपने घर चली गईं। लिहाजा सुबह उनसे मुलाकात न हो सकी। सुबह भोजन करने की खटखट बाकी थी, सो उसे चुकाकर हुस्ना जाने के लिए तैयार हुई। हिरण पक्के पुरोहित ब्राह्मण का लड़का था, लेकिन मुसलमान का पक्का बाना बनाया उसने, शुबहा की गुँजाइश ही नहीं। उसने वह लाल टोपी सिर पर चढ़ाई, कानों में कुँडल डाले—जो मोताहर ने उसे उपहार में दिये थे। खँजड़ी को सँभाला—उसे अपने मामा रहमान के लड़के को देना था। आँखों में सुरमा—दाढ़ी बनाते समय नूर पहले ही रख छोड़ा था। पाँवों में बैंगनी पंप प्लास्टिक का, बदन में अद्धी का वही कुरता ; गले से नीचे तक लटकी थी बटनों की रूपहली जंजीर। हुस्ना ने ये चीजें खुद अपनी पसंद से कलकत्ते

के चाँदनी बाजार में खरीदी थी। जिंदगी में अनेक प्रकार के कौतुक न हों, तो श्रीमती हुस्ना का जी नहीं भरता। बिना झिझक के झूठ बोलने में उसकी सानी नही और सच बोलने में भी उतनी ही निडर, कोई सकुचाहट नहीं!

वे दोनों घाट पर नाव में सवार हुए। सारा गाँव उन्हें विदा देने आया था। नूरी और उसकी माँ आँचल से आँखें पोंछ रही थी—नूरी को हुस्ना छिपाकर स्नेह से पच्चीस रुपये दे आई थी। आँख में पट्टी बाँधे हुए हूरी आई थी, लेकिन वह बहुत ही भोली थी, सो उससे बातें न हुईं। चौकीदार मोताहर गाँव का मुखिया था, इसीलिए बेटी-दामाद की विदाई में उसने हर बात की निगरानी रखी। हुस्ना ने अपना नाम सुहासिनी रख छोड़ा था। नाव पर उस नकली नाम की उसने पूरी कीमत चुकाई। उसके बैंगनी जूड़े पर धूप पड़ रही थी, ललाट की बिखरी अलकों और सुनहले रंग पर किरणों की खिलवाड़! रोशनी में उसके कपाल पर की पसीने की बूँदे सबेरे के रंगीन ओस-बिंदुओं से झलमला रही थीं।

नाव खुलने पर अब्दुल ने गाँव-भर के स्त्री-पुरुषों से विदाई ली। नाव को जाना पश्चिम था, पर अभी दक्खिनी किनारे से चल रही थी।

बीच में हुस्ना ने पुकारा—अब्दुल ?

हिरण ने मुड़कर ताका।

हुस्ना ने पूछा—यहाँ हिंदू लड़की की कैसी आवभगत हुई ?

हिरण ने कहा—राँची मे एक मुस्लिम लड़की को जो इज्जत मिली थी, उससे ठीक उलटी मिली यहाँ। क्षति की पूर्ति हो गई।

हुस्ना अंग्रेजी में बोली—खबरदार, यह मल्लाह हमें ताड़ न सके।

—ताड़ ही ले तो क्या हर्ज है ?

—हेलेन के लिए ट्रॉय की लड़ाई का खतरा है!

हिरण ने पूछा—तू क्या समझती है, इतनी रूपवती है तू ?

सुहासिनी हुस्ना ने जरा कयामतवाली हँसी हँसी। बोली—मेरा खयाल है, मैं पाकिस्तान की शिवरात्रि की शिखा हूँ। कहीं ट्रॉय की लड़ाई में तू

काम आया तो नेह की कमी से यह बाती बुझ जाएगी। कॉमरेड, कभी तेरे दोनों बगल में रुक्मिणी-सत्यभामा जुट आएँ तो आएँ, मगर तू तो द्रौपदी का सखा है, मेरे अंतर्यामी !

नाववाले ने कहा—जनाब, नाव के ठीक बीच में बैठें। लहरें चोट कर रही है। पाल से झोंके लड़ रहे हैं।

वे दोनों बीच में आ बैठे—एक-दूसरे से सटकर हिरण ने पूछा—आज सुबह-ही-सुबह यह स्तुति कैसे शुरू हो गई ?

—तुझसे कुछ मतलब साधना है ।

—जैसे ?

हुस्ना बोली—नाव से उतरकर तू खँजड़ी बजाना और मैं नाचूँगी।

भँवें सिकोड़कर हिरण ने पूछा—आखिर क्यों ?

हुस्ना बोली—मान ले, यही अपना पेशा है। रंगीन जरीवाला वह घाघरा मैं साथ लाई हूँ। याद है, जो बड़े चाचा ने दिया था ? नाचने की ख्वाहिश हो रही है, कॉमरेड।

हिरण ने होंठ को दाँतों से जरा दबाकर कहा—लेकिन तेरी तंदुरुस्ती की यह तरक्की नाच के लिए अड़चन न होगी ?

अपनी शंख-ग्रीवा डुलाकर हुस्ना बोली—बिलकुल नहीं। मैं नाचूँगी, मेरी तंदुरुस्ती नाचेगी, नाचेगा पाकिस्तान और नाचेंगे मुसलमान,—बेजा क्या है ?

—और भी कोई साजिश ?

—है। तू खँजड़ी पर गीत गाना। कितने जतन से तुझे गाना सिखाया था मैंने, याद है ?

हिरण ने कहा—इसीलिए तू मुझे स्वांग बनाकर नचाएगी-गवाएगी !

यक-ब-यक हुस्ना का चेहरा बदल गया। सुदूर नदी-वक्ष की ओर बड़ी-बड़ी आँखें फैलाकर वह बोली—इसके सिवाए और कोई चारा नहीं कॉमरेड। इन्हें नाच-गान के आनन्द से मोहना होगा, मोहना होगा इन्हें वेदना-बोध जगाकर। ये जानें कब से उपेक्षित है, सताए हुए हैं।

शरीर लड़का माँ की गोद में लोरियाँ सुनकर शात होता है। हमारे गीत सुनकर ये मोहित हों, नाच देखकर आनन्द से पुलकित हों, कविता की व्यंजना से मुग्ध हों।—इतना कहकर वह नाव के टप्पर में घुस गई।

पच्छिमी किनारे पर पहुँचने मे कोई घंटा-भर लग गया। आश्विन का महीना। भाटे के कारण नाव को मनमाना ले चलना आसान न था। नाव घाट पर जा लगी। सामने ही था सखारामपुर का बाजार। शहरी बाजार। कई घर पक्के के भी थे। कई आढ़तें। पटवारी-मारवाड़ियों का बहुत बड़ा अड्डा। बनियों का मसाले का व्यापार। कसेरे यहाँ से बर्तन बाहर भेजा करते। और मील-भर चलने से गोपालपुर कचहरी पड़ती थी।

घाट पर उतरते ही मजीरावाली खँजड़ी बज उठी। ताल के साथ मीठी धुन में गूँज उठी अब्दुल के गीत की दो कड़ियाँ। शरत् की सुनहली धूप—आसमान में उड़ते हुए कबूतरों का झुँड, नीला आसमान! नीचे दूर-दूर तक फैली हुई गेरूआ कपड़ेवाली वैरागिन नदी। मछुओं के घाट पर चील गर्टर की आवाज। सफेद मेघों के देश में एकाकी मन राह भुलानेवाले सुर से उड़ जाता। ऐसी पृष्ठभूमि में हिरण के स्वर में प्रतिध्वनित हुआ विरही का वेदना-विकल स्वर। मातृभूमि की मिट्टी के नीचे से जाने कौन पुकार रहा था!

एकाएक नाव में से उतर आया नीचे एक नया ही छंद; कैसी अनोखी मधुकंठी नर्त्तकी! अंगिया पर मलमल का दुपट्टा। कानों में कँगना, आँखों में काजल, माँग में सिंदूर, सच्चे जर का काम किया हुआ राजपूतानी घाघरा। बाजार के लोग घाट पर आ गए। देखते-ही-देखते खचाखच भीड़ हो गई। लड़की हिन्दू और लड़का मुसलमान। दोनों की अनोखी साज-पोशाक, उससे भी अनोखा रूप! सुहासिनी ने अब्दुल के मुँह से टेक की कड़ी को लोक लिया। और अपने गले की मधुरिमा मिलाकर गीत को उसने अनन्त आकाश मे छोड़ दिया। छोड़ दिया महा-शून्य के नील विस्तार में, जहाँ वेदना का चिरविरह-लोक बसता है!

बाजार की भीड़ में नाचवाली के घाघरे ने चक्कर लिया। ताल-ताल पर खँजड़ी और मँजीरा ! नाचते-नाचते नर्त्तकी मानों सारे बन्धन खो बैठी—कंठ का, प्राणों का, सत्ता का, संस्कार का—सब कुछ का बन्धन बरबस जैसे खुल गया। नाच के सम पर आते ही हिरण ने बाइल-संगीत शुरू कर दिया। जो सहज ही पाया नहीं जाता, उस प्रेम का गीत ! उस प्रेम का गीत, पाने पर जो खोता नहीं। तेरी छाती में जलती है जिस प्रेम की आग, उसी प्रेम की बात लगी है हर जुबान पर ! जो जल नहीं सकता, वह उसे कैसे पाए !

गीत की टेक को पकड़कर पपीहा का कल-कंठ फिर सुदूर आकाश को उड़ गया। हुस्ना की आँखों के कोने गीले हो आए, कंठ में उमड़ आई अथाह मधुमती की रुलाई, कलेजे में भर उठा अमृत का सागर।

उस रोज सखारामपुर का बाजार उजड़ गया। नावें बीच नदी में रुकी रहीं, घाट पर उमड़ आया जनता का समंदर। विरह-विधुर कंठ की यह धुन जहाँ तक पहुँच सकी—वल्लभडीह के खेतों के पार, वैरागी की हाट से आगे, नदी की खाड़ी के उस पार—वहाँ-वहाँ से बूढ़े-जवान, औरत-मर्द, बालक-बालिकाओं की कतार बाजार की ओर टूट पड़ी। यह है गीत की पुकार, नाच का झटका, जिस नाच के पायलों की झंकार से छिटकी आती है महासागर के अंतस्तल से चिनगारियाँ, आँधी के केन्द्र को प्रलय-तांडव इशारे से उतावला किए देता है, भूडोल छिन्न-भिन्न कर देता है संस्कार में बँधे मनुष्यों की बसी-बसाई गिरस्ती को और कक्षविहीन होकर नक्षत्र बिखर पड़ते है जहाँ-तहाँ।

जो बेदर्द है, वही तो प्रेमी है। जो हमें जलाता है, वही तो हमारा अपना है, हमारे प्रेम का परीक्षक। उसी को देखकर जीते हैं जिस काफ़िर पे दम निकले ! हमारे इस शरीर की कीमत भी है कुछ ? मरने के बाद यह देह माटी में मिल जाएगी। उस मिट्टी पर सबके चरण चलेंगे और चरणों के स्पर्श से इस अभागिन की मुक्ति होगी। लेकिन इस जीवन में तो मुझे रुलाओ, सताओ, जलाओ—उसी रस में

धधकती रहेगी ज्वाला और अनुक्षण उसमें जलती रहूँगी मैं—यही तो है प्रेम का रस !

भाइयो-बहनों, सुनो, सुनो मेरे दोस्त, मेरे दुश्मन, सुनो। वियोग में प्रेम है और मिलन में हैं आँसू। ऐ निर्मम निर्दयी, तू क्या सिर्फ जलाता ही रहेगा, सोचेगा, डरेगा और शंका ही करता रहेगा ? प्रेम की भीख न देगा तू ? तेरी इस अथाह नदिया में मैं प्यासी ही तड़प कर मरूँ ? भरी फसलोंवाले खेतों के होते सूख-सूखकर मरूँ ? मीत, मेरे अज्ञान का बोझा तू सँभाल और मुझ पर रख प्राणों का बोझ !

हुस्ना की नैन-कोर से आँसू की गरम बूँदें ढुलकने लगीं ; बालों के भीतर से कपाल पर होकर पसीने के बिन्दु चूने लगे। गर्दन झुकाए वह टेक की कड़ी गाती हुई सबके सामने हाथ फैला रही थी। भीख दो !

उसकी चिकनी पल्लव सुकोमल नंगी बाँह को देखकर पान चबाते हुए भीड़ में से एक मारवाड़ी आगे आया और उसके हाथ पर दस रुपये रख दिए। गाते-गाते ही हुस्ना ने वे रुपये फेंक दिए और नया गीत शुरू कर दिया—

ऐ मरबाड़ी भैया,
नहीं देह का, प्राणों का करती हूँ कारोबार
देकर प्राण चाहता है जो प्राण
उस पर तन, मन, धन सर्वस्व निसार।

हिन्दू औरत होने के बावजूद उसने एक मारवाड़ी के रुपये ठुकरा दिए, यह नजारा देखने ही लायक था। हिरण ने हुस्ना के हर काम की तारीफ की और खँजड़ी पीटकर तुरत उसने इस माजरे को एक गीत में गूँथ डाला।

नाच जब टूटा, बेला काफी हो चुकी थी। उत्तेजना, आवेग और आनन्द से हुस्ना का शरीर तब भी थिर नहीं हो सका था। घाट से हट-

कर वे हाट के पास एक जगह छाँह में जा खड़े हुए। चारों ओर खासी भीड़, नर-नारी का मेला। किसी ने उन्हे बैठने के लिए चौकी दी, तो चेहरे पर उनके पसीना देख कोई दौडकर दो नये अंगोछे ले आया। कोई हाथ बाँधकर उनके सामने खड़े होकर कहने लगा—बेअदबी माफ कीजिएगा। जो हमारे लायक खिदमत हो, फरमाएँ।

हुस्ना ने खूब समझा—आराम करने की गुँजाइश नही। लोगों में विस्मय रहे तो रहे, इनका कौतूहल न उमड़ पड़े। भोजन वे मोताहर मियाँ के यहाँ कर आए थे, सो उसकी तो कोई उतावली न थी। अब्दुल ने कहा—हम निहायत मामूली आदमी हैं, निरे गरीब। हमारा कुछ दावा नहीं। यह तो अपना पेशा ठहरा।

—कहाँ जाएँगे आप लोग ?

—हम बगुड़ा जाएँगे, बगुड़ा से रंगपुर और वहाँ से मैमनसिंह।

किसी ने पूछा—आपकी बीवी शायद हिन्दू-कन्या हैं ?

जवाब हिरण के बदले हुस्ना ने ही दिया। कहा—हाँ, मियाँ साहब, मैं हिंदू हूँ, एकबारगी निष्ठावान ब्राह्मण परिवार की निष्पाप कुमारी कन्या !

उसकी मीठी बोली से सब गद्‌गद हो गए। बहुतों ने आपस में यह कहा,—बड़े भाग्य से ऐसों के दर्शन मिलते हैं।

शरबत, मिठाई, फल-मूल पहुँच गया, तरह-तरह की चीजें आईं। लोग सादर उन्हें एक बरामदे में ले गए। अपनी साज-पोशाक और झूठे परिचय के कारण हिरण सकुचाता हुआ सबका स्वागत स्वीकार कर रहा था। लेकिन हुस्ना के न तो चेहरे पर, न आँखों में, कहीं भी कोई विकार न था। वह उतनी ही सहज थी, उतनी ही उन्मुक्त। उसे जिस आसानी से बनाकर तोड़ा जा सकता है, उतनी ही स्वच्छंदता से तोड़कर बनाया भी जा सकता है। जब जैसा जी चाहा, किसी भी धर्म या जाति की छाप लेने में उसे जरा भी हिचक नहीं होती। क्योंकि वह बराबर कहती आई है, औरतों पर संसार के किसी भी धर्म को मानकर चलने की

जिम्मेदारी नहीं, स्त्रियों का एक ही धर्म है, नारी-धर्म। संसार के किसी भी समाज, जाति और धर्म में स्त्रियाँ सहज ही घुल-मिल सकती है, पुरुषों के लिए यह गैर-मुमकिन है। यह कौन नही जानता कि धर्म और समाज को पुरुषों ने बनाया है, औरतों ने रचे है प्राण। औरतो का सारा कुछ प्राण पर ही है, प्रेम पर ही टिके है उनके प्राण।

वहाँ के कई गण्य-मान्य व्यक्ति दरवाजे के पास आकर खड़े हुए। उन दोनों ने मुड़कर देखा। उनमे से एक ने कहा—बेगम साहिबा और जनाब-आली, हम आप दोनों से ही आग्रह करते है, अगर आप यहाँ की कोई भेंट कबूल नहीं करेंगे, तो सखारामपुर की बड़ी बदनामी होगी। आप मेरे उपहार स्वीकार करें, बड़ी दया होगी आपकी।

हुस्ना ने पूछा—बताएँ, हमें क्या करना होगा ?

उनमें से एक ने घुटने टेके। आपने आज जो खुशी लुटाई है, उसकी तुलना नहीं हो सकती। जीते जी इसे हम भूल न सकेंगे। आपने बताया, नाच-गान आपका पेशा है। हम लाखों रुपये आपको दें तो भी उसकी कीमत न होगी। हम सखारामपुर की ओर से महज पाँच सौ रुपये की मामूली-सी थैली आपकी खिदमत में पेश करना चाहते है। हमारी बेअदबी माफ करें।

हुस्ना बोली—हम आपसे इनाम लें, मगर हमने आपकी सेवा क्या की है ?

एक प्रौढ़ व्यक्ति ने कहा—इन्सान के लिए आपके आँसू ढुलके हैं, पाकिस्तान के लिए आपके दिल का दर्द उभरा है, यही तो सेवा है। आपके गीत-नाच से लोगों का जी भर आया है, वे रोये है—यही तो खिदमत है ! इन थोड़े-से रुपयों को लेकर आप हमें धन्य बनाएँ।

हुस्ना ने घुटने टेककर रुपयों की वह थैली ले ली। इधर अब्दुल ने सबसे हाथ मिलाया, बातें कीं। आज सारा बाजार उनके नाच-गान के आनन्द से झूम उठा। आज हुस्नबानू एक विराट् जनसमुदाय का स्नेह बटोरकर ले चली। हिरण का चेहरा गर्व और गौरव से दमक उठा।

बाजार के बाहर दूर तक फैली बैहार और खेतों से होकर राह गोपालपुर को चली गई है। पता चला है, गोपालपुर में डाक-बँगला है। एक रात काटना वहाँ कठिन न होगा। कल सुबह वहाँ नाव से नदी पार करने के बाद स्टेशन मिलेगा।

हाट के अहाते से निकलकर जब दोनों ने गाँव की सरहद पर रास्ता पकड़ा, तो सखारामपुर के सारे लोग स्नेह-श्रद्धा-भरे उनके पीछे खड़े रहे। चलते समय हुस्ना के पास खाने-पीने की जो भी चीजें थीं, सब उसने वहाँ के बच्चे-बच्चियों को बाँट दी थीं।

निर्जन में चलते-चलते हिरण ने कहा—इस पुरोहित के बेटे को अब्दुल न बनाया होता, तो क्या होता ? और तू हुस्नबानू ही बनी रहती तो क्या हर्ज था ?

हुस्ना हँसी। बोली—देखती हूँ, दो दिन से इस बात की तुम्हें बेचैनी है। लेकिन पाकिस्तान होने के बाद से तूने कभी सुना है कि किसी खूबसूरत मुसलमानिन से किसी अच्छे हिन्दू ने शादी की है ?

हिरण ने कहा—लेकिन यह जताने में ही कौन-सा हर्ज था कि हमारा सम्बन्ध झूठा है ?

—फिर तो और भी खतरनाक होता।

—क्यों ?

—तुझे ढूँढ़कर पाना मुश्किल होता।

हिरण ने कहा—यानी ट्रॉय की लड़ाई होती ! लेकिन बार-बार तू अपने को खूबसूरत क्यों कहती है ?

—यह बात तू मुझी से सुनना चाहता है ? तो सुन। ये पाँच सौ रुपये तुझे किसकी बदौलत मिले ? अगर कोई बदसूरत स्त्री नाचती होती, तो लोग कहते भूतनी की उछल-कूद हो रही है। खूबसूरत स्त्री नाचती है, तब नाच होता है।

हिरण ने पूछा—तो क्या तेरी कीमत पाँच सौ रुपये है ?

—नहीं। चूँकि लाख रुपया उनसे देते न बन पड़ा, इसलिए

पाँच सौ ।

चलते-चलते हिरण बोला—अगर लाख रुपये पर तुझे खरीदा जा सकता है, तो चल, न हो तो मीरा के नाम की बेनामी जमीदारी हम बेच आएँ ?

हुस्ना होंठ दबाकर हँसती हुई बोली—आज तेरे दिल में ऐसी कमजोरी क्यों कॉमरेड ?

—इस कमजोरी की कीमत भी एक लाख है !

हुस्ना झपटकर दो कदम बढ़ी और हिरण का हाथ थामकर बोली—तुझे आज हुआ क्या है, बता ?

हलका हँसकर हिरण बोला—मन कमजोर हो गया है ।

हुस्ना ने पूछा—मेरे नाच की पोशाक ने तुझे चंचल किया है ?

हिरण ने कहा—राम कहो, राजपूतानी के घाघरे के साथ मेरा मन डोलेगा, अपने कॉमरेड को इतना छोटा समझती है तू ?

—फिर ?

हिरण बोला—बड़े दिनों के बाद तेरा नाचना-गाना मुझे अच्छा लगा ।

हुस्ना बोली—यकीन नहीं आता । मेरे नाच से आम लोगों का मन मोहित होता है, तेरा मन कैसे मोहेगा ?

—मन थका-हारा हो, तो एक हलकी झंकार ही बहुत है । तेरे गीत में आज वियोग की वेदना फफक रही थी, सारा बंगाल काँप उठा, उन लोगों ने गलत नही कहा ।

—मगर तू आज थका कैसे है ?

हिरण चुपचाप चलने लगा । गोपालपुर की छोटी-सी कचहरी सामने दीख रही थी । दाहिनी ओर स्कूल । डाक-बँगले का अभी कहीं पता नहीं । कुछ दूर चलने पर बाई तरफ फूस का एक घर मिला । बाहर दीवार पर लिखा था: जयराम दास की दूकान । लेकिन न तो दूकान थी, न था कोई आदमी । हुस्ना बोली—अन्दर चल तो । तू यह

खड़ा रह। मै जरा घाघरा बदल डालूँ।

हिरण से टिनवाला सूटकेस लेकर हुस्ना अन्दर गई। और दो-तीन मिनट के अन्दर नाचवाली पोशाक उतारकर धोती और अँगिया पहने बाहर निकली। हिरण ने कहा—सिन्दूर नही मेटा ?

—सिन्दूर रहने दो। अब्दुल भी रहे।—उसने हिरण को सूटकेस दे दिया। हिरण ने अपने कुँडल खोलकर जेब में डाल लिए।

दोनों बहुत सहज होकर चलने लगे। कुछ दूर चलकर हुस्ना ने कहा—डाक-बॅगले मे पड़े-पड़े आज दिन-रात हम थकावट की बातें करेगे। जब तुझे झपकी लगने लगेगी, मैं गुनगुनाकर गीत गाऊँगी।

हिरण ने कहा—कही तुझे ही पहले नींद आ जाए ?

हँसकर हुस्ना बोली—ठीक तो है, तू मेरी तंद्रालुता को अपलक देखना और कोई कविता लिखना। मेरे सिरहाने मोमबत्ती जलाना, बाहर से हवा में आश्विन के हरे धान की गंध उड़कर आएगी। खिडकी खोल देना ताकि शुक्ल-पक्ष का अन्तिम चाँद मेरे चेहरे पर हॅसता हुआ चला जाए।

हिरण ने कहा—तू बार-बार लोभ क्यों दिखाती है भला ?

दोनों के कपाल से पसीना चू रहा था। हुस्ना बोली—लोभ इसलिए दिखाती हूँ कि तुझे लोभ है नहीं। मैने तुझे हराने की कोशिश में खुद मुँह की खाई है। यह काला मुँह लिए अब क्या कभी मैं मीरा के सामने खड़ी हो सकूँगी ?

चकित होकर हिरण ने कहा—क्यों ?

हुस्ना बोली—मैं बड़े दंभ से कह आई थी उससे कि अपने उत्ताप से मैं बर्फ को गलाऊँगी। लेकिन कहाँ, गला भी सकी ?

—तूने मुझसे चाहा क्या था ?

—राक्षसी और चाहती क्या है ? सब कुछ ग्रास करनेवाली क्या पाकर खुश होती है ?

हिरण ने कहा—इसके लिए तू मेरे आगे लोभ का बाजार पसारेगी ?

मेरी अकाल मृत्यु में तेरे जीवन की कौन-सी सार्थकता है ?

एक बड़े पेड़ की छाँह में दोनों खड़े हुए। हुस्ना बोली—और कुछ नही, मैने तेरे जीवन की वसंत-बहार देखने की कोशिश की थी, तेरे यौवन के निकुज में चिड़ियाँ चहकें और तब कहीं तेरी नीद टूटे। लेकिन मेरी सारी माया तूने बेकार कर दी कॉमरेड। मैंने सोचा था, तुझे पूर्णतया खिलाकर मीरा के हाथों सौंप मैं छुट्टी लूँगी, और किसी काम में लग जाऊँगी, लेकिन न तो तू खुद खिला, न तूने मुझे ही खिलने दिया !

हिरण ने पूछा—हमें छोड़कर तू कहाँ जाना चाहती है ?

—वहाँ, जहाँ जाने पर तुम लोगों की बातें सोचने की फुर्सत न मिले। मेरे पैरों काँटे चुभते, लहू टपकता, नई-नई चोटें खाती, दाएँ-बाएँ लहरों के हलकोरे दिशा भूलती, बलवान के अनाचार के आगे सिर झुकता, सारी जिंदगी के मंथन से सिर्फ जहर उगलती, शायद ऐसी राह पर जाने से मैं अपना सच्चा परिचय पाती। याद पड़ती है उस रोज की बात, जिस रोज गुँडों ने हाजीपुर के मकान में आग लगाई थी, ब्याह की रस्में छोड़कर तू और मीरा बड़े चाचा के साथ चल दिए थे। कुछ दूर तक मै भी साथ-साथ गई थी। मगर तुरत फिर हाजीपुर के उसी मकान को लौट गई मैं। रात के अंतिम प्रहर में अँधेरे खेत की माटी में मुँह गाड़कर मैं फुक्का फाड़कर रोई थी जरूर, लेकिन फागुन की उस सूखी मिट्टी को आँसू से भिगोकर माथे पर उसका तिलक लगाया था। उस दिन मैंने प्रतिज्ञा की थी कि इस अँधेरे में रोशनी जलाऊँगी। अपनी माँस-हड्डियों से प्रकाश फैलाकर उस उजाले में सबको बुलाऊँगी। उस आग में डर-शंका, घृणा-अपमान सब जलकर स्वाहा हो जाएँगे। अपना जीवन सार्थक होगा। लेकिन मेरा एक नैतिक बंधन रह गया तुम लोगों के साथ ! तुम लोगों को तकदीर के भरोसे छोड़ निश्चिंत कहाँ रह सकी मैं ? तुम लोगों की गिरस्ती बसा सकती, तो चरम मुक्ति होती मेरी, कॉमरेड ?

हिरण ने कोई जवाब नहीं दिया।

दोनों थक गए थे। भीग गए थे पसीने से। पच्छिम के इलाके में घूमते रहने से उनकी तंदुरुस्ती सुधर गई थी। जरा धूप लगी नहीं कि चेहरा सुर्ख हो उठता। छाँह में बड़ी देर तक रुककर उन्होंने शरत् की स्निग्ध हवा से जी जुड़ाया, उस हवा में मानों समग्र बंगाल के स्नेह का स्पर्श था। वह मानों माता का गीला आशीर्वाद हो!

हुस्ना ने अपने आँचल की कोर बढ़ाकर कहा—ले, चेहरे को पोंछ ले।

आँचल से मुँह पोंछकर हिरण ने कहा—चल, अब आगे बढ़ें।

सूटकेस और पोटली सँभालकर फिर दोनों आगे बढ़े। अपराह्न हो आया था। रास्ता पच्छिम की ओर मुड़ चला। लेकिन थोड़ी ही दूर चलने के बाद उन्हें अपनी भूल मालूम हुई। सखारामपुर के बाद पड़ता था जूट के व्यापार का एक केन्द्र। आस-पास महाजनों की गद्दी। इस पार-उस पार के अनगिन लोग वहाँ आये थे। जूट नदी की तरफ ले जाया जा रहा था, वहाँ से बजरों पर बाहर भेजा जाएगा। जूट की खरीद-बिक्री के लिए वहाँ पर छोटा-सा एक शहर ही बस गया था। जहाँ-तहाँ कोरोगेट की छौनीवाले घर।

रूप, जवानी और मस्ती की लहरें उठाते हुए दोनों सबके बीच में से चले जा रहे थे। इसमें कोई शुबहा नहीं कि ये परदेसी थे। यहाँ के रहन-सहन से इनका कोई मेल नही बैठता—मानों यहाँ की दैनंदिन जीवन-धारा के बीच ये एक महान् वैचित्र्य हों। इसीलिए काम-काज छोड़कर बहुतों ने उनकी ओर ताका। लड़की हिंदू है, नाचवाली है; कुछ ही पहले कुछ लोग इसे सखारामपुर में देख आए हैं। लेकिन अभी नाच-वाली का बाना नहीं—अभी गृहस्थ-बहू के वेश में वह खूब फब रही है। और यह खूबसूरत मुसलमान जवान, उसकी निगाहों में जैसे ख्वाब के आसार हों, वह मानों सब कुछ से अलग-थलग, किसी तरफ कोई खास झुकाव नहीं। वे पति-पत्नी के सम्बन्ध से बहुत ऊपर हैं, मानों चिरंतन नर-नारी हों—पुरुष और प्रकृति।

प्रशंसा-भरी आँखों सड़क के दोनों ओर के लोग उन्हें देखते रहे।

हाट से आगे थाने के बाद वहाँ का डाक-बँगला पड़ता था। लेकिन उन्हें उतनी दूर तक जाना न पड़ा। थाने के बाद के बँसबन्ने को पार करते ही बगल के मुहल्ले से किसी नारी-कंठ ने टोका—हुस्ना जीजी, यह बाना क्यों ?

वे दोनों सहसा मानों वास्तव जगत् की मिट्टी पर गिर पड़े। चौंक-कर हुस्ना ने उधर को देखा। सामने व्यंग की हँसी हँसती हुई खड़ी थी कुलसुम। कुछ क्षण तक हुस्ना बुत-सी खड़ी रही। उसके बाद पूछा—तुम यहाँ ?

कुलसुम ने लड़ने को जैसे सींग बाँध लिया। गर्दन ऊँची किए रुखाई से बोली—और तुम यहाँ कैसे ? वाह, बाना तो खूब बनाया है। और, बगल में यह हिरण चक्रवर्ती ही हैं न ? वे बने हैं मुसलमान, तुम हिंदू। खूब ! लेकिन यह बाना बनाकर इधर आने का मतलब क्या है ?

कुलसुम की आवाज से बहुत-से लोग पास आ गए। कलकत्ते के मकान में एक दिन कुलसुम की आँखों में आक्रोश की झलक दिखाई पड़ी थी, आज इस सुदूर देश में गोया वह उसी का बदला चुकाने पर तुली हो।

हुस्ना ने कहा—कुलसुम, जरा शांत होकर बातें करो। हमारा मत-लब क्या है, यह फिर सुनना। लेकिन तुम यहाँ कैसे आ गई ? चटगाँव नहीं गईं ?

—आखिर क्यों जाऊँ ?—कुलसुम फिर चीख उठी—तुम्हारे मामा हुसैन साहब, तुम्हारे ममेरे भाई अफजल—तुम्हारे सात पुश्त बेईमान, बदमाश और नमकहराम हैं।

हुस्ना ने आग्रह किया—कुलसुम, शांत हो बहन।

—शांत क्यों होने लगी मैं ? कोई अगर मुझे दर-दर की ठोकर खाने के लिए छोड़कर भाग खड़ा हो, मैं उसका बदला नहीं चुका सकती ? तुम्हारा वह हरामी भाई अफजल, मुझे फुसलाकर ले आया और चबा-

कर यहीं डाल गया ! मैं उसका कसूर नहीं निकाल सकती ? एक मर्द के बदले मैं पाँच नहीं जुटा सकती ?

हिरण दम रोके खड़ा-खड़ा काँप रहा था। काफी भीड़ बटुर आई थी। उसका यह मुसलमानी वेश अब मानों चारों तरफ से उसका व्यंग कर रहा था, उसे धिक्कार रहा था। उसके पैरों के नीचे की मिट्टी खिसकी जा रही थी।

लेकिन हुस्ना में जरा भी उत्तेजना न थी। धीरता से पूछा—तुम्हारी शादी हो गई कुलसुम ?

—शादी ?—वह पिशाचिन-सी हँस उठी। बोली—मेरी शादी रोज-रोज होती है। मैं तुम्हारी तरह छिपाती तो हूँ नहीं, न ही तुम्हारी तरह माँग में सिंदूर भरकर सती बनी डोलती फिरती हूँ ! शादी ! खुद तुम क्या शादी करके मर्दों का चुनाव नहीं करती चलती। इस हिरण चक्रवर्ती को मिलाकर कितने खसम हुए तुम्हारे ?

कुलसुम के आस-पास खड़े तीन-चार आदमी बड़े भद्दे ढंग से हँसी-मजाक कर रहे थे। हुस्ना बोली—कुलसुम, तुम हमारे सगे-सम्बन्धी की बेटी हो, तुम्हारी यह गत देखकर मुझे दुःख हो रहा है। मैं जानती थी, यही होगा और इसीलिए कलकत्ते के मकान में उस रात मैंने तुम्हें उसके चगुल से बचाने की कोशिश की थी। तुमने मेरी बात पर कान न दिया और भाग गई।

—रुको भी,—कुलसुम ने बाधा दी,—बहुत हो चुका, रुको। खुद तुम क्या हो ? तुम्हारा एतबार कौन करे ? तुम स्वांग रचकर यहाँ जासूसी करने के लिए किस हिम्मत से आई हो ? एक हिंदू को मुसलमान बनाकर किस इरादे से नाचती-गाती फिर रही हो ? शायद उस जमींदार ने कुछ घूस खिलाया है ? ठहरो, मैं सारा भंडा फोड़ देती हूँ। लगता है जैसे इस देश में थाना नहीं है, पुलिस नहीं है, लोग नहीं है, क्यों ?

देखते-ही-देखते बात दूर तक फैल गई। आज ही सुबह इन दोनों ने सखारामपुर में नाच-गाकर बहुतों को मोहा है। उनकी यह रहस्यमयी

बात बहुतों के लिए शंका का कारण बन गई। देखते-ही-देखते कुछ लोगों ने हिरण को घेर लिया और इसी बीच थाने के दारोगा सिपाहियों के साथ आ धमके। हुस्ना खूब समझ गई कि बात अब दूर तक बढ़ जाएगी।

कुलसुम कैसी तो जीत की खुशी में सबके बीच खड़ी होकर जोर-जोर से बोल उठी—ये जासूस है, मैं जानती हूँ, ये जासूस हैं! साथ का यह आदमी हिंदू है, इसका इरादा अच्छा नहीं। क्यों हुस्ना जीजी, जैसा मुँह वैसा जूता जुट गया तो?

हुस्ना उस औरत की हिमाकत से कुछ क्षण टकटकी लगाए उसे देखती रही। कुछ बोली नहीं। वास्तव में कोई गलती थी भी नहीं उसकी। सारी पुरुष जाति के प्रति मन में दारुण क्षोभ लेकर वह यहाँ अस्मत का रोजगार करती है, उसी आवेश में यह अपने हितुओं को भी रिहाई देना नहीं चाहती। उसके जी की जलन समझ में आ सकती है। लेकिन उसकी घिनौनी भाव-भंगिमा से हुस्ना का सिर नीचा हो गया।

बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई। उस भीड़ के दबे हुए असंतोष से छोटे दारोगा साहब कुछ घबराए। हो सकता है, दंगा हो जाए। मामले की छानबीन तो बाद में भी हो सकेगी, लेकिन इन दोनों की सुरक्षा का प्रबंध तुरत किए बिना नहीं चलने का। उन्होंने डाँट-डपट करके भीड़ को हटाया। हिरण का हाथ पकड़कर बोले—आप यहाँ से निकल चलें। उस रंडी ने सबको उभाड़ दिया है।

पटवारियों की गद्दी से लोग आ जुटे। जो थोड़े-से लोग थाने में थे, वे भी आ गए। शोर काफी मच गया था। कचहरी से भी बहुतेरे आदमी दौड़े आए। इस गाँव में इस तरह की वारदात और कभी नहीं हुई। सबकी मदद से दारोगा-जमीरुद्दीन उन दोनों को किसी तरह थाने में ले गए। उन दोनों की बातों और चाल-चलन में आभिजात्य की बू थी, सो दारोगाजी के जी में सम्मान का भाव हो आया था।

उनके थाने में जाते ही बाहर से नारा लगा—इन जासूसों का विचार

होना चाहिए। पाकिस्तान के दुश्मनों का नाश हो।

जमीरुद्दीन साहब बाहर निकल आए। कुछ लोगों पर डपटते हुए बोले—रुको, बदमाशो! हंस के विचार के लिए कौवे आए है! एक बाजारू औरत के उभाड़े सब जामे से बाहर हो गए! जाओ यहाँ से। थाने के अहाते में कदम रखा कि बाँधकर चालान कर दूँगा।

उन्होंने कुछ लोगों को लाठी लेकर थाने के चारों तरफ पहरे पर बिठा दिया। फिर अंदर जाकर बोले—डाक-बँगले में जाकर आप लोग वहीं आराम करें।

बाहर का शोरोग़ुल कम हो आया। हिरण ने पूछा—जी, हम लोगों को क्या गिरफ्तार किया गया?

—वैसा ही कुछ समझिए।—जमीरुद्दीन हँसे। कहा—और कहीं रहने से आप ही लोगों के लिए आफ़त होती। मैंने बड़े दारोगा साहब को खबर भेजी है, वे अभी-अभी आ जाएँगे। आप गिरफ्तारी का खयाल न करें, यहाँ आजादी से रहें।

उन्होंने उनके आराम का सारा इंतजाम कर दिया। पास ही एक छोटा-सा बाग था। वहीं कुएँ पर उन्होने मुँह-हाथ धोया। एक चौकीदार उनके लिऐ चाय-नाश्ता ले लाया, दूसरे ने तखत पर जाजिम डाल दिया। सुबह को ही उन्होंने मोताहर के यहाँ खाया था। इसलिए अब भूख भी लग आई थी। डाक-बँगले जाने से सचमुच ही इस आसानी से यह सारा प्रबंध नहीं हो सकता। कोई घंटा-भर तो लेकिन लग ही गया उन्हें स्थिर होने में।

इतने में दारोगा आ पहुँचे। बाहर तब भी लोगों की भीड़ थी। अंदर जाकर उन्होंने उन दोनों को जो देखा तो हैरत में पड़े। कहा—सुबह आप लोगों ने वह कमाल का नाच दिखाया और इस समय यह क्या आफ़त आई।

हुस्ना ने हँसकर कहा—सुबह के कमाल का इनाम!

बड़े दारोगा ने कहा—इनाम तो पाँच सौ रुपये मिला! मैं खुद वहाँ

मौजूद था। सच ही आपने सबको मोह लिया था। लेकिन आप पर जासूसी का इलजाम क्यों लगाया गया ? बात क्या है ?

हिरण और हुस्ना ने शुरू से आखिर तक सब सुनाया। बताया कि हम इसी मुल्क के हैं। हाजीपुर में मकान है। सैर को निकले थे। सब कुछ खोलकर कहा। बड़े दारोगा ने ध्यान से सारा कुछ सुना। पूछा—मगर आपने अपना वेश क्यों बदला ?

हिरण ने कहा—आशंका थी, इसलिए हमने अपनी-अपनी जात बदल ली थी !

—सच ही क्या आप दोनों स्वामी-स्त्री नहीं हैं ?

—मिहरबानी करके यह बात जबान पर भी न लाएँ, हमें शरम आती है।

—फिर आप दोनों में वास्तविक सम्बन्ध क्या है ?

हुस्ना बोली—छुटपन से ही हम कॉमरेड हैं ! एक ही परिवार में हम दोनों पले। साँप हम एक हैं, केवल मुँह दो हैं।—और वह खुद जोरों से हँस पड़ी।

छोटे दारोगा ने सब कुछ डायरी में लिख लिया।

बड़े दारोगा बोले—आज तो अब यहीं रहें। कल किसी समय आदमी के साथ मैं आप लोगों को भेज दूँगा। इसकी छानबीन हाजीपुर से ही होनी चाहिए। आप लोग भले घर के हैं, पढ़े-लिखे है, आप पर भरोसा है, इसीलिए मैं आपको वहीं भेजूँगा। यों आप लोगों को यहीं रोककर हाजीपुर से खोज-पूछ करनी चाहिए थी। अब आपको वहीं के थाने पर जाना होगा।

हिरण ने पूछा—आप क्या हमें पुलिस के पहरे में वहाँ भेजेंगे ?

बड़े दारोगा ने कहा—बेशक ! आखिर आप तो विचाराधीन मुलजिम हैं।

सोलह

कलकत्ते लौटते समय जरा चिंतित-से होकर ही बेल्लिक बाबू कह गए —छोटी रानीजी, आपकी जमींदारी भी है, अधिकार भी है, लेकिन मैं कहूँ, न अब वह अयोध्या है, न वह राम !

सुमित्रा ने कहा—मेरी बुनियाद कमजोर करने के लिए चारों तरफ से एक साजिश चल रही है, पहले मैं इसे नहीं समझ सकी थी वेणु बाबू।

बेल्लिक बाबू बोले—देखिए, आजादी के बाद देश की हालत बदली या नहीं, मैं नहीं जानता, लेकिन मन की हालत हर-एक की बदल गई है। नई व्यवस्था की रूपरेखा क्या होगी, अभी बताना मुश्किल है, लेकिन पुरानी व्यवस्था के लोग अब हर्गिज न मानेंगे।

सुमित्रा चुपचाप उनकी बाते सुनती रहीं।

बेल्लिक बाबू ने कहा—मैं जा तो रहा हूँ, लेकिन एक फिक्र लिए जा रहा हूँ। आप यहाँ रहेंगी किस भरोसे ? जायदाद आपके नाम पर है जरूर, लेकिन घर में भुनी भाँग नहीं। बकाया है, वसूली नाम की नहीं। क्या इसी उम्मीद पर आप हाजीपुर में पड़ी रहेंगी कि पुराने दिन लौट आएँगे ?

सुमित्रा ने पूछा—आपका क्या खयाल है, मैं प्रजा के दिल को बदल नहीं सकूँगी ?

जाने के लिए तैयार होकर बेल्लिक बाबू ने हँसकर कहा—कलकत्ते में मेरे आठ-दस मकान हैं। किराए पर लगे हैं। किराया मिलता है। किराएदार सब भले ही लोग हैं। परंतु पीठ-पीछे वे मुझे क्या कहते हैं, यह क्या मैं नहीं जानता ? जहाँ खाना और खानेवाले का रिश्ता है, वहाँ मन का परिवर्तन संभव नही। फिर आप देख ही तो रही हैं, यहाँ की हवा बदल गई है। खैर, अभी मुझे इजाजत दें।

सुमित्रा साथ-साथ नीचे तक आई। कहा—लेकिन आप तो कुछ भी

कहकर नहीं जा रहे हैं वेणु बाबू ?

वेणु बाबू मुड़कर खड़े हो गए। बोले—आपका जो पावना है, वह नहीं मिलने का। दान और दया मिल सकती है। उसी एक मुट्ठी दया पर आप कब तक खड़ी रह सकेंगी, यह मैं कैसे बताऊँ ?

सुमित्रा ने पूछा—कलकत्ते आपको लिखूँ, तो आप खत का जवाब नही देंगे ?

बेल्लिक बाबू बोले—तय यह था कि आपको यहाँ पहुँचाकर ही मैं लौट जाऊँगा, लेकिन इतने दिन रह गया ! आप खुद ही सबको यह जता आई हैं कि कलकत्ते से आपका अब कोई वास्ता नही। आपके खत का जवाब मैं जरूर दूँगा। मगर उससे सहूलियत क्या होगी आपको ? आप ही कहें, इतनी दूर से मैं आपके किस काम आ सकूँगा ?

पाकिस्तान की सरहद तक वेणु बाबू के साथ वसंत जा रहा था। वसंत का घर पड़ता है फरीदपुर। उन्हे पहुँचाकर वसंत सीधे लौट आएगा, यही तय पाया था। लेकिन सुमित्रा अभी से यह समझ रही थी कि वसंत अब लौटकर नहीं आने का। वह अपने घर चला जाएगा। हाँ खाना-कपड़ा और तनखाह का ठिकाना न था। अपनी चीजों के साथ वह पहले ही नाव पर जा बैठा था।

—वेणु बाबू !—कहते-कहते सुमित्रा उनके पास जा खड़ी हुई। आवेग और उत्तेजना से उनकी आँखें भर आईं। वेणु बाबू शांत खड़े रहे।

सुमित्रा ने कहा—लौट जाने के पहले आप क्या और कोई बात सुन जाना चाहते थे ?

वेणु बाबू ने कहा—कौन-सी बात ? नहीं तो ?

—इतने दिनों से आपका जो कर्ज मुझ पर चढ़ता रहा है, उसे मैं अदा कैसे करूँगी ? है क्या मेरे पास ?

वेणु बाबू बोले—कर्ज की अदायगी तो मैं चाहता नहीं !

सुमित्रा ने कहा—आपने यह तो नहीं बताया कि अत्रि के बड़े होने तक मैं हाजीपुर के इस मकान में रहूँ या नही ?

—मैं तो आप लोगों का अभिभावक नहीं हूँ ?

सुमित्रा ने जरा शिकायत के लहजे में कहा—इस एक साल के अरसे में आपके सिवाए दूसरा कोई अभिभावक था क्या ?

वेणु बाबू जरा देर चुप हो रहे। बाद में कहा—नहीं, इस घर में आप उतने दिनों तक रह भी नहीं सकेंगी और यहाँ रहकर अत्रि को आदमी भी नहीं बना सकेंगी !

असहाय-सी सुमित्रा बोलीं—आखिर उपाय ?

—उपाय है !—वेणु बाबू बोले—लेकिन वह आपको पसंद आएगा ?

उदग्रीव होकर सुमित्रा ने पूछा—कौन-सा उपाय ?

वेणु बाबू बोले—मैं यहाँ एक महीना रहा। इस बीच दस-बीस गाँवों के बारे मे जाना-सुना भी। किंतु हजारों-हजार लोगों की जुबान पर बस एक हुस्ना का ही नाम है। उससे मनमुटाव मिटाकर अगर उसे यहाँ ला सकें, तब शायद दशा सुधर सकती है। एक मामूली-सी मुसलमान लड़की की इतनी प्रतिष्ठा, इतना प्रभाव—अगर मैं अपनी आँखों न देखता तो यकीन नहीं करता।

सुमित्रा के गले की आवाज बदल गई। कहा—जो मेरे दाने से पली है, उसी की दया के दान पर मुझे अत्रि को पालना पड़ेगा, आप क्या मुझे यह अपमान अपना लेने की राय देते हैं ?

एक फूँक में राख से ढँका अँगार अचानक निकल आया। वेणु बाबू बोले—नहीं, नही, आपको अपना लेने को नहीं कहता मैं, मैं तो सिर्फ यह सोच रहा था कि हुस्नबानू कहीं आ जाती, तो आपकी हालत बदल सकती थी, प्रजा बस में आती, बाकी मालगुजारी मिलती कुछ ज्यादा भी। अँधा क्या चाहे, दो आँखें। आपका भी सूना घर भर उठता। खैर। मुझे इजाजत दें।

वेणु बाबू आगे बढ़े। पीछे से सुमित्रा ने फिर पूछा—कभी अगर कलकत्ते जाऊँ, तो आपके यहाँ मेरे लिए जगह नहीं होगी ?

वेणु बाबू फिर मुड़कर खड़े हो गए। कहा—यहाँ आने के पहले

आपके मन में जो एक बल था, वह घट गया है, यह मैं महसूस करता हूँ। फिर भी जब तक कलकत्ते नहीं जातीं, तब तक तो आश्रय का प्रश्न ही नहीं उठता। और कभी सचमुच ही जा पहुँचीं, तो पेड़ तले बैठने की नौबत थोड़े ही आएगी ?

उनकी बात सुनकर उदास सुमित्रा के चेहरे पर हँसी की रेखा खिंच आई। वेणु बाबू की निगाह इस पर पड़ी। उन्होंने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और डेवढ़ी की तरफ बढ़े। सुमित्रा निश्चेष्ट-सी वहीं खड़ी रही। उनके होंठों पर उन्ही की हँसी मानों जलने लगी।

ऊपर का एक-एक कमरा बीते वैभव की गवाही देता था। सुबह को फकीरा की माँ जाने कहाँ से थोड़ा-सा चावल जुटा लाती। शायद चावल वह अपने ही घर से लाती हो, पर इसे वह जाहिर नहीं करती। घर की गाय का दूध पाव-आध पाव ला देती, कभी-कभी थोड़ी-सी साग-सब्जी। तेली के यहाँ से थोड़ा तेल लाती और हमीद साहब के खानसामा से माँगकर ले आती नमक। अत्रि फटी हाफ़ कमीज पहनकर घूमा करता। फकीरा की माँ से यह देखा नही जाता। हाट के दिन वह अत्रि के लिए एक डोरिये की कमीज ले आई, दाम उसका उसने फकीरा की मजूरी में से दिया। अपढ़ होती हुई भी उसने यह समझ लिया था कि इस घर की छोटी बहू अभाव और गरीबी से बुरी तरह घिर गई है। उससे जितना भी बनता था, दौड़-धूप करती रहती थी।

वेणु बाबू के चले जाने के बाद एक रोज फकीरा की माँ ने भी कहा था—अच्छा बहू, छोटी दीदी को एक बार यहाँ आने के लिए लिखा जाए, तो कैसा रहे ?

सुमित्रा ने कहा—हुस्ना के लिए कह रही हो ?

—जी। वह अगर आपकी बातों में होती तो फिर फिक्र क्या थी। उसकी एक बात पर हजारों लोग लहमे में जुट आते, मालगुजारी के रुपयों, अनाज और जूट से घर भर जाता !

सुमित्रा बोलीं—तुम्हें क्या पता है कि वह पाकिस्तान की कितनी बड़ी दुश्मन है ?

सुनकर फकीरा की माँ तो हक्का-बक्का हो गई। बोली—यह आप कह क्या रही है वहू, उसके लिए तो देश-भर के लोग रो रहे हैं। उसे आप दुश्मन कैसे कह रही हैं। आपके घर की वास्तव में मालकिन तो वही थी। मौज़े के लोग तो उसी के हुक्म पर उठते-बैठते है।

—तुम मेरी बात को आजमाकर देखना।—कहकर सुमित्रा वहाँ से चली गई।

कई दिनों के बाद एक दिन हमीद साहब ने फकीरा की माँ को बुलवा भेजा। वह उनके सामने जाकर खड़ी हुई। गुड़गुडी की नली से मुँह हटाकर हमीद साहब बोले—तुम्हारे बेल्लिक बाबू तो चले गए ?

—जी हाँ।

—तुम जरा मुझे यह बात बताओ कि तुम्हारी छोटी रानी किस किस्म की औरत है ?

वह हत-सी खड़ी रही। उनके पूछने का मतलब ही उसकी समझ में न आया। हमीद साहब ने कहा—और कोई बात नहीं है, लेकिन इस तीन महीने के अंदर तुम्हारी छोटी रानी मुझे एक दिन को भी दावत में नहीं बुला सकीं ? लोग कहा करते हैं कि हिन्दू रानियाँ मेहमान-नवाज़ी में बड़ी चुस्त होती हैं।

फकीरा की माँ काफी दिनों से हमीद साहब के रौब-दाब की खबर रखती थी। सिर्फ रौब-दाब ही क्यों, वही इस इलाके के स्याह-सफेद के मालिक थे। राजा की जायदाद के सर्वेसर्वा वही थे, मालगुजारी के मालिक वही। इलाके के अधिनायक। सो फकीरा की माँ ने तुरत कहा —आपको न्यौता देकर खिलाने की उन्हें बहुत दिनों से ख्वाहिश है, मगर कहने की उन्हें हिम्मत न पड़ी।

हँसकर हमीद बोले—क्यों ?

—आप वड़े साहब जो ठहरे...हाकिम !

—नही, नही, मैं तो एक मामूली आदमी हूँ। उन्हीं की पनाह में हूँ। वह रानी है, मैं हूँ रिआया, तुम उनसे कहना।

दूसरे ही दिन फकीरा की माँ ने सारा इंतजाम किया। सुमित्रा ने अपने हाथों रसोई बनाई और हमीद साहब को बुलाकर खिलाया। हमीद साहब ने पूछा—खसी का गोश्त क्या आपने ही पकाया है?

घूँघट काढ़े सुमित्रा पास ही खड़ी थीं। कहा—शायद रसोई आपके मन-लायक नही बन सकी।

गद्‌गद् होकर हमीद बोले—गोश्त तो कमाल का बना है रानीजी। मेरे बावर्ची को खाना पकाने का शऊर ही नही है, मैं बेहद तकलीफ में हूँ। अपनी खुशकिस्मती है, ऐसा उमदा खाना नसीब हुआ। अच्छा, कृपा करके मेरी एक बात का जवाब दें?

—कहिए?—सुमित्रा ने पूछा।

हमीद ने सुमित्रा की तरफ ताककर पूछा—आपके यहाँ हुस्न-बानू नाम की एक लड़की रहती थी। नाम तो खूब है उसका। वह लड़की है कैसी?

सुमित्रा ने कहा—वह हमारे यहाँ ही पली है। इस गाँव में सभी उसकी कद्र करते हैं।

—वह पाकिस्तान के खिलाफ रहती है, यह आपको मालूम है?

—नहीं, यह मैं नही जानती।

—आप ही लोगों के रुपयों से वह प्रचार का काम करती है, राष्ट्र के खिलाफ गुट बनाती है और आप ही को इसकी खबर नहीं? हमीद जरा हँसे। लेकिन उनकी हँसी से सुमित्रा के मन में दुर्भावना उपजी।

—उन्होंने कहा—लेकिन मुझे ऐसी जानकारी नहीं है हमीद साहब।

हमीद ने कहा—चटगाँव से मेरे पास उसके खिलाफ शिकायत आई है। उस पर सख्त जुर्म है। आप एक काम कर सकती हैं रानीजी?

—कौन-सा काम ?

—आप अगर मेरा हाथ बँटाएँ, मेरी मदद करें, तो कोई चिन्ता न रहे ।

सुमित्रा ने पूछा—मैं कौन-सी मदद कर सकती हूँ भला ।

हँसकर हमीद बोले—फिर कभी बताऊँगा ।

भोजन के बाद शुक्रिया अदा करके उस दिन तो हमीद चले गए ।

दो ही दिन बाद अचानक एक रोज पता चला, फकीरा की माँ का महल में आना रोक दिया गया है। उसे ऐसा हुक्म क्यों मिला, यह जानने के लिए सुमित्रा नीचे उतरीं और हमीद साहब के कमरे के पास पहुँचीं । वहाँ कई गैर-बंगाली लोगों को बैठे देख वे बैरंग वापिस हो गईं । ऊपर सुमित्रा अकेली रहती थीं। उतना बड़ा मकान। शाम को भयंकर सूनापन। सहारे के नाम पर एक था अत्रि, मगर उसकी ऐसी उम्र न थी कि वह बाहर से भोजन का इंतजाम करे। उस पर साहस और भरोसा किया नहीं जा सकता। फकीरा की माँ ही एक ऐसा अवलंब थी जिसके चलते बाहर-भीतर का संयोग रहता था । आखिर उस पर ऐसी रोक क्यों लगाई गई । यह जानना निहायत जरूरी था। एकाध दिन भी कहीं वह नहीं आई, तो एक मुट्ठी अन्न भी मुहाल हो जाएगा ।

—अत्रि !

जाने कहाँ था अत्रि। पास आकर बोला—क्या है माँ ?

उसकी शक्ल देखकर सुमित्रा चौंक उठीं। यह क्या हो गई सूरत इसकी ? कहाँ गया वह रूप ? माँस कहाँ गायब हो गया, सिर्फ हड्डियों के ढाँचे पर चमड़े का एक परदा पड़ा है ! यह तो वह अत्रि नहीं जो हाजीपुर के चौधरी वंश का अंतिम प्रकाश है ! बेटे को देखकर माँ की आँखें छलछला उठीं। उन्होंने कहा—बेटे, फकीरा की माँ को अब यहाँ नहीं आने दिया जाएगा, सुना तुमने ?

अत्रि बोला—सुना है । कहना क्या है, कहो !

—तू एक बार उसका पता कर सकेगा ?

काँपने लगीं। इस जून तो किसी तरह अत्रि के लिए दो मुट्ठी चावल जुट जाएगा, उसके बाद का राम भरोसा। जाते-जाते जो कुछ बेल्लिक बाबू कह गए थे, वह उनके कानों में गूँज रहा था।

दसेक मिनट के बाद अत्रि लौट आया। तब तक सुमित्रा कुछ-कुछ नरम पड़ गई थीं। पूछा—क्या जवाब दिया उन्होंने ?

अत्रि ने कहा—कुछ भी नहीं कहा।

—कुछ भी नही ?

—गुड़गडी को मुँह में लगाए हँस रहे थे। मैंने उनकी मेज पर छोटी जीजी की तस्वीर देखी माँ !

अचरज से सुमित्रा ने पूछा—हुस्ना की तसवीर ?

—हाँ। बड़ी सुन्दर थी।

—रहने दे।—कहकर सुमित्रा नहाने चली गई। ऐसा लगा, लौटकर वे हमीद साहब को यही बुलवाएगी।

लेकिन जब नहाकर लौटीं, तो देखा, ऊपर तल्ले के प्रवेश-द्वार पर हमीद साहब का एक आदमी खड़ा है। मुँह फेरकर उन्होंने पूछा—क्या चाहिए ?

उसने कहा—बड़े साहब ने आपको सलाम भेजा है !—और वह चला गया। सुमित्रा जरा देर क्या तो सोचती रहीं। एक फ़टी-सी सफेद साड़ी पहने थी। कलकत्ते से यहाँ आते वक्त उनका खयाल था, यहाँ आते ही उनके सारे अभाव दूर हो जाएँगे। सो लोगों के लाख कहे भी वह अपने साथ कुछ लाई नहीं थी। एक और साड़ी थी, लेकिन वह उन्होंने जबरदस्ती फकीरा की माँ को दे दी थी। नतीजा यह निकला कि आज किसी के सामने खड़े होने में शरम से सिर झुक जाता है।

वह कमरे में गई। एक चादर भर थी—आखिरी सहारा। उसे उन्होंने बदन पर लपेटा और सिर झुकाकर अपने-आपको एक बार देखा। अत्रि से कहा—तू चूल्हा जला, मैं जरा मिल आती हूँ।—यह कहकर वे नीचे उतर गईं।

हमीद साहब उनकी राह देख रहे थे। दरवाजे पर सुमित्रा के पहुँचते ही बाअदब खड़े हो गए। माथे से हाथ लगाकर झुकते हुए कहा—सलाम रानीजी।

सुमित्रा बोली—नमस्कार।

हमीद बोले—हिन्दुओं के महल में हम नहीं जाते। हम उनकी इज्जत करते हैं।

सुमित्रा ने कहा—धन्यवाद।

हमीद ने कहा—आपका लड़का आया था। आपकी तरफ से वह कड़ी बातें कह गया। मुझसे कसूर हुआ है, माफ करें। आप मालिक हैं, मै रैयत।

मेज पर हुस्नवानू की तसवीर रखी थी।

सुमित्रा ने कहा—आपने फकीरा की माँ पर यहाँ आने की रोक लगाई है?

—जी, मैंने नहीं, मेरे खानसामा ने लगाई है।

—क्या मैं जान सकती हूँ, क्यों?

हमीद बोले—वह कंवख्त देशवाली औरत है। साँप का एक ही मुँह हो तो ठीक है, यह दो-मुहाँ साँप है! मैं मने करता रहा हूँ, आप देशी मुसलमान पर एतबार न करें। ये अपनी जात की इज्जत रखना नहीं जानते। इन हरामियों की पैदाइश का कोई ठिकाना नहीं।

सुमित्रा बोलीं—हम तो सदा से यहाँ के मुसलमानों के साथ रहते आए हैं। ये हमारे स्वजन-से है।

हमीद हँसे। कहा—वह मैं जानता हूँ। मगर ये वेवकूफ है, बदमाश हैं, इसलाम के तौर ये नहीं जानते। बदतमीज हैं ये। दुनिया के मुमलमान इन्हे जानवर समझते हैं। पाकिस्तान कभी इन्हें दुरुस्त करेगा!

खीझ को दवाए सुमित्रा ने कहा—आपने मुझे वुलवा क्यों भेजा है मियाँ साहब?

हमीद बोले—हाँ, मैंने आपको बुलवाया है। हिन्दुस्तान होता तो

आप मुझे बुलवातीं, लेकिन पाकिस्तानी पहिया उलटा घूमता है। यह जमींदारी आपकी है, लेकिन मिट्टी है हम लोगों की। और पाकिस्तान के माने ही तो मिट्टी है!

दबे हुए विक्षोभ को छिपाकर सुमित्रा ने कहा—आपने क्या इरादा किया है कि अपनी मिट्टी पर बैठकर हम फ़ाके किया करें?

हमीद ने हँसकर सुमित्रा की ओर देखा।

काँपती हुई आवाज में सुमित्रा बोलीं—हमारे पास चावल नहीं, पहनने को कपड़े-लत्ते नहीं, बिछावन नहीं, पास में रुपये-पैसे नहीं, कचहरी के लोग हमारी कुछ नहीं सुनते, रैयत लोग पास नहीं फटकते, हाटवाले चीज नहीं देते—आखिर यह सब हो कैसे रहा है? आप क्या यह चाहते हैं कि हम सब कुछ छोड़-छाड़कर चले जाएँ?

हमीद ने कहा—आप हमें शरमिंदा कर रही हैं रानीजी। यह सब कुछ आपका है। मैं आपका आश्रित हूं। अगर आप चाहें तो मेरे खान-सामा-बार्ची, प्यादे-सिपाही, लोग-बाग, सब आपकी खिदमत में लगे रहें। आपको जितने रुपयों की ज़रूरत हो, लीजिए, खाने के सामान लीजिए, भंडार लीजिए, रसोई लीजिए—सब ले लीजिए। हाथ उठाकर आप जो देंगी, मैं वही खाऊंगा। आप मालकिन होकर रहें। पाकिस्तान में अगर हिन्दू-मुसलमानों में एका नहीं होता, तो कोई उम्मीद नहीं।

हवा का रुख किधर को है, सुमित्रा ठीक-ठीक ताड़ न सकीं। बोलीं—फिर हमें बता दीजिए कि हमारा क्या इंतजाम होगा?

हमीद ने पूछा—आप क्या एकबारगी कट्टर हिन्दू हैं?

—नहीं।

—तो आप नीचे की रसोई में पका सकती हैं। मैं बावर्ची को हटा देता हूं।

—वह रसोई खाएगा कौन?

हमीद बोले—आपकी मिहरबानी हो तो मैं भी खा सकता हूं।

सुमित्रा ने पूछा—और मेरे रुपये-पैसे का क्या होगा?

—रुपया-पैसा ? जितना रुपया चाहिए, दूंगा। सोना-चाँदी, सरो-सामान, धन-दौलत—आप अपना सब कुछ पाएँगी।

सुमित्रा ने कहा—आपको पकाकर खिलाने से ही मेरा भाग्य पलट जाएगा ? जो चाहूँगी, वही मिलेगा।

उत्साह से हमीद ने कहा—आप इस घर की रानी हैं, जिन्दगी-भर रानी ही रहेंगी।

सुमित्रा ने सख्त होकर कहा—यानी आप यह चाहते है कि बाहर से मैं हाजीपुर की रानी बनी रहूँ और भीतर बनी रहूँ आपकी रसोई-दारिन ?

हमीद ने फिर सलाम किया। कहा—बंदा की गुस्ताखी माफ करें रानीजी। मैं आपके भले के लिए कहता हूँ। आप मेरे लिए रसोई बना देंगी तो मैं अपने हाथों सब्जी काट दूंगा, मसाला पीस दूँगा, पानी भर दूंगा, बर्तन माँज दूंगा। अगर आप राजी हो जाएँ तो फकीरा की माँ जैसी दस बाँदियाँ मै आपके लिए रख दूँ।

सुमित्रा ने कहा—और यहाँ अगर मेरी बदनामी फैले तो उसकी जिम्मेदारी किसकी होगी मियाँ साहब ?

खिलकर हमीद ने सुमित्रा को एड़ी-चोटी देखा। कहा—बदनामी ! और इस गाँव में ! कुत्तों के भोंकने से क्या लोगों का काम बन्द हो जाएगा ? आपको कोई बदनामी न छू सकेगी। धन-दौलत, साज-पोशाक, महल की नवाबी, बाग-बगीचा, लोक-लश्कर—इन सबके नीचे बदनामी दब जाएगी। बदले में आप मुझे रसोई करके खिलाएँगी। इस पर भी आपको बदनामी का डर हो, आप मेरे महल में चली आएँ, कोई परवाह नही। आपकी खबर भी नहीं होगी किसी को। तमाम दिन मैं आपकी निगरानी करूँगा।—इतने अच्छे इंतजाम की सुनाकर हमीद अपने आप ही नाज से फूल-से उठे।

सुमित्रा ने पूछा—आपकी मेज पर वह तस्वीर क्यों है ?

हमीद ने कहा—वह तस्वीर हुस्नबानू की है। बड़ी शैतान औरत

है। पाकिस्तान की दुश्मन है। पाकिस्तान इसको ठीक करेगा।

सुमित्रा ने पूछा—आपको पता है, मेरे मालखाने की सारी दौलत हुस्नबानू ने कैसे उड़ाई ?

हमीद साहब खूब हँसे। बोले—पाकिस्तान-राज इतना बेवकूफ नहीं है रानीजी।

सुमित्रा चुप देखती रहीं। हमीद ने कहा—आप समझ रही होंगी, यहाँ के बेवकूफ मुसलमानों ने इस घर में आग लगाकर इसे लूटा था। लेकिन पाकिस्तान-राज के लोग उनकी पीठ पर खड़े थे। मालखाने पर कब्जा पहले किया उन्होंने।

चौंककर सुमित्रा ने कहा—उसके बाद ? क्या यह सच है ?

हमीद फिर हँसे। कहा—आपकी सारी दौलत हमारे यहाँ जमा है। आप फिर से सब पाएँगी। आगे-आगे गुंडे अपना काम करते हैं, पीछे-पीछे अपना काम करते हैं हम ! खैर, आज तो आप अपना खान-पान करें, मैं आपका सब इंतजाम कर दूँगा—यह कहकर उन्होंने घंटी बजाई।

एक खानसामा आया। हमीद ने कह दिया—खाने-पीने का सब सामान ऊपर भेज दो लतीफ़।

जम-से आए पैरों को खसीटती हुई सुमित्रा ऊपर चली गईं। कोई पंद्रह मिनट के बाद लतीफ़ तीन दिन चलने लायक चावल-दाल और नकद दस रुपये ऊपर पहुँचा गया।

सुमित्रा का सर्वांग काँपने लगा। माजरा साफ समझ में आ रहा था। अपने सम्मान के बदले ही यह प्रतिष्ठा मिल सकती है और उसका भी नतीजा आगे चलकर क्या होगा, वह भी नहीं कहा जा सकता। सामानों के परिमाण से सुमित्रा को यह समझने में देर न लगी कि उन्हें महज़ तीन दिन का समय दिया गया है। इन्हीं तीन दिनों में उन्हें फैसले पर पहुँचना है। संसार-भर के लोग बाहर से यह जानेंगे कि हाजीपुर की छोटी रानी को उनका सिंहासन, महल का वैभव, जड़ाऊ गहने, जमींदारी का अधिकार, सब कुछ वापस मिल गया, और मन-ही-मन वे जानेंगी कि

एक सरकारी नौकर को नियम से उसकी रुचि के मुताबिक वे न खिला सकें, तो वह सिंहासन बीच-बीच में डगमगाता रहेगा। बाहर-बाहर रानी, अन्दर से नौकरानी ! बाहर राज-सम्मान और अन्दर बिना तनखाह की महराजिन। सिंहासन, ऐश-मौज, सब पर उनका अधिकार बना रहेगा, केवल अपने ऊपर अधिकार न रहेगा।

कार्तिक के महीने की सरदी शुरू हो गई। मधुमती की धारा कुछ मंद पड़ गई। शरत् धीरे-धीरे विदा हो गया। सूरज जल्दी ही ढल जाने लगा।

ठीक ऐसे ही समय हाजीपुर में एक हलचल-सी हुई। महल गाँव के दक्खिनी छोर पर पड़ता था, लेकिन वहाँ से भी यह पता चल गया कि इधर के लोग शोरगुल करते हुए हाट की तरफ दौड़े। चारों ओर हो-हल्ला। शायद फिर दंगा हो गया।

हमीद साहब आदमी कड़े थे। गाँव में अमन-चैन कैसे कायम रखना होता है, इसका उन्हें पता था। महल के चारों तरफ उनके हथियारबंद लोगों का पहरा बैठ गया। उन्होंने ऊपर खबर भिजवाई कि रानीजी घबराएँ नहीं। उन्हे बचाने के लिए जरूरत पड़ी तो यह खाकसार खुद भी हथियार सँभालेगा।

दूर से जनता का कोलाहल सुनाई पड़ रहा था। उद्वेग और आ-शंका से वह महल के छज्जे पर खड़ी हुई। कुछ लोग हमीद के यहाँ तेजी से जा-आ रहे थे। अन्दर के आदमी बाहर निकल रहे थे और बाहर के आदमी तेजी से भीतर जा रहे थे। हमीद साहब को हर कुछ की खबर है, ऐसा समझ में आ रहा था। दूर-दिगंत तक फैली हुई नदी के किनारे का यह शांत गाँव दिनों बाद एकाएक फिर मानों प्राणों की प्रचंड शक्ति से मुखर हो उठा है। भयभीत आँखों सुमित्रा ने उत्तर की तरफ देखा। दूर से मानों बगावत की बाढ़ बढ़ती चली आ रही थी—नाश और मौत के हलकोरे। सारे हाजीपुर में आग भड़क उठने में देर न रह गई थी।

ऐसे समय अत्रि दौड़ा-दौड़ा नीचे से ऊपर आया। सुमित्रा के पास

आकर हाँफता हुआ एक बार वह हँसा। बोला—माँ ?

मुँह फेरकर सुमित्रा ने पूछा—कोई खबर मिली ?

—हाँ मिली। तुम्हें पता नहीं चल रहा है ? कान खोलकर सुनो।

—क्या सुनूँ ?

—कान लगाकर सुनो तो सही।—उत्तेजना और उत्साह से अत्रि का गला जैसे रुँध गया।

उत्तेजना सुमित्रा के भी मन में थी। पूछा—इतना हँस क्यों रहा है रे ? क्या हुआ है ?

अत्रि ने कहा—दंगा नहीं है, मैं पता लगा आया।

—फिर ?

—तुम छोटी जीजी का गीत नहीं सुन पा रही हो ? माईथान में छोटी जीजी और जीजाजी का नाच-गान चल रहा है !

डाँटकर सुमित्रा बोलीं—क्या बकवास कर रहा है पागल की तरह ?

—तुम्हें यकीन नहीं आता। उन दोनों को गिरफ्तार करके यहाँ लाया गया है। नाव से उतरते ही उसने गीत गाना शुरू कर दिया और हजारों-हजार लोग उस धुन पर नाच उठे है। एक तरफ पुलिस की जमात और दूसरी तरफ गाँववालों का जमाव। वे उन दोनों को छुड़ाने पर आमादा हैं और पुलिसवाले भला क्यों छोड़ना चाहें ? हो सकता है, दंगा हो जाए !

ऐसे में ज़ीने पर पैरों की आहट हुई। कुछ लोग ऊपर आ रहे थे। चौंककर सुमित्रा ने आवाज दी—कौन ?

दो आदमियों के साथ खुद हमीद साहब सीढ़ी से ऊपर आ रहे थे। उन्होंने जवाब दिया—मेरी बेअदबी माफ़ करें। मैं आपको खबर देने आया हूँ। पाकिस्तान की दुश्मन यह शैतान औरत हुस्नबानू चार दिन हुए पकड़ी गई है। उसे यहाँ लाया गया है। हाजीपुर में उसकी बहुत बड़ी जमात है, सो वे लोग दंगा करके उसे छुड़ाना चाह रहे हैं। गजब की लड़की है। न डर, न भय। उसके साथ एक हिन्दू जवान है। नाम

है जमाई बाबू। यह जमाई बाबू भला कौन है ?

सुमित्रा ने कहा—वह यहीं के एक ब्राह्मण का लड़का है। हमारे ही घर पला-बढ़ा है।

—कैसा लड़का है ?

—लड़का बड़ा भला है वह। हमारा अपना है।

हमीद ने कहा—अगर आपका हुक्म हो तो उस लड़के को हम कोई सजा न दें। लेकिन उस शैतान को तो जिन्दगी-भर के लिए हाजत में भर दूँगा।

सुमित्रा ने पूछा—वे क्या माईथान में नाच-गा रहे हैं ?

बाघ की कत्थई आँखें मानों शिकार पाकर जल उठीं। हमीद ने कहा—हाँ, नाचना-गाना शुरू कर दिया है उन्होंने। बस यही आखिरी गाना है। हजार-डेढ़ हजार कुत्ते किसान-मजूर वहाँ जमा हो गए हैं। हमारे लोग उन्हें घेरे खड़े है। मैं अभी वहाँ जा रहा हूँ। हुस्नबानू को मैं रात मे यहाँ आपके पास ले आऊँगा, जमाई बाबू हाजत में रहेंगे। उसे महल में रखने से गाँव के ये कुत्ते कुछ बिगाड़ न सकेंगे। और आपके जरिये उसके पेट की बातें भी निकलेंगी। आप कुछ फिक्र न करें।

हमीद साहब अपने आदमियों के साथ नीचे उतर गए। सुमित्रा मन-ही-मन सिहर उठीं। सन्नाटे में खड़ी रहीं। हुस्ना आकर उनकी यह शक्ल देखेगी। वह देखेगी कि फर्श पर चटाई डालकर रात कटती है, पहनावे में अधमैला और फटा कपड़ा, घर में चावल नदारद, माथे में तेल का नाम नहीं, सम्मान बचाने का कोई ठिकाना नहीं। एक दिन हुस्ना के सामने वह जो गर्व कर आई थीं, हुस्ना देखते ही समझ जाएगी कि उसकी मिट्टी पलीद हो गई है। फिर हमीद के अंतिम प्रस्ताव की कानों-कान कहीं उन दोनों को खबर हो जाए ? और कहीं उन्हें यकीन हो जाए कि हमीद के प्रस्ताव पर वह सहमत थीं ? अगर हुस्ना के मन में किसी प्रकार की शंका जगे ?

भूत, भविष्य और वर्तमान जीवन हुस्ना के कलेजे में धुकधुका उठा।

अत्रि काठ के खिलौने-सा उनके पास खड़ा था। बेटे का हाथ पकड़कर सुमित्रा ने धीमी आवाज में कहा—अत्रि, बता, क्या उपाय है ?

माँ के स्पर्श से अत्रि रो पड़ा कि उसकी जीजी और जमाई बाबू को लोग मार डालेंगे।

—और हम लोग ?

अत्रि फफककर रोने लगा।

साँझ हो चली थी। दूर गाँववालों का कोलाहल मानों और ज्यादा बढ़ गया। और उस जन-समुद्र की साँस के अंदर से इतनी देर के बाद मानों टूटे हुए कंठ का कंपन और रोदन संध्या के आकाश की ओर तिर चला था। गीत का अंतरा हुस्ना के कलेजे को चीरकर दिगदिगंत में बिखर रहा था। उसके स्वर की मार्मिक मूर्च्छन से लोग मूर्च्छित होंगे, इस बात को सुमित्रा से ज्यादा और कौन जान सकता है !

नीचे कुछ हलचल हुई। गर्दन बढ़ाकर सुमित्रा ने देखा, कोई बीस-बाईस हथियारबंद आदमी लेकर खुद हमीद साहब अब रवाना हुए। उनके खानसामा-बावर्ची भी हथियार सँभालना जानते थे, लिहाज़ा वे भी बंदूक-पिस्तौल लेकर साहब के साथ चले। आज शायद खून की नदी बहे। कचहरी और सिरिश्ता सूना पड़ा था। काम-काज करके लोग-बाग लौट गए थे। बुड्ढा अली मियाँ इस समय अपने घर चला जाता है और रात को आकर कचहरी के बरामदे में पड़ा रहता है। महल लगभग सूना ही पड़ा रहता है।

सुमित्रा ने कहा—अत्रि, नीचे जाकर देख तो आ कोई है कि नहीं ?

अत्रि सावधानी से नीचे उतर गया। और पाँचेक मिनट बाद आकर बोला—कोई कहीं नहीं है माँ। सिर्फ वह गँजेड़ी सिपाही लाठी लिए बैठा-बैठा ऊँघ रहा है।

साँझ का अँधेरा चारों ओर फैल गया। उसी दशा में कागज का एक टुकड़ा निकालकर सुमित्रा ने जल्दी-जल्दी अंग्रेजी में जाने क्या लिखा और उसे अँधेरे में बाँध लिया। फिर बोलीं—अत्रि, चल बेटे !

अत्रि ने पूछा—कहाँ, माँ ?

—कुछ जानने की कोशिश मत कर, सिर्फ मेरे साथ चल। सब यहीं पड़ा रहे, सिर्फ पोतली अपने साथ लूँगी। अँधेरा हो आया है, चल, निकल पड़ें !

—लेकिन जीजी और जमाई बाबू ?

—वे लोग ? वे लोग बाघ के पिंजड़े में घुस गए हैं। उनका क्या होगा, नहीं जानती। चल, देर मत कर।

सुमित्रा ने किसी कदर एक पोटली बाँधी। उसके बाद सीढ़ी के दरवाजे को बंद कर लालटेन को सामने रख दिया और महल के दक्खिन की तरफ चल पड़ीं। वहाँ से छिपी सीढ़ी होकर महल बाग के पूरब उतर पड़ीं। सामने ही था शिवालय। पास में ठाकुर के पोखरे का बगीचा। बरसात के अंत का समय, पोखरे के चारों ओर झाड़ियाँ भर गई थीं। लेकिन उस तरफ से छिपकर जाने की सहूलियत थी अत्रि को साथ लेकर सुमित्रा जल्दी-जल्दी बढ़ गई।

पाँच मिनट के बाद ही फकीरा की माँ का घर आ गया। घर के चारों ओर झाड़-झंखाड़। अत्रि धीरे-धीरे अंदर गया। किरासन की बत्ती जलाए फकीरा की माँ भात उतार रही थी। अत्रि पर नजर पड़ते ही चौंककर उसने पूछा—अरे, तुम कहाँ से राजा भैया !

—जरा बाहर निकलो, माँ बुला रही हैं।

—माँ ? छोटी बहू ? कहाँ हैं ?—फकीरा की माँ जल्दी से निकली।

होंठों पर उँगली रखकर सुमित्रा ने कहा—चुप, शोर मत करो। हम यहाँ से जा रहे हैं फकीरा की माँ।

फकीरा की माँ रो पड़ी।—यह अभागा देश अँधेरे में ही पड़ा रहे, तुम लोग चिराग गुल करके चले जाओ।

—फकीरा कहाँ है ?

—वह अभी नहीं लौटा।

—सुमित्रा ने कहा—तुम्हीं जरा हमें नाव तक पहुँचा आओ। मिल जाएगी न ?

—क्यों नहीं, जरूर मिलेगी। मैं चलती हूँ। लेकिन छोटी बहू, राजा का लड़का हमारे यहाँ से मुँह जुठाए बिना ही चला जाए, यह मुझसे कैसे बरदाश्त होगा।

इतनी जल्दी के बावजूद सुमित्रा एक बार ठिठक खड़ी हुई। अँधेरे में उनकी आँखों में आँसू की रेखा दीख पड़ी। बोलीं—तुम्हारे अनाज की कीमत मैं कैसे चुकाऊँगी? मैं ठहरती हूँ, तुम जल्दी से अत्रि को थोड़ा-सा खिला दो।

वह अंदर गई। कंदे के पत्ते पर उसने अत्रि को थोड़ा-सा भात परोस दिया। थोड़ी-सी दाल, कोंहड़े की तरकारी। अत्रि को भूख लगी थी। बड़ी तृप्ति के साथ उसने भोजन कर लिया।

किवाड़ की साँकल लगाकर फकीरा की माँ नीचे आई। बोली—बहू, कहीं यह पता चल गया कि मैं तुम्हें नाव पर सवार करा आई हूँ, तो मेरी तो गर्दन जाएगी!

सुमित्रा ने अँधेरे से कागज के उस टुकड़े को निकाला। उसे देती हुई बोलीं—न, नहीं जाएगी गर्दन। यह पुरजा तुम किसी के मार्फत हमीद को भेज देना। डरने की बात नहीं।

—लेकिन वह जो विषैला गेंहुअन है बहू!

सुमित्रा बोलीं—इस पुरजे में उसी विषैले गेंहुअन का मंतर है। तुम्हें कोई खतरा नहीं।

फकीरा की माँ ने कहा—बहू, घाट की तरफ तुम बढ़ो। मैं सईद को बुला लाती हूँ।

यह अच्छा हुआ कि हुस्ना और हिरण की खबर पाकर गाँव के औरत-मर्द सब माईथान की तरफ चल दिए थे। वहाँ का शोरगुल अभी भी सुनाई दे रहा था। लिहाजा जिस जंगली रास्ते से ये जा रहे थे, उस पर कोई न मिला। अत्रि के साथ सुमित्रा घाट पर पहुँच गई।

जरा ही देर बाद छिपकर आई फकीरा की माँ। बूढ़ा सईद साथ था। एक आँख का काना था वह बुड्ढा, मगर नाव की पतवार पड़कने में उसका सानी नहीं था। सईद अपनी नाव को घाट पर खींच लाया। उसे इस बात का कौतूहल ही न था कि नाव पर जा कौन रहा है। अँधेरे में उसे कुछ अंदाज भी न हुआ। माँ-बेटे नाव पर जा बैठे। शामराय घाट तक जाने में दो घंटे लगेंगे। भाटे में नाव मजे में जाएगी। सईद ने नाव खोल दी। फकीरा की माँ घाट पर खड़ी-खड़ी चुपचाप आँखें पोंछती रही। भाटे में नाव दूर, बहुत दूर निकल गई। ऊपर तारों से भरा अनंत आकाश, नीचे अगाध नदी—अँधेरे में उस दिशाहीन नदी की तरफ देखने से दिल की धड़कन थम-सी आती। मगर इस अथाह, अपार में चल देने के सिवाए उनके लिए कोई चारा ही न था।

बूढ़े सईद ने कसकर पतवार पकड़ रखी थी। प्रवाह के धक्के जोरों के लग रहे थे। बीच में सुमित्रा ने पूछा—सईद, तुम्हारी नाव लौट कब तक आएगी ?

उसने कहा—दो दिन लग जाएँगे माँजी। घूमकर आना पड़ेगा तो ! आप कहाँ जाएँगी ?

—हम ? हम शामराय घाट में उतरकर बैलगाड़ी से स्टेशन जाएंगे। रेल से जाना है।

—तो इतनी रात में क्यों जा रही हैं ?

—करूँ क्या भैया, दिन को कोई गाड़ी ही नहीं। दिन में जाने से बहुत बैठना पड़ता है। तुम्हें पता है सईद, गाड़ी कब छूटती है ?

सईद बोला—आधी रात को छूटती है। बच्चे के बदन पर कोई चादर डाल दें माँजी, सरदी के दिन हैं।

सईद ने ठीक ही कहा। अपनी चादर के एक कोने से सुमित्रा ने अत्रि को ढँक लिया। कहा—चादर की भली पूछते हो भैया, पेट के लिए दाने ही मयस्सर नहीं, चादर कहाँ से आए !

सईद अत्रि को नहीं पहचान सका था, सुमित्रा को भी नहीं। बोला—

पाकिस्तान होने से किसी के नसीब में सुख नहीं रहा माँजी। आप कहाँ से आ रही हैं ?

सुमित्रा बोलीं—हमारा घर दाऊदपुर है। मेरे बड़े दामाद की तबीयत बहुत खराब है। उन्हीं को देखने जा रही हूँ।

—लड़की की ससुराल कहाँ है ?

—बड़ी दूर। गोआलपाड़ा।

सईद ने कहा—आपने मेरा नाम कैसे जाना माँजी ?

सुमित्रा ने जल्दी से कहा—वह फकीरा की माँ थीं न, बीते साल उसी के लड़के ने अपने यहाँ छौनी-छप्पर किया था। उसी ने दिलासा दिया, अगर सईद मियाँ नाव की पतवार थाम ले, तो कोई परवाह नहीं। इसी से तुम्हारा नाम जान गई। और तुम्हें तो सभी जानते है सईद।

सईद बोला—आप लोगों के आशीर्वाद पर ही जी रहा हूँ।

सुमित्रा ने कहा—शामराय में हमारे लिए एक बैलगाड़ी ठीक कर देना सईद।

—जैसी आज्ञा। बैलगाड़ी आधे घंटे में स्टेशन पहुँचा देगी। रास्ता सूखा है। कीचड़-पानी नहीं।

सुमित्रा की जान-में-जान आई। नाव अँधेरे में तेजी से बढ़ चली।

सत्रह

गोपालपुर थाने से हाजीपुर पहुँचने में एक दिन-रात का समय लग गया था। हुस्ना और हिरण पुलिस की निगरानी में थे। साथ में थे छोटे दारोगा और तीन सशस्त्र सिपाही। सबके बीच हुस्ना थी रानीमक्खी। आते हुए संगी-साथियों को भरपूर आनंद मिला। दूरी काफी थी, बीच

में एक बार रेल और दो बार नाव का सफर। मगर उनकी फूटी पाई भी न लगी, हुस्ना को इसकी भी खुशी थी। तमाम रास्ता वह जी खोलकर गाती रही—हिरण को तपाती रही और लोगों को मस्त बनाती आई। इसमें संदेह नही कि छोटे दारोगा की नौकरीपेशा जिन्दगी धन्य हुई। साथ में तीन सिपाही, उनकी तीन दूनी छः आँखें क्या देख रही थीं, कहना ही फिजूल है। हुस्ना सदा के लिए उनका सिर खा बैठी।

हाजीपुर के घाट पर उतरने के समय हुस्ना ने कहा, जैसा वह सदा कहती आई है,—संघर्ष और चोटों में ही अपना सच्चा परिचय प्रकट होता है। हूँ तो मैं औरत, मगर अबला नहीं हूँ, जन्म से ही लड़ाकू हूँ। मेरे हाथों फूल की माला रखो, किसी के गले डालने में मेरें हाथ काँपेंगे और तलवार हाथ में दो, खूब फबेगी। मेरे सामने भय, विरोध और बाधा लाओ, कापुरुषता और कपट लाओ, मैं उनका प्रतिकार जानती हूँ।

हिरण ने पूछा—गहने उतारकर पानी में क्यों डाल दिए?

हुस्ना ने कहा था—वह किसी के वश में होने की निशानी है। हाथ की चूड़ियाँ स्नेह-माया और सेवा की प्रतीक हैं, हार माला-बदल का इशारा है, कानों का कँगना लोभ का संकेत है और सुरमा है मोह। अपने जीवन में मैं इनमें से एक को भी कबूल नही करती।

—फिर किस बंधन से तू संसार से बँधी है?

—बंधन संसार का नहीं, मनुष्यता का है। संसार का आकर्षण है प्रेम, जिसके सँकरे आश्रय मे आदमी बसेरा बाँधता है। लेकिन मनुष्यता का आकर्षण बहुत बड़ा है। वह मोह-बंधन को मेट डालता है, घर-गिरस्ती को जलाकर राख किए देता है।

—उस मनुष्यता की शक्ल कैसी होती है?

—वह शक्ल वाङ्मय ही हो तो हर्ज क्या है? कीर्ति और सफलता से उसका विचार नहीं हो सकता, उसका विचार होता है आइडिया से।

—हुस्ना ने कहा था—यह नदी के इस पार और उस पार जो लाखों लोग रोते आए हैं, उनका यह रोना क्या इसलिए है कि उनकी धन-

सम्पत्ति छिन गई है ? नहीं, यह रोना इसलिए नहीं है। असल में उन लोगों ने मनुष्यत्व के आइडिया को खो दिया है। युगों से जिस प्रदीप को उन्होंने अपने सामने जलाकर रखा था, उसे उन्होंने धूल और धुएँ में खो दिया है। उन्होंने घर नहीं, राह को खो दिया है; विचार नहीं, विश्वास खोया है।

साँझ से पहले ही वे हाजीपुर के घाट पर उतरे। उतरते ही चारों ओर यह खबर फैल गई। देखते-ही-देखते दल-के-दल लोग वहाँ आ पहुँचे। उनकी अगवानी को बहुत-से लोग आए, कोटि-कोटि के लोग। किसान, मजदूर, मल्लाह, दूकानदार, विद्यार्थी। गाँव की जीवन-धारा में एक चंचलता-सी खेल गई। जमींदार आम लोगों की पहुँच से बाहर रहते थे, जमींदार की बेटी सर्वसाधारण की आँखों की आड़ में रहती थी। लेकिन हुस्ना और हिरण का बसेरा गाँववालों के हृदय में था। जमींदार आराध्य थे, ये दोनों काम्य। जमींदार के लिए लोगों में श्रद्धा थी, इनके लिए प्रेम। वही प्रेम आज सैकड़ों कंठों में नदी के किनारे उमड़ आया था।

यह खबर पाकर हाजीपुर के दारोगा अकेले वहाँ आकर खड़े हुए। बूढ़े दारोगा को देखते ही ये दोनों हँस उठे। माजरा देखकर दारोगाजी तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। गाँव के जमाई और दीदी पुलिस की निगरानी में यहाँ लाये गए हैं, यह दृश्य उनके लिए सर्वथा नया था। हुस्ना जल्दी से उनके पास गयी और उन्हें पकड़कर पूछा—दादाजी, कैसे हैं आप ?

उनका नाम था हारूं मियाँ। उन्हीं का लड़का आग में कूदकर जीवेन्द्रनारायण को बचाने गया था। खुद जल मरा। बूढ़े ने उसाँस भरकर कहा—अभी भी मर नहीं सका हूँ बिटिया। जमाई बाबू, माँ-बहनों को छोड़कर भाग खड़े हुए थे, फिर यह जला मुँह दिखाने क्यों आ पहुँचे ? लाज नहीं लगी ?

कोई जवाब नहीं था इस सवाल का। हिरण बूढ़े हारूं मियाँ के

पास जाकर खड़ा हुआ, जैसे कोई शांत लड़का बूढे बाप के पास जाकर खड़ा हो।

गोपालपुर के छोटे दारोगा ने हारूं मियाँ को सारी बातें बताई। उनके खिलाफ जुर्म यह था कि वे भेस बदलकर गाँव-गाँव घूमते फिरते थे। कभी हिंदू बन जाते, कभी मुसलमान। उनकी बातें परस्पर-विरोधी होती। वे जिस डाल पर बैठे है, उसी को काटते है। बातों का आरा चलाकर वे पाकिस्तान को काटते हैं, हिंदुस्तान को काटते हैं। आखिर वे है क्या, इसी की छान-बीन के लिए ये यहाँ भेजे गए है।

सारी बातें सुनकर हारूं मियाँ ने कहा—घर की संतान घर लौट आई, इसमे छान-बीन करने की कौन-सी बात है? यह लड़की इमदाद-अली की बेटी है और यह लड़का इसी गाँव के चक्रवर्ती का लड़का है। इसके बाप ने लड़के का काला-आजार हटाने के लिए पीर की दरगाह पर पूजा चढ़ाई थी। इसके दादा मेरे मास्टर रह चुके है। इसकी माँ जच्चाखाने में मेरी गाय का दूध पिया करती थी। ये दोनों मेरे बगीचे मे सदा आम-जामुन चुराते रहे है—इनकी छान-बीन, जाँच-पडताल क्या? पाकिस्तान के लिए बेटे-बेटी को हाजत में भेजूँ? तुम्हे और दूसरा काम नही है?

इसी बीच यह खबर हमीद साहब को भेजी गई थी।

दारोगा की तरफ ताककर हारूं मियाँ ने कहा—आज रात तुम लोग यहीं रहो, सुबह चले जाना। इन दोनों की जिम्मेदारी मुझ पर रही। मैं राजा के बाप के समय से ही यहाँ नौकरी कर रहा हूँ, इनका राई-रत्ती हाल मुझे मालूम है। जमाई, बिटिया के साथ तू जहाँ जी चाहे, जा।

हुस्ना और हिरण के साथ काफी भीड़ जमा हो गई थी। वे माई-थान की ओर बढ़े। लोग उनके पीछे-पीछे चले। बहुत दिनो के बाद उन्हे मन की मुराद मिली है, सहज ही उन्हें छोड़ने को वे तैयार न थे। अब तक गाँव अँधेरा था, आज अचानक रोशनी जल उठी। उसी भीड़ में वे लोग भी थे जिन्होंने कभी महल में आग लगाई थी। आखिर वे

जनता थे, सोडावाटरी जोशवाले। आदिम वृत्ति पर खड़ी है उनकी दुनियादारी। काला पहाड़ आए, तो वे गुस्से से पागल हो उठते है, तातार लुटेरों के उकसाए वे हिसा से अँधे हो जाते है, श्री चैतन्य की प्रेरणा से वे प्रेम-बावरे बनते हैं और राजनीतिक नेता के भड़काए वही हो उठते है फूट और नफरत से पागल। जनसाधारण होते है बच्चो से सरल। उन्ही जैसे मूढ़ और अज्ञान।

लेकिन इस विशाल जनता के बीच होते हुए भी हुस्ना का मन और कहीं था। सुमित्रा की बात वह भूली न थी। अब तक किसी से उसने छोटी रानी का जिक्र नहीं सुना। मुँह खोलकर हारूं मियाँ से वह पूछ भी न सकी। महल में अब तक तो यह खबर जरूर ही पहुँच गई होगी। हुस्ना को यह उम्मीद थी कि छोटी चाची सारी पिछली बाते भुलाकर उन्हें जरूर बुलवा पठाएँगी। शायद अत्रि वहाँ दौड़ा-दौड़ा आए कि आ धमके फकीरा की माँ! गाँव के बाहर हुस्ना नायिका थी, नेत्री थी, किंतु गाँव की चौहद्दी के अंदर वह एक नादान बालिका है। उसकी निजी कोई हस्ती नही, जननी जन्मभूमि की गोद में अपना वह स्वातंत्र्य वह खो बैठी है।

जनता द्वारा हिरण की आवभगत देखने ही योग्य थी। बहुत-से लोग उसे उठाकर कूद रहे थे। राजकुमारी हिरण की स्त्री होगी, वह होगा राजपाट का मालिक—यह परिचय उसका एक सीमित दायरे तक ही महदूद था। उसका जो परिचय लोगों में था, वह यह कि वह सर्व-साधारण का अपना है। उसे जात का अभिमान नहीं, किसी खास मनोवृत्ति का वह गुलाम नहीं। उसे चूँकि लोभ नहीं, इसलिए स्वार्थ की हाय-हाय भी नहीं। इसी बीच अपने जूते उतारकर किसी को उसने दान दे दिए, किसी को अपना कुरता उतारकर दे दिया और पोटली से लाल टोपी निकालकर किसी को उसने पहना दी।

घन्टे-भर बाद जब लोगों के आग्रह से माईथान में नाच-गान शुरू हो गया, तब अपनी जमात के साथ पहुँचे हमीद साहब। उनके जी में

चाहे जो हो, होंठों पर हँसी थी। बहरहाल वे राजा की जायदाद के सरकारी व्यवस्थापक थे, महल और मालखाने के मालिक वही थे, कचहरी के वही थे सर्वेसर्वा, लिहाजा उनकी बात ही और थी। उनके आते ही हवा पलट गई। लोगों ने उन्हें सादर एक खास जगह पर बिठाया। हँसी से उनका चेहरा खिला हुआ था, केवल उनके बीसेक आदमी, जो हथियारों से लैस थे, दुबककर भीड़ की आड़ में खड़े रहे। उनमें से दो-चार जने तो पश्चिम के थे, बाकी सब पठान थे, जिनके आकार-प्रकार, रंग-रूप का यहाँवालों से कोई मेल नहीं बैठता। गाते-गाते ही हुस्ना ने एक बार सब कुछ देख लिया और हुस्ना की तरफ ताककर हिरण के मन में कुछ फिक्र-सी हुई। हुस्ना की भँवों के इशारे से ताल कटते-कटते बचा। हिरण उस इशारे का मतलब जानता था। वह ताड़ गया कि हमीद के चेहरे की हँसी के पीछे एक साजिश है। गाते-गाते ही हुस्ना ने हमीद के एक-एक हथियारबंद अंगरक्षक को देख लिया। हिरण की निगाहों में यह भी आया कि हुस्ना के प्राणों के दिगंत में आँधी की लालिमा झाँकने लगी है।

बीच-बीच में सुननेवाले वाह-वाह कर उठते थे। हुस्ना के गीतों से यहाँ के लोग परिचित तो पहले से ही थे, परन्तु ऐसा गीत उन्होंने पहले कभी नहीं सुना। उसके साथ न तो रहता है कोई साज, न कोई आडंबर; जब कभी भी जिस किसी भी अवस्था में उसके प्राणों का अनंत प्राचुर्य उपलक्ष पाते ही फूट पड़ता। उसके गीतों का जमघट अचानक कभी हाट के शोरोगुल में जम जाता तो कभी खेतों में। किसी दुखी के यहाँ घुसकर वह गरीबी में बैठ जाती, बैठ जाती किसी बेबस के सिरहाने, किसी विधवा के पास जिस बेचारी के बेटा मर गया होता।

हुस्ना से बचने का उपाय नहीं था। लेकिन मीरा से ऐसा न बन पाता। उसमें सकुचाहट थी, कम बोलने की आदत थी। मुकाबले की प्रेरणा लिए मीरा कहीं नहीं जा सकती थी, अपने मन की ओजस्विता से किसी को प्रभावित करने की शक्ति उसमें न थी, विधि-निषेध

की बाधा को जोर से अस्वीकार करने में उसे डर लगता था, इसी से वह पीछे रह जाती थी । हुस्ना चाहती थी तेज, विक्रम, साहस, वीर्य, बलिष्ठता ; मीरा चाहती थी संस्कृति, सत्‌शिक्षा, सौजन्य, शान्ति और आनंद । मीर विरोध का निराकरण ढूँढ़ती थी और हुस्ना चाहती थी स्त्री समाज में क्रांति, परिवर्तन । मीरा बुद्धि का संस्कार चाहती और हुस्ना चाहती दुर्बुद्धि का संहार । मीरा की रुचि विन्यास की ओर थी, हुस्ना की विद्रोह की ओर । मीरा कहा करती—विश्व-संसार आनंदमय हो । हुस्ना कहती—वसुंधरा वीरभोग्या हो ।

नाचना-गाना जब बंद हुआ, तो रात के ग्यारह वज चुके थे । सरदी की रात, फिर भी भीड़ बढ़ती ही गई । बहुत-से लोग सिर ढँके खड़े ही रहे । थाने के आदमियों के साथ एक ओर हारूं मियाँ बैठे थे । उनके साथ गोपालपुर थाने के लोग भी थे । एक तरफ शांत भाव से इंतजार कर रहे थे हमीद साहब । कहने की जरूरत नही कि उनकी निगाहें हुस्ना और हिरण पर टिकी थीं ।

ज्यों ही जलसा टूटा, हमीद साहब ने हारूं मियाँ को बुलवाया । उनके आते ही पूछा—इन लोगों का क्या प्रबंध किया आपने ?

हमीद के मन की भावना हारूं से छिपी नहीं थी । बीच में कई बार उन्होने थाने पर हुस्नवानू के बारे मे पूछताछ की थी । उन्होंने कहा—कैसा प्रबंध करूँ कि आप खुश हों ?

—ये क्या यहाँ के सिवा कहीं रहेंगे ?

—लेकिन उन्हीं के घर में उन्हें बाँधकर क्यों रखा जाए ?

—हुँ ।—हमीद ने कुछ क्षण क्या तो सोचा । बोले—लेकिन इनकी हरकतो से पाकिस्तान का नुकसान तो हो सकता है ?

हारूं मियाँ ने एक बार एड़ी से चोटी तक हमीद साहब को देखा । कहा—क्या आप इन्हें थाने में वंद रखने को कहते है ?

हमीद साहब ने कहा—हुस्नबानू महल में जाए और हिरण को न हो तो आप अपने जिम्मे रखें ।

—क्यों ?

—राष्ट्र की सुरक्षा के लिए।

—लेकिन मेरी सुरक्षा ? मैं इसे थाने में बंद करूँ और लोग अच्छी तरह से मेरी मरम्मत करें ? लोग थाने को फूंक देंगे, दंगा हो जाएगा आप क्या यही चाहते हैं कि घर में बेटे-बेटी की बेइज्जती हो ? मेरी जान ही गई तो पाकिस्तान के लिए क्या ?

अबकी हमीद ने सिर से पाँव तक हारूँ मियाँ को देखा। पर अंदर के आक्रोश को उन्होने बाहर जाहिर न होने दिया। सिर्फ इतना कहा—लेकिन आपको इतना तो जानना ही चाहिए कि उन पर जुर्म क्या है ?

हारूं मियाँ ने एक बार गोपालपुर के दारोगा की तरफ देखा दारोगा ने कहा—आप सही करके हमारे कागजात लौटा दें, तो हमारी कोई जिम्मेदारी नही रह जाती।

हमीद ने पूछा—फिर ये रहेंगे कहाँ ?

हारूं मियाँ वोले—आ ही रहे है दोनों, आप पूछिए।

हुस्ना और हिरण सामने आकर खड़े हुए। हुस्ना ने पूछा—दादा-जी, आपने यह तो कहा नहीं कि हम रहेंगे कहाँ ?

हारूं के वजाय जवाव हमीद ने दिया—बेअदबी माफ करें। मैं आपको महल मे ले जाने के लिए आया हूँ।

हुस्ना ने पूछा—आप ? आप कौन हैं ?

—मैं छोटी रानी का प्रतिनिधि हूँ। उन्होंने आपको बुलाया है।

हँसकर हुस्ना वोली—मुझे ले जाने के लिए हथियारबंद पठानों की टोली क्या उन्होंने ही भेजी है ?

हमीद वोले—ये सब महल के पहरेदार हैं। आपको सरकारी सम्मान देने के लिए ये भेजे गए हैं।

हुस्ना ने हिरण की ओर देखा और कहा—मामला कैसा तो लग रहा है, क्या खयाल है जमाई ?

हिरण ने कहा—बुरा क्या है, अच्छा ही लग रहा है।

—खासा पेचदार है, क्यो ?

—राजकीय !—हिरण ने जवाब दिया।

हमीद की ओर मुड़कर हुस्ना ने हंसते हुए पूछा—माफ कीजिएगा, आपका नाम ?

जरा आहत कंठ से हमीद बोले—मेरा नाम अभी तक आपके कानों नही पहुँचा है ?

—जी नहीं तो।

हिरण ने कहा—इनका नाम श्री हमीदअली है। चाचाजी की जमीदारी के व्यवस्थापक आजकल यही है।

बाकी बातें हारूं मियाँ ने पूरी कीं—कचहरी-सिरिश्ते में तू जो किया करती थी, वही आजकल ये करते है।

हुस्ना ने कहा—खुशी हुई सुनकर। बेशक काबिल आदमी है। इनकी तनखाह क्या होगी दादाजी ?

बूढ़े हारूं मियाँ बिगड़ उठे—इन बातो से तुझे क्या ? तू देगी तनखाह ? इन्हें जो तनखाह मिलती है, वह तेरे बाप-दादे ने सुनी न होगी। ढाई हजार नकद, पाँच सौ भत्ता। सुना है कभी ?

—बहुत बडी तो नही है यह ! मगर ये रुपये देता कौन है ? जमींदार या सरकार ?

हिरण ने कहा—तेरी बातें ही अजीब होती है। देखभाल करेंगे जमीदार की जायदाद की, और तनखाह देगी सरकार ?

मुँह भारी किए हुस्ना कुछ देर गर्दन झुकाए रही। उसके बाद पूछा—और इन पहरेदारों का खर्च ?

हमीद ने कहा—वह भी जमींदार के जिम्मे।

—इसमें छोटी रानी की राय है ?

हमीद जरा हँसे। बोले—हाँ, है।

भीड़ अभी भी उन्हें घेरे खड़ी थी। उधर एक बार देखकर हुस्ना बोली—अच्छा तो चलिए।

भीड़ में से किसी ने पुकारा—जीजी।

हुस्ना हँसी। कैसी मीठी हँसी ! बोली—फिक्र मत कर, मैं अब कही नहीं जाती।

—छिपकर तो चल नही दोगी ?

—छिः। अपना देश छोड़कर कहाँ जाऊँगी ? हम यही रहने के लिए आए है। चलिए हमीद साहब।

कई आदमी रास्ता दिखाते हुए पेट्रोमेक्स लिए आगे-आगे चल रहे थे। कुछ दूर चलकर हमीद साहब ने कहा—रानी साहिबा ने आपके बंधु हिरण को नही बुलाया है।

हुस्ना मुड़कर खड़ी हो गई—इसका मतलब ?

—मतलब कि वे बाहरी आदमी हैं न।

अब विषैले साँप ने अपना फन उठाया ! कहा—मिस्टर हमीद, बात यह है कि एक आपको छोड़कर इस गाँव में कोई भी बाहर का आदमी नहीं है। मैं शुरू से ही समझ रही थी कि छोटी रानी के नाम पर आप अपनी बात कह रहे हैं। याद रखिए, मैं औरत हूँ, मगर नन्ही-नादान नही।

गुस्से के मारे वह थर-थर काँप रही थी। हमीद ने कहा—आखिर हिरण बाबू किस नाते महल में जाएँगे ?

अपने को जब्त करके हुस्ना बोली—मैं किस नाते वहाँ जा रही हूँ मि. हमीद ? आपको पता है, हिरण बाबू छोटी रानी के मुझसे ज्यादा अपने हैं ? आप जानते हैं, हम सब एक ही परिवार के हैं, एक ही साथ पले हैं ?

सकपकाकर हमीद चुप रहे। पाकिस्तान का सारा झमेला इस बंगाल की वजह से है। यहाँ हिन्दू और मुसलमान की पहचान मुश्किल है। ये बेवकूफ इस कदर आपस मे घुले-मिले रहते हैं कि फर्क समझना मुश्किल। एक का कान पकड़कर खींचो, तो दूसरे का सिर बढ़ आता है।

हिरण ने कहा—कोई मसला ही नहीं आता, आते वक्त मीरा से माला बदल करके आने से सारा झमेला ही चुक जाता ! छोटी रानी के साथ मैं भी तुझे न्यौता भेज सकता।

हमीद चाहते नहीं थे कि हुस्ना के साथ महल में दूसरा कोई जाय। उन्होंने कहा—आपका मकान कहाँ है हिरण बाबू ?

—मेरा मकान ? इसी गाँव में।

—नहीं, नहीं, आपका घर ?

हिरण ने जवाब दिया—करीब बीस साल पहले नदी के पास दो छप्पर करवट लिए खड़े थे, कुछ-कुछ याद आता है। अब वहाँ नदी बहती है, समझ गए साहब ?

बात करते-करते वे सब बख़्शी के बगीचेवाले उस रास्ते पर आ निकले थे जो नदी को जाता है। हथियारबंद पठानों की टोली पीछे-पीछे आ रही थी। अचानक एक जगह रुककर हिरण ने आवाज दी—दादी, जग रही हो क्या ?

पास ही फकीरा की माँ का घर था। आवाज आई—कौन ?

—मैं हूँ। जमाई।

झनाक् की आवाज हुई। दरवाजा खोलकर फकीरा की माँ और फकीरा बाहर निकल आए। जमाई उनके बरामदे पर पहुँच गया। उसे देखकर मारे खुशी के फकीरा की माँ अकबका उठी। बोली—अरे, चाँद बाबू ! खबर मुझे मालूम थी। कुछ खाया-पिया है ?

—न, खाया नहीं है। भात खिलाओगी ?

—हाँ खिलाऊँगी। अपना भात आप खाएगा तू, मैं कौन होती हूँ। आ, अन्दर चलकर बैठ।

हिरण ने कहा—हुस्ना को देखा ? वह खड़ी है।

थोड़ी ही दूर पर हुस्ना खड़ी हँस रही थी। उसे देख आनन्द से फकीरा की माँ रो ही पड़ी। रोते-रोते कहा—हाय राम ! इतने दिनों से हमें भूले बैठी थी, तेरे दया-माया नहीं, चुड़ैल।

वह हुस्ना से लिपट गई और फफक-फफककर रोने लगी। आँसू के सिवाए उसके दूसरी भाषा न थी। हिरण फकीरा के कन्धे पर हाथ रखकर खडा रहा। भँवें सिकोड़कर हमीद ने एक बार अपनी कलाई की घडी देखी।

रोना-धोना बन्द हुआ तो फकीरा की माँ ने कहा—थोड़ा-सा खाकर जा यहाँ से। मेरा कहा मान…

—अच्छा, चावल पकाओ। जमाने से तुम्हारे यहाँ नहीं खाया है दादी।

फकीरा की माँ दौड़ती हुई अंदर चली गई।

हमीद ने एतराज जताते हुए कहा—मुझे देर हो रही है मेमसाहब।

हुस्ना बोली—आप जा सकते हैं मि. हमीद। अपना रास्ता आप पहचानकर मैं चली जाऊँगी।

—लेकिन रानीजी के यहाँ आपके खान-पान का इन्तजाम था। वे आपका इन्तजार कर रही हैं। दूसरे, रात भी हो गई।

हुस्ना जरा हँसी। बोली—हमीद साहब, मैं खूब जानती हूँ, रानीजी को मेरे लिए जरा भी फिक्र नहीं। वह लम्बी बात है। आप उनसे जाकर कह दें, महल की रसोई से इस गरीबिन का अन्न मेरे लिए ज्यादा कीमती है। फिर भी अगर आप मुझे साथ ही ले जाना चाहते हैं, तो थोड़ा रुक जाएँ, खा-पीकर चलती हूँ।

हमीद बोले—एक बात और। आपको पता है, यह हरामजादी पाकिस्तान की दुश्मन है? इसकी शैतानी का मुझे पता चला है।

हुस्ना ने आँखें फैलाकर एक बार हसीद को देखा। फिर कहा—यही अक्ल लेकर आप यहाँ नौकरी करने आए हैं? आपके हाथों से पाकिस्तान बच सके तो ग़नीमत।

और हँसकर हुस्ना अंदर चली गई।

शिकारियों को पता होता है कि रात को किसी जंगल में बाघ की आँखों पर नजर पड़ने से उसकी आँखें रक्तिम दीख पड़ती है। आँख का ऐसा रंग और किसी भी जानवर के नहीं होता। हमीद के चेहरे पर पेट्रोमेक्स की रोशनी पड़ रही थी, उस आभा में कोई गौर करता तो वह देख पाता कि उसकी पुतलियों से मानों लहू बह रहा है। लेकिन आदमी वे संयत थे, यह बात सुमित्रा के आगे कई वार साबित हो चुकी है। उनके अंदर गुस्सा और नफरत चाहे जितना ही जमा क्यों न हो, वे उसे जाहिर नहीं होने देते। उनका परिचय वाक्‌बहुलता में नहीं, कर्मकुशलता में है। ऐसा लगा कि अपने मातहतों के सामने उनके सम्मान के खिलाफ कुछ हुआ है, इसीलिए उस अँधेरे में खड़े-खड़े वे काँप रहे थे। इस लड़की के खिलाफ अब तक उनके पास जितनी रिपोर्टें आई हैं, सबसे वह इसी नतीजे पर पहुँचे हैं कि इसे जोर-जबर्दस्ती काबू में लाना असंभव है। इसे छल से, कौशल से मुट्ठी में करना होगा।

सो हमीद को चुपचाप वहाँ खड़ा रहना पड़ा। कोई चार हथियारबंद आदमियों को रखकर बाकी को उन्होंने लौटा दिया। वह समझ रहे थे कि मच्छडों का उत्पात सहकर इस कच्चे रास्ते में खड़ा रहना उनके लिए अपमानजनक है। और इसे भी वे समझ रहे थे कि जिस फकीरा की माँ को उन्होंने महल मे जाने की मनाही कर दी है, वह एक गए-बीते मुसलमान खेतिहर की लड़की है, और उसके दरवाजे पर इस तरह खड़ा रहना उनके लिए ठीक नहीं। लेकिन हुस्नबानू को साथ लेकर गए बिना उपाय नहीं। इधर के मुसलमानों पर उन्हें कम आस्था है, इनमें जाति-धर्म की वह श्रद्धा नहीं, नैतिकता का कोई आभिजात्य नहीं और हुस्ना इन्हीं मुसलमानों में से एक है। ये हिंदुओं से मिले रहते हैं, उन्ही की बात पर उठते-बैठते है, उनके प्रतिमा-पूजन में सहयोग देते हैं और आपद-विपद की घड़ी में मुसलमानों को अँगूठा दिखाकर हिंदुओं से गलबाँही कर लेते हैं—इस बात के सबूत बहुत बार मिल चुके हैं। हमीद जानते हैं कि पाकिस्तान का सबसे कमजोर अंग पूर्वी बंगाल है, क्योंकि यह बंगाली मुसलमानों का

इलाका है । दुनिया के सारे मुसलमान इस बात को जानते है कि बंगाली मुसलमान विश्वासघातकता के लिए ही दुनिया में जिंदे रहते हैं ।

घर के अंदर से हँसी-मजाक और खुशी की खिलखिलाहट आकर तीर के समान हमीद साहब को चुभ रही थी । फिर भी उन्हे खड़ा रहना ही है क्योंकि इस लडकी का यकीन नहीं । जो रिपोर्ट आई है, उसमें यह लिखा है कि यह वशीकरण जानती है, धोखा देकर भाग सकती है और भेस बदलने में तो उसकी सानी नहीं। ले-देकर महल तक जाया जाए, फिर तो सुमित्रा की मदद से इसे काबू में ले ही आएँगे । इसे लेकर जिस जमात ने जिले में राष्ट्र के खिलाफ साजिश की है, उस षड्यंत्र को अगर उखाड़ा जा सके और जमात के एक-एक आदमी को फँसाया जा सके, तो कम-से-कम एक जिले का सर्वोच्च अधिकार तो उनको मिलकर ही रहेगा । फिर खेतिहरों की इस जात को देख लेंगे । बंगाली मुसलमानों के जात-जन्म की हकीकत समझ ली जाएगी ।

इतने में अँधेरे में दौडते हुए दो सिपाही आए और हाँफ़ते हुए कहा—हुजूर···

दो कदम बढ़कर हमीद ने पूछा—क्या है ?

—बहुत बुरी खबर है हुजूर ।

बिगड़कर हमीद ने कहा—क्या है, कहो ?

—रानीजी नहीं हैं । जाने कहाँ चली गई ।

उत्तेजित होकर हमीद बोले—क्या बकवास करता है ?

—अल्ला कसम हुजूर !

—ताज्जुब है ! यह कैसी धोखेबाजी ?—हमीद ने कहा—दो आदमी यहाँ रहो, बाकी मेरे साथ आओ।

वे जल्दी-जल्दी महल की तरफ बढ़े । जो यह खबर लेकर आए थे, वे भी साथ हो लिए ।

घंटे-भर बाद हमीद साहब फिर लौटे। रोशनी को सामने रखकर इस बार वे फकीरा के बरामदे पर चढ़ गए और दरवाजे पर धक्का दिया।

दरवाजा खोलकर हुस्ना सामने आई।

हमीद ने पूछा—खाना-पीना हो चुका ?

—हाँ। लेकिन आज हम यहीं रहेंगे मिस्टर हमीद !

अपने को जब्त करके वह बोले—यह मैं जानता हूँ। लेकिन एक खबर है बेगम साहिबा। आपका भला-बुरा उसी पर मुनहसर है।

—कौन-सी खबर ?

—मैं यह कहने आया हूँ कि जो मुझसे दुश्मनी करेगा, पाकिस्तान सरकार सारी शक्ति लगाकर उसे दबाएगी। तबाह करेगी। मै पाकिस्तान सरकार का प्रतिनिधि हूँ।

हुस्ना अंदर थी। बाहर आ खड़ी हुई। बोली—यह आँखें टँगाने का क्या मतलब है आपका ?

हमीद ने अपनी भाषा बदल दी। बोले—मैं इसमें साजिश की बू पा रहा हूँ बेगम।

हुस्ना बोली—इतनी बड़ी बात तुम्हारे मुँह नहीं सोहती। अपनी कहो। नींद आ रही है ?

हमीद ने कहा—मैं यह जानना चाहता हूँ कि छोटी रानी यहाँ आयी हैं या नहीं ?

—खैर। अंदर आकर अच्छी तरह देख लो।

हिरण ने हमीद को एक बार देखा। भयभीत आँखों फकीरा की माँ एक बार उसे ताककर बगल में खिसक गई।

हमीद ने अंदर जाकर सुमित्रा की खोज जरूर नहीं की, लेकिन मुँह से इतना कहा—ठीक कह रही हो, वह यहाँ नहीं आई हैं ?

हुस्ना बोली—हमारे भी सब्र की कोई हद है। तुम्हें मैं इतना बड़ा आदमी नहीं समझती कि झूठ बोलूँ।

अब दोनों के बीच आकर हिरण खड़ा हो गया। बोला—मि. हमीद, माजरा क्या है ?

उत्तेजित चेहरा हिरण की तरफ फेरकर हमीद बोले—रानीजी का

पता नही चल रहा है।

—बला से पता नही चल रहा है, आपका क्या नुकसान है ?

—वे एक संभ्रात महिला हैं, उनके प्रति हमारा एक नैतिक दायित्व है, जानते हैं ? यदि उन पर कोई आफ़त आए तो हिंदू अखबारवाले पाकिस्तान की निंदा करेंगे, इतना समझते हैं ? मैं सारी रात आज घर-घर की खाक छान डालूँगा। फिर हेडक्वार्टर में खबर भेजूँगा।

हिरण ने हँसकर कहा—लगता है, वे कैदी थीं ?

—बिलकुल नही। वह रानी थीं, मैं रिआया।

हुस्ना ने पूछा—उन्हें गद्दी वापस मिल गई थी ?

हमीद ने कोई जवाब नही दिया। फिक्र से उनका दिमाग ठिकाने नहीं था। उन्होंने सिर्फ इतना पूछा—आखिर आज आप क्यो न जाएँगी, जान सकता हूँ ?

हुस्ना ने अबकी अपनी ही भाषा में पूछा—तुम क्या महल में सपरिवार रहते हो म्याँ ?

—नही, मैं अकेला रहता हूँ। लेकिन मैं यह कैफ़ियत देने को तैयार नही।

हुस्ना हँसी। कहा—आधी रात को तुम रानी की तलाश में निकले हो, एक जाने-माने अविवाहित आदमी हो तुम—इससे पाकिस्तान की बदनामी नही होगी ?

—यह आपकी बेअदबी है बेगम।

—तो थोडी बेअदबी और करूँ। अबकी शायद नाक के बजाए नहरनी की खोज में निकले। इस सूने महल में इस रात के समय एक मुस्लिम युवती को ले गए बिना तुम्हारा काम नहीं चल रहा है, क्यों ?

हमीद स्तब्ध हो रहे। फिर तीखी निगाहों एक बार ताका और कहा—अच्छा, मैं चला जाता हूँ। लेकिन मुझे मालूम है, महल में जाने में तुम्हें डर लगता है !

हथियारबंद लोग आस-पास खड़े थे। उन्हें साथ लेकर हमीद के

आगे बढते ही हुस्ना ने जवाब दिया—बाघ के पिंजड़े में घुसते हुए हर किसी को डर लगता है, हमीद साहब ! लेकिन जिसे डर नहीं लगता है, वह कौन है, पता है ?

हमीद ने पलटकर देखा ।

तीखी हँसी हँसकर हुस्ना ने कहा—पिंजड़े के अंदर पिलकर जो बाघ को नचाता फिरता है । ऐसे खिलाड़ी के हाथों क्या रहता है, देखा है कभी ?

हमीद लहकते अंगारे-सी हँसी हँसे । कहा—माई डियर बेगम, यह भारत का पालतू अहिंसक बाघ नहीं, यह बाघ पाकिस्तान का है, यह मत भूलो ।

हुस्ना बोली—देख तो रही हूँ । तुम्हारे कारनामे ही इसके सबूत हैं । मैं खूब जानती हूँ, पाकिस्तानी बाघ केवल घुड़कियाँ दिखाना जानता है, जानता है केवल दाँत दिखाना ! कोई सीना तानकर तन जानेवाला आया नहीं कि वह भी अहिंसक बन जाता है । केवल पूँछ की मार से धूल उड़ती है ।

अंदर जाकर हुस्ना ने दरवाजा वंद कर लिया । हिरण ने कहा—कमाल है ! छोटी चाची ने आँखों में खूब धूल झोंकी है ।

हुस्ना हँसते-हँसते लोट पड़ी । बोली—जादू है, जादू !

हमीद साहब बरामदे से धीरे-धीरे उतरे और अपने आदमियों के साथ लौट गए । अविश्वास, घृणा, आक्रोष, सब कुछ के बावजूद वे यह खयाल लेकर लौटे कि यह लड़की चाहे जो करे, कम-से-कम डरकर भाग तो नहीं सकती । इसकी शक्ल, भुजा और खूबसूरती में ही ये हरूफ़ लिखे हैं कि किसी की अधीनता कबूल करने के लिए यह पैदा नहीं हुई ।

आगे-पीछे, अगल-बगल आँधी के आसार रहे । हमीद साहब की जलती हुई निगाहें अंधकार को चीरती हुई आगे बढ़ गईं ।

सुमित्रा का सारा किस्सा रात जगकर हुस्ना ने फकीरा की माँ से सुना। उसकी गरीबी, उसकी फ़ाकेकशी, अपमान, उपेक्षा, यहाँ तक कि रसोई करके हमीद को खिलाने का प्रस्ताव भी सुना। वे अपनी छिनी हुई गद्दी वापिस लेने आई थी, खोया हुआ राज्य लौटाने आई थीं, आई थी कुल के एकमात्र अवलंब अत्रि को आदमी बनाने के लिए। हुस्ना एक-एक करके सब कुछ ध्यान से सुनती रही थी। हमीद के चरित्र का सच्चा चित्र उसने अपने मन में खींच लिया था।

जाते समय हमीद के लिए सुमित्रा जो चिट्ठी छोड़ गई थीं, वह भी हुस्ना को मिली। अंग्रेज़ी में थी। आशय था, माफ करें, आपको बिना बताए किसी कारण से मैं अभी ही चली जा रही हूँ। हाँ, आपके प्रस्ताव पर नैतिक आपत्ति होते हुए भी, अपनी प्रतिष्ठा के नाते मैं एक बार उस पर विचार करूँगी। आपको समय पर इसकी सूचना दूँगी। इति,—सुमित्रा।

हिरण ने कहा—प्रस्ताव भी कैसा! सुनकर चिंता होती है।

हुस्ना कुछ देर चुप रही। फिर बोली—दादी, तूने कुछ सुना है?

फकीरा की माँ बोली—मैं सुनती तो कैसे? उन दिनों तो मुझे महल में जाने नहीं देते थे।

हुस्ना ने और भी तरह-तरह के सवाल किए। बहुत-से सवालों का जवाब फकीरा की माँ दे भी न सकी। हिरण ने पूछा—आखिर तू यहाँ छोटी चाची के पीछे जासूसी करने आयी?

—नहीं।—हुस्ना ने कहा—इस आदमी को हर तरह से जानने की जरूरत है। मैं यह जान लेना चाहती हूँ कि किस प्रस्ताव के लिए इस कंबख्त ने छोटी चाची को फ़ाके कशाए। मैं यह भूल नहीं सकी हूँ जमाई, कि छोटी चाची को गद्दी और जायदाद का कैसा अँधा लोभ है! हमीद ने उनसे ऐसा कौन-सा प्रस्ताव किया? ऐसा कौन-सा प्रस्ताव, जिस पर नैतिक आपत्ति हो सकती है?

हिरण ने कहा—तू क्या हमीद के नैतिक चरित्र पर कटाक्ष करना चाहती है?

—कटाक्ष कहाँ किया, खोज-पड़ताल कर रही हूँ !

—तूने विचारा है कि एक कँवारे, रूपवान मुसलमान के चरित्र की छान-बीन में तेरे किस मनस्तत्व का हाथ है ?

हिरण की तिरछी बात पर हुस्ना हँसी । बोली—एक दिन गुस्से में चाची ने मुझ पर जो संदेह किया था, अब लेकिन वह अभिप्राय पूरा करने का मौका आया है ।

भौंह सिकोड़कर हिरण बोला—यानी ?

हुस्ना फिर हँसी । कहा—बड़े चाचा की जायदाद पर अब अगर मैं दखल करूँ तो कौन रोक सकता है ?

—रोकेगा पाकिस्तान का कानून ।

—पाकिस्तान का कानून !—हुस्ना फिर एक बार जोर से हँस उठी । बाद में बोली—यह कोई काफ़िरों का देश है कि हर बात में कानून ? कानून कमजोरों के लिए बने हैं, बने हैं दलील देनेवालो के लिए । इस्लामी राष्ट्र में इच्छा ही कानून है । मैं अगर हमीद को ब्याह करके गद्दी पर दखल जमा लूँ तो मुझको हटा कौन सकता है ? मुसलमानों से कहूँगी—यह इस्लाम का आदेश है, कुरान में ऐसा करने की छूट है ।

हिरण ने पूछा—तूने कुरान पढ़ा है ?

हुस्ना बोली—दंगा छिड़ते ही कुरान पढ़ने की इच्छा होती । लेकिन खुशकिस्मती कहो कि नहीं पढ़ा ।

—क्यों ?

—कुरान पढ़ते ही मन में प्रेम पैदा होता है और जहाँ प्रेम पैदा हो, वहाँ दोनों ही राष्ट्रों का नुकसान है । चूँकि नफरत है, इसीलिए दोनों राष्ट्र बँटकर भी खड़े हैं । कुरान का मतलब है मिलन और पाकिस्तान का अर्थ है विच्छेद ।

हिरण बोला—ठहर, असली बात से हट मत जा । देखता हूँ, छोटी चाची खिसक गई, मीरा मसक गई और अत्रि तो नाबालिग ही ठहरा । सो इस गंदले पानी में तू मजे में मछली का शिकार कर सकती है ।

—तू ऐसा समझता है कि हमीद से मेरी पटरी बैठेगी ?

हिरण ने कहा—बिलकुल !

हुस्ना बोली—पहले तू वादा कर, मेरा प्राइवेट सेक्रेटरी बनेगा ?

—सेक्रेटरी बन सकता हूँ, प्राइवेट नही ।

—सिर्फ कॉमरेड ही रहेगा ?

—राम कहो, पाकिस्तान में यह शब्द जबान पर भी मत लाओ ।

हुस्ना बोली—लेकिन तुझे छोड़ने से मीरा का तो शायद चल सकता है, अपना तो नहीं चलने का कॉमरेड !

हिरण ने कहा—छोड़ना पड़ेगा नहीं, मै छूट पाना चाहूंगा । मै तेरे बाग की निगरानी में रहूँगा । देवी, बनूँगा तेरी फुलबगिया का मालाकार !

हँसकर हुस्ना बोली—मालाकार !

—तुच्छ मालाकार ! सब काम में अवसर लूँगा !

—अरे, कर्मभीरु, अलसकिंकर, किस काम आएगा तू ?

—अकाज का काज, आलस का संचय, आनंद का आयोजन ।

—पुरस्कार क्या लेगा ?

हिरण ने कहा—हर रोज सवेरे फूल का कंगन बनाकर जब कमल के पत्ते पर लाया करूँगा मैं, तो तुम्हारी कमल-कलिका-सी हथेली पकड़कर स्वयं पहना दूँगा—बस यही पुरस्कार !

हुस्ना की आँखें खिल पड़ी । उसने तुरत जवाब दिया—-तेरी दरखास्त मंजूर हुई । तू सदा स्वेच्छाबंदी दास बना रहेगा, ख्यातिहीन, कर्महीन; राजसभा के बाहर तेरा घर रहेगा—तू मेरे मालंच का मालाकार हुआ !"

पोटली-गठरी, जो भी थी, सब ले-देकर वे फकीरा के यहाँ से निकल पड़े । डरती हुई फकीरा की माँ उनके साथ-साथ चली । कहना व्यर्थ है कि अपने भाग्य को वे अनिश्चित के हाथों छोड़ देने को बिलकुल राजी न थे । भोजन उन्होंने भरपेट वहीं कर लिया था । हिरण के हाथों थी

वह पाँच सौ रुपयों की थैली और हुस्ना के पास तो इससे कहीं ज्यादा रकम थी ।

सुबह तक खबर और भी फैल चुकी थी । जिन्हें हुस्ना और हिरण के यहाँ आने की बात का एतबार नहीं हो रहा था, आस-पास के गाँव से ऐसी बहुत-सी स्त्रियाँ, ऐसे बहुत-से पुरुष आये । बहुतेरे अपने साथ भेट के रुपये लिए आये थे, बहुतो ने लाया था खाने-पीने का सामान ! सो फकीरा की माँ के साथ जब वे दोनों महल की ओर चले, तो उनके पीछे सौ-एक लोगों की भीड़ थी । हाजीपुर का नेतृत्व इन्हीं के हाथों था ।

हुस्ना की आँखों में, चेहरे पर गंभीरता लौट आई थी । वह अलग-अलग चली । हिरण सबसे मौज-मजाक करता हुआ चला । इसी बीच मौका निकालकर फकीरा की माँ हिरण को ओट में ले गई और बोली—अगर कहीं सही बात का पता चल गया, तो मुझे पकड़कर कत्ल कर देगा, समझता है तू ?

उसके डरे हुए चेहरे की तरफ हँसकर ताकते हुए हिरण ने कहा—दादी, तू अगर दलाल का काम करे, तो बेदाग बच जा सकती है ।

—कैसे ?

—अपनी इस पोती का हमीद साहब से ब्याह करा दे । चाँद के टुकड़े-सा दामाद मिलेगा ।

बिगड़कर फकीरा की माँ बोली—उस मरदूद से ? क्यों, क्या मधुमती में पानी नहीं कि बाजार में रस्सी और घड़ा नहीं मिलता ?

—फिर तो तेरी किस्मत ही खोटी है !—हिरण वहाँ से चला आया ।

हुस्ना और हिरण महल के अहाते में दाखिल हुए । उनके पीछे-पीछे जनता । कचहरी के लोगों को पहले से ही खबर मिल गई थी । वे समझ रहे थे, आज कुछ-न-कुछ हंगामा हो सकता है । पहरेदार हथियार लिए मुस्तैद खड़े थे । हर-एक के चेहरे पर उड़नेवाली हवाइयों से यह

बात साफ जाहिर हो रही थी कि सुमित्रा का पता नहीं चल सका।

यहाँ-वहाँ हमीद साहब के आदमी लगे थे। उन्हें खबर हो गई थी कि हुस्ना आ रही है। वर्दी पहनकर वे सबके सामने आकर खड़े हुए। दुआ-सलाम के बाद हुस्ना ने कहा—मि. हमीद, अब दिन की रोशनी में हमारी चार आँखें हों।

लोगों की तरफ देखकर हमीद बोले—ये कौन लोग हैं?

—ये हमारे अन्नदाता है। आप-हम उनके दास-दासी हैं।

—क्या चाहिए इन्हें?

—कुछ नहीं। ये हमारे साथ आये हैं। राजमहल में आज इनका न्यौता है।

कुछ देर तक हमीद ने जैसे कुछ सोचा। फिर कहा—आप अपने साथ भीड़ बटोरकर लाई हैं, लेकिन मैं इनकी खातिर करने को तैयार नहीं हूँ। राजमहल सराय नहीं है!

हुस्ना ने एक बार हिरण की तरफ देखा, एक बार भयभीत फकीरा की माँ पर नजर दौड़ाकर विक्षुब्ध जनता की तरफ देखा। फिर निगाह फेरकर हमीद की आँखों पर आँखें रोपकर कहा—साफ-साफ बताएँ, आप क्या मुझे अंदर नहीं जाने देना चाहते?

—आप आयें तो कोई एतराज नहीं। आइए, मगर इन लोगों के लिए तो मुझे इजाजत मँगवानी पड़ेगी।

भीड़ में से कुछ लोग शोर कर उठे।

कचहरी में जो दो नौजवान नये बहाल हुए थे, उन्होंने हाट के दो आदमियों के गाल पर चपत जड़ दी। देखते-ही-देखते कुहराम मच गया। दोनों दलों में मारपीट शुरू हो गई। निबटारे के लिए हिरण दोनों के बीच कूद पड़ा। लेकिन निबटारा हो तो कैसे? पाकिस्तान का नया लहू! वहाँ के लोग खुद ही अपना विचार करते हैं। शोर मचा। तमाम गाँव से पागल भीड़ दौड़ी आई। बात-की-बात में महल का अहाता लोगों से खचाखच भर गया।

हमीद ने देखा, यह नौबत उन्ही के लोगों की बदौलत आई। इतने लोगों को अपना दुश्मन बनाने से काम कैसे चलेगा ? मालगुजारी वसूली का समय है। दिन-काल अच्छा नही।

कुछ आगे आकर हमीद ने आवाज दी—बेगम साहिबा ?

हुस्ना ने हँसकर उधर ताका। हमीद ने कहा—हमारे पास तीस-चालीस हथियार है। उनका इस्तेमाल मुझे आता है। लेकिन पाकिस्तान में आकर जो लोग मुसलमानों में झगड़ा कराते है, वे पाकिस्तान और मुसलमान, दोनो ही के दुश्मन है !

हुस्ना बोली—मैं भी ठीक यही सोचती हूँ मि. हमीद ! पाकिस्तान बच सकता है बशर्ते कि आप जैसे लोग यहाँ न रहें।

—आप कहना क्या चाहती हैं ?

—मै यह कहना चाहती हूँ कि आप न तो शासक ही हैं, न विचारक। आप तो जमींदार के एक वेतनभोगी कर्मचारी भर है। मगर आपकी नवाबी पर मैं दंग हूँ। ढाल-तलवार, प्यादा-पलटन पर यह कायमी बंदोबस्त। खैर, मगर आप इतने ही बलवान हैं तो इस दंगे को रोकिए। उन छोकरों को कान मलकर सबक दीजिए। आप इसे याद रखे हमीद साहब, आपकी बंदूकों से जनता की शक्ति बहुत बड़ी है।

हमीद ने कहा—इसका अंजाम क्या होगा, मालूम है ?

—खूब जानती हूँ।—कहकर हुस्ना ने वहीं से जनता को आवाज दी।

बहुत-से लोगों ने हुस्ना की ओर ताका। फकीरा की माँ और हिरण भीड़ से बाहर निकलकर खड़े हुए। कचहरी के लोग हट गए। गाँव के लोगों ने मुँह फेरा।

हुस्ना ने कहा—मिस्टर हमीद, अब हम अंदर जाएँगे। अब या-तो आप हमें रोकिए या अपने लोगों से कहिए हम पर गोली चलाएँ।

बड़े दारोगा हारूं मियाँ खबर पाकर वहाँ आ पहुँचे थे। जोरों से

चिल्लाकर बोले—हरामजादे, यहाँ हुज्जत करने आये हो ! और कोई काम नहीं है ? जा यहाँ से । मारकर निकाल बाहर करूँगा । बदमाश, हरामी ।

हुस्ना बोली—दादाजी, उनका कोई कसूर नहीं ।

हारूं मियाँ ठिठक गए—उनका नहीं तो किसका कसूर है ? इस हमीद मियाँ का, क्यों ? सलाम वालेकुम ! आप कुछ समझते नही हमीद साहब ! यहाँ के ये जमाई हैं, आप इन्हें जाने दें । और वह लड़की तो जमीदार की सब कुछ है । इसे आप रोक नहीं सकेंगे, यह विषधर है, विषधर । चल, मेरे साथ चल, हंगामा मत कर ।

हमीद के सामने से हारूं मियाँ उन्हें लेकर अंदर चले गए । पीछे-पीछे गयी जनता ।

अट्ठारह

सबेरे से कचहरी का काम ठप पड़ गया । बूढ़े नायब चल दिए, बूढे अलीमियाँ ने हाल बेढब देखा और कमरों में ताला लगाकर खिसक गया । जिन दो जवान कर्मचारियों ने सबेरे लोगों पर हाथ छोड़ा था, उन्हें हारूं मियाँ से लानत-मलामत सुननी पड़ी । वे भी चले गए । जाते वक्त कह गए, इस अपमान का अगर प्रतिकार न होगा, तो नौकरी छोड़कर वे चले जाएँगे । दोनों हमीद के आदमी थे ।

किंतु हमीद की हार हुई थी । हारूं मियाँ थे पुलिस के दारोगा, हुस्ना उन्हीं की मदद से जमात के साथ महल में दाखिल हुई, लिहाजा इस वारदात को गैर-कानूनी भीड़ का हमला तो कहा नहीं जा सकता । वे जमींदारी के व्यवस्थापक जरूर हैं, पर दारोगा पर उनकी हुकूमत नहीं चल

सकती। उनकी यह हार न केवल हुस्नबानू से थी बल्कि हारूं मियाँ के आगे भी उनके सम्मान की रक्षा न हो सकी। सबसे ताज्जुब तो यह है कि कल तक हाजीपुर में उनकी धाक थी; हुस्नबानू के आते ही आते चक्का उलटा घूम गया। वे पीछे हो गए। कल रात से सिरिश्ते के लोग भी पलट-से गए हैं।

यह हंगामा जब किसी हद तक ठडा पड़ गया, तो हमीद के लोग हाट गए थे। उन्हें खाली हाथ लौटना पड़ा। उनके अंगरक्षक सब गैर-बंगाली थे। इसलिए एक तो यों ही यहाँ के लोग उनसे चिढ़े रहते थे, उस पर उस रोज जो वाकया गुजरा, उससे तो लोग जल-भुन उठे। लिहाजा हमीद ने लोगों को रुपया-पैसा देकर भेजा था, फिर भी हाट से सामान न मिला। इतना ही नहीं, कचहरी के दो आदमी रूपचाँदपुर वसूली के लिए गए थे। लेकिन किसानों ने साफ कह दिया—इलाके के किसी गाँव से अब मालगुजारी नहीं पाओगे म्याँ। हाँ, जमींदार माँगे, तो देंगे।

उन्होंने कहा—जमींदार तो मरकर भूत हो चुका। अभी तो व्यवस्थापक ही सर्वेसर्वा है। वसूली न होगी तो पकड़वा मँगाएँगे।

—कौन तो पकड़वा मँगाता है! अपने मन मियाँ-मिट्ठू बने बैठे है। तुम लोग रुखसत हो म्याँ। मालगुजारी देनी ही पड़ेगी तो हुस्ना बेगम को देंगे।

प्यादों की जबानी यह बयान सुनकर हमीद सन्न हो गए। तीन दिनों तक तो उन्होंने चूँ भी न किया। सब देख-सुनकर स्थिति का विचार कर लेना था।

अर्दली और खानसामा साहिब कोई बीसेक अंगरक्षक थे उनके। उनमें से दो तो बंदूक लेकर डेवढ़ी पर पहरा देते और चार-पाँच रात को अहाते में पहरा देते। जबसे सुमित्रा गायब हुई, तब से यह इंतजाम किया गया है और अगर हमीद साहब का खयाल सही हो, तो सुमित्रा का गायब होना भी पूर्वनिश्चित था। यानी हमीद साहब का यह विश्वास है

इस्तीफा देकर और कहीं चले जाएँ। एक बात और, आपके अंगरक्षकों के चलते यदि मेरे आदमियों का अपमान हो और उसके लिए हंगामा हो जाए, तो उसकी सारी जिम्मेदारी आप पर होगी। हाँ, ऐसी कोई दुर्घटना अगर हो जाए, तो मैं आपको सुरक्षित रखने की कोशिश करूँगी। उम्मीद करती हूँ, फिर से ऐसा कोई हंगामा खड़ा करके आप अपनी बेवकूफी का परिचय न देंगे। आप जैसे कर्मचारियों की अदूरदर्शिता से पाकिस्तान का अमंगल हो सकता है, इस आशय का एक पत्र मैंने भी सरकार के पास भेजा है।

दूसरे दिन डेवढ़ी से गुजरती हुई फकीरा की माँ ने देखा, बन्दूकवाले सिपाही वहाँ नही हैं। वे वहाँ से हटकर हमीद साहब के महल मे पहरा दे रहे है। चैन की साँस लेकर फकीरा की माँ अंदर चली गई।

दो दिन के बाद कचहरी के रास्ते में हिरण से हमीद साहब की भेंट हो गई। हिरण ने नमस्कार किया। जवाब में माथे तक हाथ ले जाकर हमीद ने कहा—अदाब अर्ज़। कैसे हैं ?

हिरण ने कहा—मंदा समय है। उसी के मुताबिक दुःख-सुख से किसी तरह कट रहे है दिन। आप तो मजे में हैं ?

हमीद बोले—आप से तो हमारी कभी अच्छी तरह बात भी नहीं हुई। आइए मेरे कमरे में थोड़ी देर बैठिए।

हँसकर हिरण बोला—बेजा क्या है, चलिए। लेकिन आपके ये प्यादे कहीं मुझे गायब तो नहीं कर देंगे ?

हमीद सहाब जोर से सूखी हँसी हँसे। बोले—आप हैं पाकिस्तान के जिम्मी। कुरान में लिखा है, जान देकर भी जिम्मियों को बचाना चाहिए,। फिर यह देखें, आप हमारे महल में कैसे आराम से है ; यहाँ के सभी अल्पसंख्यक ऐसे ही आराम से है।

हिरण हमीद के कमरे में आकर हाथ जोड़े बैठा। स्वागत करते हुए हमीद ने कहा—मैंने पहले आपको गलत समझा था। बाद में मैंने पाया, आप सच्चे आदमी हैं। आम हिंदू यहाँ पंचगामी का काम करते हैं, लेकिन

उस रोज अगर आपने नहीं बचाया होता, तो हमारे आदमी पिट जाते, आप यहाँ करते क्या थे हिरण बाबू ?

हिरण ने नम्रता से कहा—मुझे आप मत कहें। मैं यहाँ कचहरी के कारिंदों का चिलम भरता था।

हमीद ने पूछा—खिदमतगारी करते थे ?

—जी, हुज़ूर।

—लेकिन लोग तो कहते है, आप यहाँ के जमाई है। आप शायद बड़े सरकार की जायदाद के मालिक हैं ?

हिरण हँसा। बोला—यह सब झूठी बातें हैं साहब। जमाई कहकर लोग मेरा मखौल उड़ाते थे !

हमीद साहब के कुछ पल्ले न पड़ा। पूछा—आपने मीरा चौधरी से शादी नही की ?

—वह गुड़यों की शादी थी साहब। छुटपन से हम घरौंदे का खेल साथ खेलते थे।

—हुस्नबानू भी क्या आप ही लोगों के साथ रहती थी ?

—जी हाँ।

जाने किस काम से तो हमीद साहब एक बार बाहर निकले। उनके चेहरे और आँखों में कौतूहल और उत्सुकता के तीखेपन की जो चमक थी, उसे छिपाने की जरूरत थी। उलटे पाँवों ही लौट आए वह। मखमल की गद्दीवाली एक आराम कुरसी पर बैठ गए। कभी उसी पर जीवेन्द्र-नारायण बैठा करते थे। बैठते ही उन्होंने बातों का सिलसिला बदल दिया। कहा—हुस्ना के पास तुम क्या काम करते हो ?

—नौकरी करता हूँ हुज़ूर। रसोई बनाता हूँ, कपड़े फींचता हूँ, बर्तन माँजता हूँ, जूते साफ करता हूँ।

हमीद ने कहा—तुम ब्राह्मण हो। ऐसे छोटे काम करने में तुम्हें आपत्ति नही ?

—बिलकुल नहीं हुज़ूर। आप-जैसे दिलदारों की खिदमत का मौका

मिले तो अपने को धन्य समझता हूँ।—हिरण ने अपना हाथ कपाल से लगाया।

हमीद ने एक बार हिरण के चेहरे पर गौर किया। फिर पूछा—हुस्न-बानू क्या तनखाह देती है तुम्हें ?

—नाम की। उससे अपना गुजारा नही चलता। रोटी-कपड़ा भी बंद कर दिया है हुजूर। दो साल हो गए, एक भी कपड़ा नही दिया। मै अब ऐसे की नौकरी नहीं करूँगा। छोड़ दूँगा काम।

—नहीं, नहीं, ऐसा क्या। अच्छा यह बताओ, अगर कोई तुम्हें ज्यादा वेतन दे, तो उसका काम करोगे।—हमीद ने पूछा।

हिरण ने कहा—कोई एक भी रुपया ज्यादा दे तो मैं उसके यहाँ चला जाऊँगा। यह तो अब मुझसे नहीं चलता।

भौंहों को जरा सिकोड़कर हमीद बोले—सच कह रहे हो ?

हिरण ने कहा—अल्लाह कसम।

—अल्लाह को तुम मानते हो ?

हथेली मलकर हिरण बोला—उसके सिवाए दुनिया मे मानने-जैसा और कुछ है क्या ? अल्लाह-हो-अकबर !

हमीद ने मनी-बैग से पाँच रुपये निकालकर हिरण को देते हुए कहा—तुम्हारा इनाम। यहाँ के बदमाश मुसलमानों से तुम्हारे-जैसा हिंदू हमें प्रिय है। इन सालों के हाथ से अल्पसंख्यकों को बचाने के लिए मैं लड़ूँगा हिरण ! अच्छा, और एक बात बताओ···कोई डर नहीं है !

इनाम के पाँच रुपये पाकर हिरण कृतार्थ हुआ था। बोला—आप जो भी जानना चाहेंगे, मैं सब बताऊँगा। मन के लायक आदमी नहीं मिलता है, इसीलिए तो चुप रहता हूँ।

हमीद ने खुश होकर कहा—यह बताओ कि हुस्नबानू ने सुमित्रा को हटा क्यों दिया ?

हिरण बोला—साफ बात है। औरतों में ईर्ष्या होती है।

—हूँ।—हमीद जरा देर चुप रहे। फिर बोले—तुम्हें पता है सुमित्रा

कहाँ भागी है ?

हिरण ने एक बार पीछे की तरफ ताका। फिर धीमे-से कहा—कहने का साहस नही होता है हुजूर।

हमीद की दोनों आँखें जल उठीं। बोले—जब तक मेरी जान है, तब तक तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं हो सकता हिरण। तुम किसी तरह छोटी रानी को मेरे पास ला सकते हो ?

—जरूर ला सकता हूँ।

—कितने रुपये चाहिएँ तुम्हें ?

—रुपया नहीं चाहिए हुजूर।

—फिर ?

हिरण सिर झुकाए रहा। अधीर उत्सुकता से हमीद साहब उसके पास खिसक आए। बोले—बोलो! क्या चाहिए ?

हिरण ने सिर उठाया। आँखें साफ-सुथरी। अचानक उसकी आवाज और तरह की सुनाई पड़ी। शान्त स्वर में बोला—जो भी डर के मारे यहाँ से भागे है, सबको ला दूँगा। उन्हें अगर अपनी मिट्टी और मान वापस मिल जाए, यदि आशा, प्रेम और न्याय मिले, तो वे सब लोग लौट आएँगे। मैं इसका वचन देता हूँ।

हमीद ने कहा—मैं भी तुम्हे वचन देता हूँ हिरण। लेकिन सुमित्रा को लाने का तुम्हें क्या इनाम चाहिए, बताओ ?

—मुझे सिर्फ अपनी जन्मभूमि में रहने का हक मिले, बस।

—अचरज है। कह क्या रहे हो तुम ? और कुछ नहीं चाहिए ?

—नहीं, सिर्फ यहाँ जीने का अधिकार चाहता हूँ। दूसरे शब्दों में जिसे मनुष्यता का अधिकार कहा जाता है। मैं अपने इन खेतों की मिट्टी में कीटाणु-कीट होकर भी जीवित रहना चाहता हूँ। कहिए, देंगे यह अधिकार आप ?

हमीद उसके चेहरे की ओर देखते रह गए। देखते-देखते हिरण की आवाज में कुछ आवेग आया।—धन-दौलत आपकी रही। तख्त भी आप

ही का रहे। मैं माँ की गोद में बैठा बीनकर अन्न खाना चाहता हूँ। यह मेरी मिट्टी है, सदा की अपनी, इस मिट्टी के कतरे-कतरे में अपना ध्यान-ज्ञान लगा है, अपनी विद्या, प्रेम, अपने प्राणों की चेतना लगी है। साहब, देंगे यह अधिकार आप ? एक बार कहिए कि यह राज्य मनुष्य का है, इसलामी राज्य नहीं है।

—इसलामी राज्य सुनकर तुम डरते क्यों हो ? तुम्हारे कृष्ण ने क्या धर्म का राज्य बनाने की कोशिश नहीं की थी ?

हिरण ने कहा—साहब, वहाँ थी धर्म और अधर्म की बात—हिंदू-मुसलमान की बात नहीं थी। उन दोनों ने जातियों के लिए लड़ाई नही लड़ी थी, लड़ी थी पाप-पुण्य के लिए। आप अगर भारत और पाकिस्तान में धर्मराज्य की स्थापना के लिए अग्रसर हों, तो सभी लोग आपके झंडे के नीचे आ जाएँगे। लेकिन आप मनुष्य के बदले मुसलमान-राज्य की बात करेंगे, तो लोगो को डर होगा। अंग्रेजों ने यहाँ ईसाई राज्य की चेष्टा नही की, वे सयाने थे। श्रीकृष्ण ने चीखकर यह नहीं कहा था कि वे हिंदू है, और न दुर्योधन ने ही यह कहा था कि वे अहिंदू है। धर्मराज्य में सबके लिए स्थान होता है, क्योंकि उसका आदर्श होता है, न्याय। पाकिस्तान अगर मनुष्य को नहीं रख सकेगा, तो समझना चाहिए उसका कोई धर्म ही नहीं।

हमीद इस पर हँस रहे थे। बोले—तुम तो बेगम की खिदमत करते हो, यह सब कहाँ से सीखा तुमने ? मुझे शक होता है, तुम हिंदू पंडित हो।

हिरण ने अपने को जब्त किया। कहा—यह सब जानकारी मेरी अखबार की है।

—तुम पढ़ना-लिखना जानते हो ?

—थोड़ा-बहुत।

—मैं भी यही सोच रहा था। जो पढ़े-लिखे होते हैं, वे मेरी ही तरह चुप रहा करते हैं। हाँ, तो अब काम की बात। तुम्हारी मालकिन, यह बेगम हुस्नबानू जो है, किस किस्म की औरत है ?

हिरण ने फिर एक बार पलटकर पीछे देखा। कहा— सच-सच कह दूँ और अगर मेरी इतने दिनों की नौकरी छूट जाए?

हमीद ने कहा—नाहक ही फिर डरने लगे तुम? अब भी क्या तुम मुझे पहचान नहीं सके?

इधर-उधर झाँक-ताककर हिरण बोला—कहीं आपके ये सिपाही सुन लें?

—कोई परवाह नहीं। कहो।

हिरण ने कहा—तो सुनिए, यह बिलकुल अच्छी औरत नहीं है।

हमीद ने पूछा—सुना है, उसने तीन-तीन शादियाँ कीं?

सर्वज्ञ की तरह आँखें मूँदे हिरण हँसा। कहा—जी हाँ। तीन बार। लेकिन उसे दुःख किस बात का है, जानते हैं? कि तीस बार शादी नहीं कर सकी।

—क्यों?

—वह कहती है, मुल्क में मर्द ही नहीं है। उसका खयाल है, उस पार पुरुष रहते है और इस पार जानवर!

हमीद बोले—तो तुम्हारे-जैसे एक खूबसूरत जवान को वह नौकर क्यों रखती है? क्या मतलब है इसका?

हिरण ने कहा—इसी में उसे आनंद आता है। मुझे तो उसने घटक-गिरी के लिए रखा है।

—चरित्र कैसा है?

—आप ही समझ सकते हैं। मुझे तो डपटकर कहती है, जितनी भी शादियाँ क्यों न करूँ, मेरा सतीत्व अटूट है।

हमीद अपनी रंगीन दाढ़ी पर हाथ फेरते रहे। वह समझते हैं, अभी चालीस से ज्यादा नहीं हुई है उनकी उम्र और आज भी वे ब्रह्मचारी है। अचानक पूछ बैठे—हुस्नबानू तुम्हें कॉमरड क्यों कहती है?

हिरण ने कहा—हुजूर, उसके दिमाग में थोड़ी गड़बड़ी है। लोगों के सामने वह मुझे जमाई कहती है, आधी रात को कानों में कहती है

कॉमरेड और क़भी बेमौके कहती है द्रौपदी के मीत। आपसे सच बताऊँ। उसको मन के मुताबिक मर्द ही नहीं मिला—इसीलिए ऐसा करती है। प्यार मिले तो औरतों की हिस्टीरिया छूट जाती है।

—क्या खूब कहा!—हमीद उमंग में आ गए।

हिरण ने एक और पुट चढ़ाया। कहा—इन आजाद औरतों की मर्जी में अड़चन नहीं डालनी चाहिए। आप थोड़ी-सी अधीनता दिखलाएँ, फिर देखिए, एक पल को नहीं छोड़ेगी आपको।

हमीद ने और पच्चीस रुपये निकालकर हिरण की ओर देखा। बोले—सुनो हिरण, सुमित्रा की बात तो अभी रहने दो। यह जमींदारी अगर रहेगी तो एक-न-एक दिन वे जरूर लौटेंगी। और मै तब तक यहाँ रहा, तो मेरे प्रस्ताव पर उन्हें राजी भी होना ही पड़ेगा। यह लो, और इनाम लो।

हिरण ने रुपये ले लिए। कहा—पच्चीस और पाँच। तीस हो गया। जिन्दगी में एक साथ इतने रुपये तो कभी नहीं देखे। आप जो कहेंगे, मै वही करूँगा।

रूपवान हमीद अब जरा हँसे। बोले—लेकिन तुम्हारी कॉमरेड क्या मुझे पसंद करेगी?

—पसंद। उस किस्मत की मारी के इससे बड़ा सौभाग्य और क्या होगा? चूँकि आप उधर मुख़ातिब नहीं है, इसीलिए तो आपसे इतना झगड़ती है। मैं छोट जोड़े देता हूँ न! हाँ, एक बात। आप कभी उसकी बातों से बाहर न हों।

हमीद बोले—हिरण, सिर्फ तीस नहीं, मैं तुम्हें तीस हजार रुपये दूँगा। और एक मुसलमान का बेटा होकर तुम्हें मैं यह वचन देता हूँ कि इस देशी मुसलमानिन के पैरों की जूती बनकर रहूँगा।

हिरण उठ खड़ा हुआ। हाथ जोड़कर बोला—मैं जानता हूँ, आप दोनों का मिलन होकर ही रहेगा।

हँसकर हमीद बोले—कैसे जाना तुमने?

—तेल और पानी जब माफ़िक मसाले के साथ आग में उबलते हैं, तभी वे मिलते है हुज़ूर। उसमें ज़रा-सा नमक डाल दीजिए तो फिर कहना ही क्या।—हिरण चला गया।

महल उनके लिए महज एक मुसाफिरखाना था। यहाँ के जीवन का स्थायित्व कितना है, इसका उन्हें पता था। इस गिरस्ती की क्षणिकता तो उन्हें इससे भी ज्यादा मालूम थी। उनके मन में केवल हाजीपुर ही नहीं, सारा पूर्वी बंगाल सिमटा था। कहीं सिमट बैठने को वे आये नहीं थे, उनका लक्ष्य तो बिखर जाना था। हेमन्त की सुनहली धूप में पके धानो के साथ झूम उठते उनके सपने, किसानों की कुटिया के कोने-कोने चक्कर काटता उनका आनंद। बैहार के उस छोर पर, जहाँ बरगद की जटाएँ मधुमती की धारा मे उतरी हैं, जहाँ धूप-छाँह की आँख-मिचौनी होती है, वही घूमा करता है उनका मन। उन्हें रिक्तता पसंद है। सम्पत्ति का कोई लोभ चूँकि नही था, इसलिए खाली होने का भय भी नहीं। उन्हें राष्ट्र के प्राचुर्य की कामना थी, जिससे लोगों को अन्न-वस्त्र का अभाव न हो। जो युगों से पिसते ही आए हैं, नाकामयाबी से जिन्हें कभी सिर उठाने का अवसर न मिला, मिट्टी में ही मुँह गाड़े पड़े हैं ऐसी जनता की झंकार जिसमें उनकी जबान से गूंजे।

महल उन्हें सोहता भी न था, जैसे कि पहले भी नहीं अनुकूल पड़ता था। यहाँ के एक-एक कमरे में उनका जाने कितने दिनों का इतिहास मौन सोया है, पड़े हैं कितने रूपहीन स्वर, सुख और आनंद की जाने कितनी उमंगें, साँस-उसाँस की कहानियाँ! लेकिन यह वह महल नहीं है। यहाँ जो मन था, वह टूट गया है; प्राण की जो सख्त बुनियाद थी, वह उखड़ गई है; हिसाब का जो सही आँकड़ा उतरना था, वह पलट गया है। इसीलिए राज्य का ऐश्वर्य तो शायद फिर से मिल भी सकता है लेकिन उस मन के मिलने की संभावना नहीं जोकि खो गया है।

वह चेतना अब नहीं लौटने की। वे जिस रोज यहाँ आये, उस रोज उनके मन में गए वैभव का लोभ नहीं था। उनका ध्यान तो यहाँ की विशाल जनता पर था, यहाँ की मिट्टी पर था। वे चित्र के उत्कर्ष, बुद्धि के संस्कार और ज्ञान की निर्मलता की चाह से आए थे। लोग अपमान के अतल से उठ खड़े हों, अन्याय के हाथों से उन्हें छुटकारा मिले और सामाजिक विषमताओं को मिटाकर एक नये समाज का जन्म हो।

हुस्ना कहती—बड़े चाचा की इस जगह पर अब मैं किसी को नहीं बैठने दूँगी कॉमरेड। जमींदार के साथ इस जमीदारी का भी अन्त हो जाए।

हिरण कहता—तू होती कौन है छोटी रानी के अधिकार को खत्म करनेवाली ?

—मैं कोई नहीं, एक दासी हूँ, एक बांदी। लेकिन जनता की भलाई के लिए अगर वह अधिकार जाता है तो उसका कोई गम नहीं। मैं इस व्यवस्था का हेर-फेर चाहती हूँ, जिसे तुम्हारी अखबारी भाषा में वैप्लविक परिवर्तन कहते है। जो तोड़कर बनाना चाहते है, वे संस्कार-पंथी हैं; मैं सिर्फ तोड़ना चाहती हूँ, तहस-नहस करना चाहती हूँ। मेरे हाथों में संस्कार नहीं, संहार है। बंगालियों के लहू में संहार का ही बीज है। भारत संस्कार करता है, बंगाल करता है संहार। युगांतर आ रहा है, उस विप्लव के आसार दिखाई दे रहे हैं।

हिरण ने पूछा—तूने कैसे जाना ?

हुस्ना बोली—अबे बेवकूफ, आँख खोलकर देख। राजनीति के क्षेत्र में आ पहुँचा शकुनि। पासे में पांडवों की हार हो गई। द्रौपदी को सभा में लाया गया। नेह से अँधे हुए धृतराष्ट्र को कुछ नहीं सूझता। दुःशासन के हाथों होने लगा देश की लछमी का चीरहरण। भीष्म मूढ़ हुए, द्रोण हुए कायर,—समाज के, राष्ट्र के बड़े-बड़े नेता वीर्यहीन और पंगु हो गए। उनमें न रहा ओज, न तेज; न आदर्श, न मनुष्यता। अपमान

से उन्हें ठेस नहीं लगती, अन्याय और भीरुता से वे गलबाँही करते हैं, वाजिब हक के लिए जान की बाजी नहीं लगा सकते, धर्म की ग्लानि और मानवता का अपमान वे चुपचाप सहते है। ऐसे में ही अंतरिक्ष में खड़े होते है वासुदेव। लांछिता लक्ष्मी की आँखों में आँसू देख मंद-मंद मुस्काते हैं।

—हँसते है ?—हिरण बिगड़ उठा।

हुस्ना ने कहा—हाँ, हँसते हैं। द्रौपदी के कानों-कान कहते हैं, व्यक्तिगत अपमान से डरो मत कृष्णा ! आँखें खोलकर देश की दुर्गत को देखो। शक्ति के लिए खीचातानी, स्वाथ से लोभ का संघर्ष, वर्ग से संप्रदाय की तनातनी, दलों में छीना-झपटी, षड्यंत्र के साथ साजिश, कपट के साथ कापुरुषता—यही है कुरुक्षेत्र की भूमिका। इसी कुरुक्षेत्र में प्रबल शक्ति का उत्थान होगा। महा-जनता की वही जयध्वनि मेरे कंठ में गूँजे। अँधी रहनुमाई का अन्त हो।

हिरण ने कहा—इतने दिनों के बाद तेरे मन की बात समझ में आई। तेरे लिए न तो इस पार जगह है, न उस पार। और तो कुछ नहीं, लेकिन मेरी सारी कोशिशों पर तूने पानी फेर दिया।

हँसकर हुस्ना बोली—तेरी कौन-सी कोशिश बेकार गई ?

—सोचा था, हमीद से तेरा गठबंधन कराऊँगा। तेरा भी एक होला हो जाता और अपनी भी किस्मत खुलती। लेकिन तेरा रवैया कुछ ढंग का नहीं दीखता।

—क्यों ?

—क्योंकि जहाँ तूने जनसाधारण का नाम लिया कि बेचारे हमीद की रूह फ़ना हुई। एक तो तेरे ही चलते लोगों ने मालगुजारी बंद कर रखी है, फिर जहाँ जनता की दुहाई आई कि वह तिलमिला उठेगा। और इस तरह मुझे तीस हजार रुपये का जो इनाम मिलनेवाला है, वह भी गया।

हुस्ना ने कहा—मैं अगर हमीद से ब्याह करूँ तो तू मालाका

होकर रह सकेगा ?

—बेशक। हुस्नबानू सिर्फ हमीदबानू हो जाएगी। मेरी नौकरी कहाँ जाती है ?

—लेकिन तीस हजार रुपये का क्या करेगा तू ?

हिरण ने कहा—एक-दो स्मारक बनवाऊँगा।

हुस्ना ने कहा—किसका स्मारक ?

—एक तेरा, एक मीरा का। तू जीवित मृत हुई और वह मरकर जीवित।

हुस्ना बोली—अपनी तो खैर मैं मान लेती हूँ। मगर मीरा तो नहीं मरी है ?

हिरण ने कहा—कल रात सपने में देखा, पारसी प्रणाली से वह मर गई। उसकी लाश छत पर डाल दी गई है, चील और गिद्धों का भोज हो रहा है।

हुस्ना कुछ देर तक तो हिरण का मुँह ताकती रह गई। अचानक उसके हाथ को पकड़कर कहा—तो अब तू कबूल कर ले कॉमरेड !

—क्या ?

—कबूल कर कि जिसे तूने सपने में देखा, तेरी उससे बढ़कर अपनी और कोई नहीं !

हिरण ने पूछा—आखिर यह बात उठी क्यों ?

—इसलिए कि तूने मीरा के प्रति अन्याय किया है।

—न्याय किस प्रकार होता, सुनूँ जरा ?

—तूने कभी उसे भली बात नहीं कही, भरोसे का कोई वाक्य नहीं सुनाया कभी।

हिरण ने पूछा—उसने सुनना भी चाहा कभी ?

—मर्द कहते हैं, औरतें चुपचाप सुनती है। इसी में उनकी सम्मति है।

—तुम लोगों के लिए यह नीति पलट गई है !—और हिरण उठकर

चल दिया। हाल पार करके सीढ़ियों से उतरा, नीचे के बरामदे से होकर ठाकुर के पोखरे की ओर गया। शिवालय के बगल से अतिथिशाला को अपने दाएँ छोड़कर खेत-खलिहान पार करता हुआ सीधे गाँव की ओर। बाएँ दूर तक फैली हुई बैहार। खेतों में पकी हुई धान की फसल। बैहार के बाद बड़े बाँसतल्ले का घाट। वहीं से उस पार नागरदाँडी के घाट को जाया जाता। गाँव के उत्तरी छोर पर लोचनबिल। इसी ओर होकर मीरा जाने कितनी बार बदन मियाँ के घर गई है। उसकी लड़की मीरा के साथ पढ़ती थी बचपन में—अभी उस साल गुजर गई बिचारी। याद पड़ता है, उसकी लड़की का नाम था जुलेखा। उसके साथ मीरा झील को पार करके सागवानवाले जंगल से होती हुई अंदकान जाया करती थी, जहाँ बदन मियाँ के फूलों की खेती होती थी। ये फूल साहबटोले की हाट को भेजे जाते थे। अंदकान का नाम था दरअसल आनंद-कानन। यहाँ उन दोनों की बहुतेरी साँझ बीती, सरदियों के कितने अपराह्न बीते, बैसाख की कितनी ही पूर्णमासी की रातें कटीं। इसी घने बगीचे के अंदर से उसे मीरा के साथ दूर तक लौटना पड़ता। दोनों में कभी खुलकर कोई बात नहीं हुई, कभी किसी कारण से रंगीन बातों का मौका नहीं आया, क्योंकि उन्हें ऐसी कोई बात ही नहीं करनी थी जिसके लिए एकांत या ऐसे किसी स्थान की जरूरत हो। उनकी बातों का विषय अक्सर होता था, जीवन के प्रति कटु व्यंग, हास-परिहास या कौतुक के किस्से। दोनों स्वच्छंद आनंद में विचरते थे।

हुस्ना हँसी करती—जमाई, तुझे कोई दर्द नहीं है।

मीरा एक कदम आगे बढ़कर कहती—उसे चेतना भी नहीं।

अब लगता है, मीरा का कहना सही था। उस समय आनंद में ये दो शब्द हिरण के हृदय में किसी भी तरह जगह नहीं बना पाते। जिस उम्र में स्वपनों का नीड़ बँधता है, मन में रंग के छींटे पड़ते हैं, जाने किस अजानी उदासी से मन अनमना हो उठता है, बिखरे-बिखरे भावों में मन भटक पड़ता है, वह उम्र हिरण के लिए नित्य नये आनंद की

रही। इच्छा से नाकामयाबी पैदा होती है, हिरण इन सबसे ही अछूता था। मधुमती पर मेघ की छाया पड़ती, वह घाट पर खड़ा हो जाता, चैत के वीरान मैदान में चिलचिलाती धूप में छाँह फैलाए खड़ा है विशाल वरगद—हिरण उसके नीचे बैठकर एक वेला काट देता। कहना सही है। उसे चेतना नही थी, वेदना-बोध नहीं था। उसने अपने चारों ओर एक आनंदमय जगत् की रचना की थी—आप अकेला रहता था। उसकी उस दुनिया में दूसरा कोई जाता तो भटक जाता, क्योंकि वह दुनिया उसके लिए अनचीन्ही होती।

बिगड़कर मीरा कहती उसे सफेद पत्थर! देखने में अच्छा, लेकिन जान नहीं।

हुस्ना कहती—नही रे, पत्थर नहीं, यह सेमल का फूल है! खुद ही रंगीन है। बू इसमें जरा भी नहीं कि औरों को वाँटे।

लोचनविल के वाद पीर साहिब की दरगाह। हर साल कार्तिक-पूनों को यहाँ मेला लगता। इसके बाद महाजनगोले की छोटी-सी बस्ती। वस्ती के सामने कच्ची सड़क पर विष्णुबावाजी का काली-मंदिर। मंदिर के सामने ही रक्तजवा के कई पेड़ थे—आज उनका नामोनिशान नहीं। हिरण वहाँ से धीरे-धीरे आगे बढ़ गया।

दाएँ पड़नेवाले बगीचे के वाद ही मोहनुद्दीन मास्टर का घर पड़ेगा। हो सकता है उसकी बहन दौड़ी-दौड़ी आए और उसके चरणों की धूल ले। यह सोचकर हिरण के पाँव जम-से गए। पैरों में जव तक धूल नहीं लगी होती है, तब तक लोग चरण-धूल लेते हैं, लेकिन धूल-भरे, थके-हारे पाँवों में हाथ लगाने का आग्रह किसी को होता है? मास्टर की बहन विचारी सुखी रहे, सुख और मंगल से भरा रहे घर उसका। हिरण वहीं से पीछे लौट पड़ा।

यहाँ के गाँव-गाँव में उसके वचपन का स्पर्श है। उसका बचपन और कैशोर भी मानों अपनी खुशी में यहाँ की धूल में लोट रहे हैं। यहाँ की पवित्र धूल के प्रति उसका एक अटूट आकर्षण था, वह आकर्षण था खून

का, नसों का, शरीर के पुर्जे-पुर्जे का। यहाँ का एक-एक पेड मानों दोस्त हो पुराना, आकाश का एक-एक तारा मानों उसी का चैतन्य-विंदु हो, मधुमती के पानी की एक-एक बूंद आज भी उसके प्राणों में हलकोरा लाती है।

कोई न जान सके—यहाँ वह एक नन्ही-सी उसाँस छोड़े जा रहा है! कोई देख न पाए—इस माटी पर उसके हृदय का भग्नावशेष पड़ा रहा, पड़ा रहा उसकी वेदना और चेतना का दाग, आत्मा का आवेदन। इसी वैहार की धूल से मिली रहे उसके प्राणों की शुभकामना, मोह और स्नेह, उसकी कविता और कल्पना, उसका आनन्द और आशीर्वाद। इतिहास के बाद इतिहास की परत इस पर पड़ती जाए, नये-नये जीवन की धारा प्रवाहित होती रहे, नये समाज की इमारत खड़ी हो, नये ज्ञान, विद्या-बुद्धि और आनन्द की स्थापना हो, इस माटी पर नई जाति जन्म ले! लकिन किसी को भी इस बात की जानकारी न हो कि इस मृण्मयी जननी के अंतस्तल में कोई दो बूंद आँसू रख गया है, रख गया है वेदना की क्षीण आह, एक छोटा-सा उदास निःश्वास, थोड़ा-सा मोह, वेदना का छोटा-सा क्षत। यह सब कुछ आनंदमयी मिट्टी के अगाध अतल अँधेरे में विलीन हो रहे। कोई न जाने!

निरर्थक राह चलने की आदत हिरण की आज भी नहीं जा सकी है। वैहार के आँके-बाँके रास्ते से वह जिधर को जी चाहा, चलता रहा। हेमंत की हवा और चमकती धूप में खुशी बिखरी पड़ रही थी। देखते-देखते दूर, और दूर, वह छोटा-सा जीव ओझल हो गया!

•

गाँव में एक छोटी-सी घटना घटी और समय पर उसकी खबर हुस्ना के कानों पहुँची। किसी एक अजाने कारण से बूढ़े हारू मियाँ को पुलिस की नौकरी से छुट्टी दी गई—उनको काम करते पचास साल से अधिक हो गए। कभी बंगाल के क्रांतिकारी दल के अनेकों तरुण-तरुणियों को

इन्ही की मदद से छिपे रहने का सुयोग मिला था, कई फाँसी के मुजरिम तक इनके चलते बच गए थे। पाकिस्तान की स्थापना के बाद इन्हे हटाने की कोशिश चल रही थी, लेकिन जीवेन्द्रनारायण की पैरवी से ये यही रहे। दूसरी घटना हुई कि जिन दो कर्मचारियों ने उस रोज बेवजह मार-पीट की थी, उनकी तनखाह बढ़ गई और जो खेतिहर बिचारे पिटे थे, नये दारोगा यासीन ने उन दोनों को पकड़कर कहाँ चालान कर दिया।

हुस्ना समझ गई, यह आँधी आने का लक्षण है। यह भी समझ गई कि उससे बदला लेने के लिए हमीद के इशारे पर ही ऐसा हुआ है। उसे यह बताया जा रहा है कि यह पाकिस्तान है। इसके कोई माने नहीं कि यहाँ हर अन्याय करनेवाले को सजा मिलेगी। और इसका भी कोई ठेका नही कि हर भलेमानस को यहाँ श्रद्धा का आसन मिलेगा। आम मुसल-मानो के वाजिब हक यहाँ जरूर है, पर जो उनके सर पर पाँव रखकर ऊँचे उठ गए हैं, उनका अधिकार सबसे पहले।

हुस्ना चुपचाप सोचने लगी, उसके पाँवों तले की जमीन कितनी सख्त है। कानूनन उसका यहाँ नाम का ही अधिकार है, क्योंकि वह जीवेन्द्र-नारायण की पाली हुई लड़की है। बहुत दिन पहले उन्होंने एक वसीयत की थी। जायदाद का एक हिस्सा मीरा का, एक हुस्ना का। लेकिन उस वसीयत की बात सुनकर हुस्ना तीन दिनों तक रोती-पीटती रही। उसने कहा—मैं सर्वहारा की जमात की हूँ, जमीदारी का हिस्सा लेकर मैं अपना गर्व क्यों गँवाऊँ? यों सारा देश मेरी मुट्ठी में है, मैं एक टुकड़ा खेत लेकर क्या करूँगी चाचाजी?

जीवेन्द्रनारायण ने कहा था—या तो जमीन या रुपया, दो में से एक तो ले बिटिया।

हँसकर उसने कहा था—मै एक भी न लूँगी चाचा। ग्यारह अक्षौ-हिनी सेना भी मुझे नही चाहिए, पाँच गाँव भी नहीं। मै सिर्फ तुम्हे चाहती हूँ। चाहती हूँ कि तुम्हारे चरणों में बैठी रहूँ।

हिरण निर्जन में बैठा आबहवा के रुख पर विचार कर रहा था।

इसमें संदेह नहीं कि हवा उलटी वह रही थी। कचहरी का अधिकार लिए बैठे हैं हमीद और मालगुजारी के रुपये लोग दें जाते हैं हुस्ना को। हुस्ना कोई रसीद दिये बिना ही रुपये लेती है। हिरण देनेवालों का सिर्फ नाम लिख लेता। लोग हुस्ना को अभिभावक समझते और सरकार हमीद को। लिहाजा यह समझने में क्या कठिनाई थी कि बाहर का स्तूप दिनों-दिन ऊँचा हो रहा है। एक मामूली से हुक्मनामे के बल पर हुस्ना को निकाल बाहर करने में सरकार को देर नहीं लगेगी।

हिरण ने कहा—हुस्ना, तूने भूल की थी। अगर चाचा के दान को तूने हाथ फैलाकर उस समय ले लिया होता, तो आज तुझे इस बालू पर के महल में रहने की नौबत न आती।

हुस्ना बोली—जानता कौन था कि पाकिस्तान होगा और अपने घर में प्रवासी होना पड़ेगा?

—एक काम करो तो ये झमेले जाते रहें।

हुस्ना ने पूछा—क्या?

हिरण ने कहा—तू तो मुसलमान है। तुझे क्या परवाह पडी है। हमीद साहब के मातहत स्टेट की मैनेजरी तू ले ले।

हुस्ना हँसकर बोली—फिर तो एक पाँव होगा स्वर्ग मे और एक जमीन पर। और बेचारे हमीद को पाताल में शरण लेनी पडेगी। बेहतर हो कि मेरे मातहत हमीद ही मैनेजरी करे।

—तो क्या यहाँ रहकर सिर्फ झगड़ते ही रहने का इरादा है?

हुस्ना बोली—नहीं, यहाँ नही रहूँगी। यहाँ रहने को नहीं आई हूँ कॉमरेड। मीरा, छोटी चाची या अत्रि, इनमे से कोई यहाँ आते तो हमीद की जमात को एक बार देखती। छोटी चाची भाग गई, यह गलती हुई। मैं उन्हें उनकी दौलत, मान-सम्मान सब कुछ वापस दिला देती। तू और एक बार कोशिश करके देख, अगर उन्हें यहाँ ला सके।

हिरण कुछ क्षण चुप रहा। उसके बाद बोला—तू यहाँ से कहाँ जाएगी?

—नहीं जानती ? बहार के बाद कोयल कहाँ जाती है ?

—समझ गया। लेकिन और कौन-कौन से कुकर्म तेरे यहाँ बाकी हैं ?

हुस्ना बोली—अभी तो असली लड़ाई ही बाकी है।

—लड़ाई ? किससे ?

हुस्ना ने कहा—जानता नहीं है कि गाँववालों के लिए कुछ भी करना हो तो लड़ाई करनी पड़ती है ?

हिरण ने कहा—तेरा मतलब समझ गया मैं ! वही पुरानी मनोवृत्ति ! स्कूल और अस्पताल ! कोऑपरेटिव और ग्रामोद्योग ! तेरी अब कोई उम्मीद नहीं रही, हुस्ना !

हुस्ना बोली—तुझे तो पता है इन सबसे मुझे भी अरुचि है। तुझे पता है कि जो भी घृणा और फूट है, सबकी जड़ में आर्थिक विषमता है—और मैं इसे उखाड़ फेंकना चाहती हूँ।

—तू यहाँ राजनीतिक दावपेंच खेलने आई है ?

—यह जीवन की नीति है कॉमरेड। लाखों-लाख लोगों के जीवन-विकास के लिए मैं क्राँति का आवाहन करूँगी। लोग अपने हकूक की अदायगी के लिए सिर ऊँचा किए खड़े हों। संपत्ति को सब बाँटकर ले लें।

हिरण ने कहा—यह सस्ती राजनीति का नारा है। इसके लिए तुझे इतनी बेचैनी क्यों ? तू कौन-सा काम लेकर यहाँ रहेगी आखिर ?

हुस्ना बोली—मैं इस बात के प्रचार के लिए यहाँ रहूँगी कि क्राति में कल्याण है, प्रेम है। हमें यहाँ घर-घर यह संदेश पहुँचाना होगा कि धर्म मनुष्यता से बड़ा नहीं है। मुझे लोगों को यह बताना पड़ेगा कि बुराई का नाश हो जिससे यहाँ की संस्कृति का नाश न हो। चारों ओर से जो साजिशें चल रही है, उसके बीच एक चिराग लेकर भी मैं डटी रह सकूँ तो जीवन की सार्थकता समझूँगी।

हिरण ने कहा—खाली बर्तन में आवाज ज्यादा होती है। चाचा की जमींदारी की बागडोर तेरे हाथ में होती तो ये बातें सोहती।

हुस्ना ने कहा—तू बेवकूफ है। जमींदारी निकल गई है, लोग इसी-

लिए मेरी बात सुनेंगे। बता सकता है मामा के यहाँ रसीद दिए बिना कभी हजारों-हजार रुपये की वसूली हुई है? वे मेरे आदर्श का दाम दे रहे हैं। क्रांति वही करेंगे, मैं नहीं। मैं तो महज गवाह हूँगी, हक अदा करेंगे वही। जमाने से वे सताए जाते रहे हैं, अब उसका प्रतिकार होगा। राष्ट्र नया हुआ है सही, लेकिन वह अभी भी पुरानी व्यवस्था से जकड़ा है। ईर्ष्या इसकी पूँजी है, बुद्धि इसकी सांप्रदायिकता है, इसलाम इसका हथियार है और शासन शोषण का ही एक दूसरा नाम है। इस षड्यंत्र से जनता को मुक्त करना है। क्रांति से इस षड्यंत्र को तोड़-फोड़ देना है, क्योंकि इसी पर अगर पाकिस्तान खड़ा हो, तो वहाँ की एक लड़की के नाते इतना बड़ा अपमान बरदाशत करना मेरे लिए नामुमकिन है।

हिरण ने कहा—यह नेस्त-नाबूद करनेवाला खयाल है। लेकिन तू तो कहा करती थी कि जी-जान से पाकिस्तान का निर्माण करेगी?

हुस्ना बोली—आज भी कहती हूँ। लेकिन निर्माण करेगा कौन? किसकी मदद लेनी है? चारों ओर जकड़े हुए लोगों में गरीबी है—उनसे हो क्या सकता है? वे पुरानी व्यवस्था के क्रीतदास हैं—दरिद्रता की बलि हैं वे। सो सृष्टि के आगे संहार, निर्माण के पहले बरबादी—इन दोनों में कोई मेल नहीं हो सकता। जीना है, तो चोट करो; दुर्गत से बचना है, तो लड़ो; अपमान से मुक्ति के लिए क्रांति ही एकमात्र उपाय है।

हिरण ने कहा—तो चल, हम यहाँ से निकल पड़ें।

हुस्ना ने कहा—कहाँ?

—जहाँ चाहे, मगर इस महल में अब नहीं रहना। यह महल बहुत-से लोगों के कंकालों पर खड़ा है। अहंकार के इस आसन से चल, हम उतर पड़ें।—हिरण ने दाएँ हाथ से रास्ते की ओर दिखाया।

हुस्ना बोली—लेकिन ऊँचाई पर खड़े रहने से आवाज ज्यादा दूर तक पहुँचती!

हिरण ने कहा—नहीं, यहाँ नहीं। यहाँ श्रद्धा, सम्मान, सब पाएगी,

लेकिन जो तेरा प्यार चाहते हैं, उनके पास तक नहीं पहुँच सकेगी। जिस ताकत से तूने महल पर कब्जा किया, उसी ताकत से इसे छोड़ दे। निस्स्वार्थ भाव से सब छोड़कर अगर उन लोगों के साथ खड़ी हो सके तो लोग तेरा विश्वास करेंगे।

—तूने यह कैसे समझा कि लोग मेरा विश्वास नही करते ?

हिरण बोला—ऐसे समझा कि तेरी बातों मे ढूँढ़े विश्वास नही मिलता !

हुस्ना ने पूछा—तू कौन है ?

हिरण ने उत्तर दिया—मै जमाई नही, कॉमरेड नही, मैं इस देश का कवि हूँ। मुझमें सभी जात, धर्म और वर्ग का बसेरा है। अपने कलेजे मे मैं उनकी चेतना पाता हूँ, मेरी नसों के रक्त-प्रवाह में उनकी आशा प्रवाहित है, उनके स्वप्न, उनकी कामना मेरे हृदय में उड़ते फिरते हैं। उन पर मार पड़ती है तो मेरी पीठ पर निशान पड़ते है, कान लगाता हूँ तो मुझे उनका रोना सुनाई पडता है। मेरे स्वर में उनकी जुबान है, मेरी आँखों से वे देखते है। मेरा गला सूखता है तो मैं उनकी प्यास समझता हूँ, उनकी भूख से मुझे बेचैनी होती है। मैं उन सबका कवि हूँ।

हुस्ना बोली—अच्छा चल यहाँ से।

हिरण ने कहा—आज ही चल।

बिखरी-बिखरी-सी गिरस्ती से उन्होंने अपने लिए सँजोया। बाहर के लोग, फकीरा की माँ या हमीद—किसी ने नही जाना। रुपये उनके पास बहुत हो गए थे। गठरी लेकर निकल पड़ने से पहले हुस्ना ने कहा—तू यहाँ का कवि है, तेरे कठ में मंत्र रहे, और मै इस देश की लड़की हूँ, मेरे कलेजे में बल हो। तेरी ही बात रहे कॉमरेड, चल, हम सबके पैरों तले अपना बसेरा बनाएँ।

और वे अवसर-प्राप्त बूढे दारोगा हारूं मियाँ के यहाँ गये। उनके यहाँ क्रांतिकारियों को सदा जगह मिलती है, इन्हें भी मिल गई। हारूं

मियाँ के बीवी-बेटे न थे। थी एक बुढ़िया बहन और एक लड़का, जिसे लोग उनका नाती कहते थे। हुस्ना ने कहा—दादाजी, मुझे पता चला है तुम्हारा पेन्शन भी बन्द कर दिया गया है। अब जो भी कुछ दिन जीना है, मेरे हाथ की रसोई खा लो।

डबडबाई आँखों हुस्ना को जकड़कर बूढ़े ने कहा—अल्लाह कसम बुन्नू, जिन लोगों ने मुझसे बदला चुकाया है, उन पर मुझे कोई गुस्सा नहीं।

हिरण ने कहा—चाचाजी की जान बचाने के लिए तुम्हारे बेटे ने अपनी जान दी थी। दादाजी, तुम्हारा सारा काम-काज आज से मैं किया करूँगा।

हारूं मियाँ ने हिरण को छाती से लगाया और बच्चे-जैसे रो पड़े। वह जानते हैं कि जीवन में पाने को और कुछ न रहा।

लेकिन यह सुख, यह स्वच्छन्दता उन्हें एक हफ्ते से ज्यादा नसीब न हुई। उनकी तकदीर में ही लिखा था कि वे पत्थर के ढोके से सदा लुढकते फिरेंगे, उन पर कभी काई न जमेगी।

कोई आठ दिन के बाद नये दारोगा यासीन साहब कई आदमियों के साथ हारूं मियाँ के दरवाजे पर हाजिर हुए। शोरगुल जो सुना, तो हारूं मियाँ बाहर निकले। देखा, सामने हथियारबंद सिपाही खड़े है।

उनका घर तब तक घेर लिया गया था। उन्होंने घर की तलाशी का हुक्म दिया। हारूं मियाँ तो अवाक्। लेकिन उन्होने भी जिदगी-भर दारोगागिरी ही की थी, इसलिए सारे कायदे-कानून उन्हें मालूम थे। पूछा—माजरा क्या है जनाब ?

यासीन साहब उत्तर प्रदेश के रहनेवाले थे—उन्होने नफ़ीस उर्दू में जवाब दिया—बेगम हुस्नबानू के नाम परवाना है। वह जमींदार के रुपये लूटकर यहाँ भाग आई है।

हारूं मियाँ ने कहा—अरे, यह तो हुई चिढ़ की बात, दरअसल मामला क्या है ?

यासीन साहब ने कहा—इसके पहले यह रुपये लेकर कलकत्ते रख आई थीं। ये कम्यूनिस्ट पार्टी के है।

हारूं मियाँ बोले—कह क्या रहे हो, झूठा इलजाम लगाकर बच्चे-बच्ची को पकड़ने आए हो ?

हुस्ना को सामने बिठाकर कोई दो घंटे तक घर की तलाशी ली गई। रुपये लेकिन नहीं मिले। छोटे दारोगा के पीछे-पीछे हुस्ना और हिरण बाहर आकर खड़े हुए।

यासीन ने कागज-पतर दिखाकर हुस्ना से कहा—तुम लोगों पर तीन-चार जुर्म हैं। यह रहा गिरफ्तारी का आदेश।

हुस्ना ने कहा—हथकड़ी-बेड़ी ले आए है ?

—नहीं।

—ले जाने के लिए गाड़ी साथ लाये है ?

यासीन ने कहा—मैंने इसकी जरूरत नही समझी।

हुस्ना ने कहा—हमीद साहब की तरह टूटी-फूटी बंगला जाने बिना आपने यहाँ की नौकरी कैसे कर ली ?

यासीन में रूप था, रसबोध नहीं था लेकिन। उनका खूबसूरत चेहरा लाल हो उठा। कहा—यह पाकिस्तान है, यहाँ की भाषा उर्दू है।

हुस्ना हँसी। बोली—लेकिन यह तो असल में पाकिस्तान है नही।

यासीन ने अचानक सुर्ख आँखों से उसकी तरफ देखकर कहा—इसका मतलब ?

हुस्ना हलकी हँसी हँसकर बोली—पूर्वी बंगाल पाकिस्तान नहीं है, यह तो पश्चिम-पाकिस्तातियों का उपनिवेश है। यहाँ जूट की पैदावार होती है, इसी से वहाँ का राज-पाट चलता है। चूंकि यहाँ कच्चा माल है, इसलिए वहाँ कच्चे पैसे की भरमार है। आप लोग यहाँ नौकर-बांदी की खोज में आते हैं। कहीं कोई भले घर की लड़की हाथ लग जाती है, तो उसे ऊपरी मुनाफा कहिए। सुनिएँ यासीन साहब,—हुस्ना अंग्रेजी में बोलने लगी,—आप जब गिरफ्तार करने आए हैं तो हम आपके साथ

चलेंगे। लेकिन अपनी ये लाल आँखे बंगाल में तो न दिखाइए आप। उन आँखो से अपने को तो डर नहीं लगता, मगर आपको खतरा हो सकता है। खैर। कहाँ ले चलना चाहते हैं आप ?

यासीन ने कहा—मुझे आप लोगों को नजरबन्द करने का आदेश मिला है।

हुस्ना ने पूछा—जमींदार के रुपये लूटने के सिवा भी मुझ पर कोई जुर्म है ?

यासीन ने कहा—है। पाकिस्तान के खिलाफ साजिश और कार्रवाई करने का।

हारूं मियाँ कुछ ही दूर पर खड़े काँप रहे थे क्रोध से। हुस्ना ने एक बार उनकी तरफ देखा, फिर मुँह फेर लिया। यासीन बोले—पाकिस्तान में कम्यूनिस्टों के लिए कोई जगह नहीं। जो यहाँ के खेतिहर-मजूरों को उभाड़ते हैं, वे यहाँ के दुश्मन हैं।

गाँव के कुछ लोग वहाँ आ पहुँचे थे। यासीन जरा सख्त-से आदमी थे। उनके साथ कुछ पंजाबी सिपाही थे। सो गाँव के लोगों ने आज छेड़-खानी नहीं की।

हुस्ना ने पूछा—हमें कहाँ नजरबन्द रखेंगे आप ?

—जमींदार के महल में।

हुस्ना हँसी। कहा—समझ गई। इस गिरफ्तारी में हमीद का हाथ है ! खैर, चलिए।

झट से हिरण कह उठा—लगता है, इनाम के रुपये मेरे नसीब में हैं !

—चुप, मुँहजला !—हुस्ना ने डाँट बताई।

यासीन साहब ने हिरण से कहा—आप अल्पसंख्यक वर्ग के हैं। आपके बहिष्कार का हुक्म है।

हिरण ने कहा—कह क्या रहे हैं आप ? अपना देश छोड़कर मैं जाऊँ-गा कहाँ ?

यासीन ने व्यंग से कहा—जहाँ और लोग डरकर अपना देश छोड़-कर भागते हैं, वहीं।

उन्हें आधे घंटे का समय दिया गया। उसके बाद कुछ लोग हुस्ना को लेकर महल की ओर रवाना हुए और कुछ लोग हिरण को लेकर थाने की ओर। पीछे छलछलाई आँखें लिए हाफ़िज़ मियाँ कुछ बुदबुदाते रहे। समझ में न आया।

उन्नीस

एक ठोकर खाकर फुटवाल फिर पूर्वी बंगाल से पश्चिमी बंगाल में आ गिरा। लुढककर हिरण धूल-गर्द झाड़-पोंछकर उठ खड़ा हुआ। बुरा क्या हुआ, कुछ दिनो तक हुस्ना के साथ राजमहल मे रहने का मौका मिल गया। चोर के लिए रात-भर टिक लेना ही लाभ! अचरज यह था कि उसकी वह सनातन गठरी भी उसके साथ आ गई। उसमें गरीबी की मलिनता और जीर्णता की छाप थी। रास्ते में खानातलाशी होती रही, लेकिन अंसारों को उसमें खास कुछ होने का शुबहा न हुआ। फ़ुटबाल की तरह गठरी भी गोल-गाल थी। सो उसे प्लैटफ़ार्म पर पाँवों से लुढ़काता हुआ हिरण स्यालदा स्टेशन से बाहर निकल आया। त्रिलोक में यही गठरी उसकी पूँजी थी, भाग्य का एकमात्र सहारा। इस पर अपने-आप का मजे में मखौल उड़ाया जा सकता है। कभी हाजीपुर की जमीदारी और महल की राजकुमारी उसे मिलनेवाली थी। अब उसकी उस किस्मत की यही शक्ल रह गई है! जिंदगी जुए का एक दाव है।

यह नजारा देखकर सब अवाक् रह गए। रेल के रोज के आने-जाने वाले मुसाफिरों में एक चहल-पहल। कुली हँसते-हँसते लोट-पोट। सर-

कारी कर्मचारियों ने जली सिगरेट को दाएँ से बाएँ हाथ में लिया और रूमाल से अपनी आँखों के कोने पोंछे। सोचा, रिफ़ुजी है, सब-कुछ खो बैठा है, सो दिमाग बेचारे का खराब हो गया।

बात लेकिन सच नहीं थी। रिफ़ुजी कह लो, कोई हर्ज नहीं, मगर सर्वहारा क्यों! स्टेशन से बाहर निकलकर हिरण ने गठरी को झाड़ा-पोंछा और बगल में उठा लिया। उसमें काफी रुपये थे। उसमें एक लुँगी थी, फटी-मैली-सी, जो हारूं मियाँ ने उसे भेंट दी थी। एक हाफ़-शर्ट था डोरिया—आदर से हुस्ना उसके लिए हाट से खरीद लाई थी। एक मैले रूमाल में बकरे की दुम के थोड़े-से बाल बँधे थे। यह सब उसे हुस्ना ने दिया था। उसने कहा था—देख, फिर कहीं अब्दुल बनने की जरूरत पड़ जाए तो इन बालों से दाढ़ी बना लेना। जतन से रख ले। हिरण राह में उसी गठरी को तकिया बनाकर सोया था और उसने ख्वाब देखा था कि बर्मा पर बकरों ने चढ़ाई की है! हिरण नंगे पैर था, धोती में गाँठें पड़ी थीं, फ़तुए में बटन नदारद। काँटों-से खड़े निकल पड़े थे मूँछ-दाढ़ी के बाल। लिहाज़ा उस अभागे को किसी ने इन्सान ही न समझा। ताप से उस सोने के ढेले पर लोहे का रंग चढ़ आया था।

हिरण जो रास्ता मिला, उसी पर खुशी-खुशी चल पड़ा। एक धर्म-राष्ट्र से वह धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में फिर आ पहुँचा। सो धर्म का भय रहा नहीं। साथ में दूसरे के रुपये, उनसे जुआ खेला जाए तो क्या हर्ज! पास में रुपये हों तो भूख नहीं लगती। सड़क के बंबे से पानी पी लो, बस। इन रुपयों से चोरबाजारी करता तो स्टेशन के रिफ़ुजियों को दो-तीन दिनों तक खिचड़ी खिलाने का इंतजाम हो सकता था! लेकिन बात यह थी कि रुपये बहुत ज्यादा थे। इनसे अगर वह उज्जयिनी में कहीं निर्जन में एक बगीचावाला मकान खरीदकर सारी जिंदगी कविता लिख-कर बिताए, तो कौन रोक सकता है? मगर कविता लिखे किस पर? मीरा ने तो उसे पति ही नहीं माना, वह कविता की प्रेरणा बन कैसे सकती है? खैर, हुस्ना इस बार तो बच गई। पुलिस के शिकंजे में आ गई, डर

क्या रहा ? बाहर रहने पर नेतृत्व के लिए अवसर बनाना पड़ता है, बद-स्तूर आंदोलन करना पड़ता है । उसमें मिहनत है, नाकामयाबी है, निराशा है, बहुत कुछ है । जेल चले जाइए, मान-सम्मान बच जाता है, सेहत बचती है, रोटी-कपड़े की फिक्र नहीं रहती । कभी दो-चार बार बंदेमातरम् का नारा लगाने से जेल की सजा होती थी, बार-बार जेल की मुहर पड़ने से कोई नेता हो जाता था । जेल से निकलने पर हुस्ना को फिर फिक्र क्या ? लोग घेरे रहेंगे और सेहत तथा सुन्दरता ऐसी ही रही, तो फिर भक्तों की क्या कमी ! बदकिस्मती बेचारे हिरण की है । पूर्वी बंगाल की पुलिस ने उसे कम्यूनिस्ट तो क्या, कामनिष्ठ भी न समझा । गर्दन पकड़कर निकाल बाहर किया । खैर । गम नहीं । हुस्ना को अथाह मझदार से आखिर पुलिस का किनारा मिल गया । जेल में वह सुख से रहे, बाहर आकर फिर कभी धूल और धुआँ न उड़ाए ।

हिरण एक चाय की दूकान में घुसने लगा । दूकानदार लपका—हाँ-हाँ—यहाँ नहीं, यहाँ भीख-वीख नहीं मिलेगी । और कहीं जाओ ।

हिरण ने कहा—भीख ? मैं तो चाय पीने आ रहा हूँ ।

—एक प्याले के छः पैसे लगेंगे । गाँठ में हैं ?

हिरण की गठरी से लहमे में दूकान तक खरीद ली जा सकती थी । लेकिन उसे चाय पीने की जरूरत थी । उसने कहा—हैं ।

दूकानदार ने एक बार तो उसकी गठरी को देखा, एक वार शक्ल को । कहा—पैसे पहले निकालो । ग्लास है तुम्हारे पास ?

हिरण ने कहा—नहीं ।

—तो राह लगो अपनी । ग्लास मैं नहीं दे सकता ।—दूकानदार अपनी गद्दी पर जा बैठा ।

हाजीपुर के राजमहल का इकलौता दामाद श्री हिरण जरा हँसा । फिर चला गया । जिन्दगी जुआ है ।

आखिर एक फ़ुटपाथ पर पाइप के पानी से उसने नहा लेने की सोची । गँदला पानी—बाढ़ की नदी का हो जैसे । गठरी से हारूं मियाँ

वाली लुँगी निकाली। महीन लालकोरवाली धोती को फीचकर बगल के एक पेड़ पर पसार दिया। फिर हेमंत की मीठी धूप में कलकत्ते के राजपथ पर चला उसका स्नान। सिर्फ पाँच ही साल पहले भी वह इस राह से टैक्सी पर जाया-आया करता था। हाजीपुर के जमीदार का होनेवाला जमाई—आधा राज और राजकुमारी! मित्रों को पिकनिक में ले जाता—सारा खर्च उसी का। गाड़ी निकल जाती तो उसके झोंके में गुलाब की गंध बिखरती। उसमें विलास तो था, वासना न थी। पोस्ट-ग्रैजुएट क्लास के कोरिडर में खड़ी-खड़ी जाने कितनी लड़कियों ने हसरत-भरी निगाह से उसे देखा है, पर उसने मुड़कर भी किसी को ताकने की कृपा नहीं की। कितनी ही साजिशें हुई, मगर उसे मर्द नही बनाया जा सका।

धोती को सुखाकर उसने पहन लिया। हलका हो उठा। दोनों आजाद हाथों को हिलाता हुआ आगे बढ़ा। जरा ही दूर जाने पर उसे गठरी की याद आई। दौड़ा। देखा, एक कौआ चोंच मार रहा है उस पर। बकरे के बालों की बू से वह खिंच आया था।

गठरी उसने उठा ली। फिर बढ़ा। कहीं से उसने यह सुन रखा था कि कलकत्ते में हजार मील रास्ता है। रहे। यह गठरी साथ हो तो कोई कठिनाई नही। फ़ुटपाथों की कमी नहीं, बहुत-से घरों के बरामदे पड़े हैं, कर्जन पार्कवाला शेड है, गंगा के किनारे जगह है, स्टेशन का मुसाफिर-खाना है—जगह की क्या कमी पड़ी है। और, अपनी ही मन की दुनिया में डूबकर अतीत से उलझने में ही आनन्द से हफ्ता-भर निकल जाएगा। लोग उसे रिफ़ुजी कहते हैं—यह लेकिन ग़लत है। अपना घर-द्वार जो था पुश्तैनी, वह बहुत पहले ही मधुमती के पेट मे समा गया है। अच्छा ही हुआ। जमीदारी का एक जो हिस्सा मिलनेवाला था—उसकी भी ज़िल्लतें जाती रही। जले नसीब को एक मन-लायक बीवी मिल ही गई थी समझो, मगर न मिली। पचास फ़ी सदी ब्याह तो उसका हो ही चुका, बाकी पचास फ़ी सदी भी हो जाता तो पान चबाते हुए कविता लिखकर

और मीरा से बातें करके काल काट दिया जाता। लेकिन, विधना की इच्छा। एक पुरोहित के लड़के को इतना सुख क्यों नसीब हो ?

हजार मील के रास्ते को छोड़िए, चलते-चलते हिरण तालतल्ले-वाले मकान पर जा पहुँचा। काफी दिन रह चुका था यहाँ। अगल-बगल के लोग उसे चीन्हते थे। इसलिए मुहल्ले के कुछ लोगों ने उसे अचरज से देखा। हिरण ने द्वार के कड़े खटखटाए। मिनट-भर में अन्दर से मोटा-मोटा-सा एक बुजुर्ग आदमी बाहर निकला।

—किसे ढूँढ़ते हैं आप ?

—मीरा राय चौधरी है क्या ?

—वह यहाँ नही रहती।

—ओ। उनका पता मालूम है ?

उस भले आदमी ने हिरण को नीचे से ऊपर तक एक बार ताका, फिर कहा—पता उनका मालूम तो है, पर वे किसी को बताने के लिए मना कर गई है। तुम उनके कौन होते हो ?

हिरण जरा सहम गया। कहा—आप मुझे उनके यहाँ ले चलें। वही बताएँगी कि मैं उनका कौन हूँ।

उस भले आदमी ने पूछा—कहाँ से आ रहे हो ?

—उन्ही के गाँव से।

—खेती-बारी करते हो ? या उनके धोबी-नाई हो ?—अबकी उन्होने एक सिगरेट सुलगाई।

हिरण ने हथेली सहलाकर कहा—जी, दया करके उनका पता बता दीजिए ?

उसकी दयनीय चेष्टा देख उनके जी में दया हो आई। उन्होंने जरा जोर से आवाज दी—ठाकुर ?

अन्दर से जवाब आया—जी आया।

दूसरे ही क्षण ठाकुर आ पहुँचा। हिरण को देखकर वह तड़प-सा उठा—अरे, जमाई बाबू ! आइए-आइए। कब पधारे ? छोटी जीजी

कहाँ है ? कैसी है ?

वह भले आदमी तो अवाक्। हिरण ने कहा—ये तुम्हारे नये मालिक है, क्यो ठाकुर ?

भले आदमी ने पूछा—ठाकुर, कौन है ये ?

—ये जमीदार बाबू के जमाई हैं। पंडित आदमी हैं। आप जरा रुके जमाई बाबू, मैं पता ला देता हूँ।

ठाकुर एक मुड़ा हुआ कागज ले आया। मीरा अपने हाथों से पता लिखकर रख गई थी। ठाकुर बोला—चार महीने का किराया बाकी है इस मकानका। चटगाँव से मकान-मालिक ने किराए का तकाजा किया है। हुस्नबानू रुपये का कोई इन्तजाम नही कर गई है। बड़ी जीजी जो है, सो खयाली है। और भी बहुत-सी बातें हैं। आप आ गए हैं, अब सब ठी कहो जाएगा।

हिरण ने ठाकुर की एक-एक बात ध्यान से सुनी। उसने पूछा—बड़ी जीजी पर और क्या-क्या बकाया है ?

ठाकुर ने बताया—कई दूकानों का बाकी है। फिर हम लोगों की तीन महीने की तनखाह है। कुल मिलाकर दो सौ रुपये होंगे।

हिरण ने उस भले आदमी के सामने ही उस गठरी को खोला। नोटों का एक बंडल ठाकुर की ओर बढ़ाते हुए कहा—इसी से सारे रुपये चुक जाएँगे। ये नोट लेकिन पाकिस्तानी हैं। बदल लेने पड़ेंगे। और किराए के जो हजार रुपये है, मैं कल ही भेज दूँगा। अच्छा, तो अभी मै चलता हूँ।

हिरण ने पता पास रखा और उस विमूढ़-से भले आदमी को नमस्ते करके अपनी गठरी लिए निकल पड़ा। ठाकुर ने दूर से ही उसे प्रणाम किया। फिर उनकी तरफ मुड़कर ठाकुर बोला—ये लोग पच्चीस-तीस लाख के आदमी है, समझ गए बड़े बाबू ! और उनकी निगाहों पर गौर किया आपने ? राख से दबे अंगारे हों जैसे !

बाबू साहब अचानक बिगड़ पड़े—घुटने तक धोती पहने, बदन में

फटी बनियान डाले अगर राजा का जमाई आए, तो कौन पहचाने उसे ?

ठाकुर ने कहा—बड़े बाबू, देवता भिखमंगे के रूप में ही दर्शन दिया करते हैं ! हमारी आँखें पहचान नहीं पातीं ।

ठाकुर अंदर चला गया । इतनी देर में हिरण काफी दूर निकल गया था ।

बहू-बाजार के इस मुहल्ले की नैतिक शक्ल कभी अच्छी न रही थी । साँझ के बाद गैस की बत्तियाँ टिमटिमाती रहतीं, मुहल्ले के आस-पास दबी आवाज में बातें होतीं, रहस्यमय था लोगों का आना-जाना, किसी-किसी कोठे से हारमोनियम की आवाज आती, अचानक लोगों की आँख बचाकर लोग इस-उस घर में घुस पड़ते और कोई किसी घर से निकलकर आगे-पीछे, दाएँ-बाएँ ताके बिना ही चल देते । उनके चेहरे पर निर्विकार उदासीनता वैसी ही बनी रहती ।

इस मुहल्ले में अब बाहर से आभिजात्य की झलक आ गई है । अधिकारियों की ताकीद से उसका बहिर्मुखी स्वरूप अंतर्मुखी हो गया है—बर्तन पर जैसे कलई हो । इसी इलाके की एक गली में हिरण ने मकान को ढूँढ़ निकाला । उसके नीचे एक दूकान, जहाँ हींग से जीरा यानी सब कुछ मिलता । छोटे-से दरवाजे से दाखिल होते वक्त पहले ही नरककुंड पर नजर पड़ती । बगल से सीढ़ी । लगा तिमंजिले से कुछ लोग उतर रहे हैं । हिरण सीढ़ी पर चढ़ते हुए एक किनारे होकर रुक गया । उस नरककुंड से गंदा पानी और हलवाई के यहाँ के जूठन, फेंके हुए पत्तल बह रहे थे । यानी इसी मकान के एक हिस्से में मिठाई की दूकान भी थी । एक होटल । बहार आने में दाल-भात, सब्जी और चटनी । अचानक हिरण की भूख जाग पड़ी ; लेकिन पास में मोटी रकम रहने पर भूख असहनीय नहीं होती । और राजकुमारी के दर्शन की यात्रा में ऐसी-वैसी

बातों को भुलाना भी पड़ता है।

दोपहरी बीत रही थी, लेकिन ऊपर यकसां धुँधलका। बगल से ही एक तंग रास्ता। आगे बढ़कर हिरण ने देखा, तीन आदमी बैठे हुए है। नीचे से इन्ही की आवाज सुनाई दे रही थी। उस कमरे से और आगे बढ़ते ही अंदर से एक आदमी ने निकलकर कहा—ऐ भले आदमी, उधर कहाँ ? देखते नही, जनानखाना है ?

हिरण ठिठक गया। एक दूसरे ने पूछा—यहाँ क्यों आये ? क्या चाहिए ?

हिरण ने उनकी तरफ देखा। पूछा—आप लोग कौन है ?

इसकी हिमाकत पर वे दंग-से रह गए। कहा—हम लोग सरकारी आदमी हैं। और हम चाहे जो हों, तुम यहाँ किस मतलब से ? सूझता नही, उधर औरतें हैं। इसीलिए मीरादेवी को कहता रहता हूँ, आप दरवाजे को खुला न रखें। इस मुहल्ले में दिन को चोरी होती है, रात को होती है गुडई। लेकिन वे हैं सरल, समझती नहीं। सुनो, नीचे उतर जाओ, नही तो···

हिरण एक वार उन्हें देखकर बेवकूफ-सा हँस पड़ा। उन्हें अगर वह आँखें होती, तो वे समझते कि उस हँसी में सारे जीवन-यौवन का आनंद था। लेकिन सिर्फ लहमे-भर के लिए, दूसरे ही क्षण हिरण बगल के कमरे में धँस पड़ा।

बाहर से वे 'अरे-रे' कहकर चीख उठे। हलचल-सी हो गई। लेकिन परदे हटाकर अंदर दाखिल होने की किसी को हिम्मत न पड़ी। कुछ ही पल में मीरा ने झूलते परदे को बदन में लपेटकर सिर्फ मुँह निकालकर कहा—मैंने आप लोगों को इंतजार करने के लिए कहा है, शोर करने के लिए नहीं।

वे चिल्ला उठे—अभी-अभी एक उचक्का आपके कमरे में घुस गया है !

—हर्ज क्या है ! बहुत तो मेरी इज्जत जाएगी, और क्या ? आप

लोग बैठें।—मीरा ने दरवाजा बंद कर लिया।

शुरू से ही मीरा का व्यवहार ऐसा ही है। उन्हें पता है। सो वे अपना-सा मुँह लिए जाकर बैठ गए।

हिरण अन्दर जाकर एक टूटी चौकी के पास छिप गया था। दो गु-ों की परवाह नहीं, लेकिन तीन होते ही वे हो जाते हैं जनता। जनता किस किस्म की चीज होती है, हिरण को मालूम है। वे आसमान में दो घूँसा ही जमा दें, तो कौन टोकता है?

किवाड़ बंद करके मीरा हिरण के आमने-सामने खड़ी हो गई। बाहर शोरगुल जो हुआ, सो अन्दर से एक बुढ़िया निकली। शायद यह उसकी दाई और महराजिन, दोनों थी। कहा—मैंने सोचा, फिर क्या आफत आई। तुम्हारे लिए तो रोज एक-न-एक हंगामा लगा ही रहता है। दिन निकले तक आज सोई—सोचा, जी अच्छा न होगा। अच्छा, ये कौन?

बूढ़ी जरा हँसी। मीरा ने कहा—रुक क्यों गई मानदा? और कुछ कहो। कह डालो कहानी।

बुढ़िया फिर हँसी। बोली—छिः, यह भी कोई बात है? आदमी लछमी है, चाहे जो आए। नाई-धोबी ही क्यों न हो? सोने की अँगूठी टेढी ही हो तो क्या उसकी कीमत घटती है?

कनखियों से एक बार हिरण को ताककर बुढ़िया चली गई।

मीरा खिड़की के सामने जा खड़ी हुई। हिरण चौकी पर बैठा। घुटने तक पाँवों पर धूल जमी हुई थी। कमरा था तो अच्छा ही, मगर पुराना था। हिरण चारों तरफ देखने लगा। एक बार धीर गले से पूछा—कपाल पर चोट का निशान देखा?

मीरा ने मुड़कर देखा नहीं। वहीं से बोली—तिलमिलाकर गिर पड़ी थी।

—गिर पड़ी थी? कहाँ?

—ग्रैंड होटल के फ़ुटपाथ पर।

हिरण चुप रह गया। होंठों पर एक प्रश्न आया—और वहाँ जो लहू गिरा, उसे डॉक्टर विमलाक्ष ने लाँघा था या नही ?—लेकिन सवाल को वह पी गया। चौकी पर एकदम फटा बिछौना, फर्श पर बिखरे पड़े कुछ अलमूनियम और कलई के बर्तन। एक लकड़ी के फ्रेम का आईना, आईने पर टूटे दाँतों-वाली कंघी। ताक पर एक शीशी में थोड़ा-सा तेल। एक कोने में अधमैली-सी धोती। टिन का एक बक्सा। दीवाल पर पेंसिल से लिखे बहुत-से अजीब वाक्य, नाम-पता। एक तरफ फूटे घड़े से फर्श पर आधी दूर तक पानी फैल गया था। कैसी तो एक गरीबी और मलिनता कमरे में घुट रही थी। बहुत पहले कभी हुस्ना ने जो कहा था, हिरण के कंठ से जबरन वह वाक्य बाहर निकलना चाह रहा था। मीरा की आँखों में आँसू देखकर हुस्ना ने एक दिन हिरण से कहा था—आखिर तू मर्द है न, उसकी लट पकड़कर आँसू नहीं पोंछ दे सकता ?

बडी देर के बाद गला साफ करके हिरण ने कहा—बाहर जो भले लोग इंतजार में है, वे क्या बैठे ही रहेंगे ?

मीरा ने अब भी उलटकर न ताका। धीमे से कहा—उन्हें बैठे ही रहने में आनंद आता है।

—है कौन ये ?

—भक्त हैं।

हिरण बोला—कोई प्रार्थना है उनकी ?

मीरा की आवाज जरा काँप गई। बोली—मैंने किसी को परिहास करने के लिए नहीं बुलाया है।

हिरण ने कहा—लेकिन मैं यहाँ परिताप के लिए भी नहीं आया हूँ ! कहाँ गई वह बुढ़िया ?

—क्यों ?—मीरा ने मुँह इधर को फेरा।

हिरण ने कहा—दो दिन पहले आठ-एक पाकिस्तानी रसगुल्ला नसीब हुआ था। वह कुछ खिलाती तो खुशी होती।

मीरा ने कहा—पाकिस्तानी रसगुल्ले से अगर दो दिनों तक निश्चित रहा जा सकता हो, तो वहीं लौटकर खाने की ख्वाहिश रखना ठीक है। एक महीने के लिए घूमने गए थे, यह छः महीने के बाद नहीं लौटते तो क्या था !

हिरण ने कहा—हुस्ना के साथ ससुराल में रहने गया था। खासी गिरस्ती बसाई थी। राजमहल की धन-दौलत में दोनों के दिन मजे से जा रहे थे…

मीरा ने कहा—वह तो शक्ल ही बता रही है, पोशाक ही कह रही है ! नाई, धोबी के लिए भी पैसा नहीं जुटा ?

हिरण थोडा पस्त पड़ गया। किस्सा जम नहीं सका। नये कपड़े-कुरते खरीद लेता और वही पहनकर आता तो अच्छा था। उससे शक्ल चाहे न बदलती, ससुराल की इज्जत बचती !

मीरा ने पूछा—हुस्ना क्यों नहीं आई ?

हिरण ने कहा—उसे ससुराल जाना पड़ा।

—यानी ?

—यानी अब से उसके रोटी-कपड़े का भार पुलिस ही ढोएगी। यह सौभाग्य अपने को न मिल सका, खदेड़ दिया गया।

—छोटी चाची कहाँ हैं ?

—हम लोग जिस रोज हाजीपुर पहुँचे, वे उसी दिन जाने कहाँ चली गईं। उन्हें और अत्रि को फकीरा की माँ ने किसी तरह वहाँ से निकाला।

—क्यों ?

हिरण ने कहा—वह सिंहासन पर लगभग बैठ चुकी थी, लेकिन अभी वहाँ के जो मैनेजर है, आकुमार ब्रह्मचारी हमीद साहब, उनके किसी प्रस्ताव पर राजी न हो सकने के कारण भागकर उन्होंने अपनी जान बचाई !

मीरा ने पूछा—प्रस्ताव क्या था ?

—प्रस्ताव क्या था, पता नहीं, लेकिन शायद उसे मानने में उन्हें कोई नैतिक अड़चन थी बहरहाल।

मीरा कुछ क्षण चुप रही। फिर पूछा—बहरहाल अड़चन थी के माने? बाद में उस पर राजी होंगी?

हिरण ने कहा—यह तो निरवधि काल और विपुला पृथ्वी जाने! बात यों है, जिस प्रस्ताव को औरतें बाद में कबूल किए लेती है, शुरू में उस पर जोरों से एतराज़ करती हैं।

किसी ने मानों मीरा का झोंटा पकड़कर हिला दिया। सहसा सहमकर वह चुप हो गई। हिरण ने एक बार उसकी ओर देखा और कमरे से अंदर की तरफ चला गया। एक गंदे से कमरे के सामने बैठी बुढ़िया दाल बीन रही थी। बड़ी विनय से हिरण ने कहा—क्या हो रहा है? मैं बातें करने आया बुढ़िया बुआ।

खीझकर मानदा ने सिर उठाया। कहा—यह बुआ क्या? मेरा नाम मानदा है। बहू-बाजार की औरत कभी बूढ़ी नहीं होती।

हिरण ने कहा—बड़ी भूख लगी है मानदा!

—भूख नहीं लगेगी, इतनी देर हो गई!—आवाज धीमी करके बोली—रसोई-पानी की चर्चा ही नही! हो भी कहाँ से? मैं पूछती हूँ, इतना आगा-पीछा क्या? पैसा पहले, बाकी सब कुछ उसके बाद। पेट की बात पेट ही में रहे, लेकिन पेट चलना तो जरूरी है? कपड़ा-लत्ता, गहने-पाते, कुछ की कमी नही रहे, आदमी घर आना चाहिए। आदमी ही लछमी है।

हिरण ने कहा—तुमसे ज्यादा अपनी उसकी और है ही कौन?

उत्साहित होकर मानदा ने कहाँ—कौन तो किसकी सुनता है? घर ही उजड़ा है, मगर उसके लिए इतना जी खराब करने की क्या जरूरत? नया घर बसाने में क्या देर लगती है? और फिर इसे कमी क्या पड़ी है। औरतों की खूबसूरती जब तक है, तब तक कमी किस बात की?

हिरण ने कहा—अलबत्। यह तो जज भी मानेंगे।

मानदा ने आवाज और धीमी कर ली। कहा—आनेवालों की तो कमी नहीं ! लोग जाने कितने आते हैं रोज ! दरवाजे के पास दुनिया-भर की चीजें रख जाते हैं। मगर इस लड़की को कोई उत्साह ही नहीं।

—आखिर क्यों, कहो तो ?

—मेरा खयाल है,—मानदा ने कहा,—इसके दिल मे कोई और गड़ा हुआ है। जब तक वह काँटा उखड़ता नही, तब तक इसके नसीब में सुख नहीं बदा है।

—कौन गड़ा है ? कोई डॉक्टर-वैद्य ?

—उहूँ ! वह यहाँ नहीं—इसके गाँव में है।

—यह तुमने कैसे जाना मानदा ?

—भला इतना भी न जानूँगी। अरे नशे में इस कम्बख्त छोकरी को होशहवास भी रहता है ?

—नशा !

—हाँ भैया ! अन्न नसीब हो न हो, वह तो होना ही चाहिए। दो दिन हो गए, खाया है कुछ ? कभी-कभी पेट के दर्द से तड़पती रहती है।

अचानक पीछे मीरा आ खड़ी हुई। रूखे स्वर से कहा—यहाँ आकर जासूसी चल रही है ?

—पूछो मत भैया !—मानदा कहने लगी—जासूसी ही समझो। एक वह दिन था, एक यह है। जभी तो कह रही थी, यह देखो, इत्ती-सी तो है मूँग की दाल, पाँच पाव और दाम एक रुपया। यह और क्या है ? सरकारी सल्तनत उठ गई, इसी से यह दुर्गत।—मानदा उठ बैठी।

हिरण ने कहा—उधर से आते वक्त किसी हजाम को बुलाती आना मानदा।

—अभी चली।—वह रसोई से निकल गई।

मीरा ने कहा—इस गँदले पानी में मछली शिकार को निकले हो, क्यों ?

मानदा ने एक बार दोनों को देखा और दबी खुशी को दबाए चली

गई ।

हिरण भी खड़ा हुआ । बोला—मछली मिलती तो शोरबा और चावल खाता ! पेट में आग लग रही है ।

मीरा मुँह फेरकर वहाँ से चली आई । हिरण भी उसके पीछे लगा आया । मीरा बोली—खाने के लिए पैसा लगता है, वैसे ही खाना नहीं नसीब होता ।

हिरण ने पूछा—घर में क्या कुछ भी नहीं ?

आर्त्त स्वर में मीरा बोली—नहीं !

—ओ, शायद महमानों ने सारा सफाया कर दिया । हंडी में टटोलने से कोई लाभ न होगा ? अंतर्यामी नारायण बड़े भूखे है । सच ही कुछ नहीं है ? एक टुकड़ा शाक ?

अचानक मीरा जल-भुन उठी । बोली—नही, कुछ नहीं । मेरा अपमान करने के लिए तो यहाँ आने की कोई जरूरत न थी !

हिरण थमक गया । कहा—इतने दिनों की नौकरी, ढाई सौ रुपये तनखाह...कुछ भी जमा-पूँजी नहीं ?

तीन महीने से नौकरी नही है । रुपये की जरूरत पड़ेगी तो बाहर भक्तों की टोली जमी है । दस-बीस रुपये माँगते ही देंगे !—मीरा ने मुँह फेर लिया ।

हिरण सन्नाटे में खडा रहा । मीरा के गले से एक टूटी-सी आवाज आ रही थी । रूखे और उलझे बाल । कपाल पर चोट का वह अजीब-सा निशान । आँखों के नीचे स्याही । सेहत वही, मगर उसका वह दीप्त लावण्य इन्हीं छः महीनों में मुरझा गया था । चेहरे पर जैसे एक मंद-मलिन आवरण पड़ गया हो, लगता है इसे अपनी शारीरिक सफाई का भी खयाल नही रह गया है । साफ समझ आती है कि यह हुस्ना नहीं, कोई दूसरी लड़की है । यह अपनी ओज पर खड़ी होकर नेतृत्व नहीं करती, ऐसी लड़की भीतर-ही-भीतर जलती रहती है, कभी जीवन से बदला चुकाकर चल देती है । यह लड़की लोभ और लालसा लेकर नहीं पैदा हुई,

पैदा हुई एक प्रतिज्ञा लेकर, लेकिन समय के फेर से इसकी वह प्रतिज्ञा चूर-चूर हो गई है। यह हुस्ना नहीं है कि व्यवस्था के खिलाफ बगावत करेगी ; यह मीरा है—भीतर-भीतर रोनेवाली—बाहर दबे रोष की लालिमा। यह आत्म-हनन कर सकती है, आत्म-प्रकाश करना नहीं चाहती।

बाहर से दरवाजे पर थपकी पड़ी। वदन पर कपड़ा सँभालकर मीरा ने दरवाजा खोला। बगल के कमरे में जो छोकरे बैठे हुए थे, उनमें से एक ने पूछा—हम क्या अभी इंतजार करें ?

मीरा ने कहा—आप लोगों का बहुत-बहुत शुक्रिया। लेकिन मैं अब उस नौकरी पर न जाऊँगी।

—फिर आपके गुजर-बसर का क्या होगा ? आप इस तकलीफ में रहें, यह तो हम सबके लिए शरम की बात है।

मीरा बोली—सोचने के लिए मुझे कुछ दिन का और समय दीजिए।

—खैर, समय लीजिए आप। लेकिन अगर इजाजत दें तो हम आपको कुछ रुपये दे जाएँ। पचास-एक रुपये रख लीजिए।

बड़ी खीझी-सी मीरा बोली—आपका अहसान याद रखूँगी, पर रुपये मुझे अभी नहीं चाहिएँ। जरूरत पड़ी तो फ़ोन से आपको खबर दूँगी।

बड़े उदास-से वे सब लौट चले। अचानक उनमें से एक ने लौटकर पूछा—थोड़ी देर पहले जो सज्जन आये, क्या हम जान सकते है कि वह कौन हैं ?

—बेशक !—मीरा ने कहा—ये रात-दिन के रहनेवाले हैं।

—तो यहाँ रहने के लिए आये हैं ?

एकाएक मीरा के कंठ में मानों हुस्ना आ बैठी। अपनी खीझ पिये वह बोली—जी हाँ। आदमी वैसे ठीक नहीं है, बहुत घाट का पानी पीकर ठोकरें खाकर तब यहाँ आया है।

अचरज से उन लोगों ने पूछा—और आपने ऐसे आदमी को जगह

मीरा ने जोर से पूछा—मानदा कहाँ गयी ?

हिरण ने कहा—हजाम की खोज में गयी है, आ रही होगी।

मीरा ऊब और खीझ उठी थी। कहा—ऐसी आफत में डालना भी क्या! मेरा अपना ही गुजारा नहीं चलता, मैं मेहमान-नवाजी कैसे करूँ ? पहले से खबर भी की होती तो कुछ कर-करा रखती।

हँसता हुआ हिरण उठ खड़ा हुआ। बोला—परेशान होने की क्या बात है। हाँ, मेहमान होता तो बेशक फिक्र की बात थी! आखिर मैं तो रात-दिन का रहनेवाला ठहरा। मालकिन के घर छूछे हाथों थोड़े ही आया हूँ ?—कहकर हिरण ने घर का काम करना शुरू कर दिया।

बिछौने को झाड़ा, बिछे हुए कपड़े सहेजकर एक ओर को रखे, बर्तनों को बटोरकर एक जगह इकट्ठा किया, फटे कपड़ों की एक गठरी बनाई। लत्ता लेकर उसने गीले फर्श को पोंछा। कोई दस मिनट में कमरे की शक्ल ही बदल दी। गिरस्ती के काम-काज में वह पक्का है।

मीरा ने कहा—आपकी इन हरकतों का मतलब ? मै अभी घर छोड़कर चली जाऊँगी, कहे देती हूँ!

हिरण ने कहा—चली जाएँ तो मुझे हार्दिक खुशी हो। पीछे-पीछे बन्दा भी निकले और किसी भले मुहल्ले मे कोई कमरा ठीक करे।

मीरा जल-सी उठी। कहा—भले मुहल्ले में मकान मैं नहीं ले सकती थी क्या ? मैं क्या जानती नहीं कि भद्र जीवन का मतलब क्या होता है ? भद्र क्या होते हैं ?—और वह लौ-सी लहककर खड़ी हो गई।

यह चोट किधर को थी, हिरण जानता था। उसने शान्त दृष्टि से देखा। गरीबी, दुर्गत और अपमान से उसकी चेतना पैनी हो उठी थी, सो वह चोट खाए साँप-सी फन फैलाकर खड़ी हो गई। चीख उठी—आखिर यह दुर्दशा क्यों, क्यों ऐसा अपमान ? मेरी गलती कहाँ पर है ? मैं यह सब क्यों बरदाश्त करूँ ? किनके अन्याय से मुझे इस गंदगी में गर्क होना पड़ा है ? मैं चली···

हवा का झोंका लगा कि जंगली आग दहक उठी। उसी अटपटे वेश

में वह सीढ़ी की तरफ दौड़ पड़ी। चीख उसकी कहाँ तक पहुँची, पता नहीं, लेकिन एक पल को। दूसरे ही क्षण दौड़कर हिरण ने उसका हाथ पकड़ लिया। लाल आँखें किए मीरा बोली—नहीं-नहीं, मैं जाऊँगी, मैं छुटकारा चाहती हूँ, छुटकारा।

—मरने से पहले छुटकारा नहीं!—कहकर हिरण उसे खीचकर ले आया। कमरे में न ले-जाकर सीधे नल की तरफ अन्दर ले गया और अपनी आशैशव संगिनी को उसने नल की धार के नीचे पकड़कर बिठाल दिया। मीरा न-न करती रही, पर हिरण ने कहा—चुप, मैं अब कुछ नहीं सुनना चाहता।

तालु पर पानी गिरने लगा, मीरा आँखें बन्द किए बैठी रही और हिरण सर के ऊपर थपथपाता रहा। साबुन वहीं पर था, खीचकर उसने मीरा की ओर बढ़ा दिया। आप अन्दर गया। बक्स में से जैसी भी साड़ी मिली, एक उठा ली; तेल की शीशी उठाई और ले आया।

छुटपन की संगिनी—बीच में सिर्फ एक जमाना पलट गया। आज वह आदमी शायद न हो, पर मन वही है।

पीछे खड़ा होकर हिरण ने उसकी लटों की गाँठें छुड़ाई, साबुन से धोया, तेल लगा दिया। दोनों में कहीं भी तिल-भर दुविधा नहीं थी, क्योंकि दोनों के सम्बन्ध में अस्पष्टता नहीं थी कहीं। उनका सच्चा परिचय यही था, बाकी परिचय तो लौकिक है। हिरण ने पूछा—ठंडा पानी अच्छा लग रहा है?

सिर हिलाकर मीरा ने सहमति जताई। कहीं उलटकर ताकती तो उसे दो आँखें दिखाई देतीं एक कवि की। लाल तो वे आँखें भी हैं, पर उनमें कैसी तो एक अजीब कोमलता है। ये आँखें ऐसे एक आदमी की हैं जिनमें युग-युग से सताई-ठुकराई मानवता के लिए पीड़ा के आँसू जमा होते हैं। हिरण ने उसे नहला दिया।

उसके हाथों में साड़ी देकर हिरण अपनी रुपयेवाली गठरी उठाकर नीचे उतर गया। पंद्रह मिनट बाद वह लौटा। पीछे-पीछे आता दो

आदमियों का भोजन लिए नीचे के होटल का नौकर। हिरण के हाथ में दही था, मिठाई थी, नींबू थे। छोकरा थाल को सहेजकर चला गया।

हाथ पकड़कर हिरण ने मीरा को बगल में बिठाया। मानदा आयी। बताया—हजाम नही मिला। लेकिन दोनों के खान-पान की तैयारी पर उसकी नजर जो पड़ी, सो वह हँसकर वहाँ से खिसक गई।

खिड़कियाँ खुली थीं। हेमंत के नीले आसमान में धूप भरी थी। देखना आता हो, तो सब कुछ आश्चर्यजनक लगता है। मीरा की थकी आँखें खुल पड़ी थी—आज, इतने दिनों के बाद, उसकी नजर को मधुर का आवेश आकर छू गया। हिरण सिरहाने बैठकर उसका सर सहला रहा था।

धीमे से एक बार मीरा ने कहा—तालतल्लेवाले मकान में मुझ पर कुछ बाकी रह गया था। चुका देना।

हिरण ने पूछा—और किस-किसका बकाया है?

—यह मकान मानदा के बहिन-बेटे का है, उसका भी दो माह का किराया बाकी है—कुछ और भी लोगों का है।

हिरण ने कहा—जाने के पहले हुस्ना तुम्हें बहुत-से कपड़े खरीद दे गई थी, और जाने क्या-क्या दे गई थी, क्या हो गया?

मीरा बोली—मानदा ने सब बेच दिया, आखिर इतने दिनों तक चला कैसे?

—हाथ में सोने की जो चूड़ियाँ थीं?

—मैने मानदा की भतीजी को दे दीं।

हिरण ने कहा—बीच-बीच में दान-खैरात बेशक अच्छी बात है, लेकिन जानती हो, शरीर के ऊपर अत्याचार करके संन्यासी नहीं बना जा सकता?

मीरा चुप रही। हिरण उसकी गीली लटों में उँगली चलाता रहा।

बीच में फिर पूछ बैठा—हुस्ना कई हजार रुपये भी तो तुम्हारे पास रख गई थी। सब खर्च हो गए ?

कुछ क्षण मीरा चुप रही। देखते-ही-देखते फिर वह उत्तेजित-सी हो उठी। कहा—पाँच-सात आदमी मिलकर विलायती होटल जाया करें, तो रुपये कब तक रह सकते है ?

—पाँच-सात आदमी !—हँसकर हिरण बोला—मतलव इसका ?

—मतलब साफ है। जब सब-कुछ ही गया, तो यह देह ही क्यों रहे ? कौआ, चील, गिद्ध—भरे पड़े है देश में।—मीरा जैसे फफक उठी।

खिड़कियाँ खुली थी, फिर भी कमरे में उमस थी। मीरा के कपाल और चेहरे पर पसीने की बूँदें झलकने लगी थीं। उसी के आँचल से हिरण ने प्यार से उसका मुँह पोंछ दिया। बोला—नौकरी क्यों छोड दी ?

मीरा ने कहा—विमलाक्ष ने कल-पुरज़ा उमेठ दिया था।

अचरज से हिरण ने पूछा—अरे, दोस्त आदमी दुश्मन बन बैठा !

—मतलब निकल जाने पर दोस्त भी दुश्मन हो जाते है। एक दिन बेहोश थी, शायद उसी दिन खोज-ढूँढकर वह खतों का पुलिंदा ले भागा।

हिरण ने कहा—सिर्फ अपने खत लेकर ही उसने तुम्हे रिहाई दे दी ? विमलाक्ष की दोस्ती तो ऐसी नहीं हुआ करती !

गर्दन टेढ़ी करके मीरा ने कहा—मुझसे तुम कबूल कराना चाहते हो ?

हिरण फिर हँस उठा। वह मीठी और धुली हँसी मीरा की अपरिचित नहीं। स्नेह से हिरण ने कहा—अभी तक मनुष्य सभ्य नही बन सका है, इसीलिए अपनी आदिम प्रवृत्ति को छोड़कर वह ऊँचे नहीं उठ सका है। आज तक मैं जिन्हें श्वशुर मानता आया हूँ, जिनके हाथों मेरे जीवन का निर्माण हुआ,—उन्होंने मुझे यही सबक सिखाया था कि अगर मुक्ति चाहते हो, तो प्यार के बंधन को भी कबूल करने से काम न चलेगा। क्योंकि उसी में हिंसा, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ का वास है ! मै तुमसे कुछ कबूल कराना नही चाहता, चाहता था विमलाक्षको पहचानना।

वह भी कौआ, चील और गिद्ध ही की कोटि में आता है, सो वह आदमी नही है। आदमी होता तो वह जानता कि जो तुम पर विश्वास करता है, वह कभी ठगा नही सकता !

मीरा की आँखें भर आई। लेकिन आहत और आतुर कठ से वह बोली—तुम शायद अब मुझे विश्वास के बंधन से बाँधना चाहते हो ? शायद नहला-धुलाकर घर ले जाना चाहते हो ? मैं अपवित्र हूँ, इसलिए मुझे भरोसा देने आये हो ? मैं फिसल गई हूँ, इसलिए ऊपर उठा लेना चाहते हो ?

मीरा के बालों के अंदर हिरण का चलता हुआ हाथ एकाएक रुक गया पल-भर के लिए। उँगलियाँ फिर उसी तरह से चलने लगीं। उसमें उत्तेजना की गंध भी न आई। गले को साफ करके उसने कहा—आज मेरी राय जानकर करना भी क्या ! तुमने मुझे कभी आदमी भी समझा ? पुरुष भी माना ?—जाने दो, जवाब नहीं चाहिए।

मीरा कुछ न बोली। केवल फफककर रोती रही। हिरण कहने लगा—मै आज भी रूपकथा का भक्त ही हूँ, आज भी मन-ही-मन कविता लिखा करता हूँ। मैं तुम्हें मधुमती के किनारे से, गुलाब के बगीचे से उठाकर लाया करता था, जहाँ तुम सो जाया करती थी चाँदनी में ! तुम जुलेखा के यहाँ भाग जाया करती थी, मैं आँदाकान से तुम्हें पकड़-कर लाया करता था। एक ही घर में हम पले, एक थाली में भोजन किया, छुटपन में एक ही कमरे में सोये। वही तुम मेरे लिए झूठ नहीं और यही तुम मेरे लिए सत्य नही। मधुमती का पाट काफी चौड़ा है, आर-पार नहीं दीखता—आज अगर उसमें से कोई गंदगी ही बह जाए तो मैं उसे अपवित्र समझूँ, इतना हीं क्या नन्हा-नादान हूँ मैं ?

मीरा की आँखों से आँसू बहने लगे।

हिरण ने कहा—खैर, छोड़ों इन बातो को। मैं यह कह दूँ कि इस मकान का जो बकाया तुम पर था, आज सवेरे मैंने वह चुका दिया है। यहाँ का भी चुका दूँगा। हुस्ना ने जो रुपये दिए हैं, फ़िलहाल उनसे काम

चल जाएगा।

मीरा ने करवट बदली। पूछा—पुलिस की निगाहों से बचकर ये रुपये कैसे ले आए?

बैठकर हिरण ने शुरू से आखिर तक उसे हाजीपुर की कहानी कह सुनाई। कहा—नये दारोगा जब हारूं मियाँ के घर की तलाशी लेने लगे, तो हारूं मियाँ ने एक चादर में रुपयों को छिपा रखा। और वही गठरी लेकर फकीर शेख कलकत्ता रवाना हो गया। राणाघाट में वह मेरे लिए रुका रहा। मैं फकीर की माँ के इस एहसान को कभी न चुका सकूँगा।

मीरा चुपचाप सब सुनती रही। पूछा—आखिर वे लोग कभी छोड़ेंगे भी हुस्ना को?

—उम्मीद तो नहीं है।

—मगर उसे बाँधकर भी रख सकेंगे क्या? वह तो सिर झुकाने-वाली लड़की नहीं। उन्हीं लोगों को मुसीबत होगी।

हिरण बोला—हाँ, हमीद ने अपने लिए आफत को न्यौता दिया। खैर तुम अब सो जाओ। मै जरा बाहर जाऊँगा।

मीरा ने उसका हाथ पकड़कर मृदु स्वर में कहा—कहाँ जाओगे? आज न जाओ तो न चले?

—घर में रत्ती-भर तो सामान नहीं। कुछ बाजार तो करना ही पड़ेगा।

मीरा के मन में जाने कैसी तो दुर्भावना थी। परेशान होकर कहा—जाओगे, लेकिन अगर…

हिरण ने पूछा—कहो।

—कुछ नहीं। लौटोगे कब तक?

कौतुक-भरे स्नेह से हिरण ने उसकी तरफ देखा। कहा—आज तक तो डर कभी लगा नहीं, आज शायद अकेली रहते डर लगेगा?

मीरा ने कहा—न, जाओ। जब जी चाहे आना, जिस दिन जी

चाहे आना ।—और करवट बदलकर वह आँखें मूँदकर लेट गई ।

हिरण खूब हँसा । कुरता पहना । रुपये लिये और मीरा के बदन के बेतरतीब कपड़े को सँभालकर निकल पड़ा । आज भी हिरण के सामने मीरा अपनी उम्र भूल जाती है ।

रास्ते पर हेमंत की धूप निखरी थी । चारों ओर छाई थी खुशी । महीन लाल-कोर की वही धोती और हुस्ना का दिया हुआ वह हाफ़शर्ट हिरण पहने था, जिसमें हर रंग के छींटे थे, पीछे की ओर अंग्रेजी हरूफ़ की छाप, कीमत लिखी । वही पहने वह बहू-बाजार का चक्कर काटता रहा । पाँव में जूते न थे, गर्द से भर गए थे पाँव । उसने मोची की दूकान से सस्ती चप्पल खरीदी । नीचे रबर था । चलने से मसमस की आवाज नहीं होती । रास्ते पर हजाम बैठा था । उससे बाल बनवाया, हजामत कराई । शक्ल कैसी बन गई, यह देखने के लिए पानवाले की दूकान पर आईने के सामने खड़ा हुआ । चेहरे पर संतोष था । खरीदकर एक बीड़ा पान खा लिया । बगल की दूकान से सौ का नोट तुड़ाकर उसने एक पैसा पान का दाम दिया ।

संसार में और कोई दुखी है कि नहीं, यह जानने की जरूरत नहीं, क्योंकि उसे अब दुःख नहीं है । धूप कुछ तीखी थी, लेकिन ठंडी हवा थी हेमंत की । ऐसी ही हवा उसे एक दिन और लगी थी, जब वह एम० ए० पास करके निकला था । कैसी कल्पना थी उसकी आँखों मे, कितना रंगीन था मन ! मधुमती के किनारे बाल बिखेरे बैठी रहती राजकुमारी, विशाल ऐश्वर्य उसे हाथों के इशारे से मानों बुलाता । उसकी तंदुरुस्ती, उसका रंग, उसकी खूबसूरती देखकर उसके दोस्त कहा करते—यह पहले जन्म में राजकुमारी रहा होगा, इस जन्म में बन गया है राजकुमार ! रेशमी के सिवाय दूसरा कपड़ा बदन पर नहीं रखता, चुनी हुई धोती का छोर जमीन से लगता चलता । लोग ठिठककर उसे देखते रह जाते ।

लेकिन हिरण अपने को जानता था कि वह एक पुरोहित का

लड़का है। फिर भी यह कौतुक अच्छा ही लगता था। आज भी यह बुरा क्या है ! ठेहुने तक उठी धोती, और छापे के कपड़े की कमीज। पान की दूकान से आईने के सामने मुट्ठी तानकर उसने देख लिया कि तंदुरुस्ती अब भी अच्छी ही है ! सो कोई चाहे पुरोहित कह ले चाहे हजाम, क्या आता-जाता है। राजकुमारी तो मिल ही गई; कुछ दुःखी, कुछ टूटी-टूटी-सी वह जरूर है। सो हो, यहाँ कोई नैतिक सवाल तो है नहीं, यह मग्नता आत्मिक है। मीरा को गलत समझना ठीक नही, क्योंकि घटना-क्रम के अनुसार उसकी कोई भूल नहीं। पली वह धन-दौलत की गोद में जरूर, लेकिन उसके पीछे एक आदर्शवाद रहा है। मीरा पर लोक-प्रति-पालन का दायित्व था। उसकी परिकल्पना बहुत कुछ दशभुजा दुर्गा की थी। असुरों का नाश, दुर्गति-हरण, अभय-दान, कल्याण—यही था आंतरिक उद्देश्य, जो समय के फेर से मार खा गया है। लेकिन इसमें दोष मीरा का नहीं। इस जमाने में फिर से महिषासुर की साजिश कामयाब हुई है। फलस्वरूप आत्मबल कर नाश हो गया है। चारों तरफ से दुर्दशाग्रस्त लोग बेबस पुकार मचा रहे हैं। मीरा की ओर से इस बात को सोचने में कवि हिरण को अच्छा लगा।

बाजार में उसने कई साड़ियाँ खरीदीं, कई ब्लाउज़ लिये अपनी नाप के। दूकानदार तो अवाक् रह गया। मगर उस अबूझ व्यापारी को यह किस्सा क्या सुनाया जाता कि कभी मीरा और हुस्ना उसी का कमीज-कुरता पहने ठाकुर के पोखरे के गुलाब-बाग में छिप जाया करती थी और कहीं से उठाकर कोई ब्लाउज़ पहने हिरण उन्हें ढूँढ़ा करता था। खैर। कपड़ों के बाद उसने प्रसाधन की चीजें खरीदीं, गिरस्ती के सामान, वर्तन-वासन खरीदे। बिछौना लिया। तीन कुलियों के सिर पर सारे सामान रखकर वह डेरे की ओर चला। गिरस्ती के झमेले में क्या तो लोग परेशान रहते है, वास्तव में जीवन शायद बड़ा कठोर होता है, जीवन में काल काटने की शायद ग्लानि होती है, लेकिन कहाँ, तीन कुलियों के सिर पर एक पूरी गिरस्ती मजे में चली जा रही है! अभी आकर कोई

पूछे—क्यो भैया, कुछ गार्हस्थ-धर्म का पालन किया ?—तो वह कहे,—जरूर, ये तीन कुली जा रहे है। उन्ही के सिर पर अपने सुख-दुःख का बोझा है—मतलब यह कि सामाजिक जीवन से हिरण को कोई गम नही। सच तो यह है कि वह दुःख-दुर्दशा को ठीक-ठीक समझता भी नही। हुस्ना बिगडकर कहा करती थी,—तुझे चूँकि लोभ नहीं है इसीलिए अभाव भी नही है।—और मीरा मजाक में कहती—जिसे आसक्ति नहीं, उसे शिकायत भी नहीं। मगर हम लोग मरने लगें, तो यह हमारे शोक में कविता लिखना शुरू कर देगा, डॉक्टर नही बुलायेगा। कचकड़े का पुतला है पुतला, देखनें मे खूबसूरत, सजा-गुजाकर रख लो—मगर प्राण नही !

ये बाते हिरण को सुननी पड़ती थीं। जीने के लिए रोजमर्रे के जो झमेले होते है, चूँकि उनसे वह दूर रहता था, इसलिए जीवन के अनुभव उसे कम थे। तुम्हारे दुःख से वह दुखी तो हो सकता है, पर उसे दूर करने की तरकीब करना उसे नही आता। कविता में वह प्राणों की गंभीर चेतना का प्रकाश ला सकता है, किंतु उससे कोई आध्यात्मिक या आत्मिक सवाल कर बैठो—बुद्धू बन जाएगा। उसके दुःख और वेदना के बोध का क्षेत्र व्यापक था और आनंद निर्वैयक्तिक। बहुत कुछ संन्यासी जैसा। प्यार के स्वरूप को वह कविता की दृष्टि से समझता है, पर आज मीरा उससे पूछ बैठे कि तुम मुझे प्यार करते हो ?—तो वह टुकुर-टुकुर ताकता रह जाएगा। मुँह से कोई जवाब नही निकल सकता।

आगे-आगे तीन कुली, पीछे-पीछे हिरण। संदेह नहीं कि आज उस पर मुसीबत आई है। आज उसे संसार के आमने-सामने खड़ा होना है। आज अकेली मीरा है, अकेला वह है। मीरा को कभी गिरस्ती पसंद न थी। उसे पता भी नही कि गिरस्ती कहते किसे हैं। स्त्रियाँ घरेलू होकर ही पैदा होती हैं, मर्द पैदा होते हैं लापरवाह। गिरस्ती में दो विपरीत शक्तियों की भिड़ंत होती है—अंग्रेजी में जिन्हें पॉज़िटिव और नेगेटिव कहते है। एक के लिए बंधन चाहिए, दूसरे के लिए खंडन। एक 'हाँ' तो दूसरा 'न' का हामी। लेकिन इन्ही दो विपरीत, परस्पर-विरोधी

शक्तियों से गिरस्ती बसाना सहज होता है। इन्हीं दो से रोशनी जलती है, पहिया घूमता है। हिरण को फिर भी इसमें संकट हैं। अवश्य नैतिक नही, मानसिक। मीरा ने विवाह को कभी स्वीकार नही किया, लेकिन छुटपन से ही वह आपसी सम्बन्ध की स्वच्छन्दता को जानती आई है। इसे प्रणय का बंधन कहें तो भूल होगी—क्योंकि यह पारिवारिक है। प्रणय का सम्बन्ध आत्मिक होता है और पारिवारिक सम्बन्ध वहुत हद तक आधिभौतिक होता है, यानी मसान के सिवाय उसका और कोई अंजाम सोचा नही जा सकता। संकट यही है।

ये तीनों कुली अभी उसकी आँखों में धूल झोंककर नौ-दो-ग्यारह हो जाएँ तो गिरस्ती बनाने की उसकी योजना तो फ़िलहाल ठप हो जाएगी। इससे तकलीफ नही होगी, लेकिन मीरा के सामने तो खड़ा रहना ही पड़ेगा। मीरा ने कहा है—मुझे गिरस्ती नही चाहिए, वंधन भी नही। हम जैसे थे, वैसे ही रहना चाहती हूँ। यानी वह सम्बन्ध जो मनुष्य से मनुष्य का होता है—प्रयोजन से परे, लौकिक कायदे-कानून के वाहर। मीरा ने एक बार कहना चाहा था, नर-नारी का स्वाभाविक सम्पर्क ही जटिल होता है, सरसता की सजलता से सदा गीला—इससे छुटकारा चाहिए। मीरा ने कहा था—देश के वटवारे के घातक फैसले से डेढ़ करोड़ जिदगी तवाह हो गई, इतिहास कभी इस बरबादी को बरदाश्त कर लेगा, पर सर्वहाराओं में नये सिरे से दुःख न पैदा हो जिसमें चिराचरित समाज-नीति, पुरानी चिंताधारा, जातीयतावाद के सस्ते नारे, नेताओं के वही पिसे-पिसाए उपदेश के शिकंजे से उन्हें छुटकारा मिले। वह कहती—अदूरदर्शिता, भ्रांति और शक्तिलोलुपता से लाखों-लाख परिवारों की दुर्गत आई—उन सबके असंतोष से भावों की नयी क्रांति पैदा हो। एक मुट्ठी अन्न के लिए जिसमें वे निकम्मे नेतृत्व को माफ न करें—नयी जाति, नये धर्म, नये समाज और नेतृत्व को जन्म दें, कायम करें नयी व्यवस्था, नया राष्ट्र। उनकी उनीदी लाल आँखें सदा जागती रहें, भूख और असं-तोष की आग सदा उनमें लहकती रहे, अपने विषैले फन और दाँतों के

द्वारा वे प्रतिकार की नयी राह को ढूँढ़ते रहें। एक रोज मीरा ने जोरों से कहा था—जो लोग शान्ति, प्रेम, कल्याण और अहिंसा का प्रचार करते आए हैं, वे हमारी तरह जमीन पर मुँह के बल गिरे नहीं ! आज वही भटका हुआ नेतृत्व फिर संगठन का जाल बिछाकर बुला रहा है ताकि हम उसमें फँसें—उनकी यह नाशक भूल हमारी निगाहों में न आए।

हुस्ना ने पूछा था—तू कैसी व्यवस्था चाहती है ?

—नहीं कह सकती। मैं नाश के साथ विलोप चाहती हूँ।

—काहे का विलोप ?

अपनी पुरनी मनोवृत्ति का। आज उन्ही बेचारों ने सबसे ज्यादा मार खाई जो देश-सेवा के जुर्म में अंग्रेजों से बुरी तरह पिटे थे। उच्च वर्ग के लोगों का कुछ न बिगड़ा, गत हुई मध्यवित्तों और नीचेवालों की। जिनमें बेहद आपसी मन-मुटाव था, वे मिल गए, मगर पिटे वे जिन्होंने देश की खिदमत की, दुःख-दुर्दशा भोगी। जो शिक्षित हैं, भले हैं, देश के कार्यकर्ता है, जिनकी मदद से देश का वैभव बढ़ता है, राष्ट्र की रीढ़ मजबूत होती है, ज़ो समूह के गर्व और गौरव है, मार खाई उन्ही बेचारों ने।

हुस्ना ने कहा था—जाति का गौरव क्या इन्हीं की मनोवृत्ति से नहीं बना ? तू इसका विलोप क्यों चाहती है ?

हाजीपुर की राजकुमारी ने जवाब दिया था—हाँ, मैं इसका विलोप चाहती हूँ। इसमें वहुत बड़ा धोखा था, जो उन्नीसवीं सदी में किसी की नजर में न आया। शिक्षा, संपद, सामाजिक और राजनैतिक आदर्श—यह सब उन्होंने एक श्रेणी-विशेष की मदद से वनाया था, समूह की कोशिशों से नहीं और उसका सुफल भी उसी विशेष वर्ग के लोगों ने लिया था। ऐसी भूल करने के लिए उस समय बड़ी-बड़ी प्रतिभाएँ पैदा हुई थीं—जिन्हें लोगों की भरपूर स्नेह-श्रद्धा मिली। लेकिन उस गलती के प्रतिकार के लिए उस समय किसी महापुरुष ने जन्म-ग्रहण नहीं किया !

हुस्ना ने पूछा था—गाँधी-रवीन्द्र की बात क्या तू भूल गई ?

—भूली नहीं मैं। —मीरा ने कहा था—उनकी प्रतिभा हमें बीसवीं सदी में मिली, मगर इस मनोवृत्ति की जड़ उसके पहले ही काफी गहरी जा चुकी थी। इसीलिए उन दोनों का जीवन बड़े संघर्ष का, भाव-क्रांति का रहा। लेकिन उस क्रांति से महत् शिक्षा कहाँ मिली ? आज भी सर्व-साधारण पर वर्ग का शासन है। प्रभुता, शक्ति, संपद—सब वर्ग-विशेष के हाथों है। सर्वसाधारण श्रेणी के हाथों मार खा रहा है। आम लोगों की किस्मत की दुर्गत हो रही है श्रेणी के हाथों। चारों ओर घिरा है घटाटोप अँधेरा, निराशा के निःश्वास से दिशाएँ मैली हो उठी हैं, असंतोष का राक्षस गहरी गुफा में अपने छुरे पर धार चढ़ा रहा है। हुस्ना, देखना तू, अगले संग्राम में इस वर्ग मनोवृत्ति का नाश हो जाएगा। जिन्होंने लात खाई है, मान गँवाया है, जो बेसहारे हो गए हैं, हम उन्हीं की कहानियाँ सुनाएँगे, उन्हीं के गीत गाएँगे।

बीस

कुंजियों के साथ जब हिरण बहू-बाजारवाले मकान के दरवाजे पर पहुँचा, तो साँझ की दीया-बत्ती हो चुकी थी। मन में खासी खुशी थी—इन चीजों पर मीरा की उत्फुल्ल निगाह पड़ेगी ! दुःख हो रहा था, इतनी देर तक वह मीरा को अकेली छोड़ आया है।

वह सीढ़ियों से ऊपर गया और जंजीर बजाकर आवाज दी—मानदा ?

दरवाजा तुरत खुल गया। हँसकर मानदा ने स्वागत किया—अच्छा, मैं तो फिक्र में पड़ गई थी—जाने कब से गये हैं, दीया-बत्ती हो चुकी, फिर भी पता नहीं ! अरे, इतना-इतना सामान आया है। क्यों न आए

भला, तबीयत है ! यह भला जैसे-तैस घर का है, विपधर है !

कुलियों ने जतन से सामान उतार दिए और तीन रुपये लेकर चले गए। प्रसाद की तरह सारी चीजों को बीनती हुई मानदा ने कहा—इत्ता-इत्ता सामान ! किधर सहेजूँ ? सच पूछो तो इन चीजों से एक बडी-सी गिरस्ती वसाई जा सकती है भैया !—फिर आवाज नीची करके बोली—मगर आदमी ढग का हो, तब तो ! मगर सव ठीक हो जाएगा। दिल बदल जाएगा। मीठी पुकार पर भगवान् डोलते हैं और एक लड़की का मन नही वदलेगा ?

अघोर परिश्रम से मानदा चीजों को सहेजने लगी। एक वार वोल उठी—आ-हा-हा—यह वसंती रंग वाली साड़ी कितनी सुन्दर है। मेरे भतीजे की बहू को यह खूब फबती, रंग की काली है तो क्या ! काली लड़की को या तो गुलाबी या पीले रंग का कपड़ा फबता है।

हिरण ने कहा—तो हुआ क्या, दीदी से कहकर ले लेना।

—तब तो हो गया।—मानदा वोली—एक औरत को दूसरी औरत के आगे हाथ नही फैलाना चाहिए भैया। देगी दस आने, छः आने वचा लेगी और सोलह आने का लेखा कर देगी।

हिरण ने पूछा—दीदी तुम्हारी जग गई हैं ?

मानदा हँसी। कहा—तुम नये आए हो, सो थोड़ी-वहुत पाबंदी है। इसी से आज उसके होंठों पर हँसी आई है। क्यों न हो भला, रुपयों की फिक्र न रहे तो कलकत्ता शहर तो मुट्ठी में है। मैं कमरे में वत्ती जला आऊँ। तुम बैठो।

मानदा ने कमरे में वत्ती जलाई। हिरण उसके पीछे-पीछे जाकर कमरे में खड़ा हो गया। अंदर झाँककर बोला—कहाँ है तुम्हारी दीदी ? अकेली निकल गई और तुमने मना नहीं किया ?

—अकेली !—मानदा फिर हँसी। बोली—अकेली क्या ! वयस्क लड़की हो तो अकेली जाने की नौबत आ सकती है ? फ़ुट-पाथ पर उतरी नहीं कि साथी मिला। मैं सब सामान ठिकाने से रखूँ जाकर।

मानदा कमरे से निकल गई। और कहना फिजूल है कि हिरण ठंडा होकर वैठ पड़ा। बेहद ठंडा, खिड़कियाँ बंद कर दी जाती तो अच्छा था। मानों कमरे में एकाएक सरदी आ गई। हिरण ने इधर-उधर देखा। बिछावन अस्त-व्यस्त पड़ा था। फर्श पर जली सिगरेट के कई टुकड़े, राख, सलाई की कई तीलियाँ। आईने के सामने पाउडर-पुता एक फटा-सा पफ़, टूटी कंघी पर टूटे बाल लगे। टिनवाला बक्सा हा किए पड़ा था। बाजार जाते समय हिरण रुपये की गठरी यहीं छोड़ गया था। उसकी गाँठ खुली हुई थी। उसमें छोटे नोटों का बंडल नहीं था। बकरे के बाल फर्श पर इधर-उधर बिखरे पड़े थे। मीरा जो साड़ी पहने थी, वह एक ओर को रखी हुई थी। घर की चीजे ऐसी ही बेतरतीब रखी गई थी ताकि कमरे की शक्ल देखते ही माजरे को समझने में जरा भी कठिनाई न हो।

हिरण हँसा। इसलिए हँसा कि उसे लगा, घर की दीवारें उस पर हँस रही है। कंघी, पाउडर, पफ़, सिगरेट के टुकड़े, अस्त-व्यस्त बिछौना, बदली हुई साड़ी—सब कुछ मानों उसके सब्र का इम्तिहान लेने के लिए अपनी कहानी लिए जाग रहे थे। मगर हिरण की धीर-शान्त हँसी को वे क्या समझें? उसने धीरे-धीरे अन्दर से कमरे को बंद कर लिया।

सबसे पहले उसने साड़ी को सहेजा। बिछौने को झाड़-पोंछकर सिरहाने की तरफ तकिया रख दिया। कंघी से लगे हुए बालो को हटाकर उसे पोंछ दिया, पाउडर के डिब्बे में पफ़ को उठाकर रखा। कमरे मे झाड़ू कही नहीं था। उसने अपनी गठरी से अँगोछा निकाला और फर्श को साफ करने लगा। सिगरेट के टुकड़े और दियासलाई की तीलियों को चुनकर खिड़की के बाहर फेंक दिया। जूतों से बाहर का कीचड़ लग गया था, हिरण ने उसको साफ किया। केले के पत्ते पर पान-जर्दा आया था, उस पत्ते को उठाया। होटल से शायद चाय-कटलेट आया था, इधर-उधर उसके टुकड़े पडे थे। हिरण ने सब कुछ साफ किया।

कमरे की सफाई हो चुकने पर वह कंधे पर अगोछा, हाथ में घड़ा उठाए नल पर गया। अँगोछे को अच्छी तरह से फींचा और घड़ा भरकर

ले आया। इतने में पीछे लगी मानदा आयी। उझककर अन्दर झाँकती हुई बोल उठी—भैया, यह फूल और माला क्यों ले आए हो ? पूजा-वूजा करते हो क्या ?

हिरण ने कहा—नहीं-नहीं, सस्ती मिल गई, सो ले आया। वह सब उठाकर यहाँ ले आओ मानदा। वहीं पर धूप-बत्ती भी है। उसे भी ले आओ।

मानदा ने सब कुछ को लाकर ताक पर रख दिया। बोली—दोपहर में निकले थे, धूप में गला सूख गया होगा। मैं पीने को पानी लिए आती हूँ।

मुँह फेरकर मानदा होंठों में मुस्काई। जल्दी से एक लोटा पानी ले आई। मानदा ने झूठ नहीं कहा। सच ही उसे प्यास लगी थी। लोटे का सब पानी वह गटगट पी गया।

मानदा ने पूछा—शायद तुम इनके घर पर नौकरी करते थे ?

हिरण बोला—हाँ...बहुत कुछ।

—पहले तुम्हारे ही साथ यह घर से निकल आई थी ?

—नहीं, ठीक यह तो नहीं, तब आगे-पीछे आये हम दोनों।

मानदा ने पूछा—तुमसे इतनी ही घनिष्ठता जब है, तब फिर यह मनमानी क्यों करती है ?

हिरण अबकी जोरों से हँस पड़ा। कहा—बस, योंही समझो। मामला ठीक-ठीक समझ में नहीं आता !

—समझ में क्या नहीं आता ? पानी जैसा साफ तो है। भैया, यह तुम्हारे बूते की बात नहीं। लगाम पकड़ना न आता हो तो घोड़ा काबू में नहीं रहता। तुम हो भैया निहायत भले। जो बात-बात में औरत के पैरों पड़ता है, एक-न-एक दिन उसे औरत की लात खानी पड़ती है। मेरा कहा सुनो, उसकी गिरस्ती सहेजकर तुम वापिस चले जाओ।

हँसी ज़ब्त करके हिरण बोला—और तुम्हारी दीदी यहाँ अकेली ही रहेगी ?

मानदा बोली—जवान लड़की अकेली क्यों रहने लगी ? खाली जगह मिलेगी तो कोई-न-कोई आ रहेगा । मगर जाते-जाते तुम गाली-शाप मत दे जाना ।

हिरण ने कहा—सोच-विचार के बाद तुम्हारी ही राय मानने में कुशल दीखता है; मानदा ।

मानदा बोली—और अगर इसे कुछ रुपये दे जाने का इरादा हो, तो मेरे हाथों दे जाना ।

हिरण बोला—ठीक कहती हो । अच्छा...

मानदा ने तिरछी निगाहों उसे देखा और खिसक गई ।

जरा देर बाद वह फिर आयी । पूछा—तो फिर अभी ही जाओगे ? ऐसा हो तो दरवाजा बंद करके तब मैं सो रहूँ ?

हिरण ने कहा—तुम्हारी राय में अभी ही चल देना चाहिए ?

—चल ही देना अच्छा है । वेकार का झमेला बढ़ाने से क्या लाभ ? छोकरी ने जबान खोलकर मुझे कहा कुछ थोड़े ही है ? मगर मैं जानती हूँ, तुम चले जाओ तो वह खुश होगी । चल ही दो ।

—तुम्हारी दीदी लौटेगी कब तक ?

—इसका कौन ठिकाना ? एक बार निकल पड़ने पर दो-दो तीन-तीन दिन पता नही रहता । लेकिन चूँकि तुम्हारे पास अभी रुपये की बू है, इसलिए आज जल्दी ही लौटेगी । रुपये के लिए दईमारी ने सब कुछ बेच खाया । देखते नहीं ?—मानदा ने एक बार सीढ़ी की तरफ देखा । देखकर बोली—रात दस बजे तक जरूर लौट आएगी । मैं बना-बनूकर उसे बताऊँगी कि तुम दस बजे की गाड़ी से घर लौट गए । उसके आने से पहले ही चल देने में कुशल है । अकेली तो वह आयेगी नहीं । हलचल हो जाएगी । आखिर बाबू लोग तुम्हें बरदाश्त ही क्यों करेंगे भला ?

हिरण ने पूछा—तुम्हें क्या तनखाह मिलती है मानदा ?

मानदा ने कहा—कहने को पच्चीस रुपये मिलते हैं, पर आज तक फूटी पाई भी नही मिली । तनखाह मिलती रहे तो फिक्र किस बात की ?

—फिर तुम्हारा गुजारा कैसे चलता है ?

—नही चलता है भैया। यह नौकरी ऐसी तो है नही कि ऊपरी आमदनी से ही काम चल जाए ? वहाँ-यहाँ काम करती रहती हूँ, मगर तनखाह की नही सोचती।

हिरण ने पूछा—किराया कै महीने का बाकी है ?

—इस महीने को लेकर तीन महीने का। मकान मालिक मेरा अपना है, इसीलिए मामला-मुकदमा नही किया है। दूसरा कोई होता तो रंग दिखाता अब तक। मैंने उसे भली सीख दी थी। कहा था, तुम जाकर वहीं रहो जहाँ और दो-चार लड़कियाँ साथ रहती हों। कहना था कि तुनक गई। बोली—मानदा, तेरी इतनी हिमाकत, अपमान की बात कहेगी तू ? आखिर तूने मुझे समझा क्या है ? मैं क्या जवाब देती, चुप रह गई। ऐसी जगह जाती तो आमदनी भी बढ़ जाती और किराया भी कम लगता। अपनी गिरस्ती बनाने में थोडी मानहानि ही हो, तो क्या है ?

हिरण बोला—बेशक ! शऊर ही होता तो ऐसी दुर्गत क्यों होती ? भला तुम्हारी जैसी नेक सलाह और कौन देगी ?

मानदा ने कहा—तुम्हीं कहो तो भैया ! इस छोकरी का दिमाग सही-सलामत होता तो मेरी भी बन आती। अभी उस रोज तक एक विलायत-फिरता डॉक्टर मोटर लेकर आया करता था। चाँद-सी सूरत, सम्पन्न घर का जवान।

हिरण ने पूछा—डॉक्टर ? क्या नाम था ?

जरा देर चुप रहकर मानदा बोल उठी—याद आया। विमल डॉक्टर। जैसा रूप, वैसा गुण। उसे इसने मार ही भगाया। उस भले आदमी पर इसने हाथ छोड़ा ?

हिरण सिहर उठा। कहा—अच्छा, कह क्या रही हो तुम ?

—फिर कह क्या रही हूँ। पैरों पर रुपये उँड़ेला करता था ! मगर क्या समझते हो, उस आदमी के उमंग नहीं, आकांक्षा नहीं ? एक रोज वह

तमाम रात यहीं बरामदे पर पड़ा रह गया। सारी रात वह बारिश होती रही कि पूछो मत। और इस कंबख्त लड़की ने उसे भूलकर भी अंदर नहीं बुलाया! अक्ल से वास्ता ही नहीं। उसने दुखी होकर मुझसे कहा—तुम्हे क्या बताऊँ मानदा, मेरे कलेजे में जख्म हो गया है! यह पीड़ा मुझसे न सही जाएगी।

—फिर?

—उसके बाद एक दिन, उस रोज बेशक वह आदमी जरा बेपरवाह होकर ही आया था…

हिरण ने पूछा—बेपरवाह कैसा?

—दिमाग जरा डगमग हो रहा था। अचानक कमरे में शोर मचा, छोटी नीची बात। मैं दौड़ी गई—छोकरी तो चंडिका बन गई थी। थप्पड़-लप्पड़, मुक्का-घूँसा—मारे चली जा रही है। डॉक्टर एकबारगी चुप।—उस रोज की बात याद करके मानदा कहने लगी—क्या कहूँ हिमाकत इसकी। चीखकर उससे बोली—सूअर का बच्चा, तू मेरे बदन पर हाथ रखेगा? निकल यहाँ से।—जरा सुन लो बात! अरे बाबा, तू ऐसी क्या सती नारी है कि बदन पर हाथ रखते ही पुराण अशुद्ध? नतीजा क्या हुआ, जानते हो? डाक्टर इसके हाथ से निकल गया।

हिरण ने कहा—इसे दिमाग के दोष के सिवाय और क्या कहा जाए?

मानदा बोली—डॉक्टर से मैने यह सुना कि कोई मुसलमान लड़की इसके पति को फुसलाकर ले भागी। तब से इसका दिमाग ऐसा हो गया है।

—इसकी शादी भी हुई थी?

भवों पर बल डालकर मानदा बोली—तुम्हें पता नहीं है? तुम तो इसके गाँव के हो। मगर जानो भी कैसे? तुम्हारी नौकरी तो बहुत दिन पहले छूट चुकी है। एक बात कहूँ, यह छोटी मर्दों को तो इतना नीचा दिखाती है जैसे बिल्ली-कुत्ता हो! भला हगेश भी भला होता है कहीं। छोकरी का दिमाग सही होता तो आज तक दरवाजे पर

हाथी बाँध लेती, हाथी।

हिरण कुछ क्षण चुप हो रहा। उसके बाद पूछा—अच्छा, तुम यह बता सकती हो मानदा, यह पेट का दर्द उसे कब से हुआ है ?

—दो महीने के करीब हुआ।

—इलाज-विलाज कुछ हुआ ?

मानदा बोली—हाय नसीब। इलाज कौन करे ? आप अपने ऊपर इतना जुल्म किया जाए तो किस डॉक्टर के बाप की मजाल है कि चंगा कर सके ?

हिरण फिर चुप हो गया। हिरण के जाने का कोई लच्छन न देखकर मानदा बोली—आज रात यहाँ से हिलने की तुम्हारी इच्छा नहीं है, क्यों ? मगर होशियार, उसके पास जरा सावधानी से ही रहना।

हिरण ने हँसकर कहा—क्यों भला ?

—शैतान घोड़ा एक नही मानता ! कहीं डगमगाए कि लानत-मलामत की हद न रहेगी, कहे देती हूँ। सीढ़ी के पास रात-भर पड़े रहना और सुबह होते ही चल देना।

—तुम्हारे मन में कोई दुर्भावना है ?

मानदा बोली—तुम तो नौकरों की कोटि में हो। मुझे दुर्भावना क्यों हो ? मैंने तो तुम्हें चेता-भर दिया। हाँ, तुमने कुछ रुपये देने की कही न ?

हिरण ने कहा—आने दो उसे। रुपये उसी के पास रख गया था। कल सवेरे दूँगा।

—उसके पास ? यहीं थे रुपये ? इस टूटे बक्स में। हाय री मेरी माँ, मैं समझ रही थी, घर में कुछ भी नही !—मानदा बहुत उदास होकर चली गई, चेहरे पर पछतावे की निशानी।

रोशनी जल रही थी। जाने कहाँ तो घड़ी में एक ही बार टन् की आवाज हुई। हिरण बैठा रहा। कान लगा रहा सीढ़ी की तरफ। मगर ऐसे निद्राए रहने से काम कैसे चले ? काम बहुत बाकी पड़ा था। वह उठकर बाहर आया।

नया बिस्तर खरीद लाया था। कार्पेट, दरी, तोशक, तकिया, चादर। आईना, कंघी, फीता-काँटा, तेल-पाउडर, पामेड-स्नो—और भी बहुत सारी चीजे। औरतों के शृंगार की विविध वस्तुएँ। वह सभी चीजों को कमरे मे करीने से सजाने लगा। हाजीपुर के महल में मीरा दो-तीन मुलायम तकियों में मुँह गाड़कर सोना पसंद करती थी, मखमल के तकिए से टिकना उसे भाता था, यह बात हिरण भूला न था।

मीरा बराबर कहा करती थी—कपड़े बदन में हों जरूर, मगर ऐसे बारीक और हलके कि उनके बंधन का पता न चले। सोने का कमरा शयन-मंदिर होना चाहिए—वहाँ होना चाहिए धूप के धुएँ का माया-जाल, गुलाब की भीनी महक का मायालोक। सिरहाने बजता रहे जल-तरंग का मीठा सुर और धुँधली रंगीन रोशनी में स्वप्नों की आवा-जाई चलती रहे। चाँदनी में चिड़िया दूर पर बोलती हो, खिड़कियाँ खुली रहें—जिनके नीचे हो कामिनी का बाग, मधुमालती की झाड़ी। शयन-मंदिर ऐसे एक वातावरण मे होना चाहिए, नही तो सोने का सुख ही क्या।—एक ओर से हुस्ना पूछ बैठती—उस मंदिर के देवता कौन होंगे?—मीरा जवाब देती—उस मंदिर में एकमात्र होगी देवी और वह हूँगी मै।—बगल की खाट से हिरण कह उठता—देवियाँ जितनी भी होती है स्वार्थी होती हैं। पूजा न मिले तो शाप देती है।—मीरा कहती—पूजा नहीं चाहिए मुझे, मै उस मंदिर में अकेली ही रहूँगी।

मीरा अकेली ही रहे, लेकिन सुख से रहे, आनंद से रहे। प्रसन्न शान्ति, विशुद्ध वायु, अमर जोत उसे घेरे रहे। हिरण ने धूपदानी में चन्दन-धूप जलाया, फूलदानी में फूल सजाए, सफेद बिछौने के सिरहाने में जुही की माला रखी। मीरा बड़ी थकी-माँदी लौटेगी, सो बिस्तर पर उसने एक पंखा रख दिया।

बाहर से एक बार हिरण ने कमरे को देखा। तुरत-तुरत विवाह हुआ हो, ऐसे दंपति के कोहवर-सा दीखा कमरा। झलमला रहा था।

जीर्ण-मलिन, कूड़ा-कतवार जो भी था, नवीन वसंत के आगमन से सब जैसे छूमंतर हो गया। लेकिन मीरा अगर भूख लिए लौटे ? कहे कि सिर्फ मीठी बातों से पेट नहीं भरता ?

स्वाभाविक है। उसने एक बार मानदा के कमरे की ओर देखा। जीवन की कोई निशानी नहीं। शायद सो गई। उसने दरवाजे के पल्ले धीरे से भिड़का दिए और नीचे उतर गया।

पंद्रह मिनट बाद लौटा भोजन लेकर। सबको उसने काँच की एक तश्तरी में जतन से सजाया और एक तौलिए से ढककर ताक पर रख दिया।

दूर से किसी घड़ी ने दस बजाए। हिरण बाहर बैठा।

बरामदे के बाहर छिटकी थी हेमत की चाँदनी, लेकिन उसमे सरद धुमैलापन था। भीड़ और गाड़ियों से हर ओर चहल-पहल। परन्तु चहल-पहल के बीच वह अकेला था, जैसे आरपारहीन आसमान में चन्द्रमा। उसके अंदर दुःख, ग्लानि और वेदना से परे कोई बैठा रहता है, जिसे आसक्ति नहीं, जो निर्विकार है। वह सदा जागता ही रहता है, शोक से वह मायूस नहीं, अपमान से वह मलिन नहीं, पृथ्वी की किसी भी वंचना से वह क्षुब्ध नहीं, किसी भी चोट से दुखी नहीं। उसे कुछ भी जैसे नहीं छू सकता।

अन्दर धूप जल रहा है, बत्ती जल रही है, गुलाब का गुच्छा खुशबू लुटा रहा है, उसके लिए दूध-जैसा श्वेत बिछौना बिछा है। वह आयेगी और यह सब उसका स्वागत करेंगे। ठंडा पानी, सुस्वादु भोजन। वह थकी-माँदी लौटेगी। उसका मन-प्राण, आत्मा-सत्ता, सब कुछ उत्सुक-उद्ग्रीव—वह आ रही होगी ! अपनी भूल से वह लौट आएगी, लौट आएगी अपने दुःस्वप्नों से, शोक-ताप, ग्लानि और आत्म-पीड़न से वह लौटेगी—लौटेगी उन्मुक्त आलोक-समुज्जवल जीवन के सहज आनंद और विकारहीन शान्ति की ओर !

उसके अन्दरवाले ने पूछा—आखिर यह सब इंतजाम क्यों ? तुम्हें

उसका प्यार चाहिए ?

हिरण हँसा ! उसने छुटपन से कभी यह चाहा भी था ? जवानी के दिनों इसकी याद भी आई थी उसे ? कभी भी क्या उसके जीवन में यह लौकिक शब्द प्रकट हुआ है ? इसकी कभी उसने विनती की है या इसका अधिकार जताया है ? उसका निचोड़ जैविक होता है, उसका सपना और खयाल होता है मानसिक—लेकिन प्रेम की चेतना से जो प्रकाश छिटकता रहता है, सत्ता की परम अभिव्यंजना से प्रज्ञा की जो दीप्ति बिखरती रहती है,—कवि हिरण के मन की आँखें सदा उसी तरफ को उन्मुख रही हैं । यही कारण है कि प्रेम से उसने मंगल के स्वरूप को पाया है, पाया है एक उदार सम्वेदना बोध, लोकोत्तर आनंद और जीवन-यात्रा के अनेक चढ़ाव-उतार के बीच पाई है एक अव्यय और अक्षय महाशान्ति । वह अपने सांसारिक जीवन में कभी कहीं वंचित नहीं हुआ ।

अचानक उसकी आँखें खुल गईं । जाने कहाँ की घड़ी में कितना तो बज गया । वह बरामदे पर उठ बैठा । जड़ा गया था । चाँद जाने कब तो डूब गया । अँधेरे में टिमटिमा रहे थे सितारे । शहर का शोरगुल शान्त हो चुका था । हिरण उठ खड़ा हुआ ।

अन्दर रोशनी जल रही थी । धूप जलकर खत्म हो चुका था । गुलाब के गुच्छे की गंध की पूँजी चुक गई थी । लेकिन उसकी नींद घड़ी के बजने से तो नहीं टूटी । बरामदे में वह कान लगाकर सोया था । नीचे से कोई आवाज आई । वह सीढ़ी से नीचे उतरा । अब उसे याद आया, मोटर के भोंपू से उसकी नींद उचटी । सदर दरवाजा खुला था । अचानक ठीक उसी के सामने उस गंदी जगह में मीरा बेहोश पड़ी नजर आई । शायद उसने ऊपर चढ़ने की कोशिश की थी, इसीलिए आधी देह उसकी दो धाप ऊपर पड़ी थी, आधी नीचे की ओर उस गंदगी में । उसके लावण्य पर रास्ते की रोशनी की आभा पड़ रही थी । बगल से होकर हिरण ने दरवाजे की कुँडी लगा दी । चेहरे पर कोई शिकन नहीं ।

मीरा को ऊपर ले जाकर उसने बिछावन पर सुला दिया । मीरा ने

एक बार आँखें खोलकर ताका, फिर सो गई। कपाल पर पसीने की बूँदें, शरीर पर कोई वश नही। हिरण ने अँगोछा भिगोकर उसके चेहरे को पोंछ दिया। पेशानी पर चोट का वह दाग झलक रहा था। चाँद के जीवन में कलंक की पहली रेखा। चौकी के पैताने जाकर हिरण ने मीरा के पाँवों से जूते उतारे। रोशनी उसकी आँखों पर पड़ रही थी, वह उसे भी खास ढंग से ढँक आया। बीच-बीच में मीरा के कंठ से बरबस एक आवाज निकल रही थी, दर्द-भरी! सिरहाने खड़े होकर हिरण ने पंखा झलना शुरू किया। मीरा नीद में बेखबर।

उसके गले के पास ब्लाउज़ के अन्दर से क्या तो गाँठ-सी दिखाई दे रही थी। हिरण ने बड़ी सावधानी से उसे निकाला। रूमाल में बँधी एक पोटली—पोटली में नोटों की गड्डी और उसके साथ एक छोटी-सी शीशी। शीशी में लाल-हरे रंग की अजीब गोलियाँ। छः महीने पहले ऐसी ही एक गोली उसे तालतल्लेवाले मकान में पड़ी मिली थी। हिरण उलट-पलटकर गोलियों को देर तक देखता रहा।

सवेरा हो गया। कमरे की बत्ती निस्तेज हो गई। बाहर कौओं की बोली सुनाई देने लगी। हिरण ने खिड़की से बाहर को झाँका और बत्ती को गुल कर दिया। पाँच बज गए।

खिड़की से जब सुबह की किरणें अन्दर आई तो मीरा ने करवट बदलकर ताका। हिरण पास बैठा था। मीरा ने मृदु स्वर में पूछा—यहाँ कब आ पहुँची? कहाँ तो थी जाने!

—थोड़ा और सो लो, सब याद आएगा।—हँसकर हिरण बोला।

मीरा ने आँखे बंद कर ली। हिरण बाहर निकल गया। उधर के कमरे से मानदा की आवाज मिल रही थी।

कोई दो घंटे में हिरण लौटा। काँच के ग्लास में वह नींबू का शरबत लेता आया था। मीरा इतने में नहा चुकी थी। उसके हाथ में ग्लास देते

हुए हिरण ने पूछा—लीवर का दर्द अब कैसा है ?

—अभी नहीं है ।

—इसी बीच नहा लिया जो ?

मीरा ने कहा—शायद कोई आएँ। तैयार रहूँ !

हिरण हँसा । कहा—व्यग मैंने समझा । लेकिन आदमी मै भला हूँ । कोई भी इम्तिहान हो, पास करूँगा । जरा ठहरो, अभी चाय आती है ।

नींबू का शरबत पीकर मीरा ने कमरे के इधर-उधर देखा । पूछा—कल से तुमने यह कोहवर जो सजा रखा है, मतलब क्या है तुम्हारा ? शायद हुस्ना से साजिश करके रुपये लाये हो ?

हिरण फिर हँसा । बोला—मतलब तो कुछ था । सोचा, अपने ब्याह का जो थोड़ा-सा बाकी रह गया है, इसी सुयोग में उसे पूरा कर डालूँ ।

ऐसे समय मुस्काती हुई मानदा आ खड़ी हुई । उसे देखते ही हिरण ने कहा—हाँ, तुम आ ही गई मानदा । तो, सब रहा । अपनी दीदी का खयाल रखना । मै फिर आज ही चल दूँ ? बहुत तंग किया तुम लोगो को···

मानदा बोली—नही-नही, तंग-वंग क्या । लेकिन सवेरे ही जाना अच्छा होगा । तुम्हारी बात याद रहेगी ।

मीरा ने एक बार उन दोनों की तरफ देखा । उसके बाद बोली—मानदा, तेरी दलाली मुझसे सही नहीं जाती ! ये कायदे-कानून तू अपने घर चला । जा । आदमी पहचानकर बात करना नहीं जानती ?

मानदा भी माननेवाली औरत न थी । उसने भी एक बार दोनों को देखकर कहा—ओ, रात दोनों में गाढ़ा मेल हो चुका है शायद । अच्छा ही हुआ । इस लाईन में मालकिन-नौकर में भी मिताई होती है । मैं तो यह सोच रही थी, यह भी और दस जैसा एक है । इतना क्या पता था !

मीरा बिगड़ उठी—जा, दूर हो जा यहाँ से । जितनी बार भी निकाल बाहर करती हूँ, चोरी के लोभ से कुतिया की तरह दौड़ी आती

है !

अपने को पीकर मानदा उस समय वहाँ मे हट गई—वह भी तांती की वेटी होगी तो इसका बदला चुकाकर रहेगी !

होटल का वह छोकरा ट्रे में लाकर चाय रख गया। रात की जो मिठाइयाँ ताक पर धरी थीं, उन्हें हिरण ने उतारा। मानदा रसोई में चली गई।

चाय के प्याले की चुसकी लेते हुए हिरण ने पूछा—कल मेरे आने से पहले ही तुम क्यों निकल गई ?

मीरा ने कहा—जो लोग मुझे बुलाने आए थे, तुम्हारे सामने मैं उनके साथ चल देती, तो तुम्हारी इज्जत रहती ?

हँसकर हिरण बोला—वात मेरी समझ में न आई।

—इससे ज्यादा मैं समझा भी नहीं सकती।

हिरण ने कहा—अपने इस आचरण से अगर तुम्हें खुशी हुई हो, तो वही सबसे बड़ा लाभ है। मेरी इज्जत बचाने के ख़याल से मुझसे छिपाकर जाने में क्या मेरी इज्जत रह जाती है ?

मीरा बोली—तुम्हें क्या किसी भी हालत में अपमान नहीं मालूम होता ?

—बेशक होता है।

उत्तेजित होकर मीरा ने पूछा—आखिर कब ?

—जब मैं अपने को ठगता हूँ तो अपने ही आगे छोटा हो जाता हूँ।

मीरा ने चाय का घूँट लिया। कहा—इस नरककुँड को मैं और कब तक वरदाश्त करूँ ?

—जब तक जी चाहे। जिस दिन तुम्हें यह अच्छा न लगेगा, आप ही चल दोगी।

—तुम यहाँ क्यों आये ?

हिरण ने कहा—क्या ऐसा कुछ तय था कि अब मैं कभी तुम्हारे सामने न आऊँगा ?

मीरा चुप हो गई। मिठाइयों की एक प्लेट उसने हिरण की ओर बढ़ाई और एक अपनी ओर खींच ली। जरा देर बाद अपनी घुटन के कारण उसने पूछा—गिरस्ती के ये सरो-सामान, कपड़े-लत्ते तुम्हें लाने की क्या पड़ी थी ?

हिरण बोला—नैतिक दायित्व के नाते।

—नैतिक दायित्व !—मीरा बोली—लेकिन तुम तो मेरे संपूर्ण स्वामी नहीं हो ? हमारा पूरा व्याह तो हुआ नहीं !

हिरण हँस पड़ा। बोला—जिस हद तक मैं स्वामी हूँ, जितना भी अपना व्याह हुआ है, उसी हिसाब से दायित्व ढोता हूँ !

मीरा ने गंभीर होकर पूछा—मैं अगर संपूर्णतया तुम्हारी स्त्री होती, तो तुम मेरी इस गंदगी को बरदाश्त कर सकते ?

हिरण ने उसकी शक्ल की ओर देखा। कहा—गंदगी में अगर निर्मल आनंद मिले, तो फिर वह गंदगी नहीं रह जाती ! और वह गंदगी मनुष्यता को बरबाद नहीं करती।

—कह क्या रहे हो तुम ?—चीख उठी मीरा।

हिरण बोला—आज तक तुम यही कहती आई हो कि मुझसे तुम्हारी शादी नहीं हुई। क्या यह भी कहा है कभी कि मुझसे अपना कोई सम्बन्ध भी तुम कबूल नहीं करती हो ?

—इसके यह मानी थोड़े ही हैं कि तुम बार-बार मेरा घर सँभाल दो और वहीं बैठी मैं जीवन की सारी पवित्रता को पैरों से रौंदती रहूँ ? क्या तुम इससे ऊपर नहीं उठाओगे मुझे ?—मीरा को रुलाई छूटने लगी।

मीरा का रोना देखकर भी हिरण हँसा। शान्त स्वर में बोला—बात तुम्हें ऊपर उठा लेने की थी कि तुम्हारे बह जाने की ? सबको अलग हटाकर क्या तुमने कलकत्ते को अकेले नहीं चाहा ? क्या अपने पैरों खड़े होने की तुम्हारी प्रतिज्ञा नहीं थी ? अकेली जीवन बिताने की ?

मीरा उठ खड़ी हुई। हिरण चाय के बर्तनों को समेटकर बाहर रख आया। अंदर आते ही मीरा बोली—दरवाजे को बंद कर लो।

अंदर से दरवाजे के पल्ले सटाकर हिरण उसके पास जा खड़ा हुआ। मीरा ने कहा—आजीवन हम दोनों साथ रहे, लेकिन तुम सदा परिहास ही करते रहे—आखिर क्यों ?

हिरण ने एक बार इधर-उधर देख लिया। फिर कहा—दरवाजा खोलकर ही परिहास की बात होती, तो अच्छा न था ? मानदा कही यह न शुबहा कर बैठे कि हम दोनों दूध-मिसरी है !

मीरा आप ही गई और दरवाजे की छिटकनी चढ़ा आई। बिछावन पर बैठती हुई बोली—हम दोनो के गले ही में जहर उँड़ेला गया है, मानदा यही कैसे जानेगी ? लेकिन आज इतने जतन से तुमने जो मेरे लिए कमरे को सजाया, इसमें तुम्हारे मन की कोई बात नहीं है ? तुमने तो कभी भी मेरे लिए इतना नहीं किया है ?

हँसकर हिरण ने जवाब दिया—अगर तुम्हे खुश करने से हाजीपुर की जमीदारी नसीब हो जाए, तो क्या बेजा है ?

—जमीदारी पर तो तुम्हें कभी लोभ था नही ? फिर वह जमीदारी कभी लौटने की नही, इस सत्य को तुमसे ज्यादा और जानता ही कौन है ?—मीरा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—शुरू से ही तुमने और हुस्ना ने मुझे रोका क्यों नहीं ? मुझे तुम लोगों ने विमलाक्ष के यहाँ जाने ही क्यों दिया ? क्यों तुमने मुझे अपनी मुट्ठी में नहीं रखा ?

हिरण ने पूछा—आज शायद तुम इसका लेखा-जोखा लेने बैठी हो ?

मीरा बोली—नही, आज मैं तुमको जानना चाहती हूँ। तुम सख्ती से मुझे बताओ। बताओ की तुम्हारी महिमा कितनी है, कितना है तुम्हारा कौशल। अब तक जहाँ भी जिस पुरुष से मेरी भेंट हुई, सब मेरे पैरों पड़ने को तैयार, लेकिन तुम्हारे मन में मै कोई विकार क्यों नही पाती ? तुमने कभी कुछ चाहा क्यों नहीं ? इस जीवन में तुमने अच्छी बातें क्यों न कही ?

हिरण ने कहा—खूब कही ! मुझे जैसे प्राणों का डर ही नहीं ?

मीरा ने खींचकर उसे पास बिठाया। फिर बेसब्र-सी होकर बोली—

आज यह बताना ही पड़ेगा कि तुममें कितना परिहास है और कितनी आंतरिकता। मै क्यों अपने सारे अकाजों की गहराई में तुम्हारे ही हँसते चेहरे को देखा करती हूँ। मेरी खुशी के लिए जो लोग सर्वस्व मेरे पैरों पर धर देना चाहते हैं, मै उनकी जबान पर तुम्हारे नाम को क्यों नहीं सह सकती हूँ? .

अपनी हँसी जब्त करके हिरण बोला—इसका एक जवाब तो आया है, लेकिन तुम अभयदान दो, तो कहूँ।

मीरा ने अपना चेहरा ऊपर उठाया। उसके दोनों गालों पर आँसू की धारा वह चली थी। हिरण ने कहा—कहीं कितने ही जंतु क्यों न देखता फिरूँ, मगर घर की पालतू बिल्ली को नहीं भूल पाता!

—पालतू बिल्ली की क्या लोग ऐसी लानत करते हैं?

—क्यों नही? मगर विल्ली इतना जानती है कि यही जगह उसके लिए खतरों से खाली है। अगर यहाँ पड़ी रह सके तो जूठन तो नसीब हो जाएगी!

आँखें पोंछकर मीरा हँस पड़ी। फिर पूछा—तुम्हारी इस बात का मतलब? तुम, मैं और हुस्ना, सभी क्या एक ही स्नेह जतन में नहीं पले? क्या यह बात नही थी कि जायदाद का एक हिस्सा तुम्हें मिलेगा? पिता-जी जो मुझे तुम्हारे हाथों सौंपने के लिए मंडप में बैठे थे, वह क्या तमाशा था?

हिरण इस बार भी वेहया की तरह हँसा। वोला—गनीमत था कि वह एक तमाशा-सा ही हुआ, तुम्हारी जान बच गई!

—यानी?

—यानी शादी हो गई होती तो विमलाक्ष तुम्हारे लिए नौकरी नहीं जुटाता और दूसरे दस भले लोग तुम्हारे पैरों पर रुपये भी उँड़ेलने न आते! बीच में हम दोनों पति-पत्नी मुसीवत में पड़ते! आखिर तक बेल-घटिया या सलकिया के झोंपड़ों में तपेदिक से दोनों की जान जाती। उस-से तो यही बेहतर है।

—क्या बेहतर है ?—मीरा ने पूछा ।

हिरण ने कहा—यही, मेरी तरह कविता लिखते फिरना और तुम्हारी तरह कविता होकर फिरना ! इसमें सुख चाहे न हो, चैन तो है !

तिरछी निगाहों मीरा ने ताका—रिफ़ुजी लड़का-लड़की के लिए इसके सिवाय क्या और कोई चाहने की बात नही ?

हिरण ने पूछा—बसेरा बाँधना चाहती हो ?

मीरा बोली—बसेरा किसलिए बाँधूँ ?

—तो क्या पति को बाँधना चाहती हो ?

—तुमसे तो पति बड़ा नहीं है ! तुम्हारे पास मेरा अमृत था—लेकिन तुमने तो कुछ दिया नहीं !

हिरण ने कहा—यह गलती है तुम्हारी । अमृत वास्तव में अपने ही मन में होता है, उसके लिए आँखें बंद किए रहने की जरूरत है। मेरे पास कुछ भी नहीं—मैं तो निःस्व हूँ । जब तक बिल्कुल खाली न हो जाओ, अहंकार नही जाता ।

मीरा ने कहा—मुझमें क्या अहंकार था ?

—था । आज भी है । तुमने अपने को तुच्छ नहीं बनाया, अपने को खो नहीं सकी । असल में तुम इस बात को भूल नहीं सकी कि तुम ऐश्वर्यमयी राजकुमारी हो । तुमने आजादी चाही, नौकरी की, नशे के चक्कर में पड़ी, बड़ाई और स्तुति में अपने को भूलने की कोशिश की —यह सारा कुछ अहंकार का ही परिचायक है । तुम्हारे अंदर वह राजकुमारी बैठी है जिसका राज्य हाथ से निकल गया है । वह आशाविहीन है, चोट खाई हुई है । उसी के खयाल से तुममें यह नाकामयाबी का बोध है, यह जो व्यर्थता का कौतुक है, उसी का परिणाम है । तुम्हारे चूर हुए उस अहंकार से पैदा हुआ है आक्रोश—वही आक्रोश फन फैलाए तमाम दौड़ता फिर रहा है । और आखिर तक तुमने आप अपने पर ही चोट की ! तुम्हारा शरीर, तुम्हारा मन, तुम्हारा चरित्र—इनमें से आज तक कोई अपवित्र क्यों न हुआ, पता है ? इसलिए कि तुम्हारे

आभिजात्य का अहंकार आकाशचुंबी है—इसीलिए अपवित्रता वहुत हुआ तो तुम्हारे पाँवों को छू जाती है, ऊपर जाने की उसे हिम्मत नहीं होती। तुम्हारा यह अहंकार ही तुम्हारा रक्षा-कवच है।

मीरा के गालों पर फिर आँसू वह आया था। अपने एक हाथ से हिरण को लपेटकर वह बोली—मेरे सारे अहंकार को मिटाकर तुम मुझे यहाँ से ले चलो।

हिरण ने पूछा—कहाँ चलोगी ?

—जहाँ तुम ले चलोगे !

—अगर मैं कहूँ, यहीं रहो ?

मीरा ने कहा—यहाँ रहूँगी तो मेरा अहंकार दूर न होगा। मुझे इस नरककुंड से उवार लो, ऊँचे ले चलो, काफी ऊँचे, जहाँ तुम रहते हो ! वहाँ से तुम धकेल भी दोगे तो हर्ज न होगा—चूर-चूर हो जाऊँगी मैं ! यही चाहती हूँ।

अचानक हिरण ने अपनी आवाज धीमी कर ली। वोला—मीरा, मेरा वसेरा वहुत ऊँचे है, यह सही नहीं है। मेरा वसेरा इस जमीन पर है जिस पर सवके चरणों की धूल पड़ती है। मैं सवके पीछे, सवके पैरों के नीचे वहाँ हूँ जहाँ टूटे हुए दिलवाले, निराश-हताश, गए-वीते सर्वहारा लोग मुँह के वल पड़े है। मैं उसी तीर्थ का यात्री हूँ।

मीरा ने कहा—तो मुझे उन्हीं के बीच ले चलो।

शान्त और धीर स्वर में हिरण बोला—तुम्हारे पैरों में काँटे चुभेंगे, तलवे से लहू बहेगा, परेशानी से वहता रहेगा पसीना, कंठ और तालु सूख जाएँगे, भूख लगेगी तो दाने नसीब न होंगे, आसमान के सिवा सिर के ऊपर और कोई अवलंब न होगा—हो सकता है, लाख कोशिशों के बावजूद लाज छिपाने को कपड़े मयस्सर न हों—यह सव क्या झेल सकोगी तुम ?

रुँधे गले से मीरा ने जवाव दिया—ये जो लाखों-लाख बेघरबार के लोग हैं, वे क्या यह दुर्गत नहीं झेल रहे है ?

—मगर तुम राजकुमारी जो हो मीरा !

—मैं राजकुमारी बेशक हूँ, पर हूँ एक इन्सान की बेटी। मुझे अब राजपथ पर नहीं, मनुष्यों की राह पर ले चलो। लोभ गया नहीं कि मुझे राह दीखेगी, मोह छूटा नहीं कि मेरी नजर लौट आएगी। मुझे तुम उन लोगों में ले चलो, जिनमें अपार दुःख है, उससे भी बड़ा है उनका विक्षोभ—जहाँ दुःख-दर्द की कोई इंतहा नहीं।—हिरण के हाथों पर सिर टेककर मीरा फफक-फफककर रोने लगी।

हिरण उठ खड़ा हुआ। बोला—बेहतर। तो वही चलो। मगर पहले मुझे जगह ठीक कर लेने दो। कुछ दिन गौर करने का मौका दो।

मीरा के कंठ से कोई आवाज न निकली।

इक्कीस

दूर से एक आदमी दौड़ता हुआ हिरण के पास आया—ऐ जनाब, रुकिए जरा सुन लीजिए···

हिरण पीछे मुड़कर खड़ा हो गया। उस आदमी ने कहा—अच्छा हाँ, नाम क्या है तुम्हारा भैया ?

हिरण के कपड़े-लत्ते पर गौर करके उस आदमी ने तुरत संबोधन को 'आप' से 'तुम' पर उतार दिया। हिरण अब तक अनमना-सा राह चल रहा था। ठिठककर खड़ा हो गया और बोला—हिरण चक्रवर्ती।

—भैया, जरा डॉक्टरखाने तक चलो, बुला रहे है।

—मुझको ? कौन बुला रहा है ?

—वह, डॉक्टर विमलाक्ष—दवाखाने के सामने खड़े हैं—वहाँ।

सख्त जरूरत है।

हिरण उसके साथ-साथ गया। विमलाक्ष खड़-खड़ा उसका इंतजार कर रहा था। आगे बढ़कर उसने हिरण का स्वागत किया। कहा—अंदर से मैंने देखा, तुम रास्ते से चले जा रहे हो।

हिरण ने कहा—आपका चेम्बर शायद यही है? दूकान तो काफी बड़ी है।

—बडी क्या, मामूली-सी है। लेकिन जो भी है, सब तुम्हारे श्वशुर की कृपा का फल है। लेकिन एक बात है भाई हिरण, सदा मुझे विरोधी शक्तियों से ही लोहा लेना पड़ रहा है।—आओ, अपना दुखड़ा तो सिर्फ तुम्हें ही सुना सकता हूँ।

हिरण को साथ लेकर विमलाक्ष दुमजिले के उसी कमरे में गया। अंदर पहुँचकर एक कुरसी बढा दी। कहा—बैठो, अभी चाय आती है। तुम इस ढंग से चले जा रहे थे कि मैंने सोचा, घर लौटकर कोई कविता लिखने बैठोगे! और क्या हाल है? कब आये? हुस्ना आयी?

हिरण बोला—नहीं, वह हाजीपुर में है।

—अच्छा ही हुआ। अब उसे सुबुद्धि आए—अपने ही मुल्क में बैठी, खेतिहरों को उभाड़ती रहे, कम्यूनिज़्म फैलाए—इनसे अपने लोगों का कुछ आता-जाता नही। इसमें शक नहीं कि उस छोकरी में पार्ट्स बहुत थे। लेकिन सच बताऊँ, वह तुम्हारे सर से उतर जो गई, तो औरों जैसा मै भी खुश हुआ हूँ हिरण। खैर। अब जरा मेरी सामाजिक विपदा की कहानी सुनो…

हिरण ने मुस्कराकर कहा—आपकी सामाजिक विपदा कैसी?

कलाई की घड़ी देखकर विमलाक्ष बोला—मुझे समय बहुत कम है हिरण—नीचे बहुत-से मरीज मेरी राह देख रहे हैं। फिर भी तुमसे मेरा आग्रह है—तुम्हारी उदारता ही मुझे इस मुसीबत से बचा सकती है

हिरण जानता है कि मनुष्य की अहंबुद्धि पर गुदगुदी लगाने में विमलाक्ष सदा से कुशल है। पूछा—ऐसी क्या मुसीबत है आपकी?

छट्टू चाय की प्याली लाकर एक मेज पर रख गया। विमलाक्ष बोला—कुछ अन्यथा न सोचना भाई; मुसीवत आन पड़ी है तुम्हारी बीवी को लेकर, मेरा मतलब मीरा से है।

हिरण ने पूछा—माजरा क्या है?

विमलाक्ष ने पूछा—तुम कलकत्ते कब पहुँचे?

छलहीनता से हिरण ने झूठ कहा—कल आया, बड़ी रात गए!

—बहू-बाजार में मीरा ही के यहाँ तो उतरे हो?

—हाँ। लेकिन उनसे अभी तक मुलाकात नहीं हो सकी है। वे अपनी किसी मौसी के यहाँ गई है हंटाली। वहीं जा रहा था मैं।

संदेह करते हुए विमलाक्ष ने पूछा—तो सर्कुलर रोड के बजाए इधर से चले?

हिरण ने कहा—चाँदनी गया था—हार्डवेयर के मोल-भाव के लिए। काम-धन्धा, कुछ करना तो पड़ेगा?

विमलाक्ष ने फिर घड़ी में समय देखा। फिर बोला—तो तुम्हें खोलकर ही बताऊँ। तुम्हारे श्वशुर से मैंने बहुत रुपये लिये थे, इसमें कोई शक नहीं, उसकी कोई लिखा-पढ़ी जरूर नहीं है—लेकिन उसी कर्ज के चलते जीवन में मेरा ऐसा अपमान होगा, यह मैंने ख्वाब में भी न सोचा था!

—अपमान आपका किसने किया?

—तो सुनो। तुम्हें मालूम है, मीरा को मैंने एक अच्छी-सी नौकरी लगा दी थी। किसी रिफ़ुजी लड़की के लिए वह नौकरी पाना एक दुर्लभ सौभाग्य है! और तुम्हें इस बात का भी पता है कि हुस्ना के मार्फत मैंने दो बार मोटी रकम भी भेजी है। खैर। चाहे जिस कारण से भी हो, मुझसे उसे शुरू से ही नफरत रही है। उस नफरत को सहकर भी मुझसे जो बन सका, अपनी शक्ति-भर मैंने उसका भला ही करने की कोशिश की। अब अपनी गलती से उस नौकरी से वह हाथ धो बैठी और मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ गई है।

हिरण ने हँसकर नम्रता से कहा—मगर आपसे दुश्मनी करके वह पार क्यों पाने लगी ?

विमलाक्ष ने कहा—पार क्यों न पाएगी ? जब-तब दवाखाने में आकर हंगामा कर बैठती है। यहाँ आकर चीखती-चिल्लाती है, चीजें तोड़ती-फोड़ती है, या आलमारियों के काँच फोड़ती है। रास्ते के लोग जमा हो जाते है। शत्रुता और क्या होती है भाई।

हिरण स्थिर आँखों देखता रहा। विमलाक्ष करुण स्वर में कहता गया—मैं यहाँ डॉक्टर हूँ, मेरा नाम-गाम है, लोग मेरी इज्जत करते है—इससे सबकी मिट्टी पलीद हो रही है। रास्ते पर खड़ी होकर जब भद्दी-भद्दी गालियाँ देती है, तो जैसी भीड़ जम जाती है, पूछो मत ! मेरा सिर नीचा हो जाता है।

हिरण ने पूछा—आखिर वह कहना क्या चाहती है आपको ?

—उसका न सिर है, न पैर। भई हिरण, जो औरत हिस्टीरिया की शिकार है, उसके गाली-गलौज की भी कोई हद होती है ? शायद मैंने उसे कलकत्ते की काली सूरत के दर्शन कराए है, समाज की गंदगी दिखाई है ! भला बताओ, यह नादानी नहीं है ? रास्ते में खचाखच भीड़—सब मुझ पर कीचड़ उछालते है, कानाफूसी करते है, कोई-कोई दूकान पर ढेले मारते है। जानते ही हो, औरत कही खूबसूरत हुई, तो सब उसी की तरफ होकर पगले कुते की तरह काटने दौड़ते है ? औरतों में कोई दोष वे देख ही नही सकते।

हिरण ने पूछा—आपने पुलिस को क्यों नहीं बुलाया ?

—बेइज्जती के डर से ! कौन नही जानता, बाघ से भिड़ो तो घाव ही घाव ! फिर तुम्ही बताओ, मेरे रहते तुम्हारे श्वशुर के नाम को आँच आए; यह मै कैसे बरदाश्त करूँ ? यह हुज्जत हफ्ते में एक या दो बार लगी ही रहती है। अगर तुम इसका कोई उपाय न करोगे तो मुझे यहाँ का धंधा बटोरकर भागना ही पड़ेगा।

हिरण ने पूछा—आप कहें, मैं इसमें क्या कर सकता हूँ ?

आवाज धीमी करके विमलाक्ष ने कहा—मैं जानता हूँ, तुम्हारी स्त्री सचमुच ही चरित्रवान है। उसे हिस्टीरिया चाहे जितनी ही क्यों न होती हो, पर जीवन में किसी लोभ या मोह में पड़कर उसने कभी कोई बुराई नहीं की है, यह बात मैं अपने बच्चे के माथे पर हाथ रखकर कह सकता हूँ। चूँकि उसके जीवन में कहीं कोई धब्बा नहीं है, इसीलिए वह आम रास्ते पर खड़ी होकर गले फाड़-फाड़कर ऐसा कह सकती है। अब तुम आ गए हो, दया करके उसे यहाँ से कहीं ले जाओ।

हिरण ने कहा—लेकिन मेरी बात क्या कभी सुनती है वह ?

परेशान-सा होकर वह बोला—सुनेगी—हजार बार सुनेगी। आखिर तुम उसके पति हो, जरा सख्ती से उसे कहो। तुम्हारे लिए उसमे प्यार की जैसी भावना मैने देखी है, वैसी भावना जीवन में शायद ही किसी पुरुष को नसीब होती है। हाथ फैलाकर कभी तुम्हारे श्वशुर से मैंने बहुत ही रुपये लिये है, आज यदि मैं तुम्हारे कारोबार के लिए कुछ दूँ तो समझो मैं पुराना कर्ज ही अदा कर रहा हूँ। वचन दो मुझे।

हिरण कुछ क्षण क्या तो सोचता रहा। फिर बोला—खैर मैं वचन देता हूँ, अब कभी वह आपके यहाँ नही आएगी।

खुशी की बेताबी से हिरण का हाथ पकड़कर विमलाक्ष बोल उठा—मेरे जीवन में तुम्हारे जैसा विश्वासी आदमी मुझे दूसरा न मिला। मै समझता था, तुम पुरुप हो, एक पुरुष की मुसीबत को सहानुभूति के साथ समझोगे। मै तुम्हारे इस वचन के लिए सदा तुम्हारा एहसानमंद रहूँगा, भाई।

ऊपर की जेब से चेक-बुक निकालकर विमलाक्ष ने उस पर आँकडा लिखा और नीचे अपना हस्ताक्षर किया। चेक पर पन्द्रह हजार की रकम लिखी थी। हिरण ने एक बार उसकी तरफ देखा। ठीक उसी समय विमलाक्ष ने भी उसकी ओर देखा। एक पल। तुरत विमलाक्ष ने उस चेक को फाड़ फेंका और दूसरा लिखा। अबकी बार उसने पच्चीस हजार लिखा। हिरण को वह चेक देकर कहा—इम्पीरियल बैंक चले

जाओ, रुपये अभी ही मिल जाएँगे। मैं दवाखाने से टेलीफ़ोन किए देता हूँ।

हिरण में किसी तरह की चंचलता न दीखी। विमलाक्ष ने व्यग्र होकर फिर पूछा—तुम्हारा वायदा कभी टूटेगा तो नहीं हिरण ?

—नहीं।

कलाई की घड़ी देखकर विमलाक्ष उठ खड़ा हुआ और जो उसने कभी नहीं किया, किया। दीन-हीन हिरण को गले लगाकर वह बाहर निकल आया।

रास्ते पर आकर हिरण ने फिर पैदल चलना शुरू किया। इम्पीरियल बैंक की ओर बढ़ा। उसे कौतुक हुआ—आखिर काइयाँ विमलाक्ष ने अपनी बेवकूफी की कीमत इस तरह से चुकाई !

रुपया निकालने में दो घंटे लगे। बैंक से बाहर निकलकर उसने अपनी नब्ज टटोली। इड़ा, सुषुम्ना, पिंगला—तीनों ही नाड़ियाँ चंचल हो रही थीं। सो उसने एक टैक्सी बुलाई और बैठ गया। कहा—चलो।

टैक्सीवाले ने पूछा—कहाँ हैं सवारी ?

हिरण का रंग-रूप देखकर उसे यकीन ही न आया कि सवारी वह खुद ही है ! हाजीपुर के एकमात्र जमाई की जेब में पच्चीस हजार रुपये भी मजे में हो सकते हैं, उसे इस बात का यकीन दिलाया भी नहीं जा सकता था।

हिरण ने कहा—सवारी मैं ही हूँ। सामने की तरफ चलो।

हिरण ने मन-ही-मन तय किया, इसे सबक सिखाना चाहिए। दिन-भर चक्कर दिलाया जाए, भूख से छटपटाए, प्यास से छाती फटती रहे, मगर मिनट-भर को न छोड़ा जाए, और उन्हीं सड़कों से ले जाया जाए जो बदतर है ताकि गाड़ी गरम हो। रुपया चाहे जितना लगे। जब तक यह माफी न माँगे, तब तक छुटकारा नहीं। वह जरा सख्त होकर बैठा। गाड़ी चलती रही। मगर किस्मत की खूबी, जब वह पैदल चलता है तो राह में दर्जनों से हो जाती है भेंट और अब, जब वह मोटर पर है, तो गर्दन निकाल-निकालकर झाँकने पर भी पहचानी शक्ल पर नजर नहीं

पड़ती।

लालदिग्धी से चौरंगी, चौरंगी से बालीगज, वहाँ से मल्लिक बाजार—वहाँ से सीधे उत्तर। फिर श्याम बाजार, शोभा बाजार से होते हुए काशीपुर। काशीपुर से पूरब को। रेल की लाइन दिखाई पड रही थी। वहाँ से उल्टाडागा। पुल-पर-पुल पार करती हुई मोटर दौड़ रही थी। अचानक हिरण बोल उठा—ड्राइवर, रोको, रोको···

ब्रेक लगाकर गाड़ी रोकी गई। मीटर में चालीस रुपये आए। हिरण उसे पचास रुपये देकर उतर पड़ा। पीछे लोगों की भीड जमी थी,—उसी भीड़ में हिरण ने अत्रि को देखा।

वह भीड़ के अदर घुसा। तीन-चार आदमी अत्रि को मार-पीट रहे थे। उसके कपाल से लहू बह रहा था। कुछ देर खड़ा रहकर हिरण ने मामले को समझने की कोशिश की। सामने ही फूस और टट्टियों के घर में एक होटल था, अत्रि वही नौकर था। वर्तन-बासन माँजता। इधर-उधर के काम-काज करता। मौके-मौके पर पैसे चुराया करता था। आज चोरी पकड़ी गई थी। उस पर भी उसने हिमाकत की। कहा—चुराया है, अच्छा किया है। मेरी तनखाह के रुपये धर दो। साला!

अत्रि की आँखें सुर्ख हो रही थीं, जैसे रुद्र का कटाक्ष हों। आँखों में आँसू न थे। चेहरे पर रोष दमक रहा था। लाचार बदला लेने की इच्छा से वह काँप रहा था। भीड़ को हटाकर हिरण पास पहुँचा और उसने अत्रि का हाथ थाम लिया। हिरण का भी हाथ काँप रहा था।

अत्रि लाल आँखों मारनेवाले को देख रहा था। हिरण को देखे बिना ही वह बोल उठा—छोड़ दो मुझे···मैं देख लूँगा। खून कर दूँगा!

हिरण ने भर्राई आवाज में कहा—अत्रि···मैं हूँ, मैं···जमाई बाबू। बड़े भैया!

अत्रि ने सिर उठाया। कहा—बड़े भैया! तुम ठहरो, मैं इन्हें कत्ल कर दूँगा। इन सालों ने मुझे मारा है। मैं रात इनकी गर्दन उड़ा दूँगा।

हिरण ने कहा—खैर, उड़ा देना। मैं तेरे हथियार में धार चढ़ा

—ऐसा नहीं कहते भैया। तुझे शायद पता नहीं हो, मैं तेरे ही घर के अन्न से पला हूँ। और आज मैं तुझे कुछ खिलाना चाहूँ, तू नहीं खाएगा? चल मेरे साथ, मेरे भले भैया!

उसे उसने उठाया और पास ही एक मिठाई की दूकान में ले गया जो कुछ अच्छी थी। दोनों ने हाँथ-मुँह धोया। बैठकर मिठाई के लिए कहा। अत्रि की कँपकँपी कुछ कम हो आई थी। उसकी जलती हुई आँखें कुछ शान्त हो आई थीं।

खाते-खाते हिरण बोला—हमीद साहब की आँखों में धूल झोंककर हाजीपुर से तुम लोग खूब निकल आए, क्यों?

—मैं नहीं आना चाहता था—अब जाकर वह अपने स्वाभाविक लहजे में बोला,—लेकिन तुम्हारे और छोटी जीजी के डर से माँ भाग आई।

—हमसे कैसा डर?

अत्रि ने कहा—तुम्हारे रहने से शायद माँ की निंदा होती!

हिरण हँसा। पूछा—तेरी माँ कहाँ हैं?

—यहीं सुपारीबगान की बस्ती में।

—बस्ती में!—हिरण ने घूँट पीकर कहा—अपने यहाँ नहीं ले चलेगा मुझे? जरा चाची को देख आता।

परेशान होकर अत्रि बोला—तुम वहाँ मत जाना बड़े भैया!

—क्यों भला?

—तुम जाओगे तो मुझे शरम आएगी।

हिरण फिर हँसा। बोला—ऐसा भी कहता है कोई? दुनिया में कोई भी जगह मामूली नहीं होती।

अत्रि ने कुछ कहने की कोशिश की, पर वह किसी भी तरह से हिरण को समझाकर न कह सका। वह चुप रह गया।

हिरण ने पूछा—तुझे उन लोगों ने चोर क्यों बताया?

अत्रि बोला—मैंने पैसे चुराए थे।

हिरण खूब हँस पड़ा। ऐसा हँसा कि एक प्रकार की रुलाई से उसके गले में कौर अटक गया। निगलकर वह बोला—सच ही चुराए थे पैसे? क्यों?

हमारी तनखाह से वे बराबर पैसे काट लेते थे। मैं कोई गुनाह न भी करूँ, तो भी मुझ पर शक करते। इस तरह बार-बार पैसे ही काट लेंगे तो पूँजी कैसे जमा होगी?

हिरण ने पूछा—पूँजी जमा करके क्या करेगा तू?

अत्रि ने कहा—मैं छोटी जीजी के पास चला जाऊँगा।

—छोटी जीजी के पास! और कहीं हुस्ना यह कहे कि तू हिंदू है, तुझे पाकिस्तान में न रहने दूँगी, तब?

—ऐसा कहेगी वह?—अत्रि कलप उठा—फिर मैं रहूँगा कहाँ? फिर उसने मुझसे झूठ क्यो कहा—क्यों वह मेरी गर्दन पकड़कर रोई? क्यो···

और वह बिलख पड़ा।

दूकान के पैसे चुकाकर हिरण अत्रि के साथ चलने लगा। अपने कपड़े के छोर से उसकी आँखे पोंछते हुए पूछा—सच ही क्या तू अपनी छोटी जीजी के पास जाना चाहता है?

अत्रि ने कहा—हाँ, चाहता हूँ। मेरे पास पैसे होते तो मैं आज ही चला जाता।

—लेकिन तेरी माँ तुझे छोड़कर रह सकेंगी?

—खूब रहेगी। मैं निकल भागूँ तो उसकी जान में जान आए! वैसी माँ तो मर जाए—मैं अब नहीं लौटता···

हिरण ने कहा—छिः, ऐसा नही कहते भैया! खैर, माना तू वहाँ जायगा। मगर अकेले जायगा कैसे?

अत्रि ने कहा—देखना, मैं मजे में चला जाऊँगा। पिछली बार मैं तमाम राह देखता-चीन्हता आया हूँ। पास में टिकट और खाने के पैसे हों तो कोई फिक्र नहीं। ठीक पहुँच जाऊँगा।

उसकी पीठ ठोंककर हिरण बोला—अच्छा, तो तू जा। खर्च मैं दूंगा। अभी रुपये देता हूँ। लेकिन मान लो, हुस्ना से भेंट न हो सकी, तो तू मेरे पास लौट आयगा तो ?

अत्रि ने खुश होकर सम्मति जताई।

हिरण ने उसे सौ रुपये दिये। कहा—छुपाकर रख ले, कोई छीन न ले, अब चल, तेरे घर चलूं। जब इतनी दूर आ निकला हूँ, तो चाची से मिले बिना क्या लौटूं ?

हिरण अत्रि के साथ-साथ चला। सुपारीबगान ज्यादा दूर नहीं। जहाँ पर मारपीट हो रही थी, वहाँ से कुछ ही फासले पर दाएँ एक पतली-सी गली जाती है। आस-पास से औरत-मर्दों की तू-तू-मैं-मैं की आवाज आ रही थी। शाम को इस गली में रोशनी का कोई इंतजाम नहीं। बेला झुक आई थी। पनाले के किनारे कोई-कोई स्त्री बर्तन साफ कर रही थी।

एक घर के अंदर से आवाज आ रही थी—आखिर तुम्हीं क्यों जब-तब गाली-सराप करती रहती हो ? बच्चा ठहरा, माना बिना कहे ले लिए कुछ पैसे ! तो क्या ऐसा ही छोटा व्यवहार करोगी ? तुम उसकी माँ हो न ? दस महीने उसे पेट में रखा था ?

—तू चुप भी रह रिनी, झगड़ मत। माँ की ऐसी-वैसी, मौसी को तकलीफ ! यह सब कहनेवाली तू होती कौन है ?—सुमित्रा की रूखी-तीखी आवाज हिरण के कानों चुभी।

उसी दम दूसरी औरत कड़क उठी—क्यों नहीं कहूँगी—हजार बार कहूँगी मैं ! बच्चे का रहना खलता है, क्यों ? सभी कहते हैं, किसी की जुबान पर ताला नहीं डाला जा सकता। कौन नहीं जानता ?

—यह तेरी हिमाकत है रिनी, कहे देती हूँ। तेरा मैं खाती हूँ कि पहनती हूँ ? किराया देती है क्या तू ? लड़के को पका-चुकाकर खिलाती है और पास सुलाकर नेह जताती है, कह दूं सब ? कह दूं सबसे ? मुझे तो सभी जानते हैं और तुझे ?—कहते-कहते सुमित्रा बाहर निकल पड़ी

कि सामने मिल गया हिरण । सुमित्रा के दाएँ हाथ में कलईवाले कटोरे में चाय थी। दोनों आँखों के नीचे स्याही, बाल रूखे, सर्वांग का रंग जलकर जैसे काला हो गया हो । बोलीं—अरे, कब लौटे हिरण ?

हिरण ने गले को साफ किया । पर कुछ बोल न सका ।

—कैसे हो तुम लोग ? इस रास्ते को कैसे पहचाना ?

हिरण सिर्फ हँसा ।

सुमित्रा ने कहा—तुम्हारी हालत भी तो अच्छी नहीं देख रही हूँ हिरण । और जानते हो, सबके गुनाह को अपने माथे उठाकर मैं हो गई सबके नीचे । खैर । इसका बदला मैं वसूलूँगी ।—एक ही तो है लड़का, वह भी आदमी न बन सका, चोर निकल गया !

हिरण ने हँसकर कहा—बच्चा ही तो है !

—बच्चा ? ओछा है ओछा । जाने कहाँ का चोर-डकैत मेरे पेट में आया । ऐसे लड़के का मर जाना ही अच्छा है । इसका रहना क्या और जाना क्या । बात-बात में मुझे मारने को दौड़ता है, समझ गए हिरण ?

—मारने क्यों न दौड़े ?—लाल-पीला होकर ओट से निकलकर अत्रि सामने आया ।—तुमने कहा, तुम्हारा कोई कसूर नही ? इन सारी खुराफ़ातों की जड़ तो तुम्ही हो ! तुम्हारे ही कारण सब कष्ट पा रहे हैं । तुम्हारी शक्ल देखना भी पाप है !

—सुन लो हिरण, हरामजादे की बात सुन लो । सूअर के खानदान का है, इसीलिए माँ को पीटने दौड़ता है ! हँसिया कहाँ है, ठहर, आज तेरा काम ही तमाम किए देती हूँ । जरा छड़ी लेकर निकलो तो बेह्लिक ।

—आया ।—कहकर बेल्लिक बाबू छड़ी लिए निकल पड़े । अत्रि भी मुकाबले को तैयार हो गया । जोर से गरजा—साले, एक कदम भी बढ़ाया तो आज खून होकर रहेगा ।

सुमित्रा चीख उठी—कैसा रहा, मिल गया जवाब ? दूध पिलाकर साँप को पालो ! खानदानी दोष है उसका । लेकिन, तुम भी उसके दस रुपये दे क्यों नहीं देते हो ? जी चाहे, जहाँ चला जाए । मर गया कि

जिंदा है, मैं खोज भी नहीं करती कभी।

वेल्लिक बाबू ने आज हिरण की परवाह भी न की। बोले—रुपये क्यों दूँ ? सेंत में आते हैं ? ठीकरे है ? तुम्हारी गिरस्ती चलाऊँ, रोटी-कपड़े भी जुटाऊँ, मकान का किराया दूँ, ऊपर से इसका भी जेब-खर्च !

दूर से अत्रि ने धमकी देते हुए कहा—गाली-गलौज की तो तेरे गाल पर जूते लगाऊँगा, साला !

जल-भुनकर सुमित्रा अब वेल्लिक पर टूट पड़ी। कहा—यह मेरी गिरस्ती है कि तुम्हारा अड्डा है ? सारी तोहमत जो मेरे सिर थोप रहे हो तुम, तुम्हारा कसूर नहीं है ? आज तुम रुपयों का उलाहना देते हो, तुम्हारी वजह से मेरी आबरू-इज्जत नहीं गई ? एक बाहर के आदमी के सामने तुम युधिष्ठिर बन रहे हो ? हया-शरम नहीं ?

वेल्लिक बाबू बोले—एक रोज माँ-बेटे आकर मेरे कंधे पर लद गए थे, उस रोज इस बात का खयाल न था ?

बिगड़कर सुमित्रा ने कहा—तुम्हारे मन के अंदर भी लुटेरा बैठा था, लेकिन तुम सोने का हिरण बनकर मुझे भुलाने आए थे। सुन लिया तुमने हिरण ? तुम्हीं कहो किसी को घर रखने से रोटी-कपड़ा कौन नहीं देता ? आज नशा उतर गया है, इसीलिए शायद रुपये की गरमी दिखाने चले हो ? पता है, पाकिस्तान न बना होता तो तुम्हारे सात पुश्त को खरीद ले सकती थी मैं ?

—अच्छा तो है, लौट जाओ अपने पाकिस्तान को।

—बेशक जाऊँगी। सोचा था, इसी महीने जाऊँगी। अगले महीने लेकिन जरूर ही जाऊँगी।—सुमित्रा कहने लगी—इज्जत गई, बहुत होगा तो वहाँ जात भी जाएगी। बस तो ? मैं जरूर जाऊँगी। मगर यह मत भूलो कि तुमसे बदला चुकाकर ही जाऊँगी मैं। हिरण, अगर पास में हों तो मुझे कुछ रुपये तो दे जाना। दुमकटी कुतिया के काटे घुल-घुलकर मरने से एकबारगी बाघ के पेट में जाना ही अच्छा है।

हिरण चुपचाप हँसा। नोटों की एक गड्डी सुमित्रा के हाथों देकर

उसने उनके पाँव छुए और कहा—तो आज मुझे आज्ञा दीजिए चाची।

वेल्लिक बाबू ने टेढ़ी निगाहों एक बार दोनों को देखा। फिर कहा —रुपये इस तरह मैंने भी बहुत बार दिये है हिरण बाबू।

हिरण ने नरम भाव से कहा—ये रुपये उन्हीं के है, मेरे नही। और आपने तो अपनी बुरी नीयत पूरी करने के लिए रुपये दिये है वेणु बाबू? रुपये देकर किसी को ऊँचे उठाने में समय लगता है, गिराने में जरा भी देर नहीं होती। आप इतना वेशक जानते होगे कि उपयोग न आता हो तो रुपया वड़ी वुरी चीज हो उठता है।

सुमित्रा ने कहा—तुम इस कांटों की क्यारी में मुक्ता मत बिखेरो हिरण, अपने काम में निकलो। लेकिन अपने भाई को समझा जाओ कि वह मेरे घर में अब पैर न रखे।

हिरण ने पूछा—फिर वह जाएगा कहाँ चाची?

—भाड़ में जाय! ऐसे कपूत की मौत भी हो तो मुझे तकलीफ न होगी! यह काँटा दूर हो तो मैं चैन की साँस लूँ।

दूर से अत्रि ने कहा—भैया, चले जाओ। यह माँ नही, चुड़ैल है। जहन्नुम में जाय ऐसी माँ। लेकिन सारा कसूर इस कमीने का है।

हिरण उस मुहल्ले की जहरीली आबहवा से धीरे-धीरे निकल आया।

बेल्लिक ने पुकारकर कहा—अबे सूअर के बच्चे, जरा सामने तो आ तू, देखूँ मैं?

अचानक एक ढेला जोर से आकर बेल्लिक की नाक पर लगा। आँखों-तले अँधेरा छा गया और दूसरे ही क्षण चीखकर वह जमीन पर लुढक गया। पास ही एक किशोर कंठ की खिलखिलाहट हुई और हजरत अत्रि दौड़ते हुए बस्ती से बाहर की तरफ भाग चले।

बस्ती में तब तक चारों ओर एक शोर-सा मच गया। हिरण ने पीछे से उसे बहुतेरा बुलाया, मगर अब वह संसार के किसी आदमी की परवाह नहीं करता, किसी पर उसे श्रद्धा नही रह गई। सौ गलियों से

होकर वह कहाँ जो ओझल हो गया पल में, पता न चला।

हिरण चौड़े रास्ते से चलने लगा। देश-विभाजन में जो दयनीय अदूरदर्शिता हुई है, अत्रि उसी का मारा है; उसने समाज से चोट खाई है, माँ के नेह से वंचित हुआ है—लोगों से प्रतारित हुआ है। इसीलिए वह रोता नहीं—बगावत करता है। उसका जमा हुआ क्रोध, असंतोष और पीड़ा इसीलिए खून बहाने के आनन्द से उन्मत्त हो उठती है।

हुस्ना ने एक दिन कानों-कान कहा था—तू इस बात का यकीन कर जमाई, यह युग मर्दों की प्रधानता का है। दो राष्ट्रों में जिन लोगों ने भेद की रेखा खींची, उन्ही लोगों ने औरतों का गला घोंट दिया। इस युग में सबसे ज्यादा गँवाया औरतों ने ही। बड़े-बड़े जतन, परिश्रम और स्वार्थ त्यागकर औरतों ने घर बसाया था, खुशी का बसेरा बाँधा था, एक श्रृंखला-विशेष की सृष्टि की थी, यहाँ तक कि उन्होंने अपनी मीठी बातों से सदा विप्लवी पुरुषों को घर में जंजीरों से बाँध रखा था। स्त्रियों के स्नेह का थोड़ा-सा प्रसाद पाने के लिए बर्बर पुरुषों ने जमीन गोड़कर फसल पैदा की, जंगलों का सफाया कर घर बनाया, जहाज से समुद्र की गोद में निकले, आसमान में उड़े, नई सभ्यता कायम की। अबोध पुरुष समझ नहीं सके कि औरतें उनसे मेहनत भी कराती हैं और उन्ही से साहित्य में अपने ऊपर वंदना के गीत लिखाती है! जो भी हो, वही बर्बर आज जंजीर तोड़कर बाहर क्यों निकले हैं, जानता है? सभ्यता के अंतर्लोक में औरतों की प्रधानता देख उन्हें खौफ हो आया, मनुष्य के इस विशाल समाज में उनका एकच्छत्र साम्राज्य देख उन्हें रश्क हुआ—इसीलिए, तू तमाम निगाह फैलाकर देख, तमाम राष्ट्रों में भेद-भाव, उलट-पुलट और बैर-फूट के बीच वह दानव औरतों का घर उजाड़ने के लिए अग्रसर हुआ है। आज जब लड़ाई छिड़ती है तो सैनिक तो सुरक्षित रहते हैं—वे नाश करते हैं नारी और बच्चों का। वे स्त्रियों

का घर उजाड़ते हैं, बच्चों की खूराक चौपट करते हैं और न्याय, नीति और अमन-चैन को बरबाद करते हैं। अभी उस रोज अपने यहाँ भी उन दानवों के हमले से औरतों की दुनिया उजड़ी है। राष्ट्र-विभाजन के नाम पर उन्होंने नारी की जीवन-साधना को मटियामेट कर दिया, आनंद की दुनिया को उजाड़ दिया, लाखों नारियों की जानें लीं, हजारों-हजार माताओं के वात्सल्य को धूल में मिलाकर उन्होंने तालियाँ पीटीं। आज जब देश-भर में उन बर्बरों के रवैये से नारी-जाति की छाती धड़क रही है, तब मैं घर बैठी रह नहीं सकती। मैं तलवार चाहती हूँ, चमकती हुई नंगी तलवार। मेरे हाथ न काँपें, बुद्धि न भ्रष्ट हो, जिसमें ज्ञान और आदर्श की जोत अँधेरे में मुझे राह दिखाकर ले चले।

बहू-बाजार की गलीवाले मकान में जब हिरण ऊपर पहुँचा, तो एकबारगी साँझ न हुई थी। अंदर जाकर उसने आप ही बत्ती जलाई। जेब में पच्चीस हजार रुपये थे, उनमें से थोड़ा-से ही खर्च हुए थे। चाहता तो कोई भी मार-पीटकर उससे ये रुपये छीन लेता, पर लिया नहीं किसी ने। कोई लेता, तो वह रोकता नहीं—जेब बल्कि हलकी हो जाती। पॉकेट को उसने कुरते के अंदर कपड़े से बाँध रखा था। यहाँ सारे रुपये निकालकर उसने टिन के बक्स में डाल दिए।

इधर इनका रहन-सहन जैसा हो रहा था उससे मानदा कुछ जब्त-सी रह रही थी। दरवाजे पर हिरण को देखते ही सामने आकर उसने पूछा—चाय के लिए पानी रख दूँ? अँगीठी खाली है।

—रख दो। अच्छा मानदा, आज तो तमाम जैसे झकमका रहा है। बात क्या है? तुम्हारे दामाद आनेवाले हैं क्या?

हँसकर वह बोली—आज लछमी के हाथ जो लग गए हैं! सुबह तुम निकले और इधर दीदी कमर बाँधकर तैयार हो गई, अपने हाथ से तमाम झाड़ू लगाया, छत की सफाई की, सारे कपड़े फींचे—मुझे कुछ भी नहीं करने दिया। मैंने कहा—अरे बाबा, बड़े घर की बेटी हो, इतनी मेहनत से कहीं बीमार-वीमार पड़ जाओ। मगर मुझे डाँट-

कर वहाँ से हटा दिया। नीचे के कमरे में गयी, वहाँ की सारी गदगी साफ की। उसके बाद नहा-धोकर बाल सँवारने बैठी। बिलकुल बदल गई। तुम नही आते भैया तो इसे बचा पाना ही कठिन होता, यह मैं बेटे की सौगंद खाकर कह सकती हूँ।

हिरण कौतुक से हँस रहा था। चूल्हे पर चाय का पानी रखकर मानदा तुरत लौटी। बोली—यह तो कुशल गृहिणी है भैया। दया-माया, मीठी बोली, चुपचाप काम-काज करना, तमाम दिन हँसमुख—पति के लौटने का इंतजार—दीदी की यह शक्ल तो मैंने कभी नही देखी थी। यह तो लछमी है—अन्नपूर्णा !

हिरण अबकी जोर से हँस पड़ा।

मानदा बोली—मैं क्या समझ रही हूँ भैया कि दोष सारा तुम्हारा है ! अब तक तुमने पास खीचने की कभी कोशिश ही नहीं की—इसीलिए उचटी-उचटी थी। स्वामी की गोद में जगह मिले तो स्त्रियों के लिए सल्तनत की भी कोई कीमत नही ! ऐसी रूपवती लछमी को तुमने कैसे पैरों से ठुकराया था भला !

हिरण ने कहा—माथे के मणि को पैरों से ठुकराऊँ, कहती क्या हो तुम ?

—यह रही बात ! सुनकर जी जुड़ा गया। मै बताऊं, इस तखत को तो अब दो बदल, एक बड़ी-सी खाट मँगवा लो गद्दीवाली। दीदीजी तुम्हें चौकी पर सुलाएगी और आप फर्श पर सोएगी, कैसा तो लगता है !

सिर खुजाकर हिरण बोला—लेकिन मानदा···

मानदा बोली—खैर, वही सही। बत्ती गुल करके थोड़ी देर के लिए दोनों न हो तो चौकी पर ही सोओ—रात-भर का तो झमेला नहीं। उस पर एक का तो पूरा ही नहीं पड़ता, तो दो-दो आदमी !

हिरण चौंका। शान्त दृष्टि से उसने मानदा को देखा। फिर बोला—अपनी दीदीजी को तुम आज भी नही पहचान सकीं हो मानदा।—वह

कमरे से बाहर चला गया ।

मुँह-हाथ धोकर वह निश्चित होकर बैठा । मानदा चाय का प्याला ले आई । हिरण ने कहा—और तुम्हारी दीदीजी की चाय ? उन्हें बुला लो रसोई से ?

मानदा बोली—वह तो है नही ।

—नही हैं ? कहाँ गई ?

—रसोई बनाकर ही बारह बजे के करीब निकली है । कह गई—मैं अभी आती हूँ । तुम्हारे भैयाजी तालतल्ला डाकखाना गये हैं । उन्हें साथ लिए लौटती हूँ ।

हिरण ने पूछा—खा-पीकर गई हैं ?

जीभ काटकर वह बोली—भला ऐसा भी कर सकती हैं ? तुम्हें खिलाए बिना वह पानी की बूँद भी जबान पर नहीं रखती । भेंट हुई क्या ?

चाय पीते हुए हिरण बोला—नही तो ।

—तो फिर गयी कहाँ ? कलकत्ता है, हरदम सवारी-शिकारी की भीड़, मुझे तो भैया डर लगता रहता है । सकुशल लौट आए तो चैन मिले । मैं दिन-भर तुम लोगों की राह देखती रही ।

अपनी आँखों में मानदा ऐसी एक आंतरिकता भर लाई कि देखकर हँसी रोके न रुके । मीरा तो समय से लौट ही आएगी, लेकिन मानदा से बातें करने के जो कुछ दुर्लभ क्षण मिले है, उन्हें नहीं गँवाया जा सकता ।

अपनी हँसी जब्त करके हिरण ने बीच में पूछा—अच्छा मानदा, तुम्हारी दीदीजी तुम्हें रात-दिन चोर क्यों कहा करती है ?

मानदा बोली—दिन-रात मुझ पर नजर रखती है और कहेगी नहीं ? भला सती नारी के मुँह से कभी गलत बात निकल सकती है ?

—ऐं ! क्या कहा ?

मानदा बोली—गरीब-गुरबा हूँ—हाथ साफ करने की तो आदत

जरूरी है। दूध, मछली, पान—आखिर अपना भी तो आदमी का ही शरीर है।

हिरण ने पूछा—तो तुम्हें रुपये भी चुराने पड़ते हैं?

—अरे भैया, मौका मिले तो आदमी खेत चुराते है, मैं क्या हूँ! पाँच रुपये लेकर गयी बाजार, उसमें से अठन्नी अगर रख ली तो फिर आधा-पेट खाने की नौबत क्यों? तुम्हीं बताओ?

हिरण ने कहा—तुम्हारी दीदीजी कहती थी, तुम्हारी निगाह गिरस्ती के सामानों पर भी पड़ती है?

मानदा बोली—ठीक ही कहा है। लोटा-थाली पड़ी मिल जाती है, यदाकदा दो-एक पुराने कपड़े। दो-चार रुपये मिल जाते है, कुछ सहारा हो जाता है।

—लेकिन इसी पर कही थाना-पुलिस हो?

—थाना-पुलिस! उसका कुछ नहीं। क्या उनके घर दाई-नौकर नहीं होते? रसोई करते वक्त वे क्या दो-एक बड़े चट नही कर जाते हैं? तुम कुछ समझते-बूझते नहीं भैया!

हिरण ने कहा—दुरुस्त कह रही हो। यही तो खामी है मुझमें। अच्छा यह तो कहो, तुम घर की जमा-जथा पर भी हाथ साफ करती हो?

मानदा बोली—भैया, बार-बार चोरी की यों न कहो। इससे मेरी इज्जत में बट्टा लगता है। मौके-बेमौके रुपया-अठन्नी ले लेना क्या चोरी है? नल पर अँगूठी कि करनफूल पड़ा मिल जाए तो वह चोरी है? सामने बहता है दरिया, बेहिसाब फिजूलखर्ची, उसमें से कुछ मेरे काम आ जाए, तो उसे चोरी कहोगे? तो सुनो वाकया, एक बार एक आदमी मुझे पकड़कर थाने पर ले गया। शायद मैंने उसकी घड़ी चुराई थी। मैंने जाकर कहा—आखिर लूँ क्यों न? तुम्हें घड़ियों की क्या कमी पड़ी है। मेरा बहिन-बेटा जिद ले बैठा है—घड़ी चाहिए। तुम लोगों के घर से न लूँ तो लाऊँ कहाँ से?

—थानेवालों ने क्या कहा ?

—वे हँसते-हँसते बेहाल हो गए। ले जानेवाला अपना-सा मुँह लिए रह गया। और एक बार का किस्सा सुन लो•••

मानदा और कुछ कहने जा रही थी कि जीने पर पैरों की आहट हुई। वह रसोई में चली गई झटपट। इतने में गुनगुनाती हुई मीरा ऊपर आयी। आनंद से उसका चेहरा आज मानों खिल रहा था। उसके हाथ से कागज में बँधा एक बंडल लेकर हिरण ने बिस्तर पर रख दिया। मीरा ने मुस्काकर उसकी ठुड्डी हिला दी।

—बडल में यह इतना क्या ले आई तो ?—हिरण ने पूछा।

मीरा ने जूते नही उतारे। आईने के सामने खड़ी होकर बाल सँवारती हुई बोली—साड़ी-ब्लाउज के सिवाए भी औरतों को और पोशाक लगती है, उन्हें छिपाकर ही खरीदना पड़ता है। तुम तमाम दिन कहाँ रहे ?

हिरण ने कहा—तुम पहले सुस्ता लो जरा, फिर वताता हूँ।

मीरा बोली—नही, उसके पहले। इतनी मुसीबतें झेलने के बाद तो गिरस्ती बसाई। मुझे डर लगा, छोड़ तो नही भागे तुम !

हिरण ने कहा—क्या खूब कही ! अरे, जो बंधन में आकर जी जाए, उसके भागने की बात तुम्हारे मन में कैसे आई ?

मीरा ने गुनगुनाकर गाना शुरू कर दिया। ऊँची एड़ी के जूते से ताल देने लगी, मानों उसके पाँवों में किसी अंग्रेजी नाच का आवेश आ गया; क्या तो सोचकर उसने दाएँ हाथ से चुटकी बजाई और उसके वाद बाहर निकल गई। हिरण अवाक् उसकी ओर देखने लगा। यह कल रातवाली मीरा न थी, सुबहवाली भी नहीं, यह बिलकुल दूसरी ही मीरा थी।

मीरा की आवाज रसोई से सुनी गई, इधर-उधर से उसकी गुनगुनाहट आती रही। उसके बाद फिर वह कमरे में आयी और बिस्तर पर लुढ़क गई। लेटी-लेटी ही उसने जूते के फीते ढीले किए और कुछ इस

ढंग से पैरों का झटका दिया कि जूते जाने किधर को जा गिरे।

हिरण हँसा। बोला—पेट में आग लगी हो तो ये हरकतें खेलती नहीं। आखिर तुम दिन-भर विना खाये रही ?

मीरा आँखें बंद किए थी ! सिर उठाकर बोली—खाती क्यों नही ? कलकत्ते में होटलों की कमी पड़ी है ! तुम ही बल्कि यों ही रह गए।

—मैं ? क्यों, कलकत्ते में हलवाई की दूकान नही है ?

मीरा जोरों से हँस पड़ी।

मुँह फेरकर हिरण ने कहा—मुँह से बू कैसी आ रही है ?

मीरा बुत बन गई। हिरण ने कहा—फिर शायद तुमने अपना ऐटम बम खाया है ?

मीरा बोली—नही, उसमें बू होती ही नही।

—फिर ?

मीरा ने जवाब न दिया। हिरण ने हँसकर कहा—लेकिन कलकत्ते में होटल का जमघट तो इतनी जल्दी नहीं टूटता। कुछ देर और रुकने को लोगों ने तंग नहीं किया तुम्हें ?

मीरा ने कहा—लोगों ने तो रुकने के लिए पैर तक पकड़ा। और भी कुछ सुनना चाहते हो ?

हिरण ने कहा—तुम्हारी प्रतिज्ञा लेकिन आज टूट गई।

अचानक मीरा बिछावन पर से छिटक-सी पड़ी। कहा—अरे, नीचे टैक्सी खड़ी है, भूल ही गई ! दसेक रुपये तो देना।

हिरण ने रुपये निकाले। कहा—तुम बैठो। मैं चुका आता हूँ।

—नहीं-नहीं। मुझे दो। जरूरत है।—एक तरह से रुपये उसके हाथ से छीनकर वह सीढ़ियों से नीचे उतर गई।

ऊपर से साफ जाना गया, दो मिनट में गाड़ी स्टार्ट हुई और गली से बाहर निकल गई। लेकिन जिस तेजी से मीरा नीचे उतरी थी, उसी तेजी से वह लौटी नहीं। तीन-चार मिनट निकल गए तो हिरण को परेशानी हुई। नीचे और कोई घर क्या, नल के सिवाय कहीं खड़े होने

तक की जगह नहीं। वह उद्ग्रीव होकर बैठा रहा।

कोई पंद्रह मिनट बाद नीचे से काँच के टूटने की आवाज हुई। हिरण चौंक उठा। मानदा रसोई से दौड़ी आई। हिरण कमरे से निकलकर नीचे उतरने लगा। तब तक मीरा आ रही थी। मानदा ने झाँककर देखा और अपने काम में जा लगी।

मीरा ऊपर आयी। माथे से पानी चू रहा था, कपड़े गीले। उसी हालत में वह कमरे में आयी। हिरण ने तौलिया उठाकर उसकी तरफ बढ़ाया। फिर धीर स्वर में पूछा—नीचे कैसी आवाज हुई?

मीरा ने मुँह फेरा। हिरण की तरफ जरा देर देखा। उसके बाद थकी-सी आवाज में बोली—उतनी बड़ी प्रतिज्ञा तोड़ने से उतनी ही आवाज होना जरूरी है।

मीरा किसी चीज को जैसे पकड़ नही पा रही थी। हिरण उसे एक अच्छी-सी साड़ी देकर बत्ती ब्रता करके बाहर चला गया।

पाँच मिंनट के बाद भी जब मीरा की कोई आवाज न मिली तो हिरण अंदर आया। मीरा ठीक उसी तरह दीवाल से टिकी खड़ी थी। हिरण कौतूहल से हँस पड़ा। बोला—यह क्या, एकबारगी तांत्रिक-वाली साधना! मैं अगर पैरों तले सो पड़ूँ तो देखकर तुरत लोग कहेंगे—महाकाली ने शिव की छाती पर पैर रखकर अपनी जीभ काटी है! हुस्ना को बुलाकर यह दृश्य दिखाने को जी चाहता है।

लड़खड़ाती आवाज में मीरा बोली—क्या कह रहे हो?

हिरण ने हँसकर कहा—कुछ नहीं। लेकिन गीले कपड़ों इस तरह कब तक खड़ी रहोगी? न बने तो मानदा को बुला दूँ?

हिरण फिर बाहर चला गया। थोडी देर में मीरा ने स्विच टटोल-कर खुद ही बत्ती जलाई। बीच में मानदा आयी। गीले कपड़े-लत्ते उठा ले गई।

मीरा चौकी पर बैठ गई थी। घर की हवा कैसी तो हो रही थी। मानदा ने यह समझा और चुपचाप लौट गई। चूँ भी न किया। हिरण

अंदर आया। बोला—बक्स में तुम्हारे रुपये बहुत हो गए हैं। कल बैंक में रख आऊँगा, क्यो ?

मीरा ने पूछा—उसी मे क्या विमलाक्ष का भी रुपया है ?

हिरण चौक उठा। उसे विमलाक्ष को दिया अपना वचन याद आया। मीठे से पूछा—तुमसे उसकी मुलाकात हुई ?

मीरा हँसी। बोली—साँझ तक उसी के साथ तो थी !

हिरण चुप। कुछ क्षण बाद बोला—मीरा, जीवन का मैं कोई भी रहस्य न समझ सका। सारा कुछ कल्पना से परे है, अगम्य !

मीरा बिस्तर पर करवट हो गई। धीरे से कहा—कुसूर लेकिन उसका नहीं, मेरा है। लोभी गुनहगार नही, गुनहगार वह है जो लोभी को गुंजायश देता है। आज दोपहर को मैं उसी को खीच ले गई थी अंग्रेजी होटल में। उसी के साथ सारा दिन रही।

हिरण सिर झुकाए चुप बैठा रहा।

तकिए में मुँह गाड़कर मीरा साँस-उसाँस लेती-छोड़ती लड़खड़ाकर बोली—उसी ने सबसे पहले आधुनिक जीवन की सही शक्ल से पहचान कराई है, चंचल नारियों की आजादी की राह दिखाई है—वह क्या मेरा बंधु नहीं है ? उसने मुझसे जो उम्मीद की थी, उसे न मिला। सिर्फ खतों का बंडल लेकर ही उसने किनाराकशी की। फिर भी उससे मुझे सीखने को बहुत मिला है। आज उसे दिन-भर साथ में पाकर बहुत अच्छा लगा। आज का सारा खर्च मैंने ही उठाया।

हिरण चुप।

मीरा ने कहा—होटल में उसके आगे मैं रोई जरूर, पर माफी भी माँग ली। माफी माँगने में मेरी ज़ुबान हिचकी नहीं।

अब हिरण ने सिर उठाया। कहीं जैसे डूब गया था, निकला। धीमे से पूछा—तुमसे फिर उसकी कब भेंट होगी ?

अचानक मीरा उठ बैठी—उससे फिर मेरी क्यों भेट होगी ? ऐसा सवाल क्यों ?

—इसलिए कि तब ये रुपये उसे लौटा देते ?

—ये रुपये उसने कर्ज के दिये हैं, दान नही ।

हिरण ने कहा—दान भी नही, उसने यह मुझे घूस दिया है। मैं उसे वचन दे आया हूँ कि तुमसे अब उसकी कभी भेंट न होगी। खैर। भेंट हो तो ये रुपये उसे दे देना।

मीरा बोली—तुम्हें पता है, मुझसे अब कभी भी उसकी भेंट न होगी ?

—क्यों ?

—आज उसके सामने यही प्रतिज्ञा कर आई हूँ और यह प्रतिज्ञा कभी टूटने की नहीं।

मीरा की जबान लटपटा रही थी, लटपटा रही थीं उसकी आँखें। हिरण उसकी तरफ देखकर जरा हँसा जैसा कि वह हँसता रहा है।

मीरा ने पूछा—तुम्हें मेरी प्रतिज्ञा का यकीन नहीं ?

—अपनी प्रतिज्ञा का तुम्हें आप ही जो यकीन नही !

—कैसे हो यकीन ? आप अपने पर क्या मुझे वश है ? तुम मेरी बात का क्यों नहीं यकीन करते ?—मीरा उठ बैठी—बार-बार हँसकर तुम मेरी तौहीन क्यों करते हो ?

हिरण ने व्यस्त होकर कहा—मीरा ! मैंने तो सिर्फ़ यह कहा था कि जो तुम रख नहीं सकती, वैसी बात किसी को न ही दो सो अच्छा। जो तुम्हें नहीं पहचानते, वे तुमको हीन समझेंगे।

मीरा गरज उठी—किसने कहा कि मैं नही रख सकूँगी ? तुमने क्या कभी मेरे मन को टटोला है ? मेरा हाथ पकड़कर तुमने मुझे उठाने की भी कोशिश की है कभी ? कभी मदद की है ? कभी अधिकार के साथ हाथ पकड़ा है ?

शान्त स्वर में हिरण बोला—नहीं, नहीं पकड़ा। मगर मैं पूछता हूँ आज तुम फिर यह हरकत क्यों करने गई ? दिल का दर्द कही बढ़ जाए ?

मीरा की आँखों में आँसू भर आए थे। बोली—तुमने मुझे रोककर

क्यों नहीं रखा ?

—रोककर ? कैसे आखिर ? बंधन तुम मानने क्यों लगी ?

—बंधन ढीला हो जाने पर किस चीज से बाँधा जाता है, नहीं जानते हो ?

हिरण चुप था। मीरा रुलाई के आवेग से काँप रही थी। हिरण जानता है, यह रोना बेबसी का है। यह रोना उसी का है जो खड़े होने की बार-बार कोशिश करके गिर-गिर पड़ता है, जिसमें आत्मविश्वास पर टिकने की शक्ति नहीं, जो हर कदम पर विश्वास को खो बैठता है। उन आँसुओं में एक बात और थी कि हिरण आदमी नहीं बन सका, मर्द नहीं बन सका, वह कवि बना है। हिरण में वह आदमी ही नहीं है जो शासन करता है, अधिकार मजबूत करता है, शक्ति दिखाता है, मसलों का हल निकालता है। हिरण में व्यक्तित्व नहीं, अभिव्यक्ति है। उसमें आत्मस्वतंत्रता नहीं है, है आत्मविलोप। अभिज्ञता नहीं, अभिज्ञान है। प्रेम की दारुण चोट से वह रुलाता नहीं, जलाता नहीं, इसलिए कि उसमें संभोग नहीं, उपभोग है। वह कवि है, वह सांत्वना में, अभिव्यंजना में ही खुश है।

हिरण बाहर आ खड़ा हुआ। रात काफी हो चुकी थी। बाहर सरदी पड़ रही थी। सुदी का नया चाँद जाने कब नीचे को लुढ़क पड़ा था। अँधेरे आसमान में सरद कुहरे के बीच सितारे टिमटिमा रहे थे।

कमरे में मीरा जाने क्या तो बुदबुदा रही थी। सहज भाषा नहीं थी, लेकिन जो कह रही थी, वह साफ था। उसमें ज्वालामुखी की प्रखर यंत्रणा है। अन्तर की यह ज्वाला उसकी जमाने की है, बाहर-बाहर शान्त। अन्दर-अन्दर वह चोट खाती और बाहर आप अपने पर चोट करती।

हिरण क्या तो सोच रहा था कि कमरे से आवाज आई। मीरा परेशान-सी कमरे का चक्कर काट रही थी। हिरण दरवाजे पर आकर खड़ा हुआ। मीरा ने बिस्तर को उठाकर फेंक दिया। बक्से में बहुत सारी चीजें थीं। सबको निकालकर बिखेर दिया। आईने को उठाकर फर्श

पर पटक दिया। जो भी सामने मिल गया, तहस-नहस कर दिया। उन्मादिनी-सी वह इसी तरह चीजों को बरबाद करती रही।

कमरे की खिड़की खुली थी। बाहर से कोई न देखे, हिरण ने इसलिए उसे बंद कर दिया। फिर मीरा की पीठ पर हाथ रखकर कहा—अपने को चूर करके खुश होगी ?

मीरा लौ-सी जल रही थी। बोली—हाँ, हूँगी।

वह आपे में न रही। तेल की एक शीशी उसे मिल गई। उसी से उसने भरपूर ताकत से हिरण को दे मारा। हिरण के कपाल से लहू का झरना फूट पड़ा। वह शान्त खड़ा हँसता रहा।

मीरा को रुकने की लेकिन गुँजायश न थी। चोट उसे बेरोक करनी ही है। आज उसे आखिरी फैसला कर ही लेना है। टूटे आईने के फ्रेम को उठाकर उसने फिर हिरण की पीठ पर जोर से मारा। कीलों की खरोंच से पीठ का चमड़ा कट गया।

हँसकर हिरण बोला—राजकुमारी और राजपाट के लोभ से राजमहल के अन्न पर पला हूँ, आज अगर खून देकर उस कर्ज को पूरा करूँ तो बेजा क्या है ?

ताक पर साबुनदानी पड़ी थी। उसे उठाकर मीरा ने हिरण के मुँह पर मारा। उसकी नाक से लहू बह चला। हाथ के पास फिर कुछ उसे मिला नहीं, सो दोनों हाथों से ही उसे पीटने लगी। उसके सर के बाल नोचे, कुरता फाड़ डाला और हाथों के रँगे हुए बढ़े नाखूनों से हिरण की छाती के चमड़े को कुरेदती हुई रो-रोकर कहने लगी—तूने मुझे मना क्यों नहीं किया ? मुझे भली क्यों नहीं बनने दिया ? तूने मुझे इस गंदगी में गर्क होने की गुँजायश क्यों दी ?

गाल से होकर हिरण के कपाल का लहू बह रहा था। कुरता रँग गया। मगर बिना शिकन लाए वह बोला—बचपन में एक बार मैंने तुझे पीटा था, तूने शायद आज उसी का बदला चुकाया ? छाती को चीरकर क्या तू अन्दर देख लेना चाहती है ?

खूँखार बनी मीरा ने कहा—मैं तुझे मार डालना चाहती हूँ। तेरे जीने की जरूरत नहीं। तेरे रहते मुझे शान्ति नहीं मिलने की।

खुशी-खुशी हिरण बोला—ठीक तो है, मैं तुझे पिस्तौल ला दूँगा। लेकिन अभी इतना तो बता दे कि अस्पताल में जाकर मैं इस गत का कारण क्या बताऊँगा ? क्या यह कहूँगा कि घर-जमाई बनने के लोभ में एक गरीब ब्राह्मण के लड़के की अंत में यह दशा हुई है ?

मीरा थरथर काँप रही थी, लहक रही थी मानों। हिरण बोला—मेरा यह लहू देखकर हुस्ना क्या करती, जानती हो ? इसी लहू से वह तेरी माँग में सिंदूर की लकीर खींच देती ! पैरों में महावर लगा देती !

मीरा के नाखूनों की तेजी शिथिल पड़ गई।

निर्विकार धीर कंठ से हिरण ने कहा—हुस्ना होती तो कहती, यह लहू पुण्यमय है। यह लहू मिलन का है, वियोग का नहीं। बहे, इसे बंद नही करती। यह लहू अपना नहीं, यह सबका है, इसकी कोई जात नहीं। इस लहू की बूँद से तू उन लोगों को तिलक लगा सकती है जिन्होंने छुरे से देश को काटा है, जो यह दुःख-दुर्गत को न्योत लाए हैं, आजादी के नाम पर जिन्होंने लाखों-लाख निरीह लोगों को तबाह किया है, लांछित और उत्पीड़ित मानवात्मा पर से जो विजय के रथ के पहिए को बढ़ा ले गए हैं ! यह लहू उन्हीं लोगों के लिए बहा है। तू चिल्लाकर कह सकेगी यह बात ?

अब मीरा ने सिर उठाया। उसने भी लगभग सर्वांग में वह लहू लगाया था। लड़खड़ाती आवाज में बोली—तू ऐसे किसी जानवर का नाम जानता है जो अपना लहू आप ही पीता है ?

हिरण ने अपना जख्मी हाथ उसके सिर पर रखा और हँसा। बोला—वह जानवर नहीं है, देवी है, दस महाविद्या की एक अंश—उसे कहते हैं छिन्नमस्ता ! तूने मुझे मारा, लहू माना कि मेरा बहा, मगर यह तकलीफ तो तेरी है !

वैसी ही लहूलुहान अवस्था में हिरण ने साड़ी उठाकर मीरा के

बदन पर लपेटते हुए कहा—ग्रा, ग्रब मैं तुझे शान्त करूँ। रो मत, रोना ही हार है; डर मत, डरना ही ग्रकालमृत्यु है; द्वेष मत रख, वही विच्छेद है; ग्रश्रद्धा को जगह न दे, क्योंकि उसी से पैदा होती है ग्रपवित्रता! सारे जंजाल झाड़कर ग्रब तू उठ खड़ी हो।

हिरण की गोद में मुँह छिपाकर ग्रार्त स्वर में मीरा बोली—तूने मुझे क्षमा क्यों की इस तरह?

—तेरा कसूर ही कहाँ है कि क्षमा का प्रश्न उठे? तेरे जीवन में कोई ग्रपवित्रता नही, इस बात को मुझसे ज्यादा कौन जानता है?

फफककर रोती हुई मीरा बोली—कल मैं तेरे सामने खड़ी कैसे हो सकूँगी?

हँसकर हिरण बोला—ग्राँधी-तूफान रात को ही निकल जाते हैं। सवेरे ग्राता है हँसता हुग्रा प्रभात। उदय होता है नवीन का।

मीरा में खड़ी रहने की शक्ति नहीं रह गई थी। वह फर्श पर बैठ गई ग्रौर हिरण के पैरों पर मुँह रोपकर हाथों से उसे जकड़ लिया।

बाईस

हाजीपुर से ग्राते समय हिरण ने कहा था—हुस्ना, इस जमाने में तू बेमेल है। तुझे ग्रौर कुछ दिन के बाद जन्म लेना चाहिए था। तूने चूँकि जात-धरम नहीं माना, इसीलिए किसी जात में तुझे पनाह नही मिली। तेरी पीठ पर किसी वर्ग की मुहर नहीं पड़ी है, लिहाजा तेरी कोई फौज नहीं तैयार हो सकी। ढाल-तलवार सँभाले तू युद्ध में उतरी तो सही, लेकिन तेरे सिवाय तेरी ग्रोर से लड़नेवाला ग्रौर कोई नहीं। सबने सिर्फ यह समझा कि तू वाचाल है, तुझमें वासना की ग्राग धधकती है, तू एक

शब्दों का हथियार है ! तेरी विद्या ऊबड़-खाबड़ है, तेरी बुद्धि डावाँडोल है और तेरी प्रतिभा ज्ञान-विज्ञान की खिचड़ी है। सत्य की उपलब्धि तुझे जरूर है परन्तु उसकी अभिव्यक्ति में भावों के उच्छ्वास का पेचीदापन है। मनुष्य की तरक्की की राह क्या है, इसे जाने बिना ही तू समाज-व्यवस्था को पलट देना चाहती है। तोड़-फोड़ की बुरी आदत बंगालियों की बहुत दिनों की है, तूने भी उसी तरफ अपना कदम बढ़ाया है। तूने वही तरीका अपनाया है जिससे कभी देश के रहनुमा आम लोगों मे सोडा-वाटरी जोश लाया करते थे। जहाँ-जहाँ धुआँ दीखता है, वहीं-वहीं तू फूँक मारती चलती है, जहाँ जहालत नजर आती है, वहाँ जाकर तू लोगों की आदिम वृत्ति को उकसाया करती है और उसी में शाबाशी पाना चाहती है। तू दुखियों की मित्र तो है, परन्तु गरीबों की सहारा नहीं क्योंकि गरीबी को मार भगाने की कोई सुलझी हुई अर्थनैतिक योजना तुझे नहीं मालूम। तुझे विप्लव की विभीषिका से ही आनंद आता है क्योंकि उसमें रस-कल्पना होती है—उसमें मनुष्य की एक स्वाभाविक दानवीय चेतना की तृप्ति है; एक इस तरह के लोग होते है जिन्हें कही आग लगने से खुशी होती है; बाढ़ में गाँव बह जाए तो मारे खुशी के वे नाच उठते हैं; सड़कों पर दंगा हो, खून-खराबी हो तो वे जोश में झूम उठते हैं; आँधी में, भूकंप में जब लोगों के घर-द्वार बरबाद हो जाते हैं तो वे मजे से घूमते नजर आते हैं। तू ऐसों का ही एक भद्र संस्करण है। तू रोना जानती है, इसीलिए तेरे ग्राहक है, तू मौज की लहरें उठा सकती है, जभी तेरे भक्त जुट जाते हैं; अपनी जवानी की बहार से तू मोह सकती है, इसीलिए तेरे आस-पास फूस की आग लहक उठती है। तुझमें सत्य है, तत्व नहीं; प्राण है, प्रतिभा नहीं; भाव है, चिंतन नहीं। बंगाल का तू वास्तविक परिचय है। बार-बार गिरकर भी तू उठ जाती है, इसलिए कि तेरा मंत्र सत्य है !

साल-भर पहले की ये बातें याद आ गईं सो हुस्ना हँस रही थी। सुबह की कच्ची धूप आकर उसके पैरों के पास पड़ रही थी। सामने

सीसम के पेड़ों पर हेमंत का नीला आसमान ; मधुमती के ऊपर बड़ी देर से पारावतों का एक झुंड मंडरा रहा था । यह दृश्य कहीं हिरण को नजर आता तो शायद उसके चेतनालोक में काव्य की एक झलक उठती। हिरण ही वह दूसरी लकड़ी है जिसकी रगड़ से हुस्ना के मन में आग जलती है। आज हिरण रहा होता तो उसकी लानत-मलामत का जवाब दिया जाता। हुस्ना हँस रही थी ।

पीछे सीढ़ी थी । उस पर किसी के पैरों की आहट हुई। आहट हुई और दूसरे ही दम उसके सामने आकर खड़े हो गए दारोगा यासीन साहब। हुस्ना की आरामकुरसी के सामने दो-चार कुरसियाँ सदा रखी रहती थीं। उन्हीं में से एक पर बैठते हुए यासीन साहब बोले—ऐसा हुक्म आया है कि मैं खुद आपकी सेहत का खयाल रखूँ। आज कैसी हैं आप ?

सवाल उर्दू में हुआ—जवाव दिया गया अंग्रेजी में ! हुस्ना ने कहा—वैसी हूँ जैसा कि तुम लोगों ने रखा है। राजवंदिनी हूँ—महल के दुमंजिले पर रहती हूँ । अरदली-बावर्ची मिलाकर पाँच-पाँच आदमी हुक्म बजानेवाले हैं । जर की पोशाकें है, काश्मीरी चादर बदन पर डाले बैठी रहती हूँ । इसके सिवाय मेरी हरकतों पर निगरानी करने के लिए नीचे पड़े हैं बंदूकधारी बलूची सिपाही । तुम्ही बताओ यासीन, मेरा कैसा रहना उचित है ?

हँसकर हुस्ना ने यासीन की तरफ ताका ।

यासीन की रसिकता की बात ही नहीं । उम्र उनकी कम थी, मगर गंभीरता कम नहीं थी । वे बोले—मैं आपसे एक प्रस्ताव करने आया हूँ। आपकी तबीयत अभी नासाज है । कुछ दिनों के लिए आप नाच-गान बंद कर दें । उस रोज के करते वक्त आप बेहोश हो गई थीं—यह बात मैंने अधिकारियों को बताई थी । चूँकि आप कमजोर हैं, इसीलिए ऐसा कह रहा हूँ ।

हुस्ना बोली—लेकिन हमीद साहब जो तंग करते हैं । आप तो जानते हैं, उनके आग्रह को टालना मुश्किल है ।

यासीन का चेहरा हमीद का जिक्र आते ही लाल हो उठा। यह देखकर हुस्ना खुश हुई। जरा देर बाद यासीन बोले—वह आदमी नौकरी करने के लिए विदेश आया है। शायद हो कि उसे ऐसा चकल्लस चाहिए। लेकिन उसकी खुशी के लिए आप अपनी सेहत क्यों बिगाड़ेंगी ? बार-बार उलटी करना ठीक नहीं है।

यासीन हमीद से खुश नहीं है। उनमें जो एक चटुलता है, वह यासीन को नहीं रुचती। उनके लोभ की साजिश को समझने में यासीन को देर न लगी। लेकिन वे सरकारी आदमी हैं, महल और जमींदारी के व्यवस्थापक हैं, रुपयों की इफ़रात है, लिहाज़ा उनसे खुलकर वैर करने की यासीन सोच भी नहीं सकते। शुरू-शुरू में हमीद ने हुस्ना पर अपना अधिकार और अभिभावकत्व जमाने की चेष्टा की थी—पर यासीन ने कड़ा रुख अख्तियार किया था। उन्होंने यह हुक्म दिया था कि मेरे आदेश के बिना कोई भी हुस्नबानू से भेंट नहीं कर सकता। हुस्ना के खान-पान की देखभाल थाने के लोग ही करेंगे और वही नीचे खाना पकाया भी करेंगे। निस्सन्देह ऐसे हुक्म से हमीद साहब-मन-ही-मन क्षुब्ध हुए थे। लेकिन वह नजरबंद थी, हमीद का उस पर कोई अख्तियार ही न था।

हुस्ना ने कहा—यह तुमसे किसने कहा कि नाच-गान से सेहत बरबाद होती है ? उससे कै होने की तो कोई वजह नहीं !

यासीन पहले तो चुप रहे। बाद में बोले—पाकिस्तान सरकार का यह खयाल है, आप भली-चंगी रहेंगी तो आपसे पाकिस्तान की बहुत सेवा बन सकेगी।

हुस्ना हँसी। फिर जैसे थकी हो, बोली—मैं दुरुस्त रहूँ तो पाकिस्तान सरकार को बहुत नुकसान भी हो सकता है।

यासीन के चेहरे और आँखों पर एक चमक-सी खेल गई। लेकिन अपने भाव को छिपाकर वे बोले—आपसे पाकिस्तान सरकार की तना-तनी अफसोस की बात है। आप भी मुसलमान हैं। मुसलमान मुसलमान

का विरोधी नहीं हो सकता, क्योंकि वह हिन्दुओं जैसा आत्मविरोधी नहीं होता। आप थोड़ी सावधानी से काम लेतीं, तो पाकिस्तान से आपका झगड़ा चुक जाता।

आड़ी आँखों ताककर हुस्ना ने पूछा—कैसी सावधानी ?

उत्तर देने में यासीन ने थोड़ा समय लिया। बोले—अधिकारियों से समझौता कर लेतीं, बस फिर आप जी चाहे सो करतीं। नेतागिरी करें, गरीबों के लिए चाहे सो करें, तकरीर करें, पहले अधिकारियों से एक समझौता कर लें। इससे आपकी इज्जत बनी रहेगी।

हुस्ना ने पूछा—जरा समझौते की शक्ल तो ताएँ ?

यासीन बोले—यही कि किसान-मजूर यह समझें कि आप उनकी तरफदारी करती हैं और सरकार भी जाने कि आप उनकी हिमायत करती हैं।—आपसे यही तय रहे।

हुस्ना कुछ देर चुप रही। उसकी शक्ल देखकर यासीन बहुत उत्साहित हो उठे और जवाब पाने से पहले ही बोल पड़े—सरकार ने मुझे आपसे समझौता करने के लिए ही साल-भर पहले यहाँ भेजा है। मैं आपको रास्ते पर ला सकूँ, तभी नौकरी में मेरी तरक्की होगी। हमीद मियाँ आपको नाच-गान में गर्क रखना चाहते हैं और मैं चाहता हूँ कि आप मुसलमान कौम की खिदमत करें। आपको पाकर पाकिस्तान और मजबूत होगा।

हुस्ना ने सिर उठाया। बोली—ऐसा तुमने बहुत बार कहा है यासीन। आज खुलकर बताओ, तुम्हारा असली प्रस्ताव क्या है ?

यासीन ने कहा—प्रस्ताव तो साफ है। आप सिर्फ इतना ही कहें कि यह इसलाम राष्ट्र है। यहाँ ऐसे बेवकूफों की कमी नहीं जो सवाल उठाते हैं, दलीलें देते हैं, यहाँ तक कि शक भी करते है—लेकिन लाख हो, आप सिर्फ एक ही बात कहें, यह इसलाम राष्ट्र है। पवित्र कुरान लेकर इसलाम के नाम की पुकार करने पर वे जहन्नुम के डर से चुप रहेंगे। इन्हें जहालत में पड़े रहने दीजिए, तालीम मिलने पर इनका दिमाग गरम हो जाएगा,

हिन्दू लोग पास-पड़ोस में होंगे तो इन्हें बहानेबाजी आएगी, दुनिया से सम्बन्ध बनाए रखना चाहेंगे। आप उन्हें सिर्फ यही मंत्र पढ़ाएँ कि वे अल्लाह की मिट्टी और अल्लाह के पानी पर सुख-चैन से रहें।

हुस्ना ने पूछाइ—सलाम से ही उनकी गरीबी जाएगी ?

—गरीबी ?—यासीन हँसे।—गरीबी पर उनकी निगाह ही क्यों पड़ने लगी ? वे तो इसी को अपना नसीब समझते है। आप तो जानती ही हैं—नमक, भात, तंबाखू और इसलाम—इसी पर सारे पाकिस्तान में शान्ति है। हिन्दू उन्हें बहकाते हैं। इन पढ़े-लिखे हिन्दुओं का धीरे-धीरे यहाँ से टिकट कटाना पड़ेगा।

हुस्ना बोली—इस तरह तुम्हारी सल्तनत कब तक चलेगी ?

यासीन बोले—अल्लाह का राज खुद अल्लाह चलाएँगे।

—लेकिन जिन लोगों को अल्लाह का यह शासन पसंद न हो, उनकी जगह कौन-सी होगी ?

यासीन ने जरा सख्त होकर कहा—अल्लाह के कैदखाने में !

यासीन की टेढ़ी निगाह पर हुस्ना कुछ सख्त जवाब देने जा रही थी कि सीढ़ियों से हमीद साहब ऊपर आये। आकर बोले—सलाम वाले-कुम यासीन साहब। बेअदबी माफ करें, चूँकि आप मौजूद हैं, इसलिए आने की हिमाकत कर सका।

यासीन ने बनावटी स्वागत का भाव दिखाते हुए कहा—आइए, बैठिए। क्या हुक्म है ?

हुस्ना की तरफ देखकर हमीद ने हिम्मत बटोरने की कोशिश करते हुए कहा—बेगम के इलाज का कुछ अच्छा इंतजाम हो रहा है क्या ? मैं बहुत फिक्रमंद हूँ।

यासीन बोले—यह नजरबंद और सरकार के बीच की बात है। सरकारी डॉक्टर का इलाज चल रहा है।

हमीद ने पूछा—मगर बीमारी क्या है ?

—यह तो डॉक्टर ही बता सकेंगे।

हमीद चुप हो गए। लेकिन जो सवाल-जवाब हुआ, उसमें दोनों के मन की खीझ साफ जाहिर थी। इस चुप्पी और गंभीरता में दोनों में एक खींचातानी-सी थी। हिरण अगर यह देखकर गया होता कि यासीन के आने के बाद से हमीद में एकबारगी परिवर्तन आ गया है, तो उसे कौतूहल होता। फकीरा की माँ भी बेहद खुश होती, मगर कई महीने पहले वह बेचारी हैजे से गुजर गई। पिछली बरसात में पुराने दारोगा हारूं मियाँ भी चल बसे—सुख-दुःख में हुस्ना के लिए जिसके स्नेह का सहारा था, वह भी न रहा। बेचारा बूढ़ा टूटा हुआ दिल लिए गया। यहाँ के तौर-तरीके से वह अपने को मिला न सका।

अचानक हुस्ना हँसी। बोली—यासीन, जरा गौर करो, हमीद साहब की आँखों में शिकारी बिल्ली की छाप है। हमीद कट्टर मुसलमान है, उसमें रस-बोध की कहीं गुँजायश नहीं। पहले मुझसे बनती न थी, समझा?

मुस्काकर यासीन ने हमीद की तरफ देखा और कहा—आखिर बनने कैसे लगी?

हमीद बोले—मैं फिजूल की बातें करने नहीं आया हूँ। मैं सिर्फ यह चाहता हूँ कि बेगम चंगी हो जाएँ।

हुस्ना बोली—जिससे तुम्हारा चकल्लस जम सके, क्यों? समझा यासीन, अब इससे मेरी पटरी क्यों बैठने लगी है? इसके लोभ को गुद-गुदाते ही इसके अंदर का पालतू जानवर बाहर निकल आता है और मेरे नाच-गान के साथ वह ताल देता रहता है।

सिर झुकाकर यासीन ने अपनी हँसी छिपानी चाही। हमीद इस विश्वासघात करनेवाली औरत को अवाक् होकर देखते रहे।

आरामकुरसी पर ओठँगकर सीसम के पेड़ की तरफ ताकती हुई हुस्ना बोली—अच्छा ही लगता है। न कोई चिंता, न कोई भविष्यत। एक-एक कर सभी चले गए। कोई तो आने की कहकर भी गायब हो गया। अच्छा ही लगता है। साँप से खेलते हुए शुरू और साँप से खेलते हुए अंत।

हमीद ने यासीन की तरफ मुखातिब होकर कहा—कल रात अचानक बेगम ने चीखना शुरू कर दिया था, इसीलिए मैं उनकी सेहत के बारे में जानना चाहता हूँ। ऐसी हालत क्यों हुई इनकी ?

यासीन बोले—ऐसा तो बहुतेरे कैदी करते हैं।

—दिमाग की गड़बड़ी भी तो हो सकती है!

—उसका इलाज भी हो सकता है!

—आखिर बीमारी है क्या ?

यासीन ने जवाब दिया—यह डॉक्टर को पता है। मै हकीम नहीं हूँ।

हमीद क्षुण्ण से उठ खड़े हुए। उनकी शक्ल देखकर हुस्ना ठठाकर हँस पड़ी। बोली—समझा यासीन, बेचारे ब्रह्मचारी हमीद के जी को बड़ा दुःख पहुँचा है। थोड़ी-सी बनने भी लगी मुझसे तो बेचारे के भाग्य को गवारा नही! दरअसल जब तक छोटी रानी लौट नहीं आतीं, तब तक किसी तरह इस प्रवास को काटने का उनका इरादा है! आपकी वह गुलजारबागवाली तथाकथित बहन कहाँ गई हमीद साहब ?

यासीन अब किसी भी तरह हँसी न रोक सके! हमीद को उससे और भी अपमान की चोट लगी। उनकी सुरमा लगी आँखें, इत्र के फाहेवाले कान, रंगीन दाढ़ी, सुबह-सुबह का बना-ठना चेहरा, सब मानों इस औरत के मजाक से मैला हो उठा। लेकिन आज वे कुछ तैयार होकर ही आये थे। दो कदम बढ़कर वे फिर मुड़कर खड़े हो गए। कहा—बेगम, दो साल हो चले, मैं बंगाल का पानी पी रहा हूँ। यहाँ के पानी में ऐसा कुछ है जो लोगों का धात बदल देता है। तुम्हारे मजाक से इज्जत की बन आती है जानता हूँ मैं। मैं मामूली आदमी हूँ, यह भी मानता हूँ। लेकिन तुमने मुझे तपा-तपाकर पक्का बनाया है। कसम खुदा की, मैं चाहता हूँ तुम भली-चंगी हो जाओ। तुम जितनी ही चोट चाहे करो, मैं बदले में चोट नहीं करूँगा।

हुस्ना ने हँसकर कहा—बदनसीबी अपनी, इस मौके पर यहाँ हिरण

नहीं। होता तो रत्नाकर का यह रूपांतर देखता! तुम इतने परेशान क्यों होते हो हमीद ?

नजर बचाकर एक बार कड़ी निगाहों यासीन की तरफ देखकर हमीद ने कहा—परेशान मुझे तुमने कर रखा है बेगम। कल मैंने सुना, तुम चीख रही थी। तुम्हारी उस टूटी-टूटी आवाज से मुझे डर लग रहा था। मैं तुम्हारी जिंदगी पर मन-ही-मन सोच रहा था।

हँसकर हुस्ना ने कहा—तो सोचकर किस नतीजे पर पहुँचे, यासीन को यह बताते जाओ।

—आदमी को बताने से कुछ नहीं होने का बेगम, अल्लाह को बताऊँगा। मैं मुसलमान होने के नाते कह रहा हूँ, तुम अल्लाह की प्यारी बेटी हो!—कहते-कहते हमीद यासीन की तरफ मुखातिब हुए और बोले—मैं वायदा करता हूँ यासीन साहब, बेगम से अब मैं नाचने-गाने का अनुरोध न करूँगा। चूँकि अकेली रहती है—नाच-गान में अपने को भूले रह सकती है, इसीलिए मैं इनसे वैसा आग्रह करता रहा हूँ। लेकिन एक अर्ज है, क्या कभी-कभी मैं इनकी खोज-खबर ले सकता हूँ ?

यासीन बोले—यह मैं आपको बाद मै बताऊँगा।

हमीद जाने लगे। हुस्ना ने पुकारा—जरा ठहरो। कल तक़ मेरी इस शक्ल पर तुम्हारे लोभ की हद न थी। मैं अगर तुम्हारी बीवी बन जाती, तो खुशी होती तुम्हें ?

हमीद बोले—बेगम, और कितनी सजा देना चाहती हो मुझे ?

—तुमने सजा ही तो चाही थी। लोभ की चीज बीमार हो जाए तो शायद उसकी कीमत नहीं रहती ?

हुस्ना को देखकर हमीद बोल पड़े—जो देश-भर की प्रिय हो, उसे बीवी बनाकर घर में बंद करनेवाला जानवर पहले तो शायद मैं हो सकता था, लेकिन अब नहीं।

हमीद जल्दी से नीचे उतर गए।

यासीन दूसरी तरफ देख रहे थे। हुस्ना ने पूछा—आज यह आदमी

कैसा लगा यासीन ?

यासीन ने इधर मुँह फेरकर कहा—बेवकूफ के सिवाय और क्या कहूँ ? यहाँ कोई हिंदू नहीं है, इसलिए कहता हूँ, सुनिए। पाकिस्तान में ऐसे ही लोग ज्यादा हैं और ऐसे ही लोगों के चलते सभ्य जगत् पाकिस्तान से नफरत करता है। यही लोग ज़ुबान से तो इसलाम की दुहाई देते हैं और आँखें बचाकर लड़कियाँ भगाया करते हैं। यह पुरानी बात सच है कि लूट की लड़कियों से ही देश में मुसलमानों की संख्या बढ़ी है।

हुस्ना के मन में शरारत आई थी। बोली—हमीद मुझसे कोई अच्छी बात कहता है तो तुम्हें गुस्सा क्यों आता है यासीन ?

यासीन ने एक बार कलाई की घड़ी की तरफ देखा। फिर बोले—औरत की हवा लगने से जिस आदमी का रंग बदलता है, मैं उससे गुस्सा नहीं, नफरत करता हूँ। तो मैं चलूँ। हाँ, आप क्या मेरे प्रस्ताव पर राजी नहीं है ?

हुस्ना हँसी। तुम्हारे क्रिया-कलापों की मैं तारीफ करती हूँ। लेकिन पुलिस की हवा लगने से जिसका रंग बदलता है, क्या उससे तुम नफरत नहीं करते ?

—मतलब ?

हुस्ना बोली—तुम मेरे बड़े चाचा की जमीन पर खड़े होकर बात कर रहे हो यासीन ! इस मिट्टी की जात बड़ी कठिन है। तुम मुसलमान हो और मैं हूँ बंगाली मुसलमान। मेरी जात जुदा है। पाकिस्तान में राष्ट्र चाहे इसलामी रहे पर यहाँ बंगाल की संस्कृति रहे !

यासीन जरा उत्तेजित होकर बोले—आपकी इस प्रांतीयता की मनोवृत्ति से पाकिस्तान का कितना बड़ा नुकसान हो सकता है, यह जानती हैं क्या आप ?

हुस्ना ने कहा—संस्कृति के बचाव के लिए अगर पाकिस्तान का नुकसान हो, तो बरदाश्त करूँगी।

टेढ़े ढंग से यासीन ने पूछा—पूर्वी बंगाल क्या पाकिस्तान से

बाहर है ?

—अपना तो यही खयाल है। पाकिस्तान हमारे लिए नहीं बना !

—फिर किसके लिए बना ?

हुस्ना ने कहा—मैं बीमार हूँ। इस हालत में तुमसे बातों की लड़ाई मैं नहीं करना चाहती। लेकिन इतना याद रखो, जो लोग यहाँवालों के कंधों पर पैर रखकर पके फल तोड़ रहे हैं, पाकिस्तान उन्हीं लोगों का है ! पाकिस्तान उन्हीं लोगों का है जो यहाँ का धान-जूट छीने लेते हैं, जुबान पर ताले जड़ देते हैं, जंगल की लकड़ियाँ काट ले जाते हैं, जो यहाँ के गरीबों को बासी भात में नमक तक नसीब नहीं होने देते !

यासीन खड़े हो गए। बोले—आप क्या जानती नहीं कि कितने दिनों की लड़ाई के बाद हमने पाकिस्तान हासिल किया है ?

हुस्ना फिर हँस पड़ी। बोली—खूब जानती हूँ। लगभग बीस वर्षों तक तुम लोग अहिंसा की पीठ पर हिंसा के नाखून से खून बहाते रहे हो। यह पाकिस्तान उसी ऊधम से बचने के लिए बन गया। लेकिन खैर, तुम्हें काफी देर हो गई।

—आपके इस खयाल के लिए हिंदुओं की साजिश ही जिम्मेवार है—कहकर यासीन सीढ़ी की तरफ बढ़े। लेकिन इतने से ही उनके जी की जलन न गई। फिर कहा—आपने चालाकी से मेरे मन की बात जान ली है। इसका अंजाम लेकिन अच्छा न होगा।

हुस्ना बोली—बुरे अंजाम का कुछ अंदाज दे जाओगे ?

इस व्यंग से यासीन ने लाल-लाल आँखों से उसे देखा और उसके बाद मसमसाते हुए नीचे उतर गया।

बंदूकवाले संतरियों ने खड़े होकर यासीन के लिए राह बना दी। मगर यासीन अपनी उत्तेजना में यह देख न सका। नीचे उतरकर वह ठिठक गया। बगल में राजा जीवेन्द्रनारायण के जमाने की एक मर्मरमूर्ति खड़ी थी। उनकी लाल आँखें उस पर पड़ीं। वे समझ गए थे कि हुस्ना इस्पात की बनी है, टूट सकती है, नव नहीं सकती। यदि हुस्ना यह

प्रस्ताव मान जाती, तो किसी दिन यह मंत्रिणी बन सकती और बीच के अरसे में इसे किसी बात की कमी नहीं रहती।

अंग्रेजी सल्तनत के दिनों इंगलैड में यह नियम-सा था कि दुर्घटना की जगह मौजूद रहनेवाले आदमी की बात पहले मानो। यासीन यहाँ के दारोगा ठहरे, सो सरकार उनकी बात आँख मूँदकर मानेगी, यह मानी हुई बात है। अंग्रेज चले जरूर गए हैं, लेकिन शासन के तरीके की वही कार्बन-कापी यहाँ मौजूद है। लिहाजा हुस्ना जैसी एक देशसेविका को फूँककर उड़ा देना आसान है।

बाई हथेली पर दाहिनी मुट्ठी को एक बार ठोंककर यासीन चले गए।

यासीन को विदा करके हुस्ना फिर आपे में आई। हिरण होता तो तुरत पूछ बैठता—क्यों री, तेरी तेज तलवार में जंग कैसे लग गई? जबरदस्ती पिल पड़ी थी, आज वह हौसला कहाँ गया? नजरबंदी में जनता अगर भूल जाए, तो समझो कि तुम्हारा नेतृत्व उसे मान्य नहीं।

हुस्ना ने सीसम के पेड़ की तरफ ताका। मन-ही-मन हँसकर बोली—गिलहरी के समंदर बाँधने की कहानी लोग आज भी कहते हैं कॉमरेड!

सीसम की फुनगी से जैसे जवाब आया—तू नेत्री नहीं, संसार के इस रंगमंच की एक मामूली-सी अभिनेत्री है। तेरी जिंदगी एक अबोध कलाकार की असफल रचना-भर है—उसमें सिर्फ आवाज है, सिर्फ क्षोभ है—जिसका कोई मतलब नही निकलता! शायद तुझी को ध्यान में रखकर शेक्सपियर ने यह बात लिखी थी।

मुँह फेरकर हुस्ना कैसी तो उदासी की हँसी हँसी! यह स्नेह, समादर की हँसी थी। हिरण को देखकर आज तक वह जैसी हँसी हँसती आई है! आग की एक चिनगी से तुरत दावानल नहीं जल उठता! उसमें समय लगता है। पास होता, तो हिरण को यह समझाया जा सकता था। भूकंप से पहले, शायद बहुत पहले से ही मिट्टी का भीतरी हिस्सा गरम होता रहता है—और वह होता रहता है लोगों की

नजरों की ओट में। आनेवाले यज्ञ के लिए पहले के बहुतेरे लोगों के कंकाल एक पर एक जमते रहते हैं। पानी की एक-एक बूंद भाप बनती है—आनेवाली बारिश इस बात की गवाही देती है।

सीसम की हवा ने आकर कानों में उससे पूछा—क्या इसी संतोष पर तू जीवन के बाकी दिन गुजारेगी ?

हुस्ना बोली—यह संतोष नहीं, यह सार्थकता है। लाश के पास बैठी रहकर रात-दिन स्यार-कुत्तों से लड़ते रहना ही क्या तेजस्विता है ? उससे तो लाश के कानों यह मंत्र फूंकना बेहतर है कि उसमें प्राण का संचार हो।

—इससे भूत दानव होगा !

हुस्ना ने कहा—मैं वही चाहती हूँ। ऐसी अकाल मृत्यु से भूत की दानवीय शक्ति कहीं बेहतर है ! वह आए, लोगों का झोंटा पकड़कर उन्हें झकझोर दे।

—तू अराजकता चाहती है ?

—अपराजेय यौवन की तोड़-फोड़ को अराजकता नहीं कहते, कॉमरेड। वसंत के सर्वनाश पर नई सृष्टि ! ऋतुराज की फूंक से सारे पीले पत्ते झड़ पड़ें, जीर्णता जाती रहे।

पीछे से आहट आई। वार्तालाप बंद करके हुस्ना ने पूछा—कौन ?

एक बूढ़ी मुसलमानिन बहुत बड़ी थाली में भरकर खाना ले आई। प्लेट में सब्जी—अभी भी भाप उठ रही थी। चावल, सब्जियाँ, मिठाई।

हुस्ना बोली—शोरबे का रंग तो आज बड़ा चटकदार है ? आज की रसोई कैसे बनाई ?

रोज की तरह मोतिया ने रेकर्ड की एक ही बोली दुहराई—पहले सूप को पी लीजिए।

—जो हुक्म !—कहकर हुस्ना चम्मच से सूप की चुसकी लेने

लगी। खुशबू थी और मजे का बना था। वह पी गई उसे।

मोतिया हटकर सीढ़ी के पास खड़ी थी। जब तक हुस्ना का खाना खत्म नही हुआ, तब तक वह काठ के पुतले-सी खड़ी रही। उसके बाद बोली—आपको जरा अदर आना है। आपकी जाँच करनी है।

—शायद डॉक्टर आये हैं नीचे ?

—हाँ, उन्हें हाल बताना है।

हुस्ना ने सावधानी से उठने की कोशिश की। आजकल उसके हाथों की तरह पाँव भी जैसे मानना नहीं चाहते थे। महज छः महीने पहले तक अपने को देखकर मन हरा हो उठता था, लेकिन यह क्या, दिन-दिन शरीर सूखता ही जा रहा है। मीरा अगर पाँवों का यह सूखना देखती तो चौक पड़ती। बदन के ऊपरी हिस्से का हाल चाहे जैसा हो, आईने के सामने लेकिन खड़ा नहीं हुआ जाता। इस तेजी से गिरावट की तो बात न थी ! कभी वह लाज से झुककर बदन पर आँचल डाला करती थी, आज जाने कैसे अपमान से वह शरीर को छिपाना चाहती है। हुआ क्या यह ?

चलने में पाँव लड़खड़ा गए। मोतिया ने दौड़कर उसे दोनों हाथों से थाम लिया। बर्फ पर जैसे हाथ-पाँव जम आते है, वैसी ही दशा। हाथ-पाँव की उँगलियाँ दिन-दिन सिकुड़ती जा रही हैं, उनमें जैसे लहू का प्रवाह नही बहता। अपनी दशा पर हुस्ना को अंदर से कैसी तो हँसी आती।

हाथों का सहारा देकर मोतिया उसे अंदर ले गई। दरवाजे के पल्ले बंद कर धीरे-धीरे उसके बदन से वह कपड़ा हटाने लगी। बदन में कई जगह एक तरह का धब्बानुमा घाव हो आया था।

हँसकर हुस्ना ने कहा—तुम्हारी यह मुगलई रसोई खाने में तो बड़ी अच्छी लगती है, मगर खाते ही जी मिचलाने लगता है। ऐसा क्यों ?

मोतिया सिर्फ ताकती रही। बोली कुछ नहीं। हुस्ना ने कहा—

अंग्रेजों के जमाने में कैदी अपना सारा काम आप किया करते थे—रसोई, बिस्तर लगाना, नहाना-धोना, खेल-कूद, लिखना-पढ़ना सब। लेकिन यह अख्तियार मुझे क्यों नहीं है?

मोतिया ने बताया—उसे किसी भी बात का जवाब देने का अधिकार नहीं है।

अपनी तंदुरुस्ती के बारे में ज्यादा चर्चा करना हुस्ना ठीक नहीं समझती, सो वह चुप हो गई। जिस परिवार में वह पली, उसमें रोगों को गुंजायश न थी। कमजोरी, सेहत की गड़बड़ी, रोगी की सेवा-टहल, दवाई, पथ्य—यह बला उनकी जिंदगी से बाहर थी। आज कहीं मीरा या हिरण आ धमकें, तो हुस्ना का हाल देखकर दंग रह जाएँ। हिरण शायद यों कह उठे—तू ठहरी बहुरूपिया, यह भी तेरा कोई नया स्वांग है, कोई नई करतूत? तेरी करामात ही गजब की है हुस्ना!

हुस्ना के कपड़े फिर से सँभालकर मोतिया उसे बिछावन पर बिठा आई। हुस्ना मानों लाचार हो, बहुत हद तक दूसरों का मुँह जोहने को बेबस। इतने ही में थक गई। छाती उसकी धड़क रही थी। लगता है, यह माथा ही उसका नहीं है। जब-तब चक्कर आ जाता है। यह आँख मानों उसकी नहीं, जब-तब उसके आगे बैंगनी धुआँ-सा घिर आता। आखिर सारी जीवनी-शक्ति इस तरह थरथराती क्यों है? जीवन एक बिडंबना-सा क्यों लगता है? क्यों ऐसे हिलती रहती है उसकी सारी सत्ता, सारे अस्तित्व की बुनियाद? ऐसा सोचते हुए उसकी आँखें उद्भ्रांत-सी लाल हो उठीं, ज्वाला-सी लहकीं।

मोतिया उसे एक बार ताककर चली गई।

मुट्ठी से बिछावन को कसकर पकड़े हुस्ना ने उस बड़े कमरे के चारों तरफ एक बार गौर से देखा। न, यह सत्य नहीं। यह सूनापन झूठ है, भयंकर झूठ। इसी को कहते हैं कमजोरी। बुढ़ापे और रोग का विकार है यह, यही है मौत की साजिश, खौफ का इशारा, पिशाच का व्यंग—इसी का नाम है हार। हार कबूल कर लेने से काम नहीं चल सकता।

अपनी तो प्रतिज्ञा थी, नंगी तलवार लिए बेखौफ आगे बढ़ने की । बाधा, संस्कार, जहालत—सबको कुचलकर आगे बढ़ने की । रुकने से नहीं चलता—रुकने ही का नाम मौत है । इस बंधन से मुक्त होना है, मुक्त होना है अपमान से, बुराई की साजिश से । चारों तरफ से करोड़ों-करोड़ भूखी-नंगी जनता मुझे पुकार रही है, लाखों-लाख कंठों से उठ रही है दर्द और बेबसी की चीख—क्षितिज पर लाली छिटक रही है । सारे बंधनों से मुक्ति की पुकार आ पहुँची है । सिर ठोंककर इन दीवारों को चकनाचूर करके अब भाग निकलना होगा ।

रात-दिन विकार उसे चैन नही लेने देता । उसने जी-जान से पैरों को सख्ती से जमीन पर रोका और उठ खड़ी हुई । अभी, अभी चल देना है । इस सूने महल में बेबस-सी बैठकर भूतों का व्यंग बरदाश्त करना अब नहीं हो सकता । उसे गाँव-गाँव, नगर-नगर, घर-घर, घाट-बाट, तमाम जाना होगा—पुकारकर सबको जगाना पड़ेगा, डर और खौफ के माहौल से सबको बाहर निकालना पड़ेगा । अपने शरीर को एक बार उसने जोरों से झकझोरा ।

गूँगे प्राचीर ने कहा—मैं हूँ, बड़े चाचा ।

—क्यों आये हैं आप ?

—मैं यह देखने आया हूँ कि कैद शेरनी ने अपने पैने दाँतों से कैदखाने की छड़ों को काटा या नहीं !

गूँगा प्राचीर हट गया । हुस्ना दौड़ पड़ी—बड़े चाचा !

*

नीचे आवाज हुई और संतरी बंदूक तानकर चौकन्ने हो गए । हुस्ना जोरों से चिल्ला उठी थी, उस चिल्लाहट से नीचे के दफ्तर में बैठे हुए डॉक्टर साहब तक काँप उठे थे । मोतिया उन्हें बीमार का हाल बता रही थी । आवाज सिरिश्ते में पहुँची और हमीद साहब बाहर निकल पड़े । उनके पीछे-पीछे निकले दूसरे कारिंदे । डॉक्टर को यासीन ने कुछ

खास हिदायत दे रखी थी। सो वे मोतिया तथा दूसरे एक सहकर्मी के साथ ऊपर पहुँचे।

बिछावन से कुछ दूर पर हुस्ना पड़ी थी। देखने से पता चला, बेहोश होने के पहले उसने बेतरह कै की थी। इसीलिए गले में खरोंच पड़ने से कै के साथ खून भी निकल आया था। मोतिया ने दौड़कर हुस्ना को पकड़ लिया। यासीन साहब को खबर भेजी गई।

यह खबर ऐसी कुछ न थी कि यासीन साहब परेशान होते। ऊपर से हुक्म था, हुस्ना के लिए एकांत आवश्यक है। जीवेन्द्रनारायण का मकान उन्हें प्रिय है, सो वही उनके लिए ठीक है। दुखी और गरीबों की वह हमदर्द हैं, इसलिए विलास का कोई भी सामान पास न फटक पाए। बंधन से उन्हें सख्त नाराजगी है, इसलिए इस विराट् महल की खिड़की, दरवाजा, छत, बरामदा, छज्जा—सब खुला रहेगा। जाहिलों को चूँकि वह पसंद नहीं करती, इसलिए उनके पास न आदमी रहेगा, न आदम-ज़ाद। लेकिन चूँकि उनका लालन-पालन बड़े ठाठ में हुआ है, इसलिए अधिकारियों ने दास-दासी, सेवक-वैद्य का प्रबंध जरूर किया था। लेकिन सब उनकी निगाह से बाहर रहा करें, यह हिदायत थी। खबर मिलने के बावजूद यासीन साहब अपने धंधों में लगे रहे। उन्होंने सिर्फ यह कहला भेजा कि किसी तरह की त्रुटि उनकी निगरानी में न हो।

हुस्ना के होश जाता रहा था। दिन-भर वह होश में आई भी नहीं। इस बीच डॉक्टर ने कोई तीन बार सुई दी थी। शाम को बीमार का हाल कुछ सुधरता देख डॉक्टर खड़े हुए। यासीन को रिपोर्ट देनी थी। सीढ़ी के पास जाकर वे रुके। मोतिया ने मुड़कर उनकी तरफ देखा।

उनकी उस काली-कलूटी सूरत पर शाम को नजर पड़ने से बदन थमथमा उठता। डॉक्टर ने क्याँ तो सोचा, फिर नीचे उतर गए। उनका सहकारी उनके पीछे हो लिया।

रोशनी जल रही थी। दीवार पर काँप रही थी छाया। मोतिया चुपचाप बाहर बैठी पहरा देने लगी। हेमंत की चाँदनी बरामदे के एक

ओर पड़ रही थी। बाहर ओस के धुँधलके में वह सीसम का पेड़ हवा में हलका-हलका काँप रहा था। खासी तंद्रा थी। हुस्ना आकाश में लावे-सी फूट रही, चाँदनी को अपलक आँखों देख रही थी बैठी-बैठी।

—हुस्ना।

किसी ने धीमे से उसके कानों में पुकारा। हुस्ना चैतन्य-लोक के रहस्यमय पथ से लौट रही थी। अचानक मुड़कर उसने पूछा—कौन ?

—मैं हूँ। कहाँ गई थी तू ?

—बाहर—बड़ी दूर !

—क्यों ?

हुस्ना बोली—मैं दूर, सुदूर के उस प्राचीन भारत को देखने गयी थी।

—भारत को ? पाकिस्तान को नहीं ?

हुस्ना के चेहरे पर हँसी झलकी। कहा—दोनों मिलकर एक वह अखंड महाभारत ! मैं योगासन पर अपलक आँखों बैठे उस महाभारत को देख आई। वह अपनी कालजयी महिमा से अटल है।

—क्या देखा ?

—देखा, दूसरे का कुछ हड़प लेने की उसे आसक्ति नहीं, दूसरी कौम पर लोभ नहीं, राजनीतिक तर्कों का उसे कोई मोह नहीं ! जन्म, जटा और व्याधि से परे के उस तपस्वी को देख आई···

—तपस्वी ?

—हाँ, तपस्वी ! माथे पर हिमालय की जटा, नस-नस में गंगा-यमुना, कृष्णा-कावेरी, सरस्वती-नर्मदा की रक्त-धारा—पाँवों के नीचे कन्याकुमारी हुस्नबानू के बिखरे केशों की तरंग-माला !

—हुस्नबानू !

हँसी की आवाज से हुस्ना की नींद उचट गई। आँखें खोलकर उसने ताका। कमरे की बत्ती खूब चमक रही थी। सामने कई लोग बैठे थे जिनमें हमीद, यासीन, डॉक्टर आदि भी मौजूद थे। हुस्ना का प्रलाप

भारतीय के बजाए महज़ मुसलमान होकर रहना चाहा। अपना खयाल है, आप लोग अंग्रेजों के ही नाते-गोते हैं। अंग्रेज भी कभी यहाँ लूट के लिए आए थे और उस लूट के कायमी बंदोबस्त के लिए उन्होंने सेना और शासन का सहारा लिया था। उन्होंने भारत को प्यार नहीं किया—प्यार किया था यहाँ के दूध और लहू को। उन्होंने काफी दूध पिया, उससे भी ज्यादा पिया यहाँ का लहू। जिस दिन इन खूराकों की कमी हो आई, उन्हें फिर शासन में रस नहीं मिला—पलटकर चल दिए। यासीन साहब···

मुश्किल से हुस्ना उठकर बैठ गई। कहने लगी—हकीकत में यह मुल्क आप लोगों का है नहीं। जभी कुछ हजार आदर्शवादी मुसलमानों के सिवाय बाकी को देश की आजादी के लिए कोई सिर-दर्द ही नहीं था। तवारीख को पता है, इस मुल्क से मुसलमानों का लहू का सम्बन्ध नहीं रहा है, यह उनकी कब्जा की हुई जायदाद है। इसीलिए जननी के अंग-भंग को इस आसानी से तैयार हो गए। मुसलमानों ने मेल नहीं, समझौता चाहा; प्यार नहीं, बटवारे की खाहिश की। पाकिस्तान मिल जाने से मुसलमान इसीलिए खुशी से गद्गद हैं कि यह लूट का माल है। लेकिन अंग-भंग के बाद जननी के बदन से बह रही है लहू की धारा—उसकी संतान को इसकी जो तकलीफ है, उसे आप क्या समझें ?

हुस्ना का कहना खत्म हुआ कि यासीन बोल उठे—आप क्या पाकिस्तान के लिए मुसलमानों की कोई कुरबानी नहीं कबूल करतीं ?

—कुरबानी !—हुस्ना जैसे जल उठी—दंगाइयों की मौत को कुरबानी कहते हैं ? पाकिस्तान तो उच्च वर्ग के मुसलमानों की कल्पना थी और उनके बदन पर खरोंच तक न लगी। उन्होंने आगे-आगे गुंडों की फौज रखी थी, उसके पीछे रखा था इसलाम को। उन गुंडों ने जब लूट-पाट मचाई, जुल्म किए, तब अंग्रेजों के बगल में खड़े होकर आप लोगों ने तालियाँ पीटीं। आप लोगों के इस ऊधम से अंग्रेज बड़े खुश थे, लेकिन

इस गंदगी और झोंक के पीछे सूझ-बूझ की बुनियाद न देख जब-जब जनता ने बाधा दी है, तभी आपने नारा लगाया है—इसलाम खतरे में है ! मिस्र, ईरान, तुर्की, अफगानिस्तान, सूडान—सब दंग होकर यह देखते रहे कि आपने किस तरह इसलाम के चेहरे पर कालिख पोती है !

यासीन अपने को जब्त रखना जानते हैं। उन्होंने मुड़कर डॉक्टर की तरफ देखा। दोनों की नजरें मिलीं। हमीद तब से सिर झुकाए बैठे थे। अब उन्होंने हुस्ना की ओर ताका। उनके चेहरे पर आवेग की झलक दिखाई दी। उनकी आँखें एकाएक मानों खुशी की आभा से दीप्त हो उठीं। उन्हें जैसे भूत-काल की दूरी से जहान आरा की आवाज सुनाई पड़ रही थी।

यासीन साहब बड़े धीरज से, खीज से वह सस्ता भाषण सुनते जा रहे थे। वह हमीद जैसे न थे, जो औरतपने पर ताली पीटते है और सूने में वासना की लार टपकाकर स्त्रियों के दरबार में दरखास्त पेश करते हैं। ऐसों को वे नफरत करते हैं। उन्होंने अधिकारियों को यह सूचित करने की सोची कि इस औरत का सुधार संभव न हो सका।

मरीज की हालत सुधरी देख यासीन अपने साथियों के साथ उठ खड़े हुए। हमीद साहब की भी मुलाकात का समय खत्म हो चुका। सो एक-एक करके सभी चले गए। यही तय पाया कि सीढ़ी के नीचेवाले कमरे में मोतिया रहेगी।

खान-पान के बारे में हुस्ना के मन में एक खौफ-सा था। काफी दवा-दारू लेने के बाद भी ऐसा होता है कि खाने के बाद ही विकार पैदा होता है। लेकिन वह ठहरी कैदी, उसकी इच्छा-अनिच्छा का दाम ही क्या ! उसकी सेहत बिगड़ने से अधिकारियों की बदनामी होगी। पाकिस्तानी शासन-तंत्र शायद तेरह सौ साल पहले बना था, उसमें शायद ऐसा जिक्र है कि राष्ट्र-विरोधी किसी भी आदमी को श्रद्धा से देखना चाहिए। सो मोतिया ने उसे जतन से खिलाया, जूठे बर्त्तन ले गई और बत्ती को मद्धिम करके दरवाजे के बाहर रख गई।

अब वह बहुत कुछ ठीक है। नीचे जो बात हो रही थी वह धीरे-धीरे थम गई। दुमंजिले में सन्नाटा—किसी-किसी दरवाजे और खिड़की पर छिटककर पड़ रही थी चाँदनी। आज अब एक तरह से छुट्टी मिल गई। अब कोई ऊपर नहीं आने का।

ऐसे समय पाँव दबाए कोई छाया-मूर्ति दरवाजे से अंदर आयी और हुस्ना की चारपाई के पास पहुँची। बिस्तर पर बिलकुल उसकी गोद के पास बैठकर उसने हुस्ना को जकड़ लिया।

अपने दुबले हाथ से उसकी गर्दन को लपेटकर हुस्ना ने धीमे से उसके कानों में पूछा—भोजन कर चुके थे? वे जतन से खिलाते तो हैं तुम्हें?

अत्रि फफक रहा था। हुस्ना के बदन से दवा की एक तरह की तीखी गंध आ रही थी, फिर भी मुँह गाड़कर अत्रि लगातार रोता जा रहा था। कहीं वह आवाज सीढ़ी के नीचे तक जा रहे, तो खैर नहीं। मोतिया आ धमकेगी। अत्रि के यों छिपकर आने-जाने का इंतजाम हमीद ने ही कर दिया था। बुड्ढे अली मियाँ की मदद से किसी सिपाही को घूस देकर वे अत्रि को हुस्ना की सेवा के लिए रात को ऊपर भेज देते। छत का पानी निकलने के लिए जो पाइप लगा था, उसी के सहारे अत्रि ऊपर आ जाता और सुबह के पहले-पहले उतरकर हमीद के यहाँ चला जाता। हुस्ना पर हमीद का यह ऋण मामूली न था।

हुस्ना ने डरते हुए बाहर की ओर देखा और अत्रि के कानों में कहा—चुप भी रह बदनसीब, यह तुझसे किसने कह दिया कि बीमार पड़ने से कोई चंगा नहीं होता? डर किस बात का?

फफककर वह बोला—आखिर हमीद साहब ने कहा क्यों कि तुम अब न बचोगी?

—बेशक बचूंगी।—हुस्ना बोली—देख लेना, मैं बेहद बचूंगी—एक सौ पच्चीस साल की उम्र तक। सब लोग मर भी जाएँगे तो भी मैं बचूंगी।

—लेकिन ये लोग जो तुम्हें मार डालना चाहते हैं ?

हुस्ना बोली—झूठ है, सरासर झूठ। मैं खुद न मरना चाहूँ, तो मार कौन सकता है मुझे ? तू बड़ा हो जा भैया, फिर मैं जरूर बचूँगी। इस अधोगति से तू ऊपर न उठ सका, तो उसी को मेरी मौत समझ ले।

अत्रि ने यह सुना ही नहीं। कहा—हमीद साहब तो यही कहते आ रहे हैं कि ये लोग तुम्हें जहर खिलाकर मार डालना चाह रहे हैं।

हुस्ना खुलकर हँस पड़ी। बोली—तेरे हमीद साहब भी एक ही बेवकूफ है। जिसके अंदर खुद ही इतना जहर भरा है, उसे जहर कौन मूरख खिलाएगा ? जहर से जहर का असर जाता नहीं रहेगा ? एक बात सुन, कभी किसी से अश्रद्धा मत कर, डर और संदेह मत रख।

—जीजी !

—क्यों भैया ?

—मैं जानता हूँ, ये तुम्हें जीने नही देना चाहते।

हुस्ना मीठे स्वर में बोली—तो मैं भी तुझे वचन देती हूँ, मैं किसी भी तरह मरने की नहीं। तूने किस्सा नहीं सुना है, दधीचि कभी मरता नहीं ? गुजरते समय वह अपनी हड्डी छोड़ जाता है, उसी हड्डी से बनता है वज्र। यह कहानी तूने सुनी नही ? एक बात तुझे कह रखूँ, डरकर कभी भाग मत खड़े होना। जो डराता है, वह डरपोक है और जो डरता है, वह उससे भी डरपोक !

जरा देर बाद अत्रि ने फिर पुकारा—जीजी !

—क्या है भैया ?

—यहाँ के हजारों-हजार लोगों ने कहा था कि वे तुम्हारे लिए अपनी जान देंगे। आज लेकिन कहाँ हैं वे ? उनके क्या कान नहीं, आँखें नहीं, मन नहीं ?

अत्रि के बदन पर हाथ रखकर हुस्ना ने शान्त स्वर में कहा—वे अब जी नहीं रहे हैं भैया !

क्षणिक स्नेह के आश्रय में वह बालक अपने आनंद के इस क्षेत्र का

तृप्ति के साथ उपभोग करने लगा। हुस्ना के बदन पर उसने कंबल डाल दिया। कभी-कभी उसके गले से कैसी तो आवाज निकल रही थी। एक आर्त्त स्वर, दूसरे शब्द में उसे रोना कह सकते हैं। कह सकते हैं, यह भूखी जिंदगी की घुटती हुई पीड़ा है, लांछित और वंचित मानवता का मानों एक गूढ़तम उल्लास है।

झटपट हुस्ना ने अत्रि के हाथों पर हथेली रख दी। उसके बाद बोली—डेढ़ महीना के करीब तो हो गया, तेरे बड़े भैया ने खत का जवाब कहाँ दिया ? डाक में डाल तो दिया था खत को ?

अत्रि बोला—अपने हाथों डाला है मैंने।

मन-ही-मन हुस्ना बोली—खत मीरा को भी मिलता तो जवाब आता। अच्छा, अब तू सो जा अत्रि, मैं ठीक समय पर जगा दूँगी।

अत्रि फिर बेचैन होकर उठ बैठा। कहा—जीजी, तुम्हारी देह तो तवे-सी जल रही है। बुखार तो नहीं रहता था तुम्हें ?

—नहीं रहता था !—हुस्ना हँसी—खैर, आने दो बुखार। हुआ तो क्या हुआ ! बीमार हूँ, बुखार नहीं आएगा ? तुझे खाक अक्ल नहीं है। जरा बुखार देखा कि चौंक उठता है।

अत्रि बोला—तुमने कहा था, मैं भाग जाऊँगी ?

हुस्ना बोली—नहीं, भागूँगी नही। भागते लोग डर से हैं। तू देख तो तमाशा, सारे बन्धन ही तोड़ दूँगी मैं। फिर कौन तो रोकता है मुझे ? तेरे साथ चलूँ तो तू रोटी-कपड़े का इंतजाम कर लेगा ?

—बताओ, कब चल रही हो ? उस दिन मैं एक-एक को देख लूँगा। मुझे और कुछ नहीं चाहिए, केवल तुमको ले चलूँगा, बस।

—कहाँ ले चलेगा ?

—वही, जहाँ तुमने कहा था, बूबू के देश में। वहाँ खेती करूँगा, कपड़े बुनूँगा।

अचानक अँधेरे मे ताककर हुस्ना ने पुकारा—कौन ? कौन है वहाँ ? प्रतिध्वनि घुमड़ने लगी। डरकर अत्रि ने कंबल से उसके मुँह

को दबा दिया। धीरे-धीरे घबराकर बोला—चुप, चुप रहो जीजी। कोई नहीं है। वह कुछ भी नहीं। चुप रहो।

उमंग में हुस्ना ने कहा—तू सो जा, मुझे अभी तुरत जाना है अत्रि। देख, वह कॉमरेड आ गया।

हुस्ना तेज बुख़ार रहते हुए भी उठ बैठी। घबराकर अत्रि ने कहा—कहाँ जाओगी तुम? चुप रहो...अनर्थ न करो।

अचानक हुस्ना चुप हो गई। उसका सारा शरीर काँप रहा था। लेकिन फिर वह बोल पड़ी। अँधेरे की तरफ एकटक देखती हुई वह बोल उठी—तेरा कहना सही नहीं है कॉमरेड। तू यहाँ का कवि है। इस देश से तेरा आत्मिक सम्बन्ध था, कायिक नहीं।

—जीजी! जीजी! चुप रहो...

अत्रि के आलिंगन से मुक्त होकर बिस्तर से उतरने की कोशिश करती हुई हुस्ना बोली—मैं तुझे जानने के लिए उस ऊँचाई तक नहीं पहुँच सकती—तू उतरकर खड़ा हो। पास आ।

नीचे तक गले की आवाज पहुँच गई। पलक मारते अत्रि चारपाई से उतर पड़ा और बचाव का खयाल आते ही वह दरवाजे की तरफ भागा। लेकिन तब तक एक सिपाही को साथ लेकर मोतिया ऊपर आ पहुँची और अत्रि पकड़ लिया गया।

उल्लास से हुस्ना हँस रही थी—कॉमरेड, ये बड़ी-बड़ी बातें रहने दे। एक जीवन का सारा दुःख मिटा देना क्या सार्थकता नहीं? एक जीवन के चरम प्रकाश को रख जाना क्या उसका सच्चा परिचय नहीं? तू कवि है, मेरे यथार्थ स्वप्न को तू देख ले।

बिस्तर से उतरकर हुस्ना खुशी-खुशी एक तरफ को बढ़ी। हँसती हुई कहने लगी—मेरी तुम लोगों के सामने यह प्रतिज्ञा थी कि मैं हाथ में तलवार लेकर विप्लव में कूद पड़ूँगी। मैं विधाता का वही उद्धत प्रश्न हूँ। वह तलवार मैं खुद हूँ—तू आँख खोलकर देख कॉमरेड। मैं वही धारवाली ताकत हूँ, तूने मेरी झलक-भर देखी, मेरा इस्तेमाल न

किया ।

पैर उसके रपट रहे थे । पाँव खिसटती हुई वह बढ़ रही थी। मोतिया ने उसे थाम लिया। इस बीच नीचे से और-और लोग आ पहुँचे। डॉक्टर आये—उनके साथ आया उनका सहकारी। यासीन साहब के पास खबर भेजी गई—मरीज की हालत आज बिगड़ गई है। आप जल्दी ही आयें।

एक सिपाही दौड़ाया गया। आधे ही घंटे में निंद्राई आँखों खीझे-खीझे यासीन साहब आये। आते ही उन्हें अत्रिवाली वारदात सुनने को मिली। वह उस समय बाहर सिपाही के कब्जे में थर-थर काँप रहा था। यासीन को पता था कि यह लड़का हमीद के यहाँ रहता है, सो वह हमीद पर बिगड़ उठे। लेकिन चूँकि हमीद एक उच्च अधिकारी थे, इसलिए उनका क्रोध उनके बजाए अत्रि पर टूटा। यासीन ने अत्रि के गाल पर जोरों का एक तमाचा जड़ दिया और उसे लात मारकर नीचे गिरा दिया।

इस हमले के पहले तक अत्रि की छाती धड़क रही थी—आँखें छल-छला रही थीं। मार पड़ते ही वह शान्त हो गया। उसका सारा डर भाग गया। उसकी नजर सख्त हो आई, दाँत से दाँत रगड़कर उसने निश्चय किया। उसके एक कान में गुदगुदी-सी लगी। हमीद का तमाचा जोरों का पड़ा था। उसके कान से लहू निकलकर गाल पर से बहने लगा।

रात चाहे जितनी भी क्यों न हुई हो, अत्रि महल में न गया। वह गाँव के रास्ते पर चलने लगा और कुछ ही देर में चाँदनी की धूप-छाँही में ओझल हो गया।

यासीन को हुस्ना की शक्ल आज अच्छी न लगी। कै के साथ लहू के छींटे। माथे का विकार आज दिन से ही एक-सा बना रहा। तेज बुखार होना चिंता का कारण था। कल तक वह जो बकबक करती थी, उसमें एक क्रम था। आज उसकी बात का न सिर है न पैर। डॉक्टर ने

दो सुइयाँ दीं। लेकिन कुछ ही देर में उसके बदन से कोई तरल-सी चीज निकल आई। बुखार, उसके साथ विकार। उसे तुरत अस्पताल भेजने का हुक्म हुआ। हमीद साहब बहुत ही दुखित-से अकेले खड़े थे। उन्होंने रोशनी के बाहर एक बार अँधेरे को देखा। देखा, उनके उस फ़रमाबरदार सिपाही की आँखों से आँसू बह रहे थे।

इस अस्पताल को जीवेन्द्रनारायण ने कायम किया था। चार-पाँच मरीजों के लिए खाट का प्रबन्ध। उनकी यह कोशिश रही थी कि हर गाँव स्वयं संपूर्ण हो। अस्पताल खूब बड़ा बन सके, उसके पहले ही पाकिस्तान बन गया। यह थाने के पीछे पड़ता था। कोई डेढ़ साल पहले, जब हारूं मियाँ दारोगा थे, अधिकारियों ने इस अस्पताल को सालाना ढाई सौ रुपये की मदद दी थी। अब वह सरकारी अस्पताल है।

दूसरे दिन दोपहर के करीब ऊपर से हुक्म आया कि "चूँकि राज-बंदिनी हुस्नबानू की सेहत ठीक नहीं, इसलिए यह तय किया गया है कि उन्हें बिना किसी शर्त के तुरत छोड़ दिया जाए। वह एक लोकप्रिय देश-सेविका है, लिहाज़ा लोगों के स्वार्थ को मद्देनजर रखते हुए ही सरकार ने यह निश्चय किया है। इससे जनता और सरकार, दोनों का लाभ होगा।" हस्ताक्षर पढ़ा नहीं जाता था।

यह खबर जो मिली तो हमीद जैसे दूसरे-दूसरे बहुतेरे लोगों ने यही सोचा कि यह हुक्मनामा बहुत पहले से यासीन की जेब में घूम रहा है। इस कागज पर उन्होंने महज एक तारीख डाल दी है।

पता चला, पंद्रह घंटे हो गए मगर हुस्ना अभी तक होश में नहीं आई। अस्पताल के चारों तरफ पहरा था। इजाजत बिना कोई अंदर नहीं जा सकता। अंदर डॉक्टरों के सिवा थे हमीद साहब और हुस्ना की मुक्ति का हुक्मनामा जेब में डाले खुद यासीन। वह यही चाह रहे थे कि हुस्ना की हालत जरा भी सुधर जाए कि उसे छोड़ दें। यों सरकारी अस्पताल की जिम्मेदारी भी तो है। बेहोशी और ऐसी लाचारी में बीमार को बाहर निकाल दें तो पाकिस्तान की बदनामी होगी। हालत में कल-जैसा भी सुधार आ

जाए तो वह खुद गाँववालों को खबर देंगे कि वे लोग आकर अपनी प्रिय जनसेविका को लिवा जाएँ। इसमें शक नहीं कि हुस्नबानू इस इलाके की जननेत्री थी। कुरान में ऐसा लिखा है कि जनता के किसी नेता का अपमान नहीं होना चाहिए।

साँझ बीत गई। यासीन साहब के साथ बैठकर लोग घड़ियाँ गिनने लगे।

सरदी पड़ गई है। बाहर से ठंड आ रही थी। डॉक्टर के इशारे से मोतिया ने कमरे के तीन दरवाजे बंद कर दिए। पेट्रोमेक्स जल रहा था। उसमें शायद तेल की कमी हो आई थी। बीच-बीच में वह दप्-दप् कर उठता था। स्यारों ने हुआ-हुक्का किया। कल आधी रात से हुस्ना को अब तक होश नहीं आया। लगभग चौबीस घंटे हो चले।

अचानक बाहर आवाज हुई। गोली की उस आवाज़ से यासीन साहब चौंक उठे। उसके बाद दबा-दबा शोरगुल सुनाई पड़ा। थाने के पहरेदार की चीख सुनाई दी—आग लगी!—अस्पताल का छप्पर जोरों से जल उठा। कुछ क्षण के लिए यासीन काठ के मारे-से रहे। फिर एक ओर को दौड़ पड़े। उसी समय झूलता हुआ पेट्रोमेक्स गिरकर चूर-चूर हो गया। कमरा अँधेरा हो गया। अँधेरे में दरवाजा टटोलकर यासीन बाहर जाने लगे कि फिर गोली की आवाज हुई।

यासीन वहीं बैठ गए। उन्हें चोट आई। बेबस वहीं बैठकर उन्होंने गौर किया, बहुत-से लोग दौड़धूप कर रहे हैं। धुएँ में उनकी शक्ल पहचानना मुश्किल। चाँदनी को मंद बनाते हुए उनकी आँखों के आगे अस्पताल में आग जल उठी थी। ऐसा नहीं कि सिर्फ वही जल मरेंगे, हुस्नबानू भी जल जाएगी। अब उसे बचाना किसी भी तरह संभव न था।

थाने के पहरेदार यासीन का नाम लेकर पुकार मचा रहे थे। ऐसे में आग की लपटों में कोई उन्हे बचाने के लिए कूद पड़ा। इसी को शायद लोग अग्निपरीक्षा कहते हैं! पाकिस्तान को इसी में से उबरना

पड़ेगा ! वह आदमी यासीन को घसीटता हुआ नीचे ले गया, जैसे बकरीद में कोई ज़िबह किए हुए जानवर को खींच ले जाता है। यासीन का दायाँ हाथ और एक पाँव एकबारगी बेकार हो गया था। पाँव के तलवे से लहू बह रहा था। किसी दिन वे चंगे जरूर होंगे और तब इस घटना का कोई प्रतिकार भी जरूर करेंगे। इस साजिश का उन्हें पता चलाना ही होगा।

हुस्ना की मुक्ति का हुक्मनामा उनकी जेब में लहू से रँगा पड़ा था। पॉकेट में उसे लिए हुए ही दर्द से वे बेचैन बैठे रहे। सारी रात उनकी निगाहों के सामने अस्पताल और थाना जलता रहा। सरदी के दिनों छप्पर की फूस सूखी थी, सो जलने के बाद जो बचा, उसको भस्मावशेष कहते हैं।

दूसरे दिन यासीन के नश्तर की तैयारी हो रही थी कि थाने का एक सिपाही संवाद लेकर आया। संवाद बड़ा आकर्षक था। श्रीमती हुस्नबानू एक नाव पर मुलायम बिछौने पर सो रही हैं। बहुत बीमार हैं, लेकिन सुबह की तरफ उन्हें होश आया है। मल्लाह आपके इस आदेश का इंतजार कर रहा है कि क्या करे।

यासीन साहब की जेब से उसके छुटकारे का वह हुक्मनामा निकाल-कर उसे दिया गया जो लहू से रँग गया था। श्रीमती हुस्नबानू को मुक्ति दे दी गई है। उन पर अब कोई जुर्म नहीं, कोई रोक नहीं।

बाद में घटना का पता चला। जले आदमी का बाकी भी कुछ रहता है ? चिता पर सब कुछ राख हो जाता है। लेकिन हमीद साहब का कंकाल राख न हुआ। बेहोश हुस्ना को उन्होंने बाहर ले जाने की कोशिश की थी—तब तक जलते हुए छप्पर का एक हिस्सा उन पर आ गिरा। हुस्ना को जाने कौन लोग तो फौरन उठा ले गए। परन्तु हमीद की आँखों में आग की लहर लगी। चौंधियाकर वे उलझ गए और निकल न सके। उनका अधजला शरीर मिला। हुस्ना के प्रति उनके मौन और निष्क्रिय प्रेम की महिमा पाकिस्तान की मधुमती नदी की लहरों में सदा

के लिए मुखर हो रही। आग जब खुलकर खेल रही थी, तब चीखते हुए अत्रि ने अस्पताल में घुसने की कोशिश की। मरते दम तक वह लपटों से लड़कर अपनी जीजी को खोजता फिरा।

लेकिन उस अभागे बालक को शान्त हो जाना पड़ा। दूसरे दिन उसकी अधजली देह के साथ मोतिया की लाश भी मिली। ऐसा लगा, अत्रि ने उसे अपनी जीजी समझकर जकड़ लिया था। इस घटना के पास हिरण रहा होता तो कहता, अत्रि के लिए बाहर की आग थी क्या, वह बेचारा तो अपने मन की आग में कब का जल मरा था!

तेईस

हुस्ना श्रेणीविहीन समाज की कहा करती थी। लेकिन ऐसा है कौन समाज जिसमें श्रेणी नहीं? व्यक्ति-स्वतंत्रता से ही श्रेणी कायम हो जाती है। यह कौन नहीं जानता कि पांडित्य, मौलिक चिंतिन, कल्पना-प्रवणता—इसी पर बनती है श्रेणी। मुनि-ऋषि, धर्मप्रचारक, नेता, चिकित्सक, कवि—यही हैं श्रेणी। हिरण से इसी पर हुसंना तर्क कर बैठती।

हुस्ना कहती—सबके नीचे बसेरा किनका है? किनके ऊपर सब प्रकार की श्रेणी और स्तर खड़ा रहता है?

मीरा कहती—उन्हें हम नही चीन्हते, आँखों भी नहीं देखा है उनको।

हुस्ना कहती—मैंने देखा है, वे लोग सबके पैरों तले रहते हैं। वे मिट्टी के लोंदे हैं, बालू के दाने—सदा के गूँगे, कभी नहीं खुलती है जबान उनकी, वे कभी अपना सिर नहीं उठाते। संसार के सभी देशों में वे हैं···सदा के गए-बीते, गरीब। वे समंदर को बाँधते है, जंगल साफ करते हैं, नगर बसाते

हैं, और एक रोज महाकाल की गोद में सो जाते हैं। न तो उन्हें होता है संपत का लोभ, न अधिकार का मोह और न संग्रह की आसक्ति। सबकी निगाहों की आड़ में वे काम करते जाते हैं। उन्हें कहते हैं महाजनता, महासागर की लहरें हैं वे—अनगिन, गिनती से परे।

और हिरण कहता—मैं उन लोगों का कवि हूँ।

हुस्ना हँस पड़ती। मीरा कहती—उन्हीं लोगों में पैदा हुए बिना उनका कवि कोई नहीं बन सकता। उनकी भाषा अलग होती है, अलग ढंग का होता है उनका सुख-दुःख, हँसी-रुदन का बोध।

हुस्ना कहती—संस्कार से दूर, शिक्षित मनोवृत्ति से परे, अभ्यस्त चिंतन और कल्पना से बहुत दूर—जहाँ महाजनता से सटे-सटे होते हैं मिट्टी के कतरे, बालू के दाने—वहाँ, उन्हीं लोगों के बीच खड़ा होना होगा। उनकी जात नहीं है, कोई धर्म नहीं, वे काम करनेवाले हैं, केवल कर्मी।

हिरण कहता—वे महज़ जीव हैं! जन्म पाने के नाते मनुष्य का नाम-भर लिया है और क्या?

और वह, जिसे मनुष्यता कहते हैं। उन्हें ऊपर उठाना, यह एक उत्तरदायित्व सभ्यता का था। एक वर्ग दूसरे के सिर पर से ऊपर उठा किया है। अधिकारलोलुपता, धन का लाभ, प्रभुता के मोह से वर्ग ही बनते हैं—सभ्यता में यह एक स्वार्थपरता है। इसीलिए वर्ग सदा स्वार्थी होता है, दगा देनेवाला होता है।

हिरण सवाल करता—तू क्या सभ्यता के पहिए को पीछे घुमाकर उसे बर्बर युग को ले जाना चाहती है?

हुस्ना कहती—हरगिज नहीं। हजारों-हजार साल से जो हिसाब-किताब करते रहे हैं, उससे यह गलती मालूम हो गई है। इसीलिए उसका सुधार करना चाहते हैं। इसीलिए क्रांति लाने की जरूरत है। सभ्यता नये सिर से पैदा हो, नई गंगा को लेकर नये भगीरथ आएँ।

हुस्ना की ये बातें उन्हें याद थीं और उन्होंने यह शपथ ली थी कि हम निम्न वर्ग में उतरेंगे—सबसे पीछे, उनकी भाषा में, सबके पैरों के नीचे। यह हुआ श्रेणी से बाहर होना, समग्र समाज-चेतना से बाहर। लौकिकता, दुनियावी तौर-तरीके, चिराचरित मनोवृत्ति और बुद्धि-विवेक के निर्देश जहाँ मनोविज्ञान पर आवरण नहीं डाले हों—वहाँ जाकर खड़ा होना। बेजा क्या ! जीवन के मामले में यह अगर नवीनतम कसौटी हो, तो इसे आज़मा ही लेना चाहिए।

जाने से पहले मीरा ने कहा था—नहीं-नही, तुझे सत्य का आश्रय लेना पड़ेगा। जब तक अपने को सही-सही जान नहीं लेता, तब तक आनंद नहीं आएगा। सर्वोत्तम ऐश्वर्य-लाभ ही सर्वत्यागी की एकमात्र कामना हो।

उसके कंठ में फिर हुस्ना आ बैठी। मीरा फिर बोली—राज-ऐश्वर्य मैं देख आई हूँ, अब गरीबों का ऐश्वर्य देखने जा रही हूँ। श्रेणी विनाश की जरूरत थी।

वे रिफ़ुजी कैम्प में गये थे। चारों ओर अपार लोगों को देखकर मीरा ने कहा था—यही है महाजनता का तीर्थ—इसी का नाम है मोहमुक्ति ! यहाँ विपुल सांत्वना है, विशाल सम्वेदना।

हिरण ने कहा था—यह क्या अकाल मृत्यु का मसान नहीं है ?

—नहीं।—मीरा ने जवाब दिया था—असंतोष की आग में यहाँ एक ऐसा धातु जलेगा जो पत्थर से भी सहिष्णु, लोहे से भी कठिन है। यह है आनेवाले युग का गवेषणागार। इस भट्टी से जो आग की वासना लिए निकलेंगे, वही हैं हुस्ना के वांछित मनुष्य। वही वास्तविक शान्ति को लाएँगे, सच्ची आजादी को लाएँगे। अब तू जा सकता है।

हिरण ने कहा—मैं जाऊँ ? तू यहाँ अकेली रहेगी ?

मीरा बोली—अकेली क्यों, लाखों की भीड़ में रहूँगी। यहाँ बड़ी है वेदना, उत्पीड़न उससे भी बड़ा है—अपने और सारे परिचय से मुक्त होकर इस मरुभूमि में बालू बनकर रहना चाहती हूँ। अब तेरे जाने से

मुझे कोई दुःख न होगा।

तीखी धूप की तेजी में मीरा का चेहरा गौरव से दमक रहा था। हिरण ने पूछा—यहाँ क्या करेगी तू ?

—जिस काम में खुशी है, वही करूँगी। रोग, पीड़ा, मौत, गरीबी और निराशा के शिकंजे से उन्हें निकालूँगी, इन दो हाथों की ताकत से जितना बन सकेगा !

हिरण जरा देर चुप रहा। उसके बाद पूछा—मैं कहाँ जाऊँ ?

मीरा ने बढ़कर हिरण का हाथ पकड़ लिया। बोली—तेरी राह मर्दोंवाली राह है। तू तमाम ताकत बटोरकर हुस्ना को छुड़ा ला। उस पर बराबर धार चढ़ाते रहना ताकि ज़ंग न लग जाए।

हिरण ने पूछा—लेकिन तू क्या सच ही मेरी स्त्री नहीं ?

मीरा ने उसके चरणों की धूल अपने माथे लगाई। बोली—यह मैं तुझसे ज्यादा जानती भी कितनी हूँ ? बच्चे की तरह मेरी स्वीकृति क्यों अदा कर लेना चाहता है तू ?

उसकी दोनों आँखें भीग गईं। हिरण चला गया।

कुछ दिनों के बाद हिरण फिर एक बार आया। उसके हाथ में एक अखबार था।

इन्हीं कुछ दिनों में उन लोगों का चेहरा बहुत कुछ बदल गया था। मीरा की आँखों के नीचे स्याही-सी पड़ गई थी, बिखरे केशों में गर्द, पहनावे में एक धब्बोंवाली मैली धोती। हिरण का भी वही हाल। लाल-कोर की वही धोती, पेबंद लगी वही हाफ़-कमीज। सरदियों में एक सूती चादर जरूर नसीब हो गई थी, सरदियों की जरूरत चुकाकर वह चली गई। फटी चप्पल—घुटने तक धूल। पुराने दोस्त उसके देखें तो पहचान न पाएँ।

हिरण ने अखबार को मीरा के सामने फैलाया—

"कलकत्ता हाईकोर्ट के महामान्य सेशन जज के इजलास में सुमित्रा नाम की स्त्री पर हत्या की चेष्टा का जो मामला चल रहा था, उसका

फैसला सुना दिया गया। कलकत्ते के एक सम्पन्न नागरिक और जमींदार वेणीमाधव मल्लिक उर्फ वेणु मल्लिक की हत्या की चेष्टा के जुर्म में सुमित्रा को दस साल की सख्त कैद की सजा सुनाई गई। कहा जाता है, पूर्वी बंगाल से आई हुई औरत वेणु मल्लिक की मदद से किसी टोले में रहती थी और नैतिक निंदा फैलाने का डर दिखाकर उससे रुपये ऐंठा करती थी। छान-बीन से पता चला, अपने लड़के की खोज में पूर्व-बंग जाने के लिए सुमित्रा ने राह-खर्च के लिए कुछ रुपये माँगे। मल्लिक ने रुपये देने में असमर्थता दिखाई। इस पर सुमित्रा ने वेणु मल्लिक पर एक हँसिए से प्रहार करना शुरू कर दिया कि उसकी जान ले ले। वेणु मल्लिक जब बेहोश होकर गिर पड़ा, तो सुमित्रा ने उसके दोनों कान काट लिए। पता चला कि सुमित्रा पूर्वी बंगाल के एक सम्पन्न जमींदार की विधवा है। मुकदमे के दौरान मे यह भी जाना गया कि उसका इकलौता बेटा हाजीपुर की एक अगलग्गी में जल मरा। सरकार की तरफ से उसी टोले की किसी विनोदिनी नाम की स्त्री ने गवाही दी।"

मीरा ने अपनी गीली आँखें ऊपर उठाईं। हिरण ने कहा—अत्रि तो समझो जी गया। लेकिन दुःख इस बात का है कि चाची ने हँसिया अपनी गर्दन पर नहीं चला ली !

मीरा कुछ क्षण चुप हो रही। उसके बाद आँचल से आँखें पोंछकर कहा—अत्रि की मौत रहस्यमयी-सी लगती है ?

हिरण के म्लान मुखड़े पर हँसी झलकी। कहा—नहीं, इसमें कोई रहस्य नहीं।

मीरा ने सिर उठाकर सिर्फ ताका।

हिरण बोला—यह पहली चिनगारी है, शायद हुस्ना का पहला इम्तिहान।—कहते-कहते अपनी जेब से एक चिट्ठी निकालकर हिरण ने मीरा को दी।

यह चिट्ठी फकीरुद्दीन के हरूफ़ में थी। हुस्ना ने लिखाई थी।—"कॉमरेड, समझ नहीं सकी, पहली चिट्ठी का जवाब तूने क्यों नहीं दिया।

शायद जी से पुकारने पर तू आता है। रोना क्या सुन पाता है तू ? मैं छोड़ दी गई हूँ और बूबू के यहाँ जा रही हूँ। मीरा और चाची के साथ तेरे आने की बात थी न ? अत्रि चला गया, उसे न रोक सकी। अपने को रखना भी अब मुश्किल हो रहा है। अगर आने का इरादा हो इधर, तो आसाम की तरफ से आना—अगरतल्ला होकर। हमाद अगर जिन्दा होता, तो मेरा नाम होता हमीदाबानू। यह तेरा ही कहा है।"

खत पढ़कर मीरा बोली—तेरे साथ मैं भी चलूँगी।

हिरण ने कहा—जाने की अब जरूरत भी क्या रही ? खत तो दो महीने पहले का लिखा है। तालतल्ला डाकखाने में यह पड़ा मिला। सोच यहरहा हूँ, हुस्ना तो बूबू के यहाँ पड़ी रहनेवाली लड़की नहीं !

मीरा ने कहा—उसने आखिर यह क्यों लिखा है कि खुद को भी रखना अब मुश्किल हो रहा है ? उँहूँ, मेरे गये बिना न चलने का।

मीरा बेचैन हो उठी। यक-ब-यक सूखी नदी में ज्वार उठ आया।

हिरण बोला—और कहीं भेंट न हो उससे ? बेहतर है कि हम उसका यहीं इंतजार करें।

मीरा बोली—नहीं-नहीं, साल-भर से भी ज्यादा हो गया, वह अकेली है। अगर वह आ सकती तो खत नहीं लिखती। चल चलें। न मिली तो हम उसे ढूँढ़ते ही रहेंगे। तू चल तो।—उत्सुक आँखें लिए मीरा और करीब आ गई।

हिरण ने कहा—ऐसी शक्ल को लेकर तू उसके सामने खड़ी कैसे होगी ?

मीरा बोली—मेरा सारा परिचय आग में जलकर राख हो चुका है—इस शक्ल से उसे यह बात समझा सकूँगी मैं।

हिरण बोला—खैर, चल। लेकिन वह अगर सवाल करे कि हम दोनों आज भी मिल क्यों नहीं पाए, तो क्या जवाब देगी तू ?

दो कदम बढ़कर मीरा ठिठक गई। कहा—ठीक इसका उलटा सवाल

भी तो उठ सकता है ? वह अगर यह जानना चाहे कि जो औरत गंदगी मे एड़ी से चोटी तक डूब गई थी, उसे निकालने में तूने अपने पाकदामन में क्यों धब्बा लगाया ?

—इसका जवाब मैं दूँगा उसे ।—हिरण आगे बढ़ा ।

रिफ़ुजी कैम्प से दोनों निकल पड़े । अब उनका कोई परिचय न रहा —वे सर्वहारा की जमात के हो गए । यह सवाल उठ सकता है: आखिर उन दोनों की बसी-बसाई वह गिरस्ती कहाँ गई ? कहाँ गई रुपयों की वह पोटली ? उन्हें गुजर-बसर का सहारा तो था, फिर गरीबी को शौकिया गले लगाने का क्या मतलब ? यह नादानी क्यों ?

इस सवाल का जवाब उन अनेकों के पास है जोकि आज भी तादाद में लाखों है । जोकि अपनी मिट्टी से उजड़ गए है, जो भरोसे के जाने-चीन्हे रास्ते से भटक गए हैं ।

जो महज़ जीने की कोशिशों मे ही जी रहे हैं, वे खूब जानते हैं कि वे जानवर के सिवाय और कुछ कहाने लायक नहीं रह गए हैं । और जो ऐसे खयाल से परे हैं, उनके लिए गिरस्ती कैसी झूठ है, कितना बड़ा धोखा है रुपयों की पोटली ! सो उन लोगों ने अपनी सारी पूँजी सर्व-हाराओं को बाँट दी, सारे रुपये पुनर्वास-कोष में जमा कर दिए ।

उन्होंने अहंकार को मिटा देना चाहा था । चाहा था कि भय और अश्रद्धा मिट जाए । उन्होंने सेवा से, कर्म से विजय की सोची थी । भीख के लिए हाथ न फैलाकर जूठन पर जीने का संकल्प किया था । सबसे नीचे रहकर वे सबका भार उठाएँगे । दोनों एक-दूसरे से अलग रहेंगे—स्नेह-मोह की माया से परे । दो के मिलन से धरती छोटी हो जाती है—वियोग की वेदना से होता है उसका विस्तार ।

*

* *

आधे फागुन के लगभग मधुमती में चौंर पड़ गया । उसकी एक शाखा आड़ी-टेढ़ी पूरब को बह आई । बरसात के दिनों उसमें भरपूर

पानी रहता है—किसी-किसी साल मैना-चौर को डुबाता हुआ पानी गाँव में घुस आता है। लेकिन सरदियों में पानी की वह पतली-सी धार जाने कहाँ तो बालू में गुम जाती है। गाय-बैलों को पानी नहीं मिलता है। ऐसे में मवेशी मैना-चौर की झील को आने लगते हैं। उस झील के बगल से चलिए, दक्खिन को है धौलामाटी। कभी यहाँ निलहों के जुल्म जारी थे। नील की खेती होती थी। झाड़-झंकाड़ों से घिरा एक भग्नावशेष उनकी निशानी रह गया है। उस टीले पर खड़े हो जाइये तो दूर, बहुत दूर पर त्रिपुरा की गिरिमाला दिखाई पड़ती है और इधर दीखती है क्षितिज तक फैली सूनी बैहार। मधुमती के चौर पर बँधी पड़ी है नाव। उत्तरापथ से हंसों की टोली जब यहाँ नहीं आती, गाँव की चिड़ियाँ इस पानी में नहाती हैं। चारों तरफ धू-धू करती है तीखी धूप। हाहाकार करती फिरती है गरम हवा।

दूर से आ रहे हैं वे—हिरण और मीरा। निलहों के टीले पर खड़े होने से वे बिंदु-से दीखते हैं—मानव और मानवी। मानों सृष्टि के आदि में उन दोनों का उदय हुआ है—बलुआहे चौंर पर मनुष्य का प्रथम पद-चिह्न अंकित हो रहा है। कपाल से चू रहा है पसीना, तपे बालू में जल रहे हैं पॉव। लेकिन वे तीर्थयात्री हैं, दर्शन ही उनका लक्ष्य है।

बूबू के घर का किस्सा उन्हें मालूम है। फूआ उसे फुफेरी थी यानी उसके बाप की बूआ की बेटी। फूआ के दूसरे पति से एक छोटी लड़की थी। वह इसी गाँव में थी। नाम था अमीना। वह किसी खेतिहर के यहाँ बैलों का सानी लगाती और उसी से दोनों जून का खाना उसे मिलता। साँझ के बाद बूढ़े चौकीदार के यहाँ एक कोने में जाकर पड़ रहती। उन्हें पता था कि यही लड़की हुस्ना की देखभाल करेगी।

—फकीर, तेरी अम्मा कैसी हैं भैया!—दौड़कर मीरा ने जाकर उसका हाथ पकड़ लिया।

फकीरा ने उसके पाँव छुए। मीरा की बदली हुई शक्ल देखकर पहले तो उसके मुँह से बात ही न फूटी, फिर सँभलकर बोला—माँ रहीं

नहीं जीजी ! छः महीने हो गए, गुजर गई ।

हिरण ने यह सुना और गंभीर हो गया। मीरा की आँखों से आँसू बहने लगा। फकीरा ने यह भी बताया कि बूढ़े हारूं मियाँ भी चल बसे। जिनसे उन्हें कुछ सम्पर्क रहा था, ऐसे प्रायः सभी लोग चल बसे थे। कोई तो सार्थक होकर गुजरा और कोई-कोई अन्त तक कोई अर्थ ढूंढ़े न पाकर रुखसत हुआ।

मीरा मिट्टी के बर्तन में पानी ले आई थी। पीकर बर्तन को उसने फेंक दिया। पूछा—अच्छा फकीर, छुटकारा पाकर हुस्ना हाजीपुर से चल क्यों दी ?

फकीरा ने उदास आँखें हिरण पर रोपीं। उद्विग्न होकर मीरा बोली—मेरी बात का जवाब दे भैया !

हिरण ने टूटी आवाज में पूछा—क्यों भई, हुआ क्या है ?

माँ के बारे में कहते समय फकीरा शान्त था, लेकिन हुस्ना की बात आते ही उसके धीरज का बाँध टूट गया। भारी गले से वह बोला—मुझसे जो भी बना जीजी, किया। दो महीने तक मैंने कुछ उठा नहीं रखा। तुम लोगों ने बड़ी देर कर दी।

मीरा एक तरफ को दौड़ पड़ी। फकीरा पीछे-पीछे दौड़ा। हिरण के भी पैरों में वेग आया, वह वेग, जिससे नक्षत्र छिटक पड़ते हैं, जिससे छिटककर आते हैं कविता के भाव।—लेकिन हिरण ने कानों में कहा—संयम का बाँध न टूटे, शान्त रहो—लेकिन मीरा गलत राह पर दौड़ पड़ी थी। उसने सोचा था, हुस्ना ने नंदन कानन में डेरा डाला है; यूथी, मालती और मल्लिका से भर गया है आँगन उसका। मीरा उसी तपोवन की खोज में दौड़ी थी। फकीरा ने पुकारकर उसे लौटा लिया। साँस-रुँधी मीरा ने कहा—कहाँ रे ?

—यह रहा घर।

मीरा ठिठक गई। पूछा—यहाँ आदमी रहता है ?

लेकिन जवाब सुनने से पहले ही वह अन्दर दाखिल हुई। टट्टियाँ

झुक गई थीं, छप्पर में जहाँ-तहाँ फूस का पता नहीं। आँगन में ही सेंवार-भरा गढ़ा। अन्दर किवाड़-खिड़की के फाँक तो थे, पल्ले नदारद। कदम रखते ही कई पिल्ले किलबिलाने लगे। किसी कदर रहने काबिल नहीं। अन्दर अँधेरा।

हुस्ना—बहुत सम्भव हुस्ना ही—जमीन पर सोई हुई थी। बिछावन लगाया था फकीरा ने। लेकिन यहाँ भी वह निकम्मी न बैठी। कुछ-न-कुछ करके कुछ पैसे जुटाए। घर में जहाँ-तहाँ इसके सबूत थे। मीरा के पीछे-पीछे जाकर हिरण खड़ा हुआ। बोलती बन्द हो गई थी उसकी।

हुस्ना किसी तरफ ताक रही थी। ठीक किस तरफ, कहना कठिन था। आँखों की पुतलियाँ कुछ दिनों से खराब हो गई थीं। एक दूसरी से उलटी मुड़ती। गाल, गला और हाथ-पाँव में गलते हुए जख्म। हाथ-पाँव छोटे हो आए थे। उँगलियाँ आपस में सटकर टेढ़ी-मेढ़ी हो अजीब हो गई थीं। एक कान सिकुड़कर कैसा तो हो गया था। हुस्ना के अन्दर से कैसी तो एक प्रकार की आवाज निकल रही थी।

वे दोनों मानों पत्थर हो गए थे। ऐसी किसे हिम्मत जो पहले बात करे। समाधि लेकर पड़ी है महायोगिनी, उसकी नींद तोड़े कौन? हिरण ने चुपचाप फकीरा की ओर देखा। फकीरा ने दबी आवाज में कहा—अभी उस दिन तक तो जीजी को धर-पकड़कर उठा-बैठा सकता था, लेकिन एकादशी से वह एकबारगी लाचार हो गई। फिर अमावस्या आ रही है।

हुस्ना ने आँखें खोलीं। दोनों पुतलियों को एक दिशा में करने की कोशिश करती हुई बोली—कौन है रे फकीर?

आकुल होकर फकीरा ने कहा—तुम्हारी बहन है जीजी। राजा के धी-दामाद आये है। देखो।

पुतलियाँ फिर टेढ़ी हो गईं। गले की आवाज को जब्त रखने की चेष्टा करके हुस्ना क्षीण हँसी हँसी। उसके बाद धीमे से बोली—यकीन

नहीं आता फकीरा।

हिरण की अपलक आँखें मानों जलती जा रही थीं—लेकिन मीरा तो मानों टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गई। चीखकर बोली, मुझे भी यकीन नहीं आता। तुझसे ऐसा तो तय था नहीं। तूने लौटने का वायदा किया था, इसीलिए मैंने तुझे आने दिया था। तूने दगा दिया, तेरा सब झूठ निकला—सब, तू···

पलक मारते भर में हिरण ने हथेली से मीरा का मुँह दबा दिया और उसे बाहर की तरफ उठा ले जाकर कहा—चुप रहो, रोगी की तकलीफ न बढ़ाओ।

एक तरफ चूल्हे में चावल पक रहा था। चूल्हे से हाँडी को उतारते समय फकीरा फूट-फूटकर रोने लगा। उसकी पीठ पर हाथ से ठोकर देकर हिरण ने कहा—फकीरा, इतना रोता क्यों है? तेरी जीजी सोचेगी, रोना जैसे छूत की बीमारी है। आखिर में आये भी तो रोने ही के लिए। सोचेंगी, बंगाल सिर्फ रोना ही जानता है।

हुस्ना ने हाँफते हुए धीमे से आवाज दी—कॉमरेड?

हिरण ने कहा—कॉमरेड मर चुका हुस्ना।

हुस्ना की आँखों की पुतलियाँ फिर घूमने लगीं—शायद उसे अपने कॉमरेड की मौत के नजारे को देखने की ख्वाहिश थी। हिरण यह देखकर फकीरा के साथ बाहर निकल आया। अपनी परेशानी जाहिर नहीं होनी चाहिए। गले के अन्दर से कैसी तो एक व्याकुलता ठेलकर निकलती आ रही थी। उसे गले के नीचे ढकेलकर उसने पूछा—फकीरा, यहाँ डॉक्टर कहाँ मिलेगा भैया!

—डॉक्टर!—फकीरा ने कहा—यहाँ पचास मील के घेरे में कोई डॉक्टर नहीं।

हिरण के मुँह से एक चीख-सी निकल पड़ी। उसने कहा—डॉक्टर नहीं है? दवा-दारू नहीं? बचने की कोई सूरत नहीं? फिर तेरी जीजी कहती कैसे थी कि हमें खदेड़कर वह पाकिस्तान को उन्नत बनाएगी?

तेरी जीजी ने सब कुछ तो सोचा था, सिर्फ अपने मरने की ही बात क्या नहीं सोची उसने ?

फकीरा सिर झुकाए रहा।

हिरण ने पूछा—खाने को क्या देते हो ?

फकीरा ने कहा—चार दिन पहले तक तो चावल के कुछ दाने खा लेती थी, अब कुछ भी नहीं खाती।

—दूध नहीं पीती ?

—एक बूंद भी पेट में नहीं रहता।

हिरण ने पूछा—तुझे मालूम है फकीरा, इसकी यह हालत हुई कैसे ?

फकीरा बोला—कैसे हुआ, यह सारा हाजीपुर जानता है। एक जीजी ही है जो कबूल नहीं करती।

आग्रह से हिरण ने पूछा—क्या, बता तो ?

फकीरा ने सारा किस्सा कह सुनाया। अगलग्गी की कहानी, हुस्ना को बचाने के लिए अत्रि और हमीद की कुरबानी की कहानी। गोली खाकर यासीन के घायल होने का जिक्र। हुस्ना के भोजन में जहर और बदन में पारा मिलाने की बात। मार खाए हुए अत्रि की रुलाई से कैसे ग्रामवासी उत्तेजित हुए और उन्होंने थाने में आग लगा दी। अत्रि को इस बात की खबर न थी कि उसी रात हुस्ना को अस्पताल ले जाया गया था। बेहोशी की हालत में ही हुस्ना उस रात छोड़ दी गई। लेकिन जीजी को इसका यकीन ही नहीं आता कि यासीन ने उसको मार डालने का षड्यंत्र रचा था।

हिरण ने कहा—यकीन नहीं करती, लेकिन कहती क्या है ?

—कहती है, इन बातों का एतबार न करना, इससे पाकिस्तान की बदनामी होगी। अल्लाह-कसम भैया, ये लोग छः महीने से जीजी को जहर खिलाते रहे।—फकीरा की आँखे फिर भर आई।

इस बीच मीरा कमर बाँधकर घर के काम-काज में जुट पड़ी थी। हिरण की उसी सनातन पोटली में से दो-एक धोतियाँ, साड़ी, एक चादर

—ऐसी ही कुछ चीजें निकली। पानी गरम करके मीरा ने हुस्ना का मुँह पोंछ दिया, पुआल-जैसे रूखे बालों को सहेजा। उसके बाद जब वह उसके कपड़े बदलने लगी, तो जो कुछ देखा वह डॉक्टर के सिवाय किसी से कहने का नहीं। मीरा ने अपने हाथों उस विभीषिका को ढँक दिया। घर में बेहद मक्खियाँ भिन्ना रही थीं। बिस्तर को पलटकर उसने मक्खियों को कुछ कम करने की तरकीब की। हुस्ना कभी-कभी इधर-उधर ताक-कर इस सेवा-शुश्रूषा करनेवाली को पहचानने की कोशिश कर रही थी। अपनी गोदी में उठाकर उसे ले कहीं भाग पाती, तो मीरा को शान्ति मिलती। उसकी जुबान पर शब्द न थे—आँखों से बह रही थी आँसू की धारा।

दोष बहुत हद तक मीरा का ही है—क्या यह सत्य नहीं? उसकी शिथिल प्रकृति ही क्या बहुत अंशों में इस वियोगांत की जिम्मेदार नहीं? हुस्ना को बाहर घूमने के लिए जाने ही क्यों दिया उसने? और हाजी-पुर जाकर उसने हुस्ना का साथ क्यों नहीं दिया?

एक छोटी-सी लड़की अचानक अंदर आयी और अनचीन्ही मीरा को देखकर बगल में भौंचक्की-सी खड़ी हो गई। मीरा जान गई, यही अमीना थी। बोली—थोड़ा पानी तो लाना बहन, हुस्ना को पिला-ऊँगी।

वह लड़की बाहर निकली। दूसरे ही क्षण टिन के एक कटोरे में पानी लेकर आई। मीरा ने हुस्ना को थोड़ा-सा पानी पिलाया। अमीना बोली—सुन सब लेती है वह, केवल सँभालकर बात नहीं कर सकती।

मीरा ने कहा—सँभालकर बातें बहुत करती रही है, अभी कुछ दिन न ही बोली तो क्या हुआ?

—कुछ दिन!—अमीना बोली—देख लेना तुम, अब यह बचेगी नहीं!

मीरा बोली—यह बचेगी, अमीना! यह बहुत दिनों तक बचेगी। हमारी ही बचने की कोई उम्मीद नहीं। तुम रात को शायद बहन के

पास रहा करती हो ?

अमीना बोली—क्यों, मुझे डर नहीं लगता क्या ? मैं जैनुद्दीन के यहाँ रहती हूँ। तुम लोग शायद हिंदू हो ?

हुस्ना इस बात पर जरा हँसी। मीरा ने कहा—अपनी दीदी को अच्छी हो लेने दो, उसी से पूछना हम कौन जात हैं। अच्छा, आओ, मैं तुम्हारा खाना परोस दूँ।

पाँच मिनट में अमीना केले का पत्ता और जरा-सा नमक ले आई। इस जून यहाँ भात मिल जाना उसके लिए एक मुनाफा था। बाहर उसने पत्तल डाल दिया और आँखें पोंछकर फकीरा जब बैठ गया तो हटकर वह भी बैठ गई। मीरा ने दोनों के पत्तल पर परोसा। भात के साथ आलू का भुरता देख आमीना गद्‌गद हो कौर निगलने लगी। मीरा हाथ धोकर फिर अंदर आयी।

खाते-खाते ही बीच में अमीना ने पूछा—अंदर कुछ गंदगी है क्या ?

फकीरा ने कहा—बड़ी दीदी आ गई हैं, अब तुझे कोई फिक्र नहीं करनी पड़ेगी।

—कल का बकाया पैसा नही देगा ?

उसकी असभ्यता से फकीरा अप्रतिम हो गया। बोला—ठहर, दूँगा।

अमीना ने कहा—यह मर जाएगी तो रोते-रोते बेहाल रहेगा, पैसा कब देगा ?

टेंट में से चार पैसे निकालकर फकीरा ने अमीना की तरफ फेंक दिए। इस कंबख्त लड़की के मारे आबरू बचाना मुश्किल !

गाँव के छोर पर होने की वजह से गाँववालों का ध्यान इधर न था। फिर वसंतकाल में इधर पहले हैजा फैला, सो लोगों का आना-जाना वैसा न था। हुस्ना को ये बातें जताने का कौतूहल किसी को न था। चौकीदार के घर के लोगों को इतना ही पता था कि बैलों को सानी लगानेवाली जो अमीना है, किसी रिश्ते से उसकी कोई ममेरी बहन

शायद सख्त बीमार है ! उसके साथ छौनी-छप्पर करनेवाला कोई है और वह अपना काम बेजा नहीं करता। बीच-बीच में वह आदमी नमक, मिट्टी का तेल, बार्ली और चावल खरीदने के लिए हाट जाता। पैठ के दिन वह वैद की तलाश करता। मगर यहाँ कहाँ वैद ?

लेकिन अमीना की कानाफूसी से दोपहर के बाद दो-चार आदमी इधर आ-जा रहे हैं। दो नये आदमी आये हैं—एक औरत, एक मर्द। दोनों ही हिंदू। दोनों उस कमिए के यहाँ टिके हैं। ताज्जुब है। उससे भी ताज्जुब की है उनकी शक्ल-सूरत, हाव-भाव। इसमें क्या शक कि दोनों बड़े घर के हैं। यह समझते देर नहीं लगती कि दोनों राख-ढँके अंगारे हैं। लेकिन हैं दोनों हिंदू, उनकी नीयत जानना मुश्किल है, उनका चरित्र गहन है।

गोधूलि का धुमैला रंग धीरे-धीरे छाया से ढँकता आ रहा था, मानों दिन का अवसान हो। हिरण बाहर चुपचाप बैठा था। अचानक पीछे से हुस्ना की धीमी आवाज पाकर उसकी सारी चेतना मानों कानों में जा बैठी। यह आवाज अभी की है या बहुत पहले की ; या जाने कब की स्मृति का आलोड़न है यह, कहना कठिन है। लेकिन संगीत की अंतिम मूर्च्छना जैसी हुस्ना की मृदु ध्वनि हिरण के कानों में सुनाई पड़ी।

—कवि !

—क्यों री ?—हिरण का जवाब उसके प्राणों के अतल तल में ही रह गया।

हुस्ना ने कहा—तेरे जीवन की कहीं नींव नहीं, आशा-भरोसा नहीं, वर्तमान-भविष्य नहीं, तू बसेराविहीन और भटका हुआ है, तू संसार-यात्रा से मेरी ही तरह टूट गिरा है। लेकिन फिर भी तू कवि है। तेरे हाथों में बाँसुरी है, वीणा है। तेरा काम है वेदना को महान् बनाना, दुःख को सुन्दर बनाना तेरी जिम्मेदारी है। तुझे निस्पृह, निरासक्त और निर्लिप्त एक मधुर जीवन की जरूरत है—तू वहीं लौट जा कवि।

हिरण ने पूछा—वह कहाँ है ?

हुस्ना बोली—इन्हीं सबके बीच लेकिन सबकी आँखों की ओट में। जीवन-समुद्र के बीच में छोटा-सा है एक टापू—वह तपोवन है। उसी तपोवन के आसन से संसार को देखना। उसी तपोवन से जागेगा आश्वासन और आशीर्वाद, जागेगी एक बृहत्तर जीवन की धारणा, लोक-कल्याण का महत् स्वप्न। तेरी कोई जात नहीं, कोई धर्म नहीं, समाज अथवा राजनीति नहीं—तेरे मिलन का सुर सभी जीवन के स्तर-स्तर में काम करता रहेगा। तेरे प्रेम का वह सुर बंगाल की मिट्टी के अंतर में संचारित होगा, लहराएगा नदी-नदी की लहरों में, तेरा वह मंत्र बीजों में नये प्राण भरेगा, हवा में बिखरेगा आनंद का श्वास, नये मनुष्य की चेतना से विजड़ित होकर रहेगा तेरा वह मंत्र—वह मंत्र रहेगा चिड़ियों के कलकंठ में, नये जीवन की पोर-पोर में।

हिरण हँसा। बोला—हुस्ना, यह तो काव्य है, सत्य नहीं !

रुँधे गले से हुस्ना बोली—इस काव्य का सत्य उपलब्धि का सत्य है ! बंगाल की मिट्टी में तमाम यह सत्य बिखरा हुआ रहे। इसी सत्य के तेज़ से होता है बीज से अंकुर, फिर फूल से फल। यही सत्य शंका को मिटाकर विश्वास लाता है, भय को दूर हटाकर श्रद्धा, वियोग मिटाकर मिलन और घृणा को हटाकर लाता है प्रेम। कवि, इस सत्य की सार्थकता के लिए क्रांति अगर आती है तो आए, उसी के लहू और आग के प्रचंड प्रलय-तांडव के परे जिसमें जलती रहे इस सत्य की अकंप शिखा।

आने-जानेवालों का तांता लग चला। हिरण बाहर ही बैठा रहा। बहुतों ने आकर फकीरा को बुलाया। फकीरा ने बातों-बातों में उनका परिचय दिया। कुछ बातें फकीरा ने दबाई, न भी दबाता तो क्या था ? कौन है हुस्ना, कौन है मीरा और हिरण, उनके लिए किसी की कोई विशेषता न थी। लेकिन बीमार को अब उन लोगों ने पहचाना। उसकी सेवा के लिए हिंदू स्वामी-स्त्री पाकिस्तान आये हैं, लिहाज़ा यह कोई मामूली औरत तो नहीं है। उन्होंने देखा, एक हिंदू स्त्री उसके लिए रोती

है, सिरहाने बैठकर सेवा करती है ; एक हिंदू मर्द उसके लिए दरवाजे पर उदास बैठा रहता है—सो यह हुस्ना कोई ऐसी-वैसी तो नहीं है। समाज की इतनी ही स्वीकृति क्या कम है—अभागिन हुस्ना धन्य हो गई।

हुस्ना कहा करती थी, परिचय ही आदमी को सँकरी सीमा में बाँध देता है। यह परिचय ही रुकावट है—परिचय आत्माभिमान है। स्थापत्य और भास्कर्य की जो महत् कृतियाँ इस देश की हैं, उन पर शिल्पी का हस्ताक्षर नहीं है। कीर्ति रख जाना और नाम मिटा जाना, यही इस देश की संस्कृति रही है। ख्याति नहीं, कीर्ति चाहिए। समय के प्रवाह में वीणा घिस जाए मगर लोगों के मन में संगीत की गूँज रहे ! ईश्वर दर-असल एक आइडिया है, एक बेहतरीन कल्पना—उससे बहुत लोगों को आनंद मिलता है। लेकिन जिस आदमी के दिमाग में यह आइडिया पहले-पहल आई थी, वह अपना कोई भी परिचय नहीं छोड़ गया। वही है महान् शिल्पी।

हुस्ना कहती थी—बड़े चाचा, आँखें रहने से क्या देखा जा सकता है ? कान होने से ही क्या सुना जाता है ? तुमने स्कूल खोला, अस्पताल खोला, दान-खैरात किया, फिर भी लोगों के मन को नहीं पा सके। जानते हो क्यों ? पढ़-लिख लेने से ही अज्ञान नहीं दूर होता। गौर करो, पढ़े-लिखे लोग ही देश को काटकर बाँट लेने को राजी हो गए ! इस अज्ञान और मूढ़ता को दूर करना ही क्या सबका बहुत बड़ा कर्त्तव्य नहीं है ? दुनिया की तबाही आज कौन ला रहे हैं ? ऐसे लोग क्या आज की शिक्षा से मनुष्य नहीं बने ? हुस्ना कहती चली जाती—चाहिए विराट् पुरुष और उसके साथ चाहिए महान् से महान् आइडिया। उसे देखकर असंतुष्ट जनता का शोर शान्त होगा, मुग्ध होगा—उसे देखकर सब क्रियाशील होंगे। वही आज के सूने सिंहासन का अधिकारी है !

हुस्ना कहती—कामरेड, निगाह खोलकर देख—इस जाति पर से विद्रोह, अकाल, जाति-विरोध—क्या-क्या नहीं गुजर रहा है। इसकी जड़

में बैठा है खौफनाक आँखोंवाला कापालिक। वह शव-साधना कर रहा है। जीवन और मौत की विभीषिका में से वह संहति यानी सिन्थेसिस लाएगा।

बेला झुकी ही थी, लेकिन फकीरा को रोशनी जलानी पड़ी। हिरण अंदर जाकर हुस्ना के पास बैठा। एक ओर बैठी मीरा हुस्ना को एकटक देख [illegible] पर आकर बैठा है, यह जानकर हुस्ना का मुखगह्वर जैसे खुशी से कल्लोलित हो उठा। पूछा—कौन ?

मीरा ने जरा झुककर कहा—तेरा कॉमरेड है हुस्ना !

हुस्ना ने कहा—नहीं, वह कवि है—हमारे जीवन का कवि।

हाट से एक आधा सड़ा संतरा फकीरा ले आया था। उसे उठाकर हिरण ने पूछा—हुस्ना, संतरे का रस पियेगी ?

हँसकर हुस्ना ने सम्मति जताई। संतरे का जो हिस्सा अच्छा था, उससे एक दाना निकालकर हिरण ने रस की कुछ बूंदें उसके मुँह में टपका दीं। उस रस में कितना आनंद था। नीलकंठ में क्या अमृत सिंचित हुआ ! लेकिन देखते-ही-देखते वह रस मुँह से फेन होकर बाहर निकल आया ! मीरा ने उसे पोंछ दिया। हिरण पत्थर-सा बैठ रहा। फकीरा मुँह फेरकर हट गया वहाँ से।

हुस्ना हँसी। डरकर हुस्ना ने स्नेह से उस हँसी पर हाथ फेर दिया। कैसी तो उल्लसित भाषा में हुस्ना बोली—मैं बात कर सकती हूँ कवि।

हिरण ने पूछा—और क्या कहना है तुझे ?

—कहना है !—हुस्ना बोली—असली बात तो आज तक कह ही नहीं सकी। अब मैं इसी खुशी से अच्छी हो जाऊँगी कि मैं तुम लोगों को वापिस ला सकी ?

—वचन देती है कि तू चंगी हो जाएगी ?

—देती हूँ ! मैं नहीं मरने की, हर्गिज नहीं, देख लेना। तुम लोगों के बीच मैं जरूर मौजूद रहूँगी।

हुस्ना कुछ हाँफ उठी। गले से वह आवाज लगातार हो ही रही थी। फिर भी वह हँसी। घर में बत्ती जल रही थी, तो भी उसने कहा—जरा बत्ती जला दे, तुम दोनों को जरा देख लूँ! जाने कब से नहीं देखा।

मीरा बोली—तू उठकर रोशनी नहीं जलाएगी?

—हाँ, मैं उठूँगी—जी—

रुँधती हुई साँस हुस्ना को परेशान कर रही थी। सर सहलाकर हिरण ने उसे शान्त किया। जो कभी अभी-अभी मरनेवाले किसी के सिर-हाने नहीं बैठे, ऐसे लोग भी हुस्ना को देखकर यह कह सकते थे कि उसकी अब कोई उम्मीद नहीं। गली हुई देह, स्खलित कंठ, विष से जर्जर, उसकी तो मौत कब की हो चुकी है। वह तो अब मृत्यु को पार कर अमृतलोक की ओर जा रही है।

बड़ी कोशिश के बाद हुस्ना ने हाथ बढ़ाया। शायद वह फकीर को बुला रही थी इस तरह। फकीर करीब आया। हुस्ना ने क्षीण स्वर में कहा—फकीर, निकाल दे न?

फकीरा समझ गया। अंदर जाकर उसने एक कोने की मिट्टी खोदी और टिन का एक बक्स निकालकर ले आया। हुस्ना ने धीरे-धीरे कहा—इस बक्स में मीरा जीजी के रुपये हैं—मैंने फकीर के पास अमानत रखे थे। कवि, बहुत रुपये हैं। इन रुपयों से न मुझे नहीं बचा सकेगा?

हिरण ने कहा—मुँह जली कहीं की। तुझे तो मैं जान देकर बचा-ऊँगा—रुपयों का क्या होगा? रुपये से भी कोई बचता है?

हुस्ना बोली—और एक वायदा कर? मैं जिस दिन उठ खड़ी हूँगी, उस दिन से तुम लोग उन्हें इन्सान बनाओगे?

—किन्हें?—एक ही साथ मीरा और हिरण ने पूछा।

—यही अमीना, फकीरुद्दीन, हाबू मंडल, दासू शेख को।

मीरा ने कहा—मैं वचन देती हूँ हुस्ना, मैं उन्हें छोड़कर कहीं न जाऊँगी। उनका भार मैं लेती हूँ।

हुस्ना कुछ देर चुप रही। चेहरे पर उसके आनंद की ज्योति निखरी। धीमे से पुकारा—कवि !

हिरण ने कहा—यही तो हूँ मैं।

—सच ही मुझे बचाना चाहता है ?

उत्तर देते हुए हिरण का गला काँप उठा। फिर भी उसने कहा—जो सदा की मिथ्यावादिनी है, वह क्या एक दिन को भी सच नहीं कह सकती है ?

रुक-रुककर टूटी आवाज में हुस्ना कहने लगी—यह बीमारी भी एक स्वांग है कवि, यह सत्य नहीं है। एक ही अभिनेत्री, अलग-अलग भूमिकाएँ। तू एक बात का वचन दे, तभी मैं इस बिस्तर से उठूँगी। बोल, रखेगा मेरी बात ?

हिरण ने कहा—रखूँगा।

—बोल कि तू मीरा के पास रहेगा, कहीं जायगा नहीं ?

—अरि अभागिन, ऐसी शपथ तू क्यों कराती है मुझसे ? डर लगता है !—हिरण ने कहा—तेरे साथ भी न जाऊँगा ?

दबे गले से हुस्ना ने कहा—मेरे साथ कभी कोई नहीं गया—मैं अकेली हूँ। मेरे साथ कभी कोई नहीं रहा !

उत्तेजित होकर हिरण बोला—उस रोज राजनर्त्तकी के नाच से सखारामपुर में हजारों-हजार लोगों की भीड़ लग गई थी, तब खड़ा-खड़ा देख कौन रहा था ?

आँचल से आँसू पोंछते हुए मीरा ने कहा—मैं वचन देती हूँ हुस्ना, तेरे कवि को मैं अपने पास से कहीं न जाने दूँगी।

हुस्ना के कानों तक यह बात न पहुँची। वह बोली—मैं ही अकेली हूँ। राजहंस अनंत शून्य में उड़ा जा रहा है ! मैं अकेली हूँ, अकेली ! रोशनी जला दे कवि ! रोशनी !

—जल तो रही है रोशनी।

—जलने दे—अंधकार जले।—हुस्ना कहना चाहने लगी—वह न

बुझे जिसमें !

देखते-देखते राजहंसी का स्वर अनंत शून्य में खो गया। मानों हुस्ना अपने-आप में डूब गई। अतल पत्थर के गूढ़ रहस्य के नीचे मानों वह खो गई।

बाहर अमावस की साँझ घनीभूत हो उठी। मधुमती के चौंर पर दिन डूबे की रंगीन आभा तब भी थी। मैनाचौंर की झील और निलहे के टीले पर साँझ उतर रही थी। गाँव के बहुत-से लोग बाहर जुट गए थे। यह मौत ही न थी, मौत से भी बड़ी कुछ !

मीरा हिरण की ओर देख रही थी। हुस्ना शान्त थी, निश्चल। हिरण की आँखें उसी पर गड़ी थी।

पृथ्वी का दम घुट रहा था। कही भी जीवन की चेतना नहीं। गाढ़े अँधियारे ने बाहर-भीतर, तमाम को ढँक लिया था। जल रही थी केवल वही एक रोशनी—शिखा उसकी अचल थी, अकंप।

* * *

रोशनी जल रही है।

हुस्ना कहा करती थी—चारों ओर के इस गाढ़े अंधकार के बीच आँधी-तूफान से बचाकर अगर मिट्टी का चिराग जलाए चुपचाप बैठी रह सकूँ, तो वही चरम सार्थकता है। वही रोशनी, साहस और सांत्वना है—वही अँधेरे में राह दिखाती है।

वह रोशनी रही मधुमती के किनारे। उसके पास से गीत गाते हुए मल्लाह अपनी नाव खेते हुए गुजरते—उसी रोशनी से व्यापारी नावों को घाट का पता चलता। उस रोशनी को लाकर फकीरा समाधिस्तंभ के तुलसी चौंरे पर रख देता, अमीना भरकर लाती आँचल में फूल और बिखेर देती।

बुरा क्या है, नवजीवन के प्रदीप पर प्राणों की यह लौ अकंप जलती रहे—इस लौ से यदि कोई अपने घर की बत्ती जला ले जाए, यह भी

खुशी की बात है। हुस्ना तो कहती ही थी—मैं हूँ सूरज की बेटी, मेरी सिर्फ ज्वाला ही देखता है, ज्योति नहीं ?

इसी रोशनी को अपने सामने रखकर वे इस गाँव में हैं। उसी से उन्होंने अपनी राह पहचानी, घर बसाया और कुछ करने के लिए जम गए। फकीरा और अमीरा को उन्होंने उठाया।

उन दोनों के बीच जलती है वह रोशनी। उसी ज्योति में एक दिन हिरण ने देखा, मीरा की आँखों के आँसू आज भी नहीं सूखे हैं। बत्ती रखकर वह उसके समीप गया। उससे लिपटकर मीरा फफक उठी।

रोशनी आज भी जल रही है।

● ● ●